पहलेकी बातें

पहलेकी बातें

श्रीमातृवाणी

पहलेकी बातें

श्रीअरविंद सोसायटी
पांडिचेरी

प्रथम संस्करण १९७८
अंग्रेजी भाषामें 'वर्ड्स ऑफ लौंग एगो' के नामसे १९७८ में प्रकाशित
स्वत्वाधिकार श्रीअरविंद आश्रम ट्रस्ट १९७८
हिन्दी अनुवाद © श्रीअरविंद आश्रम ट्रस्ट १९७८
सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य ३५.००

खंड २

श्रीअरविंद आश्रम ट्रस्टकी ओरसे
श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी द्वारा प्रकाशित
श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी द्वारा भारतमें मुद्रित
वितरक :
शब्द : श्रीअरविंद बुक्स डिस्ट्रिब्यूशन एजेंसी, पांडिचेरी-६०५००२

प्रकाशकका वक्तव्य

श्रीमातृवाणीके इस द्वितीय खण्डमें माताजीकी सन् १९२० से पहलेकी कृतियां दी जा रही हैं। 'प्रार्थना और ध्यान' पहले खण्डमें दिये जा चुके हैं। इस खण्डको लेखोंके क्रम और वर्षोंकी दृष्टिसे आठ भागोंमें बांटा गया है।

भाग १ और २ में "पारोल दोत्र फ्वा"—पहलेकी बातें —' के सभी लेख ले लिये गये हैं। यह माताजीके सबसे पुराने लेखोंका संकलन है जो सबसे पहले १९४६ में छपा था। १९६४ में इसका हिंदी अनुवाद छपा था। प्रथम भागके विषय तिथि-क्रमसे दिये गये हैं। उनमें माताजीकी 'नीलम-की कहानी' और जोड़ दी गयी है। माताजीके अनुसार यह अधिमानसिक सृष्टिके आदर्शको व्यक्त करती है। इसी भागमें विचारके बारेमें कुछ वार्ताएं जोड़ दी गयी हैं।

भाग २ में संकलित ७ मई, १९१२ की पहली बैठकका विषय इससे पहले श्रीमातृवाणी भाग १ (वार्तालाप) की भूमिकाके रूपमें छपा था। इस बार उसे अपने स्थानपर क्रममें रख दिया गया है।

सन् १९११ से १९१३ के बीच माताजीने विभिन्न गोष्ठियोंमें कुछ प्रवचन दिये थे। इनमेंसे विचार और स्वप्नसंबंधी प्रवचन पहले भागमें आ चुके हैं, अन्य प्रवचन यहां तीसरे भागमें दिये जा रहे हैं। इनमेंसे कुछ प्रवचन एक ही विषयपर हैं जिनमें बहुत कम परिवर्तन किया गया है। ऐसे परिवर्तन यहां पाद-टिप्पणियोंमें दे दिये गये हैं।

भाग ४ में कुछ ऐसे लेख दिये गये हैं जो प्रार्थना और ध्यानकी शैलीके हैं और अभीतक कहीं प्रकाशित नहीं हुए। इनमेंसे कुछपर तारीख भी लिखी है।

माताजीके कुछ छोटे-छोटे लेख अभी हालमें मिले हैं, ये टिप्पणियां और विचार पांचवें भागमें दिये गये हैं।

भाग ६ में ऐसे पत्र, निबन्ध आदि दिये गये हैं जो माताजीने जापानमें रहते हुए सन् १९१६-२० में लिखे थे। 'जापानके अनुभव' लेख 'माडर्न रिव्यू' के लिये लिखा गया था।

जापानमें रहते हुए माताजीने एफ० जे० गोल्डकी पुस्तक 'यूथ्स नोबल पाथ' की कहानियोंका फ्रेंचमें भावानुवाद किया था। ये कहानियां भाग सातमें माताजीकी भूमिकाके साथ दी जा रही हैं। इनमेंसे कुछ भारतीय

पौराणिक कहानियोंके बारेमें माताजीने कहा था कि ये कहानियाँ उन्होंने जैसी पढ़ी थीं वैसी ही लिख दी हैं, ये उनकी अंतर्दृष्टिसे देखी हुई चीजें नहीं हैं।

माताजीने फ्रांसमें रहते हुए प्राचीन हिंदू और बौद्ध साहित्यका अध्ययन भी किया था और इस सिलसिलेमें नारद भक्ति-सूत्र, कैवल्योपनिषद्, अमृत-बिन्दूपनिषद् आदिका फ्रेंचमें अनुवाद किया था। अन्तिम भाग आठमें हम इनमेंसे कुछ चीजोंके अनुवाद दे रहे हैं, ये अंग्रेजी संस्करण 'वर्ड्स ऑफ लौंग एगो' में नहीं दिये गये।

आर्षवाणीका अनुवाद करना एक असंभव कार्य है। मूल भाषा न जाननेवालोंके लिये श्रीमातृवाणीका अनुवाद श्रीअरविंद अंतर्राष्ट्रीय शिक्षाकेंद्र-का हिंदी विभाग कर रहा है।

श्रीमाताजी

जन्म

२१ फरवरी, १८७८

भारतमें आगमन

२९ मार्च, १९१४

महासमाधि

१७ नवम्बर, १९७३

शताब्दी

२१ फरवरी, १९७८

भाग १

थोड़ी देर बादका रास्ता

"थोड़ी देर बादका रास्ता और आगामी कलकी
सड़क हमें सिर्फ कुछ भी नहींके किलेमें ले जाते हैं

रास्तेके किनारे, रंग-बिरंगे फूल आंखोंको हर्षित करते हैं। छोटे-छोटे पेड़ोंपर लाल-लाल बेरियां गांठदार टहनियोंपर चमक रही हैं और, कहीं दूर देदीप्यमान सूर्य अन्नकी पकी हुई बालियोंपर सोना चमका रहा है।

एक युवा पथिक झूमता-झामता, सवेरेकी निर्मल हवामें आनंदसे सांस लेता चला जा रहा है; वह प्रसन्न मालूम होता है, उसे भविष्यकी कोई चिंता नहीं। वह जिस रास्तेपर चल रहा है वह एक चौराहेपर निकलता है जहांसे कई रास्ते सभी दिशाओंमें बंट जाते हैं।

युवक हर जगह, हर दिशामें, एक-दूसरेको काटते हुए पद-चिह्न देखता है। आकाशमें सूर्य अधिकाधिक चमक रहा है; पेड़ोंपर विहग गा रहे हैं; दिनके अत्यधिक मनोहर होनेकी पूरी संभावना है। बिना सोचे-विचारे पथिक सबसे नजदीकका रास्ता लेता है, बात व्यावहारिक लगती है; क्षण-भरके लिये ख्याल आता है कि कोई और रास्ता भी तो चुना जा सकता था; लेकिन अगर यह रास्ता अंधी गली निकला तो लौटनेके लिये काफी समय है; एक आवाज-सी सुनायी देती है जो उससे कहती है: "लौट चलो, लौट चलो, तुम ठीक रास्तेपर नहीं हो।" उसके चारों ओर जो कुछ है वह उसे बहुत अच्छा लगता है, मोहित कर रहा है। अब वह क्या करे? उसे नहीं मालूम। किसी निश्चयपर पहुंचे बिना वह आगे बढ़ता जाता है; उस क्षणके सुखोंमें वह खूब मजा ले रहा है। वह उस आवाजको उत्तर देता है: "बस जरा और, बस और थोड़ा-सा, फिर मैं इसके बारेमें सोचूंगा। मेरे पास बहुत समय है।" उसके चारों ओर उगी जंगली घासें उसके कानमें फुसफुसाती हैं: "थोड़ी देर बाद . . . थोड़ी देर बाद. . .हां, बादमें . . .!" जब सूर्य अपनी ऊष्मा-भरी किरणोंसे हवाको गरमाता है तो इस सुरभित वायुमें सांस लेना कितना मधुर लगता है! हां, बादमें, थोड़ी देर बाद। और पथिक आगे बढ़ता चलता है; रास्ता चौड़ा होता जाता है। दूरसे आवाजें सुनायी देती हैं: "तुम कहां जा रहे हो? बेचारे मूर्ख, तुम देख नहीं पाते कि तुम अपने विनाशकी ओर जा रहे हो, तुम अभी इतने छोटे हो; आओ, आओ, हमारी ओर आओ, सुंदर

शुभ और सत्यकी ओर आओ; नरम-नरम और आसानके कारण गलत रास्तेपर न जाओ, वर्तमानको लेकर ही सो न जाओ; भविष्यके प्रति जागो।" — पथिक अरुचिकर आवाजोंको उत्तर देता है: "बादमें, बादमें।" फूल उसे देखकर मुस्कराते हैं और दोहराते हैं: "बादमें।" और रास्ता और भी चौड़ा होता जाता है। आकाशमें सूर्य चोटीतक पहुंच चुका है; दिन प्रकाशमान है। रास्ता सड़कमें बदल जाता है।

सड़क सफेद और धूल-भरी है; उसके किनारे भोज वृक्ष खड़े हैं; एक छोटी-सी नदीका कलकल शब्द सुनायी दे रहा है; वह व्यर्थमें चारों ओर खोजता है पर उसे इस अनंत सड़कका कहीं अंत नहीं दिखायी देता।

युवक एक छिपी हुई बेचैनी-सी अनुभव करता है, चिल्लाता है: "मैं कहां हूं? मैं कहां जा रहा हूं? इसकी क्या परवाह! सोचा ही क्यों जाय? कुछ भी क्यों किया जाय? चलो, इस अंतहीन सड़कपर ही बेमतलब भटका जाय; चलो, चलते चलें। कल सोचेंगे।"

छोटे-छोटे पेड़ गायब हो गये; सड़कके किनारे बलूत लगे हैं; खाई आरंभ हो रही है जो दोनों ओर खोखला करती जाती है। पथिकको थकान नहीं लगी; वह मानों प्रलापकी अवस्थामें आगे घसीटा जा रहा है।

खाई और गहरी होती जा रही है; बलूतके पेड़ोंकी जगह चीड़ने ले ली; सूरजने ढलना शुरू कर दिया। पथिक चारों ओर चकराया-सा देखता है; उसे खाईमें लोटते हुए मानव आकार दिखायी देते हैं, कोई चीड़के पेड़ोंसे चिपके हैं तो कुछ सीधी चट्टानसे और कुछ बाहर निकलती जड़ोंसे; उनमेंसे कुछ वापिस चढ़ आनेके लिये भरसक कोशिश कर रहे हैं, लेकिन जैसे ही किनारेके पास आते हैं, वे मुंह फेर लेते हैं और मानों जानकर फिर जा गिरते हैं।

उदासी-भरी आवाजें पथिकसे चिल्लाकर कहती हैं: इस इलाकेसे भाग निकलो; चौराहेकी ओर लौट जाओ; अभी समय है।" युवक सकुचाता है और फिर उत्तर देता है: "कल।" वह दोनों हाथोंसे अपना मुंह ढक लेता है ताकि खाईमें लोटते शरीरोंको न देख सकें, वह सड़कपर दौड़ पड़ता है, उसमें आगे बढ़ते जाने का अदम्य आवेग है। अब उसे उद्देश्य जाननेकी परवाह नहीं है। माथेपर झुर्रियां और कपड़े अस्त-व्यस्त, वह निराशा-भरे साहसके साथ दौड़ा जा रहा है। आखिर, अपने-आपको उस मनहूस जगहसे दूर मानकर वह आंखें खोलता है: चीड़के पेड़ खतम हो चुके हैं। चारों ओर बस धूसर, बंजर, पथरीली जमीन है। सूरज क्षितिजके पीछे जा छिपा है और रात प्रकट हो रही है। सड़क एक अनंत रेगिस्तानमें खो जाती है।

पथिक निराश है, लंबी दौड़के कारण थककर चूर हो गया है। वह वहीं रुकना चाहता है पर उसे चलना ही पड़ेगा। उसके चारों ओर खंडहर हैं; उसे दबी, घुटती हुई आवाजें सुनायी देती हैं; उसके पैर कंकालोंमें लड़खड़ाते हैं। दूर, उस ओर, कुहरा भयावने आकार ले रहा है; काले-काले ढेर कुछ खाके-से बना रहे हैं; कुछ विकृत, विशालकाय वस्तु धुंधला रूप ले रही है। पथिक इस लक्ष्यकी ओर चलनेकी जगह उड़ना शुरू करता है। यह उसे अपने आगे ही प्रतीत होता है, परंतु फिर भी हमेशा उससे बच निकलता है। हिंसा-भरी, क्रूर चिल्लाहटें उसे आगे-का रास्ता दिखाती हैं; वह इधर-उधर भूत-प्रेतोंसे भिड़ता जाता है।

आखिर उसे अपने आगे एक बहुत बड़ी इमारत दिखायी देती है, अंधेरी, सुनसान, विषाद-भरी — उन महलोंमें से एक जिनके बारेमें लोग पीड़ाके साथ कहते हैं: "यह भुतहा महल है।" लेकिन युवक उस जगह-के विषादके बारेमें नहीं सोचता। बड़ी काली दीवारों, धूल-भरी जमीन और इन भयंकर, भीमकाय मीनारोंका उसपर कोई असर नहीं होता। इन्हें देखकर उसके रोंगटे नहीं खड़े होते! वह सोचता है कि वह अपने लक्ष्यपर आ पहुंचा। वह सारी थकान, सारी उदासी और विषण्णताको भूल जाता है। महलकी ओर बढ़ते हुए वह एक दीवारसे छू जाता है और दीवार तुरंत ढह जाती है; उसके चारों ओर, सब कुछ, मीनारें, परकोटे, प्राचीर, सब-के-सब धूलमें डूब जाते हैं; जो धूल जमीनको ढके हुए थी उसपर परतें और बढ़ जाती हैं।

उल्लू, कौए और चिमगादड़ कर्कश आवाजें करते हुए बाहर निकल आते हैं और बेचारे पथिकके सिरके चारों ओर मंडराने लगते हैं। वह सम्मोहित-सा, हताश और थककर चूर, अपने स्थानसे जकड़ गया है; अब जरा-सी गति करना भी असंभव है। अचानक, मानों इन वीभत्स, दिल दहलानेवाली चीजोंकी कमी पूरी करनेके लिये उसे अपने आगे भयंकर भूत खड़े दिखायी देते हैं जिनके नाम हैं: बरबादी, निराशा, जीवनसे घृणा। और इन खंडहरोंके बीच उसे एक झांकी मिलती है आत्म-हत्याकी जो अथाह खाईके ऊपर खड़ी है — रक्तहीन, उदास और खिन्न। ये सभी संघातिक भूत उससे चारों ओरसे चिपटे हैं और मुंह बाए खड़े जोखमकी ओर ढकेलते हैं। अभागा आदमी इन दुर्धर्ष शक्तियोंका सामना करना चाहता है। अब वह पीछे हटना चाहता है, बच निकलना चाहता है। जो अदृश्य भुजाएं उसे अपनेमें भरे हैं, जकड़े हुए हैं वह उनमेंसे निकल भागनेकी कोशिश करता है; लेकिन अब बहुत देर हो चुकी है। वह अब भी उस घातक खाईकी ओर बढ़ रहा है। वह उससे आकर्षित,

सम्मोहित है। वह पुकारता है, पर कोई आवाज उसे जवाब नहीं देती। वह मुतहा आकारोंको पकड़ता है, लेकिन हर चीज उसके नीचे ढहती जाती है। निर्जीव आखोंसे वह अपने चारों ओरके शून्यका अवलोकन करता है, वह पुकारता है, याचना करता है, लेकिन उत्तरमें, उसके कानोंमें गूंज उठती है अशुभ, वीभत्स हंसी।

पथिक अब खाईके किनारेपर है। उसके सब प्रयास व्यर्थ हैं। एड़ीसे चोटीका पूरा जोर लगाकर वह गिर पड़ता है . . . अपने बिस्तरसे।

एक युवा विद्यार्थीको अगले दिनके लिये एक लंबा निबंध तैयार करना था। सारे दिनके कामसे वह कुछ थक गया था, उसने घर लौटकर अपने-आपसे कहा: "मैं बादमें काम कर लूंगा।" शीघ्र ही उसने सोचा कि अगर वह जरा जल्दी सो ले तो सवेरे जल्दी उठकर वह अपना काम पूरा कर लेगा। "चलो, सो जायं," उसने अपने-आपसे कहा। "मैं कल ज्यादा अच्छा काम कर सकूंगा, रात बहुत अच्छी सलाहकार होती है।" उसने आशा न की थी कि उसकी बात इतनी सच्ची निकलेगी। उसकी नींदमें उस दुःस्वप्नने गड़बड़ी कर डाली जिसका हम अभी वर्णन कर आये हैं। खाटसे गिरकर वह चौंक पड़ा और अपने स्वप्नके बारेमें सोचते हुए बोला: "सारी चीज कितनी सरल है: यह रास्ता था, 'थोड़ी देर बाद'का रास्ता, सड़क है आगामी 'कल' की सड़क और वह विशाल भवन था . . . 'कुछ भी नहीं' का प्रासाद।" अपनी होशियारीपर फूला न समाया हुआ, युवक कामपर बैठ गया और अपने-आपके आगे दृढ़ प्रतिज्ञा की कि जो आज कर सकता है उसे कलपर कभी न टालेगा।

(१८९३)

सद्गुणोंके उत्सवमें

एक समयकी बात है। एक भव्य महल था, जिसके बीचों-बीच एक गुप्त मंदिर था। किंतु आजतक उसकी देहली भी किसीने पार नहीं की थी। और तो और, उसकी बाहरी चहारदीवारीतक भी पहुंचना मर्त्य प्राणियोंके लिये सहज नहीं था। क्योंकि महल ऊंचे बादलोंपर खड़ा था और आदिकालसे विरले ही वहांका मार्ग ढूंढनेमें समर्थ हुए थे।

यह था 'सत्य'का महल।

एक दिन, वहां एक उत्सवका आयोजन हुआ; मनुष्योंके लिये नहीं वरन् उनसे अत्यन्त भिन्न प्रकारकी सत्ताओंके लिये। इसमें वे छोटे-बड़े देवी-देवता आमंत्रित हुए थे जो इस पृथ्वीपर 'सद्गुणों'के नामसे पूजे जाते हैं।

उस महलके बाहरी भागमें एक बहुत बड़ा कक्ष था। उसकी दीवारें, फर्श और छत स्वयं प्रकाशमान थीं, तिसपर हजारों अग्नि-स्फुलिंगोंसे और भी जगमगा रही थीं।

यह था 'बुद्धिका महाकक्ष'। यहां फर्शके पास प्रकाश बहुत हल्का था, नीलमणिके रंगका अति सुंदर गहरा नीला रंग छतकी ओर अधिकाधिक तेज होता गया था। छतमें हीरोंके शमादान झाड़ोंकी तरह लटके हुए थे। उनके हजारों मुखोंसे आंखोंको चौंधियानेवाली किरणें चारों ओर फूट रही थीं।

सद्गुण अलग-अलग आये पर शीघ्र ही अपनी-अपनी रुचिके अनुसार टोलियां बनाकर बैठ गये। सभी प्रसन्न थे कि आज ऐसा दिन आया जब वे एक बार इकट्ठे हो सके। वे साधारणतः इस जगत्में और अन्य जगतोंमें बिखरे रहते हैं, परायोंकी भीड़में छितरे रहते हैं।

इस उत्सवकी अध्यक्षता की 'दिलकी सचाई'ने जिसका वेश जलके समान निर्मल था, उसके हाथोंमें एक घनाकार अति, विशुद्ध स्फटिक था। उस स्फटिकसे वस्तुएं वैसी दिखलायी देती थीं जैसी वे वास्तवमें थीं, जैसी वे साधारणतया प्रतीत होती हैं उससे सचमुचमें बहुत ही भिन्न, क्योंकि उसमें वस्तुएं हूबहू, बिना किसी विकृतिके प्रतिबिम्बत होती थीं।

उसके पास ही दो मूर्तियां विश्वस्त अंगरक्षकोंकी तरह खड़ी थीं; एक थी 'विनम्रता', उसका भाव आदरपूर्ण और साथ ही गर्वीला, और दूसरी ओर उन्नत ललाट, उज्ज्वल चक्षु, दृढ़ हास्यपूर्ण अधर, प्रशांत, निश्चिन्त भंगिमावाला 'साहस' था।

'साहस'के समीप उसके हाथमें हाथ डाले बुरकेमें लिपटी एक नारी खड़ी थी। केवल उसकी तीक्ष्ण आंखें ही घूंघटको भेदकर चमकती हुई दीख पड़ती थीं। वह थी 'सावधानता'।

सबके बीच एक-दूसरेके पास आती-जाती, फिर भी हर समय सबके निकट दीखती थी 'उदारता',—एक ही साथ सतर्क एवं शान्त, कर्मरत एवं विवेकपूर्ण। उस समूहमें वह जिधर निकल जाती उधर ही अपने पीछे उज्ज्वल मृदु प्रकाशकी रेखा छोड़ती जाती थी। यह प्रकाश जो उससे छंटकर विकीर्ण हो रहा था वास्तवमें उसे अपनी श्रेष्ठ सखी, चिर सह-चरी और जुड़वां बहन 'न्यायपरतासे' मिल रहा था, किन्तु वह उसके पास

सूक्ष्म रूपमें, अधिकांश दृष्टियोंसे ओझल रहकर आ रहा था।

'दया', 'धैर्य', 'सौम्य', 'विनय' और ऐसे अनेकोंकी उज्ज्वल सेना 'उदारताको' घेरे हुए थी।

सभी आ चुके थे। कम-से-कम सबकी ऐसी धारणा थी।

किन्तु यह लो, वह कौन है? स्वर्ण-द्वारपर हठात् एक नवागन्तुक!

द्वारपालोंने बड़ी कठिनाईसे उसे अन्दर आने दिया था। न तो उन्होंने उसे कभी पहले देखा था और न ही उसकी आकृतिमें उन्हें कोई प्रभावशाली चीज लगी।

वह नवीन वयसकी थी, उसकी देह दुबली-पतली और पोशाक साधारण, बल्कि गरीब जैसी थी। वह डरती-सी, झिझकती-सी, कुछ डग आगे बढ़ी। पर स्पष्ट ही वह अपनेको ऐसी वैभवशाली उज्ज्वल भीड़के बीच पाकर खो-सी गयी। वह ठिठक गयी, उसे पता न था कि किसकी ओर जाय।

उधर 'सावधानता' साथियोंसे कुछ परामर्श करके उनके अनुरोधपर अनजाने मेहमानकी ओर बढ़ी। वह जरा गला साफ करके, जैसा कि दुविधामें पड़े लोग थोड़ा सोचनेके लिये करते हैं, उसकी ओर अभिमुख होकर बोली:

"हम सब जो इस महलमें इकट्ठे हुए हैं एक-दूसरेके नाम और गुण जानते हैं। आपको आते देखकर हमें बड़ा आश्चर्य हो रहा है। आप विदेशी-सी प्रतीत होती हैं। कम-से-कम ऐसा नहीं लगता कि आपको कभी देखा हो। क्या आप यह बतानेकी कृपा करेंगी कि आप कौन हैं?"

नवागताने लंबी सांस लेते हुए उत्तर दिया: "हाय! मुझे आश्चर्य नहीं कि मुझे यहां विदेशी माना जा रहा है। मैं कहीं कदाचित् ही आमंत्रित होती हूं।

"मेरा नाम है 'कृतज्ञता'।"

(१९०४)

नीलमकी कहानी

(यह कहानी माताजीने १९०६ में अधिमानस-सृष्टिके आदर्शको प्रकट करते हुए लिखी थी।)

सुदूर पूर्वमें एक छोटा-सा देश था। वहां हर चीजमें सुव्यवस्था थी और हर बातमें सामंजस्य था। हर व्यक्ति अपने-अपने स्थानपर, सबके अधिक-से-अधिक भलेके लिये अपनी भूमिका पूरी करता था।

किसान, कारीगर, मजदूर, व्यापारी, सबकी एक ही महत्त्वाकांक्षा थी, एक ही चिन्ता थी — सब अपना काम अच्छे-से-अच्छा करना चाहते थे, और यह भी अपने हितमें। पहला कारण तो यह था कि उन्होंने अपना काम अपनी मरजीसे, आजादीके साथ चुना था; वह उनकी प्रकृतिके साथ मेल खाता था और उन्हें आनन्द देता था, और फिर वे जानते थे कि हर अच्छे कामका उचित पुरस्कार होता है। उन्हें, उनके बीवी-बच्चोंको फालतू ऐशके सामान तो नहीं, पर जरूरतकी सभी चीजें प्रचुर मात्रामें मिलती थीं और जीवन शान्त और सुखमय था। लोग सन्तुष्ट थे।

वैज्ञानिक और कलाकार संख्यामें कम थे लेकिन सबको अपने विज्ञान और अपनी कलासे प्रेम था। उनका कृतज्ञ देश उनके जीवन-यापनकी व्यवस्था करता था क्योंकि उनके उपयोगी शोधों और ऊंचा उठानेवाले कर्मोंका लाभ और सुख पहले उन्हें ही मिलता था। इस प्रकार जीवन-संघर्षकी चिन्ताओंसे मुक्त वैज्ञानिकोंका एक ही लक्ष्य था कि उनके परीक्षण, उनके शोध-कार्य, उनका गंभीर और निष्ठापूर्ण अध्ययन मानवजातिके दुःख दूर करनेमें लगें; ज्योति और सुख देनेवाले ज्ञानके आगे अन्धविश्वास और भयको अधिक-से-अधिक दूर खदेड़ दिया जाय; मानवजातिके तेज, ओज और योगक्षेममें वृद्धि हो। कलाकार अपनी सारी संकल्प-शक्तिको कलापर केन्द्रित कर सकते थे और उनकी एक ही इच्छा थी : अपनी उच्चतम, व्यक्तिगत धारणाके अनुसार सौन्दर्यको व्यक्त करें।

उनमें मित्र और पथप्रदर्शकके तौरपर चार दार्शनिक थे जिनका सारा जीवन गहरे अध्ययन और आलोकमय चिन्तन-मननमें बीतता था ताकि मानव ज्ञानके क्षेत्रको निरंतर विस्तृत करते रहें और अभीतक जो रहस्य हैं उसके परदोंको एक-एक करके उठाते जायें।

सभी सन्तुष्ट थे क्योंकि उनके आगे कोई स्पर्धा या प्रतियोगिता नहीं

थी और वे अपनी मरजीके अनुसार अपने-आपको काम या अध्ययनमें लगा सकते थे। सब सुखी थे इसलिये उन्हें बहुत-से विधि-विधानोंकी जरूरत न थी। उनका कानून सबको बस एक सरल-सहज-सी सलाह देता था: "अपने-आप बनो।" सबके लिये बस एक ही विधान था जिसका कठोरताके साथ पालन करना जरूरी था और वह था सद्भाव और उदारताका-विधान जिसका उच्चतम तत्त्व है न्याय। यह उदारता किसी प्रकारके अपव्ययको नहीं स्वीकारती और न ही स्वतंत्र विकासमें किसी तरहकी बेड़ियोंको सह सकती है।

इस सुव्यवस्था और सामंजस्यके देशमें एक ऐसे राजाका राज था जो केवल इसीलिये राजा बना था क्योंकि वह सबसे बढ़कर समझदार और बुद्धिमान् था, उसीके अन्दर यह क्षमता थी कि उन्हें वह सब दे सके जिसकी उन्हें जरूरत हो; केवल वही इतना प्रबुद्ध था कि दार्शनिकोंके उच्चतम चिन्तनको समझ सके और उनका मार्गदर्शन भी कर सके और साथ ही इतना व्यावहारिक था कि अपनी प्रजाकी, जिसकी आवश्यकताओंसे वह भली-भांति परिचित था, सुव्यवस्था और कल्याणपर नजर रख सके।

हम जिस समयकी कहानी कह रहे हैं उस समय यह बिलक्षण राजा काफी बयस्क हो चुका था — वह दो सौ बर्षका था — और यद्यपि उसका दिमाग बिलकुल साफ था, वह पूरी तरह सजीव और सतर्क था, फिर भी अपने कन्धोंपर पड़ी भारी जिम्मेदारियोंसे कुछ थक-सा चला था और अब निवृत्त होनेकी सोच रहा था। उसने अपने छोटे लड़के, मेओथा, को पास बुलाया। राजकुमार साधारण पुरुषोंसे ज्यादा सुन्दर और नाना प्रकारकी बातोंमें प्रवीण था। उसकी उदारता न्यायको छूती थी; उसकी बुद्धि सूर्यालोककी न्याई थी और उसकी समझदारीकी किसीसे तुलना नहीं हो सकती थी। उसने अपनी जवानीका कुछ समय मजदूरों और कारीगरोंमें बिताया था ताकि अपने अनुभवसे जान सके कि उनके जीवनकी मांगें और आवश्यकताएं क्या हैं। और बाकी समय एकान्तमें या फिर महलके चतुष्कोण मीनारमें दार्शनिकोंको गुरु मानकर अध्ययन या ध्यानस्थ विश्राममें लगाया था।

मेओथाने सादर अभिवादन किया तो बापने उसे अपने ही आसनपर बिठाकर कहा: "अच्छा, बेटे, मैंने इस देशमें एक सौ सत्तर वर्षसे अधिक राज किया है और अभी सभी सद्भावनावाले मेरे शासनसे सन्तुष्ट मालूम होते हैं, लेकिन मुझे भय है कि शीघ्र ही प्रौढ़ अवस्था मुझे सुव्यवस्था रखने और सबका कल्याण करनेके बहुत भारी दायित्वको खुशीसे उठा सकनेमें बाधा देगी। मेरे बालक, तुम ही मेरी आशा और मेरे आनन्द हो, प्रकृति

तुम्हारे साथ बहुत उदार रही है, उसने तुम्हारे ऊपर उपहारोंकी वर्षा की है और बुद्धिमत्तापूर्ण तथा नियमित शिक्षाके द्वारा तुमने उन्हें सन्तोषजनक रूपमें विकसित किया है। सारा देश, सामान्य किसानोंसे लेकर हमारे महान् दार्शनिकोंतक, सबको तुम्हारे ऊपर संपूर्ण और सहानुभूतिपूर्ण विश्वास है। तुमने अपनी उदारताके द्वारा उनका प्रेम और न्यायद्वारा उनका आदर-सम्मान कमाया है, और यह स्वाभाविक है कि जब मैं भली-भांति कमाए विश्रामकी मांग करूंगा तो वे स्वाभाविक रूपसे तुम्हें ही चुनेंगे। लेकिन तुम जानते हो कि सदा प्रतिष्ठित रिवाजके अनुसार कोई भी इस सिंहासनपर तबतक नहीं बैठ सकता जबतक कि वह दोहरा न हो, अर्थात्, सर्वांगीण अनुकूलताके साथ, उसके साथ एक न हो जाय जो उसे क्षमताओं और रुचियोंके पूर्ण संतुलनके द्वारा संतुलनकी शान्ति दे सके। इस रिवाजकी याद दिलानेके लिये ही मैंने तुम्हें यहां बुलाया है और साथ ही यह पूछना था कि क्या तुम ऐसी युवतीसे मिले हो जो हमारी इच्छाके अनुसार अपने जीवनको तुम्हारे जीवनके साथ जोड़नेके लिये योग्य और इच्छुक हो ?"

"पिताजी, मेरे लिये बड़े आनन्दकी बात होती यदि मैं यह कह पाता कि मैंने उसे पा लिया है जिसके लिये मेरी सारी सत्ता प्रतीक्षा कर रही है। पर खेद है, अभीतक बात ऐसी नहीं है। इस राज्यकी प्राय: सभी विकसित लड़कियां मेरी परिचित हैं, उनमेंसे बहुतोंके लिये मुझे सहानुभूति है, सच्चा अहोभाव है परन्तु किसीने मेरे अन्दर वह प्रेम नहीं जगाया जो एकमात्र न्यायसंगत बन्धन बन सके, और शायद अपने-आपको धोखा दिये बिना मैं यह भी कह सकता हूं कि उस ओरसे भी किसीके अन्दर मेरे लिये प्रेमके अंकुर नहीं फूटे। आप सौजन्यके कारण मेरी परखको बहुत मूल्य देते हैं, इसलिये मैं आपको अपने मनकी बात बताता हूं। मुझे लगता है कि अगर मैं देश-विदेशके रीति-रिवाज और विधि-विधान जान लूं तो मैं आपकी छोटी-सी प्रजापर शासन करनेके लिये ज्यादा उपयुक्त हो सकूंगा। मेरी इच्छा है कि एक वर्षके लिये पृथ्वी-भ्रमण कर लूं। सब चीजें देखूं और अपने-आपको ज्यादा अच्छा बना सकूं। इसलिये मेरा निवेदन है, पिताजी, कि मुझे इस यात्राके लिये अनुमति दे दीजिये। और कौन जाने, शायद मैं अपनी जीवनसंगिनीको लेकर लौटूं जिसकी सारी सुख-शान्ति, सारी सुरक्षा मैं ही हो सकूं।"

"यह समझदारी-भरी इच्छा है। जाओ, बेटा, पिताके आशीर्वाद तुम्हारे साथ होंगे।"

*
**

पश्चिमके सागरमें एक छोटा-सा टापू है जिसकी निधि उसके वन हैं। गर्मियोंका एक सुहावना दिन है। एक जवान लड़की विशाल वृक्षोंकी छाया तले चली जा रही है। उसका नाम है लिआन। वह सभी औरतोंसे बढ़कर सुन्दर है। उसका लचीला शरीर हल्के कपड़ोंमें मनोहर रूपमें लहरा रहा है। उसका हल्के रंगका चेहरा लालिमाके कारण और अधिक गोरा लगता है। उसके बालोंका जूड़ा अपने जरा-से सुनहरे रंगके कारण और भी चमकदार हो उठा है। ऐसा लगता है कि उसकी आंखें मानों नील गगनमें खुलनेवाले दो द्वार हैं जो उसके चेहरेको एक बौद्धिक आभासे चमका देते हैं।

लिआन अनाथ और जीवनमें एकदम एकाकी है। उसके अनुपम सौन्दर्य और विरल बुद्धिने बहुतोंकी वासना या सच्चे प्रेमको आकर्षित किया है। लेकिन उसने अपने स्वप्नमें एक पुरुषको देखा है, एक ऐसे पुरुषको जो अपनी वेश-भूषासे किसी दूर देशका मालूम होता था। उस अनजाने व्यक्तिकी मधुर, गंभीर दृष्टिने लड़कीके हृदयको जीत लिया और अब वह किसी औरसे प्रेम नहीं कर सकती। वह तभीसे आशा कर रही है, प्रतीक्षा कर रही है और जो भव्य चेहरा उस रात देखा था उसके सपने लेनेके लिये स्वतंत्र होनेके उद्देश्यसे ही वह इन ऊंचे-ऊंचे पेड़ोंके बीच इस तरह घूमा करती है।

प्रखर सूर्यालोक पत्तोंमेंसे छनकर नहीं आ सकता, चलनेवाले पगोंके नीचे-की काईपर सिलवटें तो पैदा होती हैं पर कोई आवाज नहीं होती। चारों ओर दोपहरकी नींदका वातावरण है लेकिन फिर भी उसे लगता है कि अदृश्य सत्ताएं आस-पासके जंगलोंमें छिपी हैं और सूक्ष्म जांच करनेवाली आंखें पेड़ोंके पीछेसे झांक रही हैं।

अचानक किसी पक्षीका स्पष्ट और आनन्दमय गान मानों कूद पड़ता है और हर कठिनाई लुप्त हो जाती है। लिआन जानती है कि वन परोप-कारी है और अगर उसके अन्दर कुछ सत्ताएं रहती हैं तो वे उसका बुरा नहीं चाह सकतीं। उसके अन्दर एक मधुर भाव उमड़ आता है और सब कुछ अच्छा और सुन्दर लगने लगता है। उसकी आंखें भर आती हैं। अपने अजाने प्रेमीके बारेमें उसकी आशा कभी इतनी तीव्र नहीं हुई थी। उसे लग रहा था कि हवामें कांपते वृक्ष, पैरोंके नीचे चरमराती हरियाली और मधुर गान गाते हुए पक्षी, सभी उसकी बात कर रहे हैं जो उसकी प्रतीक्षा कर रहा है। इस विचारसे ही कि शायद वह उसके मार्गमें मिलने ही वाला है, वह कांपती हुई रुक गयी। हृदयकी धड़कनोंको संभालनेके लिये छातीपर हाथ रख लिया और उत्कृष्ट भावनाओंका पूरा रसास्वादन

करनेके लिये आंखें बन्द कर लीं। संवेदन अधिकाधिक तीव्र हो चला। वह इतना यथार्थ है कि लिआनको लग रहा है जरूर कोई है। ओह! आश्चर्यजनक चमत्कार! वह खड़ा है। सचमुच वही है, ठीक वैसा ही जैसा उसने स्वप्नमें देखा था...। साधारणतः पुरुष जैसे होते हैं उससे बहुत अधिक सुन्दर...। वह मेओथा ही था।

एक ही चितवनमें दोनों एक-दूसरेको पहचान लेते हैं, एक चितवनमें ही वे चिर प्रतीक्षाकी और खोजके परमानन्दकी बातें कह लेते हैं, क्योंकि दोनों सुदूर भूतकालमें एक-दूसरेको जानते थे और अब उसकी निश्चिति प्राप्त कर ली है।

वह उसके बढ़े हुए हाथमें अपना हाथ पिरोती है और दोनों लिये-दिये विचारोंसे भरे मौनके साथ जंगल पार करते हैं। उनके सामने आनन्द-विभोर सूर्यके नीचे शान्त, हरित् समुद्र फैला हुआ है। समुद्रके किनारे एक बड़ा जहाज डोल रहा है।

विनीत, विश्वासपूर्ण, लिआन मेओथाके पीछे-पीछे उस नौकामें चढ़ती है जो उनके लिये प्रतीक्षा कर रही थी और रेतपर आ लगी है। दो मजबूत चप्पू चलानेवाले उसे तेजीसे समुद्रमें खींचकर जहाजके पास खड़ा कर देते हैं।

जब छोटा-सा टापू क्षितिजमें नजरोंसे ओझल होने लगता है तो युवती अपने साथीसे कहती है: "मैं तुम्हारे लिये प्रतीक्षा करती रही, अब तुम आ गये हो, मैं बिना ननुनचके तुम्हारे पीछे हो ली। हम एक-दूसरेके लिये बने हैं; मैं यह अनुभव करती हूं; मैं जानती हूं। और मैं यह भी जानती हूं कि अब और हमेशाके लिये तुम मेरा सुख और मेरी सुरक्षा होगे। लेकिन मैंने अपने निवास-स्थान, इस टापूसे और उसके सुन्दर वनों-से प्रेम किया है और मैं यह जानना चाहूंगी कि तुम मुझे किस समुद्र-तट-की ओर लिये जा रहे हो?"

"मैं तुम्हें सारी दुनियामें खोजता फिरा हूं और अब जब कि तुम मुझे मिल गयी हो और बिना कुछ पूछे-ताछे मैंने तुम्हारा हाथ पकड़ लिया है, तुम्हारी चितवनमें ही मैंने यह पढ़ लिया है कि तुम मेरी प्रतीक्षा कर रही थीं। इस क्षणसे और हमेशाके लिये मेरी प्रियतमा ही मेरी सब कुछ होगी, और अगर मैंने उससे छोटे-से वनोंका टापू छुड़वाया है तो इसलिये कि उसे उसके अपने राज्यमें पहुंचा दूं जो इस धरतीपर एकमात्र ऐसा देश है जहां सामंजस्य है, वही एकमात्र प्रजा है जो उसके योग्य है।"

(अक्तूबर १९०६)

एक नेता

जनवरी १९०७ की बात है। रूसका क्रांतिकारी आंदोलन हाल ही में घोर मारकाटके द्वारा दबा दिया गया था। एक बार मैं और मेरे कुछ मित्र एक गोष्ठीमें कुछ दार्शनिक विचार-विनिमयके लिये इकट्ठे बैठे हुए थे कि हमें समाचार मिला कि कोई रहस्य-मय व्यक्ति बाहर उपस्थित है और हमसे मिलना चाहता है।

हम उससे मिलनेके लिये बाहर आये। हमने ड्योढ़ीमें बैठे हुए एक आदमीको देखा। उसके कपड़े साफ-सुथरे पर पुराने थे। दोनों बाहें पार्श्वोंके साथ सटी हुई थीं। पीला मुख दृढ़तासे पृथ्वीकी ओर झुका था और उसके काले टोपसे आधा ढका हुआ था — खदेड़े हुए जानवरका-सा रूप था उसका।

जैसे ही हम उसके समीप पहुंचे उसने अपना टोप उतारा और सिर उठाकर हमपर एक द्रुत पर विश्वासपूर्ण दृष्टि डाली। ड्योढ़ीके धुंधले प्रकाशमें उसकी रूप-रेखा कठिनाईसे पहचानी जाती थी। सारा मुख मोमका-सा प्रतीत होता था; केवल उसका उदास भाव ही स्पष्ट था।

चुप्पीको तोड़नेके लिये, जो अब अखरने लगी थी, मैंने उससे पूछा: "आप क्या चाहते हैं, महाशय ?"

"मैं आपसे मिलनेके लिये किएफ (Kiev) से आया हूं।"

उसकी आवाज थकी हुई, गंभीर और जरा सहमी-सी थी तथा लहजा हलका स्लाव (Slav) था।

किएफसे, हमसे मिलनेके लिये ! बात साधारण न थी। हमें आश्चर्य हुआ। हमारी चुप्पीमें उसने संदेहकी छाया देखी और कुछ संकोचके साथ धीमी आवाजमें वह बोला:

"हां, किएफमें कुछ विद्यार्थी हैं जिन्हें उच्च दार्शनिक विचारोंमें अत्यंत रुचि है। आपकी पुस्तकें हमारे हाथ लगीं और अंतमें ऐसी समन्वयात्मक शिक्षा पाकर हमें अत्यंत प्रसन्नता हुई। आपकी शिक्षा केवल विचारतक ही सीमित नहीं रहती बल्कि कर्मतक पहुंचती है। बस, मेरे साथियों, मेरे मित्रोंने मुझसे कहा: 'जो काम हम करना चाहते हैं उसके विषयमें उनकी सम्मति प्राप्त करनेके लिये तुम उनके पास जाओ।' और मैं आ गया।"

जिस भाषामें उसने यह सब कहा वह सुन्दर न सही, पर थी शुद्ध। संभव है कि वह सावधानीके लिये कुछ बातें न कह रहा हो, पर यह हम

स्पष्ट अनुभव कर रहे थे कि जो कुछ उसने कहा है, वह कम-से-कम सत्य अवश्य है।

हम उसे अंदर ले आये और बैठकमें बिठा दिया। अब हमने उसे पूर्ण प्रकाशमें देखा। ओह! वह दीन और कष्टोंसे आक्रांत मुख, अधिक जागने या फिर धूप और हवासे दूर रहनेके कारण पीतवर्ण हो गया था। अधिक चिंतासे उसपर झुर्रियां पड़ गयीं थीं। पर साथ ही वह एक सुंदर बौद्धिक प्रकाशसे जगमगा रहा था जो उसके माथेके चारों ओर था और उसकी आंखोंमें ज्योति उत्पन्न कर रहा था — वे पीली आंखें निरंतर कार्यसे या फिर आंसुओंसे रक्तवर्ण हो रही थीं...।

हम कुछ विचलित-से भावमें मौन बैठे रहे। पर कुछ देर बाद यह जाननेके लिये कि वह हमसे क्या चाहता है हमने उससे पूछा : "अपने देशमें आप क्या काम करते हैं?" उसने अपने-आपको एकाग्र किया, फिर मानों किसी बातका संकल्प करता हुआ धीरे-धीरे बोला :

"मेरा काम क्रांति है।"

यह उत्तर उस शहरी वैभवशाली कमरेमें मृत्युकी घंटीके समान गूंज उठा।

फिर भी अपने मनोभावको बिना प्रकट किये और उसकी इस साहस-सूचक सच्चाईके प्रति प्रशंसात्मक भाव रखते हुए हमने उत्तर दिया :

"क्या आप बतायेंगे कि हम आपकी क्या सेवा कर सकते हैं?"

क्योंकि हमारा भाव उसकी ओर अब भी वैसा ही था, इससे उसे आश्वासन मिला और उसने अपनी कथा आरंभ की :

"रूसमें आजकल जो कुछ हो रहा है उससे तो आप परिचित ही हैं, इसलिये मैं उसके बारेमें कुछ नहीं कहूंगा, पर कदाचित् आप यह नहीं जानते होंगे कि इस क्रांतिकारी आंदोलनके केंद्रमें कुछ व्यक्तियोंकी एक टोली है जो अपने-आपको विद्यार्थी कहते हैं। मैं उन्हींमेंसे एक हूं। संयुक्त निश्चयोंपर पहुंचनेके लिये हम समय-समयपर एकत्र होते हैं पर अधिकतर तो हम बिखरे ही रहते हैं, न केवल इसलिये कि हमारी ओर किसीका ध्यान आकर्षित न हो, वरन् इसलिये भी कि हम कार्यको स्वयं निकटसे चला सकें। मैं उनको संबंधित करनेवाला सूत्र हूं। जब उन्हें किसी विषयपर विचार-विनिमय करना होता है तो वे मेरे स्थानपर ही एकत्र होते हैं।

"बहुत समयतक हमने खुले तौरपर, जोर-जबर्दस्तीसे लड़ाई की है। हम आशा करते थे कि आतंकद्वारा हम विजय प्राप्त कर लेंगे। न्याय, स्वतंत्रता और प्रेमके पक्षको विजय दिलानेकी उत्कट और तीव्र इच्छाके प्रभावमें हमें सब साधन उचित दिखायी देते थे। मैं मनुष्यजातिके दुःखों-

को दूर करनेके लिये अपनी आत्मामें प्रेम और दया अनुभव करता हूं। मैंने डाक्टरी भी केवल इसलिये सीखी की मैं मानवकी व्याधियोंके साथ संघर्ष कर सकूं तथा उसके दुःख-दर्दको कम कर सकूं। पर मैं दुःखजनक परिस्थितियोंमें घोरतम रक्तपातके निश्चयोंके लिये बाधित हो गया। है न यह आश्चर्यजनक? और यह तो कोई विश्वास नहीं करेगा कि इसमें मैंने कितना दुःख झेला है, परंतु है यह सत्य। वास्तवमें, दूसरोंने मुझे आगे धकेला, प्रबल युक्तियोंसे अभिभूत कर दिया और कई बार अपनी बातपर मुझे विश्वास करानेमें सफल भी हो गये।

"फिर भी, कार्यके उग्र वेगके समय भी, मैं जानता था कि करनेको इससे अधिक अच्छा कार्य भी है, हमारे उपाय श्रेष्ठ नहीं हैं और हम अपनी उत्तम शक्ति निरर्थक गंवा रहे हैं। मैं यह भी जानता था कि उस उत्कट जोशके होते हुए भी, जो कि हमें अनुप्राणित कर रहा था, हम पराजित हो सकते हैं।

"हमारा पतन अब आ गया है, हम खड़ी फसलकी तरह काट डाले गये हैं; दुर्भाग्यने हमें एकत्र होने, विचार करनेके लिये विवश कर दिया है। हमने अपने योग्यतम साथियोंको खो दिया है। हममेंसे सबसे अधिक बुद्धिमान् और योग्य व्यक्तियोंने, जो हमें आगे चलाते तथा हमारा पथ-प्रदर्शन करते थे, निर्वासन और मृत्युदंडद्वारा अपने साहसिक आत्म-समर्पण-का मूल्य चुकाया है। हमारे साथियोंमें भय और घबराहटका साम्राज्य छा गया है और अंतमें मेरे विचार और भाव उनकी समझमें आ गये हैं।

"हम शारीरिक शक्तिद्वारा टक्कर लेनेके लिये काफी बलशाली नहीं हैं, क्योंकि हममें न तो काफी एकता है और न संगठन। प्रकृतिके गहन नियमोंको भली प्रकार समझने, नियमानुसार काम करनेका अभ्यास डालने और अपने प्रयत्नोंको संगठित करनेके लिये हमें अपनी बुद्धिको उन्नत करना होगा। जो हमारे आस-पास रहते हैं, उन्हें हमें विचार करना सिखाना होगा — अपने-आप विचार करना ताकि वे उस लक्ष्यको भली प्रकार समझ सकें जिसे हम प्राप्त करना चाहते हैं तथा हमारे लिये एक यथार्थ सहायता सिद्ध हों, न कि बाधा, जैसा कि प्रायः वे इस समय हैं।

"मैंने उनसे कह दिया है कि किसी जातिको स्वतंत्रता प्राप्त करनेसे पहले उसका अधिकारी बनना चाहिये, उसके योग्य बनने, उसका आनंद भोगने-की उसमें क्षमता होनी चाहिये। रूसमें ऐसी बात नहीं है। जनसमुदायको शिक्षा देने, उन्हें जड़तामेंसे खींच निकालनेके लिये हमें बहुत कुछ करना पड़ेगा। जितनी जल्दी हम इस काममें लग जायंगे उतनी जल्दी ही हम जीवन कार्यके लिये तैयार हो पायेंगे।

"ये बातें अपने मित्रोंको समझानेमें मैं सफल हुआ हूं। उन्होंने मुझपर विश्वास किया है और अब हम इनके अध्ययनमें लग गये हैं। इस प्रकार हमें आपकी पुस्तकें पढ़नेका अवसर प्राप्त हुआ और अब मैं आपके पास आया हूं यह जाननेके लिये कि आपके विचार वास्तविक अवस्थामें कैसे उतारे जा सकते हैं। आपकी महायता मैं एक कार्यक्रम बनाने तथा एक ऐसी पुस्तिका लिखनेमें चाहता हूं जो व्यक्तियोंमें ऐक्य, सामंजस्य, न्याय और स्वतंत्रताके उच्च विचार फैलानेके लिये हमारा नया शस्त्र बन सके।"

वह क्षण-भर विचारमग्न रहा, फिर अपेक्षाकृत धीमी आवाजमें बोला: "पर मैं कभी-कभी अपनेसे प्रश्न करता हूं कि यह मेरा दार्शनिक स्वप्न कहीं कोरा आदर्श तो नहीं है, कहीं मैं अपने भाइयोंको इस मार्गपर लाकर गलती तो नहीं कर रहा हूं, कहीं यह कायरता तो नहीं है; संक्षेपमें, क्या यही अधिक अच्छा तो नहीं होगा कि हम अंततक अत्याचारका सामना अत्याचारसे, विनाशका विनाशसे और संहारका संहारसे करें।"

"आपके जैसे पक्षको विजय दिलानेके लिये जोर-जबर्दस्ती कभी अच्छा साधन नहीं हो सकती। न्यायको अन्यायसे और मेलको घृणासे प्राप्त करनेकी आशा आप कैसे कर सकते हैं?"

"मैं यह जानता हूं। हम सबका लगभग यही विचार है। ऐसे कार्यों से, जिनमें रक्त बहाना पड़े, कम-से-कम मुझे तो विशेष घृणा है, ये मुझे दहला देते हैं, एक-एक आदमी जब हमारी बलि-वेदीपर चढ़ता है तो मैं एक तीव्र पश्चात्तापसे भर जाता हूं। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि हम केवल इसी कारण अपने लक्ष्यसे दूर हो रहे हैं।

"पर जब व्यक्ति घटनाओंद्वारा विवश किया जाय, जब वह अपने-आपको उन विरोधियोंके बीचमें पाये जो हमें कुचल देनेकी आशामें सामूहिक हत्या करनेमें भी संकोच नहीं करते तो आप ही बताइये कि वह क्या करे? पर इसमें वे कभी सफल नहीं होंगे! एक-एक करके हम सभी मृत्युको प्राप्त हो सकते हैं, पर जो पवित्र कार्य हमने अपने कंधोंपर लिया है उससे हम कभी पीछे नहीं हटेंगे; जिस उच्च आदर्शका पालन करनेके लिये हमने अपनी आत्माको साक्षी बनाकर शपथ ली है उसके साथ हम अपने अंतिम श्वासतक कभी विश्वासघात नहीं करेंगे।"

ये शब्द एक दुःख-भरे निश्चयके साथ कहे गये थे। उसी समय उस अज्ञात वीरके मुखपर एक उच्च रहस्यवादी भाव लक्षित हो उठा। यदि मुझे उसके सिरपर कभी शहीदोंका कांटेदार ताज देखना पड़े तो जरा भी आश्चर्य नहीं होगा।

उत्तरमें मैंने उससे कहा: "किंतु जैसा कि प्रारंभमें आपने कहा था कि

आपको यह अब स्वयं स्वीकार करना पड़ रहा है, कि इस खुले संघर्षमें वीरताके विशाल भावकी कमी नहीं, पर फिर भी यह बहादुरी मूर्खतापूर्ण तथा निरुपयोगी है, कुछ समयके लिये आपको पीछे हट जाना चाहिये। मौन भावमें अपने-आपको तैयार करना चाहिये। अपनी शक्तियोंको इकट्ठा करके, संगठित होकर आपको अधिकाधिक एकीकृत हो जाना चाहिये ताकि अनुकूल समय आनेपर संगठन करनेवाली बुद्धिके सर्वसमर्थ बलसे, जो कि हिंसाकी तरह पराजित नहीं की जा सकती, आप विजय पा सकें।

"अपने विरोधियोंके हाथोंमें और अधिक शस्त्र न दें, पूर्ण रूपसे दोष-रहित होकर उनके सामने साहसपूर्ण सहनशीलता, सच्चाई और न्यायका उदाहरण रखें। तब आपकी विजय निकट आती जायगी क्योंकि सत्य आपके पक्षमें होगा — यह पूर्ण सत्य न केवल लक्ष्यमें वरन् उसकी प्राप्तिके साधनोंमें भी होगा।"

वह मेरी बात बड़े ध्यानपूर्वक सुन रहा था, बीच-बीचमें स्वीकृति-सूचक सिर भी हिलाता जा रहा था। कुछ देरकी भावपूर्ण चुप्पीके बाद, जब कि हमने उसके चारों ओर इस संघर्षमें उसके साथियोंकी दुःखद आशाएं तथा तीव्र इच्छाएं मंडराती हुई अनुभव कीं, वह मेरी ओर मुड़कर बोला :

"श्रीमतीजी, मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई है कि एक स्त्री भी ऐसे विषयोंपर अपना अधिकार रखती है। स्त्रियां भले दिन शीघ्र लानेके लिये बहुत कुछ कर सकती हैं। रूसमें भी इन्होंने हमें अपनी अमूल्य सेवाएं प्रदान की हैं। इनके बिना हममें इतनी वीरता, इतनी शक्ति और इतनी सहनशीलता आ ही नहीं सकती थी। ये हमारे बीचमें एक शहरसे दूसरे शहरको, एक दलसे दूसरे दलमें जाकर सबको आपसमें मिलाती, निराश व्यक्तियोंको साहस बंधाती, गिरे हुओंको उठाती, रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषा करती, अपने अंदर, अपने साथ एक आशा, एक विश्वास और अथक उत्साह लिये घूमती-फिरती थीं।

"मोमबत्तीके धुंधले प्रकाशमें रातों जागकर लिखनेके कारण जब मेरी आंखें रुग्ण हो गयीं तो एक स्त्री ही मेरे काममें मुझे सहायता देनेके लिये आगे बढ़ी। दिनमें तो मुझे कोई और व्यवसाय रखना ही होता था ताकि लोगोंका ध्यान मेरी ओर न खिचे। केवल रातमें ही हम योजनाएं बना सकते थे। अपने सिद्धांतोंको पुस्तिकाके रूपमें लिखना, उसकी कई प्रति-लिपियां तैयार करना, सूचियां बनाना आदि इस प्रकारके काम भी मैं केवल रातमें ही कर सकता था। धीरे-धीरे मेरी आंखोंकी ज्योति क्षीण होती गयी; अब मैं बड़ी कठिनाईसे देख सकता हूं। तब इस कार्यके प्रति श्रद्धा होने के कारण उस युवतीने मेरी लेखिका बनना स्वीकार किया। जितनी

देर भी मैं उसे लिखाता, वह बिना जरा भी आलस्य और थकावट माने लिखती रहती।" उस नम्र श्रद्धा और त्यागके प्रतीकका विचार आते ही उसके मुखका भाव कोमल हो उठा।

"वह मेरे साथ पैरिस आयी है और हम रोज रातको इक्ट्ठे काम करते हैं। यह उसीकी कृपाका फल होगा कि जिस पुस्तिकाके बारेमें मैंने अभी जिक्र किया है वह मैं अब लिख सकूंगा। आप जानती हैं कि मेरे जैसे जोखिमवाले आदमीके साथ फिरना कितने साहसका काम है। अपनी स्वतंत्रताको सुरक्षित रखनेके लिये मुझे सर्वत्र चोर-डाकूकी तरह छिपना पड़ता है।"

"कम-से-कम पैरिसमें तो आप सुरक्षित हैं न?"

"हूं भी और नहीं भी। मुझे पता नहीं क्यों ये लोग हमसे डरते हैं, भयंकर राज-विद्रोहियोंके रूपमें देखते हैं, हमारी चौकसी करते हैं, हमपर करीब-करीब उतनी ही जासूसी करते हैं जितनी हमारे देशमें हमपर की जाती थी। क्या कोई यह सोच सकता है कि जिनका लक्ष्य ही — अपना रक्त बहाकर भी — न्यायको विजय दिलाना है, क्या उनमें फ्रांस जैसे देशके लिये, जिसने सदा ही दुर्बलोंकी रक्षा की है और न्यायका पक्ष लिया है, कृतज्ञताका अभाव हो सकता है? वे एक ऐसे शहरकी शांति किसलिये भंग करेंगे जो उनके अत्यंत दुःखमय दिनोंमें उनका आश्रय बना है?"

"तो आपका कुछ समय यहां ठहरनेका विचार है?"

"हां, उतने समयके लिये जितना मेरे लिये संभव हुआ, जबतक वहां मेरे भाइयोंको मेरी आवश्यकता नहीं पड़ती और जबतक युद्धको पुनः शुरू करनेके आवश्यक साधन इक्ट्ठे करनेमें मैं उनकी यहां सेवा कर सकूंगा। परंतु अबकी बार यह युद्ध उतना ही शांति और विचारपूर्वक किया जायगा जितना कि हमसे संभव हो सकेगा।"

"आप हमसे फिर मिलनेके लिये आयंगे न? अपनी पुस्तिकाके सारे प्रस्ताव और आयोजनाएं भी साथ लेते आइयेगा। हम उन सबके बारेमें जरा अधिक विस्तारपूर्वक बातचीत करेंगे।"

"हां, यह काम शुरू हो जानेपर जितनी जल्दी हो सका मैं आऊंगा। आपसे दुबारा मिलकर तथा बातचीत करके मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।" बिदा लेते हुए उसने हमारे हाथोंको अपने हाथोंमें विशेष उत्साहपूर्वक दबाया और अपनी करुण और उदास आंखोंसे, जो आशा और विश्वाससे परिपूर्ण थीं, हमारी ओर देखा।

हम उसके साथ द्वारतक आये; वहां उसने दुबारा हमारे साथ प्रेमपूर्वक हाथ मिलाया और फिर अपनी गंभीर वाणीमें बोला:

"उन लोगोंसे मिलना बड़ा भला लगता है जो हमपर विश्वास करते हैं, जिनका न्यायविषयक आदर्श वही है जैसा कि हमारा, और जो हमें चोर-डाकू या पागल नहीं समझते क्योंकि हम उस आदर्शको प्राप्त करना चाहते हैं। अच्छा, बिदा ..."

पर वह फिर आया नहीं।

क्षमा-रूप जल्दीके लिखे हुए दो-एक शब्द ही मिले। उसपर अत्यधिक चौकसी रखी गयी, संदेह किया गया। उसे कई बार अपना निवासस्थान बदलना पड़ा और अंतमें उस कोमल हृदय और न्यायप्रिय आदमीको अपने देश लौट जाना पड़ा——ऐसे देश जहां शायद दुःखद अंत उसकी प्रतीक्षा कर रहा था ...।

दुःख झेलना जानो

यदि किसी समय तुम्हें कोई गभीर दुःख, दारुण संशय या तीव्र कष्ट हताश कर रहा हो तो शान्ति और स्थिरता पुनः प्राप्त करनेका एक अचूक साधन है।

हमारी सत्ताकी गहराईमें एक ज्योति चमक रही है जो जितनी चमकदार है उतनी ही पवित्र भी। वह ज्योति विश्वव्यापी भगवान्‌का सजीव और सचेतन अंश है, वह जड़-तत्त्वको जीवन, गरमी और प्रकाश प्रदान करती है। वह उन लोगोंकी सशक्त और अचूक पथप्रदर्शक है जो भगवान्‌का विधान जाननेकी इच्छा रखते हैं। जो उन्हें देखना चाहते हैं, उनकी आवाज सुनना चाहते हैं, उनके आदेशका पालन करना चाहते हैं, यह उनकी आश्वासन और प्रेमसे पूर्ण सहायिका है। उनके प्रति की गयी कोई भी सच्ची और स्थायी अभीप्सा व्यर्थ नहीं जा सकती; उनपर किया गया कोई भी दृढ़ और आदरपूर्ण विश्वास निराश नहीं हो सकता; कोई भी आशा भंग नहीं हो सकती।

मेरे हृदयने भी दुःख झेला है और कातर पुकार की है, दुःखके भारी बोझसे टूटने-टूटनेको होकर, अत्यधिक यंत्रणासे दलित होकर ...। पर, हे शान्तिदायक भगवान्, मैंने तुझे पुकारा, उत्कंठासे तेरी प्रार्थना की और तेरी दीप्तिमान ज्योतिकी प्रभा प्रकट हुई और उसने मुझे नवजीवन दान दिया।

जब तुम्हारी महिमाकी किरणोंने मेरी संपूर्ण सत्ताके भीतर प्रवेश कर उसे प्रकाशित कर दिया तो मैंने स्पष्ट देखा कि मुझे किस पथपर चलना है और दुःखकी क्या उपयोगिता हो सकती है; जिस दुःखने मुझे निचोड़ डाला था वह इस पृथ्वीके दुःख, अतल वेदना और यातनाकी कितनी हल्की-सी परछाई मात्र है, यह मैंने समझा है।

जो स्वयं दुःख भोग चुके हैं केवल वे ही दूसरोंका दर्द समझ सकते हैं, उसमें हिस्सा बंटा सकते हैं, और उसे हल्का कर सकते हैं। और मैं यह भी समझ गयी हूं, हे शान्तिदायक भगवान्, हे परम आत्म-त्यागी, कि हमारे सब कष्टोंके बीच हमें सहारा देनेके लिये, हमारे सारे दुःख और दर्द शान्त करनेके लिये तूने पृथ्वीके सकल दुःखोंको, बिना किसी अपवादके, जाना तथा अनुभव किया होगा।

पर फिर यह कैसी बात है कि जो तेरे पुजारी होनेका दावा करते हैं, उनमेंसे कुछ ऐसे भी हैं जो तुझे यंत्रणा देनेवाला निर्दयी समझते हैं, तुझे ऐसा कठोर न्यायाधीश मानते हैं जिसने इन सब यंत्रणाओंको स्वेच्छासे भले न रचा हो, पर इनका अनुमोदन तो करता ही है?

नहीं, मैं अब समझ रही हूं कि ये सब कष्ट जड़-पदार्थकी अपूर्णतासे आते हैं, जो अपनी अव्यवस्था और मलिनताके कारण तुझे अभिव्यक्त करनेके अयोग्य हैं; और उससे सर्वप्रथम कष्ट भी तू ही पाता है, इससे असंतुष्ट हो तू उत्कंठासे प्रयत्न और परिश्रम करता है ताकि अव्यवस्थाको व्यवस्थामें, दुःखको सुखमें, विरोधको मिलनमें परिवर्तित कर दे।

कष्ट अनिवार्य नहीं है, वांछनीय भी नहीं। पर जब वह आता है तो हमारे लिये कितना उपयोगी हो सकता है!

प्रत्येक बार जब दुःखके बोझसे हृदय टूटता प्रतीत होता है, तब अन्तरकी गहराईमें एक द्वार खुलता है और अधिकाधिक समृद्ध गुप्त रत्नराशि लिये नये-नये क्षितिज प्रकट होते हैं और उनकी स्वर्णिम आभा मरणासन्न जीवनको एक नवीन और अधिक प्रखर जीवन प्रदान करती हुई आती है।

और जब, उत्तरोत्तर अवतरणोंसे होता हुआ मनुष्य उस यवनिकातक पहुंचता है जिसके उठते ही साक्षात् तू प्रकट होता है, तब, हे प्रभु, कौन वर्णन कर सकता है 'जीवन'की उस प्रखरताका जो समस्त सत्ताके अन्दर पैठ जाती है, 'ज्योति'की उस शोभाका जो उसे परिप्लावित कर देती है, 'प्रेम'की उस महिमाका जो चिरकालके लिये उसका रूपान्तर कर देती है।

(१९१०)

विचारके विषयमें

(स्त्रियोंसे एक सम्भाषण)

यदि हम अधिक अच्छा जीवन व्यतीत करनेके लिये अधिक अच्छा चिंतन करना सीखना चाहती हैं अथवा इसलिये कि हम चिंतनको समझना चाहती हैं कि हम पुन: जीवनमें अपना स्थान एवं पद स्त्री-रूपी पूरकके तौरपर ले सकें अथवा कार्य-रूपमें भी उपयोगी, प्रेरणादायक और संतुलन रखनेवाला अंग बन सकें — जो कि अलक्ष्य रूपमें हम हैं ही — तब मेरे विचारमें हमारे लिये पहले यह जानना आवश्यक है कि चिन्तन अपने-आपमें क्या वस्तु है।

चिन्तन, विचार . . . यह एक बहुत बड़ा विषय है, शायद सब विषयोंमें बड़ा . . .। मैं यह दावा भी नहीं करती कि इसे आपको पूर्ण और यथार्थ रूपमें बता ही सकूंगी। पर विश्लेषणद्वारा इसका जितना यथार्थ रूप जानना संभव होगा उतना आज हम जाननेकी चेष्टा करेंगी।

सबसे पहले, विचारोंको हमें दो श्रेणियोंमें विभाजित करना पड़ेगा। ये वास्तवमें विचारके दो प्रकार हैं जो एक-दूसरेसे सर्वथा भिन्न हैं, — एक तो विचार हैं जो संवेदनोंके परिणामस्वरूप हममें होते हैं और दूसरे वे हैं जो सजीव सत्ताओंकी भांति हैं और हममें बाहरसे आते हैं, पर कहांसे आते हैं ? . . . इससे अधिकतर हम अनभिज्ञ ही रहते हैं। हां, हमारी बाह्य सत्तामें संवेदन रूपमें प्रकट होनेसे पहले हम इनको जान अवश्य लेते हैं।

अगर आपने कभी तनिक भी आत्म-निरीक्षण किया है तो आपने यह देखा ही होगा कि किसी बाह्य चीजके साथ आपका पहला संपर्क सदा इन्द्रिय ज्ञान-द्वारा ही स्थापित होता है: देखने, सुनने, छूने, सूंघने आदिसे। इस प्रकारका अनुभव किया हुआ संवेदन — चाहे वह हलका हो या जोरदार, रुचिकर हो या अरुचिकर — हमारे अन्दर एक भाव उत्पन्न कर देता है, यह भाव फिर चाहे घृणाका हो या सहानुभूतिका, आकर्षणका हो या अरुचिका। यह भाव शीघ्र ही एक विचार, एक मतमें परिवर्तित हो जाता है। यही विचार फिर आपका उस वस्तुके बारेमें बन जाता है जिसके साथ आपने पहली बार वह सम्बन्ध स्थापित किया था, वस्तु चाहे कोई भी क्यों न हो।

एक उदाहरण लीजिये : आप घरसे बाहर निकलती हैं; देहलीसे बाहर

पैर रखते ही वर्षा आरंभ हो जाती है और आपको एक सीली सर्दी-का अनुभव होता है; यह संवेदन आपको अरुचिकर है। आपको वर्षासे चिढ़ हो जाती है। आप मन-ही-मन यंत्रवत्-सी कह उठती हैं: "कैसी दुःखदायी है यह वर्षा! फिर ऐसे समय जब कि मुझे बाहर जाना है, बुरी तरहसे भीग तो मैं जाऊंगी ही! वर्षासे पैरिस शहर बहुत गंदा हो जाता है और खासकर इस समय जब कि सब सड़कें खाइयां-सी हो रही हैं इत्यादि इत्यादि।"

वर्षा जैसी साधारण घटनाको लेकर ये सब और इनसे मिलते-जुलते ऐसे और विचार आपके मनको विक्षुब्ध कर देते हैं। इस बीचमें यदि कोई और दूसरी वस्तु, आन्तरिक या बाह्य, आपका ध्यान न बंटा ले तो आपका मस्तिष्क बहुत देरतक शायद अनजाने ही इसी तुच्छ और महत्त्वहीन अनु-भूतिको लेकर अत्यंत तुच्छ विचार गढ़ता रहेगा...।

मनुष्य-जीवनका एक बड़ा भाग इसी प्रकार निकल जाता है; इसीको हम **विचारना, चिन्तन करना** कहते हैं, जब कि यह है वास्तवमें एक मान-सिक क्रिया जो साधारणतया अपने-आप ही अज्ञात रूपमें यंत्रवत्-सी चलती रहती है। इसके ऊपर हमारा कोई नियंत्रण नहीं होता। शरीर तथा उसकी आवश्यकताओं-संबंधी सारे विचार इसी ढंगके होते हैं।

यह हमारी पहली कठिनाई है और इसपर हमें विजय प्राप्त करनी है; यदि हम सच्चे अर्थोंमें चिन्तन करना चाहती हैं, दूसरे शब्दोंमें, यदि हम यथार्थ और सजीव विचार ग्रहण करना, उनको प्रकट करना या बनाना चाहती हैं तो सबसे पहले हमें अपने मस्तिष्कको इस उपद्रवी और बे-सिर पैरवाले मानसिक उद्वेगसे मुक्त करना पड़ेगा। और यह कोई आसान काम नहीं है। दिमागकी यह मूढ़ हलचल हमपर शासन करती है, यह हमारे अधीन नहीं है।

इस हलचलको दूर करनेके लिये एक उपाय बताया जा सकता है: ध्यान। परन्तु जैसा कि मैंने आपसे पिछली बार भी कहा था, ध्यान करनेके कई तरीके हैं; कुछ अधिक उपयोगी हैं और कुछ कम।

प्रत्येकको जांचकर अपना तरीका ढूंढ लेना चाहिये। पर एक बात सब कर सकते हैं — मनन, अर्थात्, एकाग्रताका अभ्यास। इसका अर्थ है एकान्त, नीरवतामें आत्मचिन्तन करना, इन हल्के, तुच्छ विचारोंके झुंडका निकटसे कठोरताके साथ विश्लेषण करना जो प्रतिक्षण हमें विक्षुब्ध करते रहते हैं।

ध्यानकी यह पहली सीढ़ी है। जब हम प्रतिदिन कुछ क्षण इस अभ्यास-में लगाने लगें तो एक बातका हमें बहुत ख्याल रखना होगा। जहांतक

संभव हो अपने संवेदनों, भावों तथा चित्त-स्थितियोंके बारेमें हमें उदार नहीं बनना चाहिये।

हम सबमें अपने-आपके लिये ममत्वका अक्षय भण्डार संचित है। और अक्सर हम अपनी छोटी-छोटी आंतरिक गतिविधियोंके प्रति बड़ा सम्मान दिखाते हैं और उनको इतना महत्त्व दे देते हैं जितना उनका होता नहीं——हमारे विकासके लिये भी नहीं होता।

जब मनुष्य अपने ऊपर इतनी विजय प्राप्त कर ले कि वह अपनी चित्त-वृत्तियोंका ठंडे भावमें विश्लेषण कर सके, उनकी छान-बीन कर सके, उनकी ऊपरी तड़क या दुःखदायी झलकको अलग करके उन्हें अपने असली क्षुद्र रूपमें देख सके तब वह उनका कुछ उपयोगी अध्ययन कर सकता है। पर यह अवस्था बहुत धीरे-धीरे आती है, जब कि मनुष्य पूर्ण निष्पक्ष भावमें काफी सोच-विचार कर चुकता है। इसमें साधारणतया जो गड़बड़ हो जाती है उससे बचनेके लिये मैं यहां एक बात कहती हूं।

मैंने अभी कहा था कि हम अपने विषयमें बड़े उदार विचार रखते हैं। हमारे दोष भी प्रायः हमें आकर्षक प्रतीत होते हैं, अपनी सब कमजोरियोंको हम उचित ठहराते हैं। परन्तु सत्य यह है कि आत्म-विश्वासकी कमीसे हम ऐसा करते हैं। क्या आपको इससे आश्चर्य होता है? हां, मैं फिर कहती हूं कि हममें आत्म-विश्वासकी कमीसे हम ऐसा करते हैं। यह कमी उसमें नहीं है जो हम अब हैं और न ही यह हमारी बाह्य सत्तामें है जो क्षणिक और सदा परिवर्तनशील है। यह तो हमें सदा लुभावनी लगती है। हमारे अंदर उस चीजके लिये विश्वासकी कमी है जो हम प्रयाससे बन सकते हैं, उस पूर्ण और गहन रूपान्तरमें विश्वास नहीं है जो हमारी आत्माका, उस अमर अविनाशी भगवान्‌का कार्य होगा जो सब जीवोंमें निवास करता है। और यह कार्य तभी होगा जब हम अपने-आपको बालक-की भांति उसके अनन्त ज्योतिर्मय स्पष्टदर्शी पथप्रदर्शनपर छोड़ देंगे।

पर यहां विश्वास और ममत्वको मिला-जुला देना ठीक न होगा . . . अच्छा, तो मैं फिर अपने विषयपर आती हूं।

जब आप अपने इस असंबद्ध और दुःखदायी विचारोंके प्रवाहसे अलग हटकर उसको साक्षिरूपमें देख सकनेमें सफल हो जायेंगी तो आपको एक नयी वस्तु दिखायी पड़ेगी।

आप देखेंगे कि आपके अन्दर कुछ विचार ऐसे हैं जो औरोंसे अधिक प्रबल, अधिक स्थायी हैं——ऐसा विचार जिनका संबंध सामाजिक रूढ़ियों, प्रचलित रीतियों, नैतिक नियमों, यहांतक कि मनुष्य तथा संसार-पर लागू साधारण नियमोंसे है।

ये विचार ही इन विषयोंपर आपकी सम्मतियां हैं, कम-से-कम आप प्रकट ऐसा ही करती हैं और इन्हींके अनुसार काम करनेकी चेष्टा भी करती हैं।

इनमेंसे आप एक विचार ले लीजिये जो आपके सबसे अधिक निकट है। इसका आप ध्यानपूर्वक पूरी सच्चाईके साथ निरीक्षण करिये, यथासंभव सब पक्षपात परे हटाकर। अब अपने-आपसे प्रश्न कीजिये कि इस विषय-में आपका यही मत क्यों है दूसरा क्यों नहीं।

इसका उत्तर लगभग सभी अवस्थाओंमें यही या इससे मिलता-जुलता होगा :

क्योंकि आपके समाजमें यही विचार प्रचलित है, आपका भी इसीको बनाये रखना उचित है और इससे आप कई प्रकारकी ठोकरों, मुठभेड़ों और अप्रिय आलोचनाओंसे बच जाती हैं। या फिर यह कि यही विचार आपके माता-पिताका भी था और इसीके वातावरणमें आपका बचपन बीता है।

या फिर यह भी हो सकता है कि यह आपकी उस धार्मिक या दूसरी प्रकारकी शिक्षाका फल है जो कि आपको तरुणावस्थामें मिली है। यह विचार आपका अपना तो नहीं है।

आपका अपना विचार होनेके लिये इसे आपके बौद्धिक संश्लेषणका अंग होना चाहिये जो आपके अपने जीवनकालमें ही यत्नपूर्वक निर्मित हुआ हो, चाहे वह निरीक्षण, परीक्षण, अनुभव या तर्कद्वारा रचा गया हो या फिर वह गहन गंभीर चिंतन या मननका फल हो।

यह हमारी दूसरी उपलब्धि है।

क्योंकि हममें सद्भावना है और हम अपनेमें पूर्ण सचाई लानेकी कोशिश कर रही हैं, अर्थात्, अपने कर्मोंको विचारोंके अनुकूल बनाना चाह रही हैं, हमें यह मानना पड़ेगा कि हम साधारणतया उन मनगढ़ंत नियमोंके अनुसार कार्य करती हैं जिन्हें हमने बाहरसे ग्रहण किया है। हमने न तो इनको सचेतन रूपमें और न ही परिपक्व सोच-विचार या विश्लेषण करने-के बाद अपनाया है। ये हमारे इसलिये हैं क्योंकि अचेतन अवस्थामें पीढ़ियोंसे हम इनके अधिकारमें चली आ रही हैं। इसमें कुछ हाथ हमारी शिक्षा-दीक्षाका भी है। सबसे अधिक प्रभाव हमपर सामूहिक प्रेरणाका है। यह अपने-आपमें इतनी शक्तिशाली, इतनी उद्दाम है कि बहुत कम लोग इससे बच निकलनेमें सफल हो पाते हैं।

जो मानसिक व्यक्तित्व हम प्राप्त करना चाहती हैं उससे हम अभी कितनी दूर हैं!

हम तो अपने पहलेके संस्कारोंकी उपजमात्र हैं, अपने आस-पासवालोंकी अंध और उद्दाम इच्छाओंद्वारा विवश की गयी हैं।

कैसी दुःखजनक अवस्था है यह . . .। पर इसमें हमें अधीर न हो जाना चाहिये; हमें अधिक उत्साहसे इसके प्रतिकारमें लग जाना चाहिये। जितनी प्रचंड यह बुराई है उतना आवश्यक इसका उपचार भी है।

ढंग वही होगा: सोचो और खूब सोचो।

इन विचारोंमेंसे हमें एक-एकको लेकर बारी-बारीसे उसका विश्लेषण करना चाहिये। ऐसा करते समय यह आवश्यक है कि हम अपने समस्त विवेक, पूर्ण शुद्ध भाव तथा अधिक-से-अधिक न्यायबुद्धिकी सहायता लें। विचारोंको हमें अपने अर्जित ज्ञान और संगृहीत अनुभवकी तराजूपर तोलना चाहिये। इसके बाद हमारा प्रयत्न यह होगा कि हम इनमें अनुकूलता लाकर सामंजस्य स्थापित कर दें। पर यह कार्य प्रायः होता बड़ा कठिन है। क्योंकि हमारे अंदरकी एक अवांछनीय प्रवृत्तिके फलस्वरूप हमारे मस्तिष्कमें कई प्रकारके अत्यंत विरोधी विचार साथ रहते हैं।

हमें इन सबको क्रमानुसार अपने स्थानपर रखना होगा, अपने मन-रूपी घरमें व्यवस्था स्थापित करनी होगी और यह सफाई हमें प्रतिदिन उसी प्रकार करनी चाहिये जिस प्रकार हम अपने रहनेके कमरेकी करते हैं। मेरे ख्यालमें अपने मनकी ओर भी हमें उतना ही ध्यान देनेकी आवश्यकता है जितनी कि हम अपने घरकी ओर देते हैं।

लेकिन, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इस कामको यथार्थ रूपमें सफल बनानेके लिये आवश्यक है कि हम अपने अंदर अधिक-से-अधिक आत्मिक शांति और सच्चाई स्थापित कर लें जिससे यह अवस्था सदाके लिये हमारी अपनी हो जाय।

हम इतने निर्मल हो जायं कि जिन विचारोंका हमें निरीक्षण, विश्लेषण तथा वर्गीकरण करना है वे हमारे अंदरकी ज्योतिमें जगमगा उठें। अपनी छोटी-छोटी इच्छाओं तथा व्यक्तिगत सुविधाओंका त्याग करनेके लिये हम निष्पक्ष और साहसी बनें। सर्वथा पक्षपातरहित होकर हम उन विचारोंका उनके असली रूपमें, उनके अपने लिये अवलोकन करें।

यदि हम अपने इस वर्गीकरणके कार्यमें धीरतापूर्वक लगी रहेंगी तो हम देखेंगी कि हमारे मस्तिष्कमें धीरे-धीरे व्यवस्था और प्रकाशका साम्राज्य स्थापित होता जा रहा है, पर हमें यह नहीं भूल जाना चाहिये कि यह व्यवस्था उस व्यवस्थाके सामने विशृंखलता ही है जो भविष्यमें हमें प्राप्त करनी है, यह प्रकाश उस प्रकाशके सामने, जो हमें कुछ समय बाद प्राप्त होगा, केवल अंधकार है।

जीवन एक अनवरत क्रम-विकास है। यदि हम अपनी मनोवस्थाको सजीव रखना चाहती हैं तो हमें बिना रुके उन्नतिके पथपर बढ़ते चले जाना चाहिये।

वैसे है यह कार्य अपने-आपमें अभी प्रारंभिक ही। हम अभी उस सत्य-विचारसे दूर हैं जो ज्ञानके अपरिमित स्रोतोंके साथ हमारा संबंध स्थापित करता है। ये सब तो हमें अपने विचारोंपर विशेष व्यक्तिगत रूपसे नियंत्रण रखना सिखानेके लिये अभ्यासमात्र हैं, क्योंकि जो मनुष्य ध्यान या चिंतन करना चाहते हैं उनके लिये अपनी मानसिक क्रियाको वशमें रखना अत्यंत आवश्यक है।

मैं ध्यानके बारेमें आज आप लोगोंको विस्तारपूर्वक तो नहीं बता सकती। मैं केवल इतना कहूंगी कि ध्यानको वास्तविक ध्यान होनेके लिये, उसका पूरा उपयोग करनेके लिये हमें सच्चे अर्थोंमें निःस्वार्थ, निर्वैयक्तिक होना आवश्यक है।

हिंदुओंकी एक प्राचीन पुस्तकसे मैं एक विशिष्ट प्रकारके ध्यानका दृष्टांत देती हूं:

"एक महाप्रतापी राजा अपने बृहत् संग्रहालयको देखनेके लिये चला। दहलीजमें पैर रखते ही वह रुक गया और भावावेशमें चिल्ला उठा :

"ठहरो! लोभके विचारो, द्वेषके विचारो, और आगे मत बढ़ो! रुक जाओ! घृणाके विचारो, एक पग भी आगे मत रखो!"

तब वह कमरेके अंदर प्रविष्ट हुआ और एक सोनेकी चौकीपर बैठ गया। जब वह अपनी सब वासनाओं तथा सत्य-विरोधी भावनाओंका त्याग कर चुका तो उसे प्रथम धामकी प्राप्ति हुई। यह आनंद और विश्रामकी वह अवस्था थी जो एकांतसेवनसे प्राप्त होती है —— यह मनन और खोजकी अवस्था थी।

मनन और अभीप्साकी इस अवस्थाको जब वह पार कर चुका तो उसे द्वितीय धामकी प्राप्ति हुई। यह अवस्था उस आनंद और विश्रामकी थी जो अविचलतासे प्राप्त होती है। इसमें अब मनन और खोजके भाव नहीं थे। इसमें थी निश्चल-नीरवता और आत्माकी उत्कृष्टता।

इस आनन्दका उपभोग करना छोड़कर वह विरक्त, सचेतन और आत्म-विजयी हो गया और उसे तृतीय धामकी प्राप्ति हुई। इस समय उसे उस आत्म-प्रसादका अनुभव हुआ जिसके विषयमें सन्त लोग कहते हैं: "जो आत्म-विजयी है, जिसका निवास विरक्तिमें है उसीको यह अभूतपूर्व आनन्द प्राप्त होता है।"

इस आनन्दको भी एक ओर रखकर, दुःखमात्रका त्याग करके जब वह

हर्ष-शोकरूपी द्वन्द्वोंसे मुक्त हो गया तो उसे उस अवस्थाकी प्राप्ति हुई जिसमें आवश्यक रूपसे अपने ऊपर एक पूर्ण शुद्ध प्रभुत्व तथा सौम्यता प्राप्त हो जाती है — यह चतुर्थ धाम था।

इसके अनन्तर वह प्रतापशाली राजा उस महान् संग्रहालयसे बाहर निकला और स्वर्ण प्रासादकी ओर चला। अन्दर जाकर वह एक चांदीकी चौकीपर बैठ गया। उसने संसारकी ओर प्रेमपूर्ण भावसे देखा और उसका प्रेम बारी-बारीसे चारों दिशाओंमें छा गया। फिर प्रेम-भरे हृदयसे — ऐसा प्रेम जो निरंतर अपरिमित रूपमें बढ़ता चला जाता था — उसने इस विशाल संसारको पूर्ण रूपसे — इसकी अन्तिम सीमातक — अपने अन्दर समेट लिया।

उसने संसारकी ओर अपनी करुणामय दृष्टि उठायी और उसकी करुणा क्रमशः चारों ओर व्याप गयी। फिर करुणासे ओत-प्रोत हृदयसे — ऐसी करुणा जो नित्यप्रति उद्दाम वेगसे बढ़ रही थी — उसने इस बड़े संसारको पूर्णतया, इसके अंतिम छोरतक अपने अन्दर धारण कर लिया।

अब राजाने सौम्यताके भावसे संसारकी ओर निहारा और उसकी सौम्यता धीरे-धीरे चारों लोकोंमें व्याप्त हो गयी। इस सौम्यतासे पूर्ण हृदयको लेकर — ऐसी सौम्यता जो निरंतर अपरिमित मात्रामें बढ़ती जा रही थी — उसने इस बृहत् जगत्को — पूरे-के-पूरेको — अपने अन्दर समा लिया।"[1]

पूर्ण सत्य असीम उन्नतिके पथपर चलते हुए जगत्के विकासशील ज्ञानके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। ऐसे सत्यकी खोजके लिये जो व्यक्ति सच्चे भावमें प्रयत्न करता है, उसके अधिकाधिक निकट पहुंचनेके लिये आवश्यकता पड़नेपर उस सबका त्याग करनेको प्रस्तुत रहता है जिसको अबतक वह सत्य मानता आया है, वही धीरे-धीरे गहनतम, पूर्णतम तथा अनन्त प्रकाशमय विचार-समूहोंके साथ अपना सम्बन्ध स्थापित कर सकता है।

ध्यान और चितनकी सहायतासे जब वह सच्ची बौद्धिक शक्तिकी महान् संसारव्यापी लहरके सीधे संपर्कमें आ जाता है तब कोई ज्ञान उससे छुपा नहीं रहता।

अविचलताके साथ-साथ अब मानसिक शान्ति भी उसके हिस्सेमें आ जाती है। अपनी सब धारणाओं, समस्त मानवीय ज्ञान और धार्मिक शिक्षाओंके बीचमेंसे भी — और ये सब कभी-कभी आपसमें कितने विरोधी

---

[1]देखिये परिशिष्ट, पृष्ठ २८।

प्रतीत होते हैं --- वह उस गूढ़ सत्यको देख लेता है जिसको तब कोई शक्ति उसकी दृष्टिसे ओझल नहीं रख सकती।

भूलें और अज्ञानवश किये गये कार्य भी उसको तब क्षुब्ध नहीं करते, जैसा कि एक महापुरुषने कहा है :

'जो सत्यके पथपर बढ़ रहा है उसको कोई भूल कष्ट नहीं पहुंचा सकती, क्योंकि वह जानता है कि यह भूल सत्य पथपर अग्रसर होनेवाले जीवनकी प्रारंभिक चेष्टा है।'

परन्तु पूर्ण अविचलताकी इस स्थितिको प्राप्त करनेके लिये मनुष्यको विचारके उच्चतम शिखरतक पहुंचना होगा।

वहांतक इतनी जल्दी पहुंचनेकी आशा न करके भी हमें इसके लिये तो प्रयत्न करना ही है कि हम व्यक्तिगत रूपसे मौलिक तथा साथ-ही-साथ जितना संभव हो, न्याययुक्त विचार करना सीखें। तब हम एक प्रकारसे उन मनीषियोंकी श्रेणीमें आ जायंगे जो समाजको अपने उच्चतम सहज ज्ञानकी अमूल्य सहायता पहुंचानेके योग्य होते हैं।

आज मैंने विचारके विषयमें इस प्रकारसे बातचीत की है मानों वह एक सजीव और सक्रिय सत्ता हो, इसलिये इसकी थोड़ी व्याख्या करनेकी आवश्यकता है। पर मैं अगली बैठकमें, यदि हो सका तो, वैज्ञानिक ढंगसे यह बतानेका यत्न करूंगी कि इसकी भीतरी बनावट, रचना आदि क्या है, अर्थात्, यह कैसे उत्पन्न होता है, जीवित रहता है, कार्य करता तथा परिवर्तन लाता है।

अपना कथन समाप्त करनेसे पहले मैं आपसे अपनी एक अभिलाषा प्रकट करनेकी आज्ञा अवश्य चाहती हूं।

वह यह है कि हम आजसे यह निश्चय कर लें कि हम अपने-आपको प्रतिदिन पूरी सच्चाई तथा सदिच्छाके साथ ऊपर उठायेंगे; एक तीव्र अभीप्साके साथ उस सत्यके सूर्यकी ओर, उस चरम प्रकाशकी ओर बढ़ेंगे जो विश्वके बौद्धिक जीवनका स्रोत है ताकि वह प्रकाश हमारे अन्दर पूर्ण रूपसे प्रवेश पाकर अपनी महान् ज्योतिसे हमारे मन, हृदय, सब विचारों और कर्मोंको उजागर कर दे।

तभी हमें प्राचीन कालके उन महान् गुरुके निर्देशका अनुसरण करनेका अधिकार तथा गौरव प्राप्त होगा जिनका कथन है :

"करुणासे उमड़ते हुए हृदयोंको लेकर इस संसारमें प्रवेश करो जो कष्टसे भरपूर है। शिक्षक बनो और जहां-जहां अंधकार और अज्ञानका साम्राज्य है वहां-वहां ज्ञानका दीपक जला दो।"

(१५ दिसम्बर, १९११)

परिशिष्ट*

प्रेम : सत्ताके लिये, क्योंकि वह सभी संयोगों और व्यक्तियोंसे स्वतंत्र सत्ता है।
दया (पिटी) : व्यक्ति अब अपने लिये कष्ट अनुभव नहीं करता, केवल औरोंके लिये अनुभव करता है।
सहानुभूति : संसारके साथ कष्ट सहन करना, कष्ट बंटा लेना (औरोंके साथ कष्ट सहना)।
प्रशांतता (सिरीनिटी) : उस अवस्थाका संपूर्ण ज्ञान जिसमें सब दुःख-कष्ट गायब हो जाते हैं (व्यक्तिगत अनुभव)।

*
**

प्रेम : समस्त सत्ताके लिये, शुभ और अशुभ, प्रकाश और अंधकारके भेद-भावके बिना।
दया : समस्त दुर्बलता और समस्त असद्भावनाके लिये।
सहानुभूति : प्रयास, प्रोत्साहन, सहयोगके प्रति।
प्रशांतता : दुःख-कष्टके समाप्त होनेकी आशा (अपने व्यक्तिगत अनुभवको जानते हुए व्यक्ति तर्कसंगत रूपमें यह परिणाम निकालता है कि इसे व्यापक बनाया जा सकता है और यह सबका अनुभव हो सकता है।

*
**

प्रेम : भूत, भविष्यत् और वर्तमानके भेद-भावके बिना।
दया : पीड़ाके जीवनके लिये।
सहानुभूति : हर चीजकी, यहांतक कि अशुभकी भी, समझ।
प्रशांतता : अंतिम विजयकी निश्चिति।

*
**

तीन सक्रिय मनोवृत्तियां, एक निष्क्रिय मनोवृत्ति, 'सर्व'के साथ तीन बाहरी संबंध, एक आंतरिक संबंध। ध्यानके वक्त सारे समय रखने लायक अवस्था : प्रेम, सहानुभूति और दयामें प्रशांतता।

---

*ये टिप्पणियां माताजीकी पाण्डुलिपिमें मिली हैं।

स्वप्न

प्रथम दृष्टिमें स्वप्नका विषय नितान्त गौण प्रतीत हो सकता है, हमारी जागृत अवस्थाकी तुलनामें स्वप्नको साधारणत: अत्यन्त कम महत्त्व दिया जाता है।

पर इस प्रश्नको ज़रा अधिक निकटसे देखनेसे पता चलता है कि बात ऐसी नहीं है।

पहले तो यह याद रखना चाहिये कि हमारे जीवनका एक तिहाईसे अधिक भाग सोनेमें व्यतीत होता है, इस कारण निद्रामें लगा हुआ समय हमारे ध्यानका पूरा अधिकारी होता है।

मैं निद्रा कह रही हूं क्योंकि यह मानना गलत होगा कि जब हमारा शरीर भौतिक नींदमें होता है तो हमारी सारी सत्ता भी सो रही होती है।

लगभग बीस वर्ष हुए डा० वाशिदकी "निद्रा और स्वप्न" नामकी एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी। इसमें कठोर वैज्ञानिक पद्धतिके आधारपर किये गये अनेक प्रयोगोंका परिणाम दिया गया है।

जिन चिकित्सकोंने ये प्रयोग किये थे वे इस निष्कर्षपर पहुंचे थे कि मन कभी भी निष्क्रिय नहीं होता और मनकी सक्रियता ही थोड़े-बहुत अस्त-व्यस्त रूपमें हमारे मस्तिष्कमें स्वप्नोंके रूपमें परिणत हो जाती है। इस प्रकार, हम चाहे इसके बारेमें सचेत हों या न हों, हम सदा ही स्वप्न देखते हैं।

इस सक्रियताको पूरी तरहसे बन्द कर पूरी स्वप्नरहित निद्रा लेना संभव अवश्य है, पर जिस प्रकार हम शरीरको विश्राम देते हैं उसी प्रकार मनको भी विश्राम देनेके लिये यह आवश्यक है कि हम उसपर पूर्ण स्वामित्व प्राप्त करें, और यह कार्य कोई आसान नहीं है।

अधिकतर तो निद्रामें यह सक्रियता और भी बढ़ जाती है, कारण जब शरीर सोता है तब आन्तरिक वृत्तियां शारीरिक जीवनपर केन्द्रित नहीं रह जातीं और न उसके द्वारा व्यवहृत होती हैं।

कभी-कभी कहा जाता है कि निद्रामें ही मनुष्य अपना असली स्वरूप जान सकता है।

यह प्राय: होता है कि हमारी संवेदनशील सत्ता, जो दिनमें हमारी सक्रिय इच्छा-शक्तिके अधीन रहती है, रातमें उस बन्धनके हटते ही और भी प्रबल रूपसे प्रतिक्रिया करने लगती है।

हमारी वे सारी कामनाएं जो बिना विलीन हुए दबा दी गयी होती

हैं, रातमें जब इच्छा-शक्ति सुप्त अवस्थामें होती है, अपनी तृप्तिका प्रयत्न करती हैं। और कामना निःशेष होती है बहुत ही प्रशस्त, सच्चाईसे किये गये अनेक विश्लेषणोंके बाद।

कामनाएं रूप-सृष्टिके सक्रिय केन्द्र होती हैं, वे हमारे अन्दर और चारों ओर ऐसी अनुकूल परिस्थितियां जुटा देती हैं जो उन्हें चरितार्थ करनेमें अधिक-से-अधिक सहायक होती हैं।

इस प्रकार, दिनमें सचेतन विचारोंद्वारा जो इतना परिश्रम किया जाता है उसका फल रात्रिके कुछ घंटोंमें ही नष्ट हो जाता है।

हमारी उन्नति करनेकी इच्छाको जिस बाधाका प्रायः सामना करना पड़ता है उसका यह एक प्रधान कारण है। यही उन कठिनाइयोंका भी प्रधान कारण है जिन्हें पार करना हमें संभव नहीं लगता और जिनकी हम व्याख्या नहीं कर सकते, क्योंकि अपनी सदिच्छा भी हमें साथ-ही-साथ इतनी पूर्ण प्रतीत होती है।

अतएव, हमें अपने स्वप्नोंको पहचानना सीखना चाहिये और सबसे पहले उनमें भेद करना जानना चाहिये, क्योंकि वे स्वभाव और गुणमें बहुत अलग-अलग तरहके होते हैं। कई बार तो एक ही रात्रिमें हमें भिन्न-भिन्न श्रेणियोंके स्वप्न आते हैं और यह हमारी निद्राकी गहराईपर निर्भर है।

साधारणतः देखा जाता है कि हर व्यक्तिका स्वप्नोंके लिये रातमें एक विशेष अनुकूल समय होता है जब उसकी क्रिया अधिक फलवती, अधिक बौद्धिक होती है और जिन मानसिक परिस्थितियोंमें वह विचरण करता है वे अधिक रोचक होती हैं।

अधिकांश स्वप्न स्थूल मस्तिष्ककी निर्बाध और यंत्रवत् क्रिया होनेके अतिरिक्त और कुछ महत्त्व नहीं रखते। मस्तिष्कके कुछ कोषाणु निद्रामें ऐसे उत्पादक यंत्रोंकी तरह अपना काम चालू रखते हैं जो बाहरसे प्राप्त चित्रोंके अनुरूप संवेदनों और आकृतियोंको गढ़ते रहते हैं।

ऐसे स्वप्न प्रायः सदा ही शारीरिक कारणों, जैसे स्वास्थ्य, पाचन, बिस्तरपर लेटने आदिकी अवस्थासे निर्धारित होते हैं।

थोड़े आत्म-निरीक्षण और कुछ सतर्कतासे इनके शारीरिक कारणोंको दूर करके इन थकावट पैदा करनेवाले निरर्थक स्वप्नोंसे आसानीसे बचा जा सकता है।

एक और प्रकारके स्वप्न भी हैं जो मनकी कुछ वृत्तियोंकी लक्ष्यहीन चेष्टाकी निष्प्रयोजन अभिव्यक्ति मात्र होते हैं। इनमें विचार, बातचीतके प्रसंग, स्मृतियां आदि संयोगवश इकट्ठे हो जाते हैं।

इस प्रकारके स्वप्नोंका महत्त्व अधिक है क्योंकि यह लक्ष्यहीन क्रिया

दिखलाती है कि जब हमारी इच्छा-शक्तिका नियंत्रण नहीं रहता तब हमारी मानसिक प्रवृत्तियोंमें कैसी अव्यवस्था होती है। इससे हमें पता चलता है कि इस सत्तामें अभीतक व्यवस्था और विन्यास स्थापित नहीं हुए हैं और न ही वह अभी स्वाधीन जीवनके लिये तैयार है।

मैं अभी कुछ ऐसे स्वप्नोंके बारेमें कहूंगी जिनका रूप तो इनसे मिलता-जुलता है, पर प्रभाव इनसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। इनका उद्‌गम हमारी आन्तरिक सत्ताके प्रतिशोधसे है जो उसपर हमारे लगाये गये प्रतिबन्धसे कुछ क्षणोंके लिये मुक्त हो जाती है। जो प्रवृत्तियां, रुचियां, आवेग और कामनाएं हमारी किसी आदर्श प्राप्तिकी इच्छाके नीचे दबी रहकर हमारी सत्ताके किसी अनजान कोनेमें हमसे ओझल रहा करती हैं, वे सब इन स्वप्नोंद्वारा ही प्रायः हमारी दृष्टिमें आती हैं।

यह समझना आसान है कि इन चीजोंको इस प्रकार अज्ञात पड़े रहने देनेमे बेहतर होगा इनको निर्भयता और साहसपूर्वक दिनके प्रकाशमें बाहर खींच लाना और निश्चित रूपसे हमारा पल्ला छोड़ देनेके लिये इन्हें बाधित करना।

अतएव, हमें अपने स्वप्नोंका निरीक्षण ध्यानपूर्वक करना चाहिये। ये प्रायः उपयोगी शिक्षक प्रमाणित होते हैं, ये हमें आत्म-विजयके मार्गपर प्रचुर सहायता पहुंचा सकते हैं।

जो अपनी रातकी इन निर्बाध गतिविधियोंको नहीं जानता वह अपने-आपको भली प्रकार नहीं जानता। और जो शारीरिक निद्राकी अवस्थाकी अपनी विविध कर्मावलीके प्रति पूर्ण सचेतन होकर उनका स्वामी नहीं होता, वह अपने-आपको अपना स्वामी नहीं कह सकता।

पर स्वप्न हमारी दुर्बलताओंके चतुर संकेतक या उन्नतिके लिये किये गये हमारे दैनिक प्रयत्नोंके दुष्ट विनाशक मात्र ही नहीं हैं।

एक ओर यदि ऐसे स्वप्न हैं जिनसे हमें लड़ना है और जिनका रूपान्तर करना है, तो दूसरी ओर ऐसे भी हैं जिन्हें विकसित करना है, क्योंकि ये हमारे अन्दरके और परिपार्श्वके कार्यमें मूल्यवान् सहयोगी हैं।

इसमें संदेह नहीं कि कई दृष्टियोंसे हमारे अवचेतनमें हमारी साधारण चेतनासे कहीं अधिक ज्ञान रहता है।

किसे यह अनुभव नहीं हुआ है कि जो दार्शनिक, नैतिक या व्यावहारिक समस्या शामको सुलझाये नहीं सुलझती थी, बल्कि असंभव-सी प्रतीत होती थी, प्रातः सोकर उठनेपर उसका उत्तर स्पष्ट और सुनिश्चित मिलता है? मानसिक खोज नींदमें चलती रही और हमारी आन्तरिक वृत्तियां समस्त भौतिक क्रिया-कलापोंसे मुक्त होकर केवल अपनी रुचिके विषयपर केन्द्रित हो सकीं।

बहुत बार यह प्रक्रिया अवचेतन रहती है, केवल परिणाम ही देखनेमें आता है।

पर कभी-कभी स्वप्नोंकी सहायतासे मनुष्य पूरी मानसिक क्रियाकी प्रत्येक गतिविधिमें भाग लेता है। परन्तु इस क्रियाकी जो प्रतिलिपि मस्तिष्कमें उतरती है वह प्रायः इतनी बचकानी होती है कि साधारणतया उसकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता।

इस दृष्टिकोणसे यहां एक बात ध्यान देने योग्य है। वह यह कि हमारी यथार्थ मानसिक क्रियामें और उसके उस रूपमें जिसमें हम उसे देखते हैं, विशेषतः जिस रूपमें उसके प्रति सचेतन रहते हैं, प्रायः सदैव बहुत अन्तर रहता है। अपने क्षेत्रमें तो यह क्रिया स्वयं निर्धारित करती है कि कौन से स्पन्दन अपनी क्रिया-प्रतिक्रियाद्वारा मस्तिष्कके कोषाणुओं तक भेजे जाने चाहिये, पर अतीन्द्रिय स्तरके ये सूक्ष्म स्पन्दन हमारे निद्रित मस्तिष्क-में बहुत कम कोषाणुओंपर अपना प्रभाव डाल सकते हैं। कारण, मस्तिष्क-के अधिकांश कोषाणुओंकी जड़ता इन स्पन्दनोंके क्रियाशील तत्त्वोंकी संख्या-को कम कर देती है और मनकी समन्वय-शक्तिको भी दुर्बल कर देती है। तब आन्तरिक स्थितियोंकी क्रियावलिका वास्तविक स्वरूप तो आ नहीं पाता, बस कुछ चित्र सामने आते हैं, वे भी प्रायः बड़े ही धुंधले और अनुपयुक्त।

इस अन्तरको अधिक स्पष्ट करनेके लिये मैं अपने जाने हुए बहुत-से उदाहरणोंमेंसे एक दे सकती हूं।

हालमें एक लेखक अपने आधे लिखे अध्यायमें लगा हुआ था, परन्तु वह उसे पूरा न कर सका।

उसका मन इस कार्यमें विशेष रूपसे लगा हुआ था, रातमें भी उसीमें व्यस्त रहा। जो विचार विविध अनुच्छेदोंमें दिये गये थे उन्हें घुमा-फिरा कर सोचते हुए उसे ज्ञात हुआ कि विचारोंको प्रकट करनेमें युक्ति-युक्त क्रम नहीं आया है, अतः अनुच्छेदोंको दूसरी तरहसे सजाना होगा।

इस सारे कार्यकी प्रतिलिपि हमारे लेखककी चेतनामें एक स्वप्नके रूपमें इस प्रकार प्रकट हुई : वह अपने पढ़नेके कमरेमें है, उसके सामने अनेक आरामकुर्सियां पड़ी हैं जिन्हें वह अभी-अभी लाया है। वह इन्हें कभी एक तरहसे सजाता है, कभी दूसरी तरहसे। जब तक एक-एक कुर्सी यथा-स्थान नहीं रख दी गयी उसका यही क्रम चलता रहा।

कुछ लोगोंको इन अधूरी प्रतिलिपियोंका जो-जो ज्ञान हुआ होगा उसमें हमें स्वप्नकी कुंजियोंके प्रचलित विश्वासका मूल मिल सकता है जिससे साधारण लोग इतने प्रसन्न होते हैं।

परंतु यह समझना आसान है कि स्वप्नोंकी ये अस्पष्ट प्रतिलिपियां

प्रत्येक व्यक्तिके लिये अलग-अलग रूप रखती हैं। हर कोई इन्हें अपने ढंगसे तोड़-मरोड़ लेता है।

फल यह होता है कि किसी एक व्यक्ति-विशेषके लिये जो व्याख्या सही रही हो उसके आधारपर सर्वसाधारणपर लागू किये जानेवाले अनुपयुक्त सिद्धांत बनते हैं और इनसे गंवारू और मूर्खतापूर्ण अंधविश्वासोंका जन्म होता है।

यह तो ऐसा ही हुआ मानों हमने अभी जिस लेखककी चर्चा की है वह अपने मित्रों और परिचितोंको अत्यंत गोपन भावसे यह शिक्षा देने लगे कि जब-जब वे स्वप्नमें अपने-आपको कुर्सियां उलट-पुलटकर सजाते देखें, तब-तब समझ लें कि अगले दिन उन्हें किसी पुस्तकके अनुच्छेदोंका क्रम उलटना है।

रात्रिकी क्रियाओंका जो चित्र मस्तिष्कमें उतारता है वह कभी-कभी इतना विकृत हो जाता है कि वास्तविक रूपका उलटा ही बन जाता है। उदाहरणार्थ, जब कोई व्यक्ति किसी दूसरेके बारेमें शत्रुतापूर्ण विचार रखता है और रात्रिमें स्वतंत्रता पाकर वह विचार पूरा जोर पकड़ लेता है तो वह स्वप्नमें देखता है कि दूसरा व्यक्ति उसे पीट रहा है, उसके साथ बुरी चाल चल रहा है, यहांतक कि उसे घायल कर देता है और मार डालनेकी कोशिश करता है।

साधारणतया स्वप्नोंका अर्थ लगानेके लिये हमें सदा बहुत बौद्धिक सावधानी बरतनी चाहिये और उनकी कोई वस्तुभूत वास्तविकता माननेसे पहले हमें अपने अंदरसे इच्छाजनित सब संभाव्य समाधानोंको तो निकाल ही देना चाहिये।

पर ऐसे व्यक्ति भी हैं, विशेषत: वे जिन्होंने अपने विचार सदा अपनी ओर ही लगाये रखनेकी आदत छोड़ दी है, जो अपनेसे बाहरकी चीजोंको, जो कि व्यक्तिगत मनकी रचनाएं नहीं हैं, तटस्थ-भावसे देख सकते हैं। इन चीजोंके जिन कम या अधिक अधूरे मानसिक चित्रोंको मस्तिष्क प्रस्तुत करता है उन्हें कोई यदि बौद्धिक भाषामें रूपांतरित करना जान सके तो उसे ऐसी बहुत-सी चीजोंका ज्ञान प्राप्त हो सकेगा जिसे उसकी अत्यंत सीमित शारीरिक वृत्तियां नहीं पा सकतीं।

कुछ लोग विशेष अनुशीलन और शिक्षासे इस योग्य हो जाते हैं कि मस्तिष्ककी इन प्रतिलिपियोंकी सहायताके बिना भी अपनी आंतरिक सत्ताकी गहनतर क्रियाओंके प्रति सचेतन हो सकें और सचेतन रह सकें और जाग्रत अवस्थामें इन सबको पूरी तरह स्मरण कर सकें और जान सकें।

इस विषयपर बहुत-सी मनोरंजक बातें कही जा सकती हैं, परंतु अच्छा

शायद यह होगा कि हर एक इन बहुसंख्यक संभावनाओंसे स्वयं परीक्षण करता चले। ये चीजें मनुष्यकी पहुंचके अंदर हैं, पर वह इसे अनजोती भूमिकी तरह अवहेलित रखता है।

जो भूमि जोती नहीं जाती उसमें झाड़-झंखाड़ उग आते हैं। हम अपने अंदर ऐसे झाड़-झंखाड़ नहीं चाहते। तो हमें अपनी रात्रिकी विस्तृत भूमि जोतनी चाहिये।

यह न सोचें कि यह कार्य हमारी निद्राकी गहराईमें या हमारे विश्राममें, जो लाभप्रद होनेके साथ-साथ हमारे लिये अनिवार्य भी है, तनिक भी कमी लायगा। इसके विपरीत, अनेक ऐसे व्यक्ति हैं जिनको दिनसे अधिक रात थका देती है, और इसका कारण उनकी पकड़में नहीं आता। उन्हें इन कारणोंको समझना चाहिये, तभी उनकी इच्छा-शक्ति उन कारणोंपर कार्य करना आरंभ कर सकेगी और उनका प्रभाव दूर कर सकेगी, दूसरे शब्दोंमें, उन चेष्टाओंको रोकेगी जो ऐसी स्थितियोंमें प्रायः सदा ही व्यर्थ और हानिकारक भी होती हैं।

यदि हमारी रात्रि हमें किसी नये ज्ञानकी प्राप्ति करा दे, किसी गहन समस्याका हल करा दे, हमारी आंतरिक सत्ताका संबंध जीवन या प्रकाशके किसी केंद्रके साथ जोड़ दे, या कोई उपयोगी कार्य ही सिद्ध कर दे तो नींद टूटनेपर हम सदा ही शक्ति और स्वास्थ्यका भाव लेकर उठेंगे।

कोई उपयोगी या अच्छा काम किये बिना जो समय बीतता है केवल वही समय हमें सबसे अधिक थकाता है।

पर इस क्रियाक्षेत्रको उर्वर कैसे किया जाय? रात्रिके इन क्रिया-कलापोंका ज्ञान कैसे प्राप्त किया जाय?

इसका उपाय हमारे आंतरिक जीवनपर लिखी गयी एक पुस्तकके पृष्ठपर तेजीसे अंकित है:

एकाग्रताका जो अनुशासन मनुष्यको उसकी जाग्रत अवस्थाकी आंतरिक क्रियाओंका ज्ञान प्राप्त कराता है वही जाग्रत अवस्थासे अधिक समृद्ध निद्रावस्थाकी भिन्न-भिन्न स्थितियोंकी क्रियाओंका ज्ञान प्राप्त करनेके भी साधन उपस्थित करता है।

साधारणतः निद्रित अवस्थाकी क्रियाएं अपने पीछे केवल धूमिल-सी विरली स्मृतियां ही छोड़ जाती हैं।

पर कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि जिस लंबे स्वप्नकी पहले जरा भी स्मृति नहीं थी वही कोई आकस्मिक घटना घटने, मनपर कोई छाप पड़ने या किसी शब्दके सुननेपर पूरा-का-पूरा हमारे मनके सामने आ खड़ा होता है।

इस सरल बातसे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि हमारी चेतन क्रिया निद्रावस्थाके व्यापारोंमें बहुत हल्का-सा भाग लेती है, क्योंकि स्वाभाविक अवस्थामें ये व्यापार अवचेतनाके स्मृति-गर्भमें चिरकालके लिये खोये रहते हैं।

इस क्षेत्रमें एकाग्रताका अभ्यास दो चीजोंपर होना चाहिये : विशेष स्मरण-शक्तिपर और निद्रावस्थाकी क्रियाओंमें चेतनाके भाग लेनेपर।

जो व्यक्ति अपने किसी भूले हुए स्वप्नको याद करना चाहता है उसे सबसे पहले अपना ध्यान उन धुंधले चिह्नोंपर केन्द्रित करना चाहिये जिन्हें वह स्वप्न अपने पीछे छोड़ जाता है, और फिर उन्हीं अस्पष्ट चिह्नोंके सहारे जहांतक हो सके आगे बढ़ना चाहिये।

इसका नियमित अभ्यास मनुष्यको दिन-प्रतिदिन अवचेतनाकी उस अंधकार-मय गुहामें आगे ले जायगा जहां निद्राकी विस्मृत घटनाएं छुपी पड़ी हैं और इस प्रकार चेतनाके इन दो लोकोंके बीच एक सुगम रास्ता निकल आयेगा।

इस सम्बन्धमें यह कह देना उपयोगी होगा कि विस्मृतिका कारण प्रायः होता है हठात् झटके-से जाग्रत अवस्थामें लौटना (हठात् अचकचाकर उठना ठीक नहीं)।

वस्तुतः इस तरह चेतनाके क्षेत्रमें कुछ नयी क्रियाएं जोर लगाकर घुस आती हैं, वे अपनेसे भिन्न सब प्रकारकी वस्तुओंको जबर्दस्ती बाहर निकाल देती हैं और बादमें उन्हें दुबारा याद करनेके लिये जिस एकाग्रताकी आवश्यकता होती है उसके कार्यको अधिक कठिन बना देती हैं। इसके विपरीत, यदि एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें शान्तिपूर्वक आनेके लिये कुछ मानसिक और साथ ही कुछ शारीरिक सावधानी भी बरती जाय तो यह काम आसान हो जायगा। (यदि संभव हो तो उठनेसे पहले बिस्तरपर उतावली, हलचल नहीं करनी चाहिये।)

पर स्मरण-शक्तिकी वृत्तियोंका यह विशेष अभ्यास केवल उन्हीं वस्तुओं-को जाग्रत अवस्थाकी चेतनामें ला सकेगा जो निद्रामें पहले सचेतन थीं, चाहे कितनी भी कम सचेतन क्यों न रही हों, क्योंकि जहां चेतना नहीं, वहां स्मृति भी नहीं हो सकती।

इसलिये दूसरा काम है निद्रावस्थाकी अधिक-से-अधिक क्रियावलियोंमें चेतनाका प्रसार करना।

इसके लिये एक और काम बहुत उपयोगी होता है। वह यह कि रातके विभिन्न स्वप्नोंमें रुचि रखकर उन्हें मनमें दोहरानेका दैनिक अभ्यास किया जाय। इससे स्वप्नोंके खण्ड-चित्र थोड़ा-थोड़ा करके पूर्ण स्मृतियोंमें परि-

वर्तित हो जायेंगे। फिर, जागनेपर इन्हें लिख लेनेका भी अभ्यास डाला जाय।

इन अभ्यासोंके द्वारा मानसिक वृत्तियोंकी शक्ति स्वप्नके व्यापारोंके उपयुक्त बन जायगी और वे वृत्तियां अपना ध्यान, अपनी जिज्ञासा तथा विश्लेषण-शक्ति उनपर प्रयुक्त करने लगेंगी।

तब स्वप्नमें एक प्रकारकी बौद्धिकता आ जायगी जिसका दोहरा फल होगा। निद्रावस्थाकी जो क्रियाएं अबतक विशृंखल थीं उनमें चेतनावस्थाकी क्रियाएं अधिकाधिक घनिष्ठ रूपसे भाग लेने लगेंगी और उन्हें अधिकाधिक युक्ति-युक्त और शिक्षाप्रद बनाकर इनका क्षेत्र उत्तरोत्तर विस्तृत करती जायंगी।

तब स्वप्न सुस्पष्ट सूक्ष्म-दर्शनका रूप ग्रहण करेंगे और कभी-कभी साक्षात् दिव्य दर्शन होंगे। इसके फलस्वरूप विशेष महत्त्वपूर्ण वस्तुओंकी एक पूरी श्रेणीका उपयोगी ज्ञान प्राप्त करना संभव हो जायगा।

(२५ मार्च, १९१२)

सर्वोत्तम आविष्कार

यदि सर्वांगीण उन्नतिकी चाह है तो हमें अपनी सचेतन सत्ताके अन्दर एक दृढ़ और शुद्ध मानसिक समन्वयकी रचना करनी होगी जो बाह्य प्रलोभनोंसे कवचकी तरह हमारी रक्षा कर सके, मार्गसे भटकने न देनेके लिये पथ-संकेतका काम कर सके और जीवनके गतिमान सागरमें हमारे मार्गको आलोकित करनेके लिये प्रकाश-स्तम्भ बन सके।

हर एकको अपने मानसिक समन्वय, अपनी-अपनी प्रवृत्तियों, अभिरुचियों और अभीप्साओंके अनुसार रचना होगा। परन्तु यदि हम इस समन्वयको यथार्थमें जीवन्त और प्रकाशयुक्त बनाना चाहें तो इसके केन्द्रमें एक ऐसा भाव स्थापित करना होगा जो 'उस'का बुद्धिग्राह्य प्रतीक और रूप हो, जो समस्त सत्ताके केन्द्रमें स्थित है, जो हमारा जीवन, हमारा प्रकाश है।

इसी विचारकी शिक्षा देश-देशमें, युग-युगमें, महान् आचार्योंने नाना रूपोंमें उदात्त शब्दोंमें व्यक्त की है।

प्रत्येक व्यक्तिका 'मैं' और विश्वका विराट् 'मैं' एक ही है।

जो कुछ आज है वह सब जब मूल और सार रूपमें चिरकालसे है तब सत्तामें और उसके उत्समें, हममें और जिसे हम आदि स्रोत मानते हैं उसमें भेद क्यों किया जाय ?

यह प्राचीन कथन ठीक था : "हम और हमारा आदि स्रोत, हम और हमारे भगवान् एक हैं।"

इस एकत्वको केवल कम या अधिक घनिष्ठता और अन्तरंगताका सम्बन्ध नहीं, वरन् एक सच्चा तादात्म्य समझना चाहिये।

इस प्रकार जो आदमी भगवान्की खोजमें, अगम्य शिखरकी ओर सीढ़ी-पर-सीढ़ी चढ़नेका प्रयास करता है वह यह भूल जाता है कि उसका समस्त ज्ञान, उसकी समस्त अन्तर्दृष्टि उसे इस असीमकी ओर एक पग भी आगे नहीं ले जा सकते, और वह यह भी नहीं जानता कि वह जिसे प्राप्त करना चाहता है और जिसे अपनेसे इतनी दूर समझता है, वह उसके अन्दर ही विद्यमान है।

और वह उस आदि स्रोतके विषयमें कुछ जान भी कैसे सकता है जब तक कि उस स्रोतका संधान अपने अन्दर न पा ले ?

अपने-आपको समझकर, अपने-आपको जानना सीखकर ही मनुष्य यह परम आविष्कार कर सकता है और तब आश्चर्यचकित होकर बाइबलके कुलपतिकी भांति बोल पड़ता है : "अरे, यहीं तो है भगवान्का आवास, पर मैं जानता न था।"

इसलिये समस्त भौतिक जगत्की सृष्टि करनेवाले इस उत्कृष्ट विचारको हमें व्यक्त करना होगा, समस्त पृथ्वी और आकाशमें व्याप्त यह वाणी सबके कानोंतक पहुंचानी होगी : "मैं प्रत्येक वस्तुमें हूं और प्रत्येक प्राणीमें हूं।"

जब सब लोग इस बातको जान जायंगे तब वह दिन जिसकी प्रतिज्ञा की गयी है, महान् रूपान्तरका वह दिन समीप आ जायगा। मानव जब जड़-पदार्थके प्रत्येक अणु-परमाणुमें उसके अन्दर रहनेवाले भगवान्की इच्छा-को देखने लगेगा, प्रत्येक प्राणीमें भगवान्की किसी भंगिमाकी ही झलक देखेगा, और जब अपने भ्राता, प्रत्येक मानवके अन्दर भगवान्को देख पायगा तब उस ऊषाका उदय होगा जो प्रकृतिको अपने भारसे दबानेवाले अंधकार, असत्य, अज्ञान, दोष और कष्टको दूर भगा देगी। कारण : "दुःख भोगती और कराहती समस्त प्रकृति प्रतीक्षा कर रही है कि ईश्वरके पुत्र अपने-आपको कब प्रकट करेंगे।"

वास्तवमें यही वह केन्द्रीय विचार है जिसमें अन्य सभी विचारोंका सार आ जाता है। हमारे समस्त जीवनको आलोकित करनेवाले सूर्यकी भांति इस विचारको हमारी स्मृतिमें सदा उपस्थित रहना चाहिये।

इसीलिये मैं आज इसकी याद दिला रही हूं। कारण, यदि हम इस विचारको एक अत्यन्त दुर्लभ रत्न, अत्यन्त बहुमूल्य संपदाके समान हृदयमें संजोकर अपने पथपर चलें, यदि हम इसे अपने अन्दर ज्योति प्रदान करने और रूपान्तर करनेका कार्य करने दें, तो हम जानेंगे कि यह प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक प्राणीके मर्ममें जीवन्त रूपसे विद्यमान है और इसीके अन्दर हमें समस्त विश्वके आश्चर्यमय एकत्वकी अनुभूति होगी।

और तब हमें बोध होगा कि हमारी तुच्छ तृप्तियां, हमारे मूर्खतापूर्ण वाद-विवाद, हमारे तुच्छ आवेग, हमारे अन्ध राग कितने व्यर्थ और बचकाने हैं! हम देखेंगे कि हमारी छोटी-छोटी दुर्बलताएं पिघलती जा रही हैं, हमारे सीमित व्यक्तित्वकी, हमारे निर्बोध अहंकारकी अंतिम मोर्चाबन्दी भूमिसात् हो रही है। हमें अनुभव होगा कि हम सच्ची आध्यात्मिकताकी महान् धारामें बहे जा रहे हैं, वह हमें हमारे सीमित ढांचोंसे, हमारी संकीर्ण सीमाओंसे बाहर लिये जा रही है।

व्यक्तिगत 'मैं' और विश्वगत 'मैं' दोनों एक हैं। प्रत्येक लोकमें, प्रत्येक सत्तामें, प्रत्येक वस्तुमें, प्रत्येक अणुमें भगवान् विराजमान हैं और उन्हें अभिव्यक्त करना ही मनुष्यके जीवनका लक्ष्य है।

इसके लिये मनुष्यको अपने अन्दरकी इस भागवत उपस्थितिके प्रति सचेतन होना होगा। कुछको तो इस चेतनाकी प्राप्तिके लिये नौसिखिया शिक्षार्थी बनना पड़ता है, क्योंकि उनकी अहंपूर्ण सत्ता अत्यधिक सर्वग्रासी, अचल-अटल और रूढ़िवादी होती है और उन्हें उसके साथ बड़ा लम्बा और कष्टकर संघर्ष करना पड़ता है। इसके विपरीत, कुछ दूसरे ऐसे होते हैं जो अधिक निर्वैयक्तिक, अधिक नमनीय तथा अधिक अध्यात्म-भावापन्न होते हैं। वे सहज ही अपनी सत्ताके अक्षय दिव्य स्रोतके साथ सम्बन्ध जोड़ लेते हैं। किन्तु यह न भूलना चाहिये कि उन्हें भी प्रति-दिन और निरंतर सामंजस्य और रूपान्तरकी विधिवत् साधना करनी होती है ताकि उनके अन्दरकी कोई भी चीज इस विशुद्ध प्रकाशकी चमकको फिरसे आच्छन्न न करे।

पर इस गभीर चेतनातक पहुंचनेसे दृष्टिकोण कितना बदल जाता है! ज्ञान कितना बढ़ जाता है, सद्भावना कितनी विस्तृत हो जाती है!

इस विषयमें एक ज्ञानीने कहा है: "मैं चाहता हूं कि हममेंसे प्रत्येक इस अवस्थातक पहुंचे कि हम अधमसे अधम मनुष्यमें भी अन्तरस्थ भग-वान्को देख सकें और उसका तिरस्कार करनेके बदले उससे कहें, 'उठ, हे ज्योतिर्मय पुरुष! तू चिर पवित्र है, तू न जन्म जानता है न मृत्यु। उठ, हे सर्वशक्तिमान्! और अपना स्वभाव प्रकट कर।'"

आओ, हम इस सुन्दर वचनके अनुसार कार्य करें और तब हम देखेंगे कि हमारे चारों ओर सब कुछ मानों किसी चमत्कारके द्वारा रूपान्तरित हो रहा है।

यही भाव है सच्चे, सचेतन और स्पष्टदर्शी प्रेमका, उस प्रेमका जो बाह्य रूपोंके परे देखना जानता है, शब्दोंके बावजूद समझना जानता है, उस प्रेमका जो सब विघ्न-बाधाओंके बीच भी अन्तरकी गहराइयोंसे निरन्तर संपर्क बनाये रहता है।

भला क्या मूल्य है हमारे आवेगों और हमारी कामनाओंका, हमारी वेदनाओं और उग्रताओंका, हमारे दुःखों और संघर्षोंका, हमारे गहरे आन्तरिक उतार-चढ़ावका जिन्हें हमारी अव्यवस्थित कल्पना अतिरंजित नाटकीय रूप दे देती है? क्या मूल्य है इनका उस महान्, उदात्त दिव्य प्रेमके सामने जो हमारी सत्ताकी अन्तरतम गहराईसे हमारे ऊपर झुका रहता है, हमारी दुर्बलताएं सहन करता है, हमारी भूलें सुधारता है, हमारे घाव भरता है, हमारी संपूर्ण सत्ताको अपनी नवजीवनदायिनी धारासे भिगो देता है?

कारण, अन्तःस्थित भगवान् कभी दबाव नहीं डालते, न कोई दावा करते हैं और न भय दिखाते हैं। वह तो निजको उत्सर्ग करते हैं, अपने-आपको देते हैं, वह सकल प्राणियों और सकल वस्तुओंके अन्दर छिपे हुए अपने-आपको भूले रहते हैं। वह किसीको दोष नहीं देते, किसीके गुण-दोषका विवेचन नहीं करते, किसीको अभिशाप नहीं देते, किसीको दण्डित नहीं करते। बल्कि बिना दबाव डाले, बिना बुरा-भला कहे निरन्तर सुधारनेमें, बिना धैर्य खोये उत्साह प्रदान करनेमें और प्रत्येकको उसकी ग्रहणशक्तिके अनुसार सभी संपदाओंसे समृद्ध कर देनेमें लगे रहते हैं। भगवान् मां हैं, उनका प्रेम जीवन देता है, पोषण करता है, देखभाल और रक्षा करता है, परामर्श और सांत्वना देता है। मां सब समझती हैं, अतः सबको सहारा देती हैं, किसीका दोष नहीं पकड़े रखतीं, सबको क्षमा करती हैं, सबके लिये आशा रखती हैं, सबको तैयार करती हैं। वह सब कुछ अपने अंदर धारण किये हुए हैं, अतः उनके पास ऐसा कुछ नहीं जो सबका न हो। वह सबपर राज्य करती हैं, अतः सबकी सेवक हैं: इसी नाते वे सब छोटे-बड़े, जो उनके साथ राजा और उनके अंदर देवता बनना चाहते हैं, उन्हींकी भांति अपने भाइयोंके सेवक बनते हैं, स्वेच्छाचारी शासक नहीं।

कितनी सुन्दर है सेवककी यह विनम्र भूमिका! यह भूमिका है उन सबकी जो सबके अंदर विराजमान भगवान्‌को, सब वस्तुओंको जीवन देनेवाले भागवत प्रेमको प्रकट करते हैं, उनकी घोषणा करते हैं।...

और जबतक हम उनके उदाहरणका अनुसरण नहीं कर पाते, उनकी भांति सच्चे सेवक नहीं बन पाते, तबतक यही प्रयास करें कि भागवत प्रेम हमारे अंदर प्रवेश करे और हमें रूपांतरित करे, हम निःशेष भावसे उसे यह अद्भुत यंत्र, अपना भौतिक शरीर, अर्पित करें। वह इसे कर्मके प्रत्येक स्तरपर अधिक-से-अधिक कार्य करने योग्य बना देगा।

इस पूर्ण आत्मोत्सर्गतक पहुंचनेके लिये सभी उपाय ठीक हैं, प्रत्येक पद्धति अपना-अपना मूल्य रखती है। पर जो चीज़ बिलकुल अनिवार्य है वह है लक्ष्य-सिद्धिके संबंधमें अध्यवसायके साथ लगे रहना। क्योंकि तब हम जो कुछ अध्ययन करते हैं, जो कुछ करते हैं, जिन मनुष्योंसे हम मिलते हैं, उन सबसे इस मार्गपर चलनेके लिये कुछ संकेत, कुछ सहायता, कुछ प्रकाश मिलता है।

अपनी बात पूरी करनेसे पहले कुछ पृष्ठ उन लोगोंके लिये जोड़ देना चाहती हूं जो बाहरसे निष्फल दीखनेवाले अनेक प्रयत्न कर चुके हैं, जो इस मार्गमें आनेवाले फंदोंसे परिचित हो चुके हैं, जो अपनी दुर्बलताको माप चुके हैं, जो विश्वास और साहस खो देनेके संकटमें पड़े हैं। आर्त्त जनोंमें पुनः आशाका संचार करनेके लिये ये पृष्ठ एक साधकने उस समय लिखे थे जब कि सब प्रकारकी अग्नि-परीक्षाओंकी पावनकारी लपटें उसके ऊपर टूटी पड़ती थीं।

★

तुम जो थके हुए, आहत, क्षत-विक्षत हो, तुम जो गिर पड़े हो, शायद हार मान बैठे हो, एक मित्रकी बात सुनो। वह तुम्हारे दुःख जानता है, वह उन्हें भोग चुका है, वह तुम्हारी ही तरह पृथ्वीपर दुःख-ताप झेल चुका है, तुम्हारी ही तरह दिनका बोझ उठाये कितने रेगिस्तान पार कर चुका है। भूख और प्यास क्या है वह जानता है, निर्जनता और परित्यक्त अवस्थाको पहचानता है, और सबसे अधिक क्रूर वस्तु हृदयकी रिक्तताको भी जानता है। आह! उसने संशयकी घड़ियां भी जानी हैं, वह कितनी भूलों, त्रुटियों, हिचकिचाहटों और सब प्रकारकी दुर्बलताओंके बीचसे गुजर चुका है।

पर वह तुमसे कहता है: साहस रखो! उस पाठको ध्यानसे सुनो जो उदीयमान सूर्य हर सुबह अपनी प्रथम किरणोंके साथ पृथ्वीके लिये लाता है। यह आशाका पाठ है, सांत्वनाका संदेश है।

तुम जो रोते हो, कष्ट पाते हो, भयसे कांपते हो, तुम जिनमें यह जाननेका साहस नहीं कि तुम्हारे दुःखोंकी अवधि कितनी है, और तुम्हारे

दुःखका क्या परिणाम है, देखो, ऐसी कोई रात नहीं जिसके बाद प्रभात न आये। जब अंधकार घना हो जाता है तभी ऊषा तैयार रहती है। ऐसा कोई कुहासा नहीं जिसे सूर्य दूर न कर सके, ऐसी कोई बदली नहीं जिसे वह स्वर्णिम न कर दे, ऐसा कोई आंसू नहीं जिसे एक दिन वह सुखा न दे, ऐसा कोई तूफान नहीं जिसके बाद उसका विजय-धनु चमक न उठे, ऐसा कोई हिम नहीं जिसे वह पिघला न दे, ऐसा कोई शीत नहीं जिसे वह रंगीन वसंतमें न बदल दे।

और इसी प्रकार तुम्हारे लिये भी ऐसी कोई विपत्ति नहीं जो प्रतिदानमें अपने बराबर ऐश्वर्य न लाये, ऐसी कोई वेदना नहीं जो आनंदमें रूपांतरित न हो सके, ऐसी कोई पराजय नहीं जो विजयमें न बदल जाय, ऐसा कोई पतन नहीं जो उच्चतर उत्थानमें परिणत न हो, ऐसी कोई निर्जनता नहीं जो जीवनका नीड़ न बने, ऐसी कोई असंगति नहीं जो संगतिमें न बदल सके। कभी-कभी दो मनोंका मतभेद ही दो हृदयोंको मिलनेके लिये बाधित करता है। संक्षेपमें, ऐसी असीम कोई दुर्बलता नहीं जो शक्तिमें परिणत न हो सके। वरन् चरम दुर्बलताके अंदर ही सर्वशक्तिमान् भगवान प्रकट होना पसंद करते हैं।

सुनो, मेरे नन्हे बालक! तुम जो अपनेको इतना टूटा हुआ और पतित अनुभव करते हो, जिसके पास कुछ भी बाकी नहीं रहा, अपनी दरिद्रता ढकनेके लिये, अपने गर्वका पोषण करनेके लिये कुछ भी नहीं रहा, ऐसे तुम इतने महान् कभी नहीं थे! जो गहराईमें जागता है, वह शिखरके कितने समीप होता है! कारण, खाई जितनी अधिक गहरी होती है, उतनी ही अधिक ऊंचाई प्रकट होती है।

क्या तुम नहीं जानते कि विश्व-सृष्टिकी महत्तम शक्तियां अपने-आपको जड़त्वके गाढ़तम आवरणसे ढकना चाहती हैं? कितना भव्य है यह गठबंधन, एक ओर परम प्रेम, दूसरी ओर अत्यंत तमोग्रस्त मिट्टी, एक ओर अंधकारकी कामना, दूसरी ओर ऐश्वर्यशाली प्रकाश।

यदि अग्नि-परीक्षाओं या त्रुटियोंने तुम्हें पछाड़ दिया है, यदि तुम दुःखके अथाह गर्त्तमें डूब गये हो तो जरा भी शोक न करो, क्योंकि वहींपर तुम्हें मिलेगा भगवान्का स्नेह, उनका परम आशीष। तुम पावनकारी दुःखोंकी अग्निमें तप चुके हो, इसलिये अब तुम्हें गौरवमय शिखर मिलेंगे।

तुम बंजर बीहड़में हो: सुनो नीरवताकी वाणी। बाहरकी स्तुति और प्रशंसाका कलरव ही तुम्हारे कानोंको सुख देता रहा है; अब नीरवताकी वाणी तुम्हारी आत्माको सुख देगी, तुम्हारे अंदर जाग्रत करेगी गहराइयोंकी प्रतिध्वनि, दिव्य स्वरसंगतियोंका नाद।

तुम गहन रात्रिमें चल रहे हो: अंधेरेकी अमूल्य संपदा संग्रह करते चलो। सूर्यका उज्ज्वल प्रकाश बुद्धिके मार्ग आलोकित कर देता है, किंतु रात्रिकी श्वेत प्रभामें पूर्णताके गुप्त पथ दृष्टिगोचर होते हैं, आध्यात्मिक संपदाओंका रहस्य खुलता है।

तुम नग्नता और अभावके मार्गपर हो: यह प्रचुरताका मार्ग है। जब तुम्हारे पास कुछ न बचेगा तो तुम्हें सब कुछ दिया जायगा। क्योंकि जो सच्चे और सीधे हैं उनके लिये बुरे-से-बुरेमेंसे सदा भले-से-भला निकल आता है।

जमीनमें बोया हुआ एक दाना हजारों दाने पैदा करता है। दु:खके पंखोंका प्रत्येक स्पंदन गौरवकी ओर ले जानेवाली उड़ान बन सकता है।

और जब शत्रु मनुष्यपर क्रुद्ध हो टूट पड़ता है, तो वह उसके नाशके लिये जो कुछ करता है, वही उसे महान् बनाता है।

नाना लोकोंकी कहानी ध्यानसे सुनो ! देखो, प्रचण्ड शत्रु विजयी होता दिखायी देता है। वह प्रकाशके जीवोंको रात्रिके अन्धकारमें फेंकता है और रात्रि तारोंसे भर जाती है। वह विश्वकी गतिविधिके विरुद्ध घोर युद्ध ठान देता है, आदि-मण्डलके साम्राज्यकी अखण्डतापर आक्रमण करता है, उसकी समस्वरताको तोड़-फोड़ देता है, उसका विभाजन करता और छोटे-छोटे टुकड़े कर डालता है, उसकी धूलको अनन्तकी चारों हवाओंमें बिखेर देता है। और लो देखो ! वही धूल सुनहले बीजोंमें परिणत हो जाती है, अनन्त को उर्वर बनाती है और उसे नाना भुवनोंसे भर देती है; ये भुवन अब अपने शाश्वत केन्द्रके चारों ओर विशालतर व्योम-मण्डलमें घूमते रहेंगे। इस प्रकार विभाजन ही एक अधिक समृद्ध और अधिक गभीर एकत्व लाता है और भौतिक जगत्के धरातलोंको बढ़ाता हुआ उसी साम्राज्यको विस्तृत कर देता है जिसे वह नष्ट करने चला था।

नि:संदेह असीमके वक्षस्थलपर झूलते आदि-मण्डलका गान सुन्दर था। पर उससे भी कितना अधिक सुन्दर और विजयोल्लासपूर्ण है ग्रह-नक्षत्रोंका समवेत राग, भुवनोंकी संगीत-लहरी, उनकी विराट् सहगान-ध्वनि जो आकाशमें विजयका शाश्वत संगीत गुंजायमान कर रही है!

और सुनो, जिस मुहूर्त मनुष्य पृथ्वीपर अपने भागवत उद्गमसे अलग हो गया था उससे अधिक संकटापन्न स्थिति नहीं हो सकती। उसके ऊपर फैली हुई थी उसपर बलपूर्वक अधिकार जमानेवाले शत्रुकी राज्य-सीमा, और क्षितिजके द्वारपर भड़कती तलवारें लिये खड़े थे कारा-प्रहरी। उस समय मनुष्य जीवनके आदि-स्रोततक न चढ़ सकता था, अत: वह स्रोत ही उसके भीतर फूट निकला; वह ऊपरसे प्रकाश नहीं ग्रहण कर सकता था, अत: वह

प्रकाश उसके अन्तःस्तलमें ही जगमगा उठा; वह परात्पर प्रेमके साथ संबंध रखनेमें असमर्थ हो गया था, अतः उस प्रेम ही ने अपनी आहुति दी, अपने-आपको अर्पित कर डाला, प्रत्येक पार्थिव प्राणी, प्रत्येक मानवीय अहंको अपना निवासस्थान, अपना मन्दिर बना लिया।

इसी तरह, इस तिरस्कृत पर उर्वर, परित्यक्त पर धन्य जड़-तत्त्वके प्रत्येक परमाणुके अन्दर दिव्य भाव विद्यमान है, प्रत्येक जीवमें भगवान्-का निवास है। और यदि सारे विश्वमें मनुष्य जैसा दुर्बल और कोई नहीं है तो उस जैसा दिव्य भी नहीं है।

सच है, सच है, मानमर्दनमें ही महिमाका पालना है।

२८ अप्रैल, १९१२

भाग २

सभाएं

१९१२ में अन्वेषकोंका एक दल नियमित रूपसे मिलता रहा। उनका उद्देश्य था आत्म-ज्ञान और आत्म-प्रभुत्व प्राप्त करना।

हर बैठकके अन्तमें एक सामान्य प्रश्न रखा जाता था और प्रत्येक सदस्यको व्यक्तिगत रूपसे उसका उत्तर देना होता था। अगली बारकी सभामें ये उत्तर पढ़े जाते थे। फिर अन्तमें एक छोटा-सा लेख पढ़ा जाता था। यह रहे वे लेख।

७ मई, १९१२

इस समय करने लायक सबसे उपयोगी काम कौन-सा है।

जिस सामान्य लक्ष्यको हमें प्राप्त करना है वह है प्रगतिशील विश्वव्यापी सामंजस्यका आविर्भाव।

पृथ्वीके संबंधमें इस उद्देश्यको सिद्ध करनेका उपाय है अंतरमें स्थित एकमेवाद्वितीय देवत्वको सबके अंदर जाग्रत करके तथा सबके द्वारा अभिव्यक्त करके मानव एकता प्राप्त करना।

दूसरे शब्दोंमें, हम सबके अंदर विद्यमान ईश्वरीय साम्राज्यको स्थापित करके एकताकी सृष्टि करना।

अतएव सबसे अधिक उपयोगी करने योग्य कार्य यह है :

(१) व्यक्तिगत रूपसे प्रत्येक मनुष्यके लिये, स्वयं अपने अंदर भागवत उपस्थितिके विषयमें सचेतन होना तथा उसके साथ अपना तादात्म्य स्थापित करना।

(२) सत्ताकी उन स्थितियोंको एक विशिष्ट रूप प्रदान करना जो अभीतक मनुष्यके अंदर कभी जाग्रत नहीं हुईं तथा, उसके द्वारा, विश्व-शक्तिके अभीतक बंद पड़े हुए एक या अनेक स्रोतोंके साथ पृथ्वीका संपर्क करा देना।

(३) संसारको, उसकी वर्तमान मनोवृत्तिसे मेल खानेवाले नये रूपमें, शाश्वत वाणी फिरसे सुनाना।

उसमें समस्त मानवीय ज्ञानका समन्वय होगा।

(४) सामूहिक रूपसे, किसी अनुकूल स्थानसे एक आदर्श समाजकी स्थापना करना जिसमें एक नवीन जाति, भगवान्‌के पुत्रोंकी जाति विकसित हो सके।

*
**

दो प्रक्रियाओंके द्वारा पार्थिव जीवनको रूपांतरित और सामंजस्यपूर्ण बनाया जा सकता है और इन दोनों प्रक्रियाओंको, यद्यपि ये ऊपरसे परस्पर-विरोधी दिखायी देंगी, एक साथ मिल जाना होगा, — इन्हें एक-दूसरेपर कार्य करना होगा और एक-दूसरेको पूर्ण बनाना होगा :

(१) व्यक्तिगत रूपांतर, अर्थात्, एक आंतरिक विकास जिसके द्वारा भागवत उपस्थितिके साथ एकत्व प्राप्त हो जाय।

(२) सामाजिक रूपांतर, अर्थात्, अपने चारों ओर एक ऐसी सामाजिक अवस्था उत्पन्न करना जो व्यक्तिके खिलने और बढ़नेके लिये अनुकूल हो।

चूंकि सामाजिक अवस्था व्यक्तिपर प्रतिक्रिया करती है और दूसरी ओर सामाजिक अवस्थाका मूल्य व्यक्तिपर निर्भर करता है, इसलिये ये दोनों काम साथ-साथ चलने चाहिये। परंतु यह कार्य केवल श्रम-विभाजनके द्वारा ही हो सकेगा और इसके लिये एक संघ बनानेकी आवश्यकता होगी जो — यदि संभव हो तो — क्रम-सोपानके अनुसार होगा।

संघके सदस्योंका कार्य त्रिविध होगा :

(१) जिस आदर्शको प्राप्त करना है उसे स्वयं अपने अंदर सिद्ध करना। अचिंत्य परम तत्त्वकी समस्त स्थितियों, धर्मों और गुणोंकी प्रथम अभिव्यक्तिका सर्वांगपूर्ण पार्थिव प्रतिनिधि बनना।

(२) इस आदर्शका शब्दोंके द्वारा, बल्कि, सबसे बढ़कर अपने उदाहरण-द्वारा प्रचार करना ताकि जो लोग अपना समय आनेपर इसे सिद्ध करने तथा साथ ही मुक्तिका संदेशवाहक बननेके लिये तयार हों, उन्हें खोज निकाला जाय।

(३) एक नमूनेका समाज स्थापित करना अथवा जो पहलेसे मौजूद हों उनका पुनस्संगठन करना।

*
**

प्रत्येक व्यक्तिके करनेके लिये भी एक द्विविध कार्य है और उसके दोनों पहलुओंको एक साथ करना होगा तथा प्रत्येक पहलू दूसरेका सहायक और पूरक होगा :

(१) एक आंतरिक विकास, अर्थात्, भागवत ज्योतिके साथ बढ़ता हुआ एकत्व प्राप्त कर लेना — यही एकमात्र अवस्था है जिसमें मनुष्य विश्व-जीवनकी महान् धाराके साथ सर्वदा सामंजस्य बनाये रख सकता है।

(२) कोई बाह्य कार्य करना, जिसे प्रत्येक व्यक्तिको अपनी क्षमताओं और व्यक्तिगत अभिरुचियोंके अनुसार चुन लेना होगा। प्रत्येक व्यक्तिको इस विश्वकी संगीत गोष्ठीमें अपना निजी स्थान खोज निकालना होगा जिसे केवल वही ले सकता है, और फिर उसी स्थानकी पूर्तिमें अपने-आपको संपूर्ण रूपसे यह न भूलते हुए लगा देना होगा कि वह इस पार्थिव सुरसंगतिमें केवल एक स्वर ही बजा रहा है, फिर भी संपूर्ण संगीत-

के सामंजस्यके लिये उसका स्वर अनिवार्य है तथा उसका मूल्य इस बातपर निर्भर है कि वह कितना ठीक-ठीक बजता है।

१४ मई, १९१२

विश्वके कार्यमें मेरा क्या स्थान है?

हममेंसे प्रत्येक व्यक्तिको एक भूमिका निभानी है, एक कार्य करना है; प्रत्येकका एक अपना स्थान है जिसे केवल वही ले सकता है।

परंतु चूंकि यह कार्य हमारी सत्ताकी सबसे अधिक केंद्रीय गहराईकी बाह्य अभिव्यक्ति है, इसका निश्चित रूप हम तभी जान सकते हैं जब हम अपने अंदरकी इस गहराईके प्रति सचेतन हो जायं।

सच्चे परिवर्तनकी दशामें कभी-कभी ऐसा होता है। जिस क्षण रूपांतरकारी प्रकाश हमें दिखायी देता है और उसके प्रति निर्बाध रूपसे हम अपने-आपको अर्पित कर देते हैं, उसी समय अत्यंत अकस्मात्, किंतु बिलकुल स्पष्ट रूपसे हम यह भी जान जाते हैं कि हमें क्यों बनाया गया है और पृथ्वीपर हमारे अस्तित्वका क्या उद्देश्य है।

पर यह प्रकाश दुर्लभ है। यह हमारे अंदर प्रयत्नों और मनोभावोंकी पूरी शृंखलासे निर्धारित होता है। इन मनोभावोंको, इन आत्मिक अवस्थाओंको प्राप्त करने तथा बनाये रखनेके आवश्यक साधनोंमेंसे एक यह है कि हम प्रतिदिन अपने समयका कुछ भाग निःस्वार्थ कार्यमें लगायें। प्रतिदिन हम कोई-न-कोई ऐसा काम करें जो दूसरोंके लिये उपयोगी हो।

जबतक हमें यह नहीं मालूम हो जाता कि हमारे लिये कौन-सा विशेष कार्य नियत है हमें कोई ऐसा सामयिक कार्य ढूंढ लेना चाहिये जो हमारी वर्तमान क्षमताओं तथा सदिच्छाको श्रेष्ठतम रूपमें प्रकट कर सके।

तब हमें उस कार्यमें ईमानदारी और अध्यवसायके साथ लग जाना चाहिये, मनमें यह जानते हुए कि यह एक सामयिक अवस्था मात्र है और हमारे आदर्श तथा हमारी शक्तियोंके विकसित होनेपर हम निश्चय ही एक दिन स्पष्ट रूपमें देख पायेंगे कि हमें कौन-सा कार्य संपन्न करना है। हम जिस अनुपातमें प्रत्येक वस्तुपर अपने संबंधसे विचार करनेकी आदत छोड़ देंगे, पृथ्वी और मानवमात्रके प्रति जितने अधिक पूर्ण रूपमें और विशालतर प्रेम-

के साथ स्वयंको वैसा जानेंगे, उसी अनुपातमें देखेंगे कि हमारे क्षितिज विस्तृत होते जा रहे हैं, हमारे कर्तव्य बढ़ते जा रहे हैं और उनमें अधिक स्पष्टता आ रही है।

हमें यह भी पता चलेगा कि हमारा कार्य प्रगतिकी सामान्य रेखाका अनुसरण कर रहा है जो हमारे विशिष्ट स्वभावसे निर्धारित हुई है।

वास्तवमें, अपने विशिष्ट कार्यका निश्चित रूप जाननेसे पहले हम बारी-बारीसे जिन धन्धोंमें संलग्न होंगे उनकी दिशा, उनकी प्रकृति एक समान होगी, उनकी धारा भी एक समान होगी, जो हमारे स्वभाव और आंतरिक स्पंदनोंको सहज रूपसे व्यक्त करेगी।

इस प्रवृत्तिकी, इस दिशा-विशेषकी खोज भी स्वभावतः व्यक्तिगत रुचि तथा स्वाधीन निर्वाचनके द्वारा होनी चाहिये, इसमें किसी प्रकारके बाह्य दबाव या स्वार्थका प्रभाव न आये।

बहुधा इसलिये आलोचना की जाती है कि हम अपने लिये ऐसे कार्य चुनते हैं जो हमारे साधनोंके अनुपातमें नहीं होते। पर इसमें थोड़ी भूल है।

जो लोग स्वेच्छासे अपनी पसंदका कोई कार्य हाथमें लेते हैं उन्हें दिशा-भ्रम होता हो ऐसा मुझे नहीं लगता; यह कार्य स्वभावतः ही उनकी विशेष प्रवृत्तिकी अभिव्यक्ति होता है। परंतु भूल तब होती है जब वे इस कार्य-को समग्र रूपसे, कार्यकी गहराईकी दृष्टिसे भी और विशेषतः उसके बाहरी विस्तारकी दृष्टिसे भी एक ही बारमें सिद्ध कर लेना चाहते हैं। वे भूल जाते हैं कि कार्यके संबंधमें उनकी धारणा भी उतनी ही अपूर्ण है जितने वे स्वयं अपूर्ण हैं, और अतः बुद्धिमत्ता इसमें है कि वे जो कुछ करना चाहते हैं उसके ज्ञानके साथ-साथ वे उस समयके लिये अधिक उप-योगी यह ज्ञान भी प्राप्त करें कि वे क्या करनेमें समर्थ हैं।

इन दोनों चीजोंपर ध्यान रखनेसे वे समय और शक्तिका कम-से-कम अपव्यय करते हुए कार्य कर सकेंगे।

परंतु इतनी स्पष्ट दृष्टि और बुद्धिमत्तासे बहुत कम लोग काम लेते हैं— इस क्षेत्रमें जो व्यक्ति मार्ग ढूंढ रहा होता है वह प्रायः दो विरोधी भूलोंमेंसे एक-न-एकमें पड़ जाता है:—

एक भूल यह होती है कि वह अपनी इच्छाओंको वास्तविक सत्य समझने लगता है, अर्थात्, अपनी सामर्थ्यों और योग्यताके संबंधमें पहलेसे ही धारणा बना लेता है। वह सोचता है कि उस स्थान और दायित्वको वह उसी समय पूरा कर सकता है जब कि वास्तवमें उसका ठीकसे निर्वाह करनेके लिये वर्षोंके नियमित उद्योग और अध्यवसायकी आवश्यकता होती है।

या यह भूल होती है कि वह अपनी सुप्त शक्तियोंके बारेमें गलत धारणा [ब]ना लेता है और गभीर अभीप्साके होते हुए भी स्वेच्छासे किसी ऐसे धंधे-[मे]ं सीमित हो जाता है जो उसकी योग्यतासे बहुत नीची श्रेणीका होता है। यह काम उसके अंदरके प्रकाशको धीरे-धीरे बुझा देनेवाला होता है जब कि वह प्रकाश दूसरोंपर भी अपनी किरणें छिटका सकता था।

आरंभमें इन चट्टानोंके बीच अपना रास्ता बनाना और संतुलित तथा मध्यम मार्ग खोजना अवश्य ही कठिन प्रतीत होता है।

परंतु एक ऐसा अचूक दिग्दर्शक यंत्र है जिसके सहारे हम यह काम कर सकते हैं।

हम जो कुछ करें, अपने दिखावेके लिये न करें। जब हम यश और सम्मानकी, अपने समकालीनोंकी प्रशंसाकी इच्छा करने लगते हैं तब शीघ्र ही उनकी ओर झुकनेको बाध्य हो जाते हैं। जब हम आत्म-प्रशंसाके अव-सर ढूंढने लगते हैं तब सहज ही अपने-आपको वैसा मानने लगते हैं जैसे हम वास्तवमें हैं नहीं, और यह चीज हमारे अंदरके आदर्शको सबसे अधिक धुंधला बनानेवाली होती है।

"मैं बड़ा बनना चाहता हूं, बड़ा बननेके लिये कौन-सा कार्य अनुकूल होगा", यह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपमें कभी नहीं कहना चाहिये।

इसके विपरीत, हमें कहना चाहिये : "निश्चय ही कोई ऐसा कार्य है जिसे मैं औरोंकी अपेक्षा अधिक अच्छी तरह कर सकता हूं, क्योंकि यद्यपि भाग-वत शक्ति सबके अंदर सार रूपमें एक ही है तथापि हममेंसे प्रत्येक व्यक्ति उस शक्तिके एक-एक विशेष रूपकी अभिव्यक्ति है। वह कार्य कितना भी छोटा, कितना भी साधारण क्यों न हो, पर मुझे अपने-आपको उसीके लिये निवेदित करना है। उसे ढूंढ निकालनेके लिये मैं अपनी रुचियों, प्रवृत्तियों और पसंदोंका निरीक्षण और विश्लेषण करूंगा, फिर वही कार्य मैं करूंगा। उसे करनेमें मुझे न तो अभिमान होगा, न अति दीनताका भाव, और लोग उसके बारेमें क्या सोचते हैं, इसकी भी मुझे परवाह नहीं होगी। वह कार्य मैं ऐसे करता रहूंगा जैसे सांस लेता हूं, जिस भांति पुष्प सहजतासे, स्वभावसे सुरभि फैलाता है, क्योंकि मैं उसके अतिरिक्त कुछ कर ही नहीं सकता।"

जिस मुहूर्त हम अपने अंदरकी सारी अहमात्मक इच्छाओंको, सारे व्यक्ति-गत या स्वार्थमय उद्देश्योंको नष्ट करनेमें सफल हो जाते हैं — चाहे यह एक क्षणके लिये ही हो — उसी क्षण हम अपने-आपको इस आंतरिक सहजताके प्रति, इस गभीरतर प्रेरणाके प्रति अर्पित कर सकते हैं जिससे हम विश्वकी जीवंत तथा प्रगतिशील शक्तियोंके साथ संबंध स्थापित कर पायें।

ज्यों-ज्यों हम स्वयं पूर्ण होते जायेंगे त्यों-त्यों स्वभावतः हमारे कार्यकी धारणा भी, उसी अनुपातमें, पूर्णतर होती जायेगी। और इस पूर्णताको प्राप्त करनेके लिये हमें अपनी ओरसे कुछ उठा नहीं रखना चाहिये, किंतु हमारा कर्म सदा तथा अधिकाधिक आनंदपूर्ण और स्वतःस्फूर्त होना चाहिये, जैसे कि निर्मल स्रोतसे जल प्रवाहित होता है।

२१ मई, १९१२

निःस्वार्थ कार्यके प्रति आत्म-निवेदन करनेमें हममें सबसे बड़ी बाधा क्या है?

सर्वसाधारण दृष्टिसे देखा जाय तो जो कार्य करना है उसके वास्तविक हेतु और उसकी बाधामें फर्क नहीं मालूम होता। यह है स्थूल जड़ वस्तुकी वर्तमान त्रुटिपूर्ण अवस्था।

त्रुटिपूर्ण उपादानसे बने होनेके कारण हम भी त्रुटिमें साझेदार हुए बिना नहीं रह सकते।

हमारी गभीरतर सत्ता चाहे कितनी ही पूर्ण, सचेतन और सज्ञान क्यों न हो, पर उसने एक स्थूल शरीरमें रूप धारण किया है, बस यही चीज उसकी अभिव्यक्तिकी विशुद्धतामें बाधाएं उत्पन्न कर देती है। किन्तु शरीर धारण करनेका उद्देश्य होता है इन बाधाओंपर विजय प्राप्त करना, जड़-पदार्थका रूपान्तर करना। अतएव, अपने अन्दर इन बाधाओं-को देखकर हमें न तो विस्मय होना चाहिये और न दुःख, क्योंकि इस पृथ्वीपर ऐसा कोई प्राणी नहीं है जिसे किसी कठिनाईका सामना न करना पड़े।

इस त्रुटिका कारण हमें दो दृष्टियोंसे दे दिखायी सकता है: एक व्यापक, दूसरी वैयक्तिक।

सामान्य दृष्टिकोणसे देखा जाय तो जड़ वस्तुकी अपूर्णताका कारण यह है कि जड़के द्वारा जो सूक्ष्म शक्तियां अभिव्यक्त होना चाहती हैं उनके प्रति उसमें ग्रहणशीलताका अभाव रहता है। ग्रहणशीलताके इस अभावके भी कई कारण हैं, पर यदि हम इनका विवेचन करने लगेंगे तो अपने मुख्य विषयसे बहुत दूर हट जायेंगे। इसके अतिरिक्त, मेरे विचारमें मूलत

सारी कठिनाइयोंकी उत्पत्ति होती है व्यक्तित्वके भ्रमसे — इस भ्रमसे कि कोई चीज सबसे पृथक् अस्तित्व रख सकती है।

विश्वको हम जिस रूपमें जानते हैं उसके अस्तित्वके लिये यह भ्रम अनिवार्य है या नहीं, इसकी खोजमें न पड़ते हुए मैं प्रश्नपर केवल पृथ्वी और मानवकी दृष्टिसे विचार करूंगी।

अहंका यह भ्रम कि वह सबसे पृथक् है, हमारे अंदर दो प्रवृत्तियोंका संचार करता है।

पहली प्रवृत्ति सबके साथ एकत्व स्थापित करनेकी अचेतन आवश्यकतासे उत्पन्न होती है। किन्तु व्यक्तित्वके भ्रमके कारण हर एक इस एकत्वका अर्थ लगाता है सबको आत्मसात् कर लेना और कम या अधिक रूपमें सबका केन्द्र बन जाना। फल यह होता है कि जो कुछ भी उसकी चेतनामें आता है उसे प्रत्येक व्यक्ति अपनी बौद्धिक और शारीरिक शक्तिके अनुसार अपनी ओर खींचना चाहता है ताकि वह अपने व्यक्तित्वकी सदैव वृद्धि करता चले।

यह समग्रके प्रति सचेतन होनेकी, सार रूपमें उचित कामनाका परिणाम है, किन्तु वह अज्ञानका आधार लेकर प्रकट होती है। कारण, समग्रके प्रति सचेतन होनेका यदि कोई उपाय है तो निश्चय ही वह उपाय समग्रको अपनी ओर खींचनेका नहीं है। ऐसा करना तो मूर्खतापूर्ण और निष्फल होगा। इसका उपाय है इससे बिलकुल विपरीत मनोभाव और क्रियाको अपनाना। वह है समग्रकी चेतनाके साथ अपनी चेतनाको एक कर देना।

दूसरी प्रवृत्ति पहलीका स्वाभाविक परिणाम है। वह है वर्तमान अवस्थाको बनाये रखनेकी अत्यधिक प्रबल भावना, बौद्धिक, नैतिक और शारीरिक — समस्त प्रकृतिकी अपरिवर्तनशीलता। यह विश्व-विकासके साथ-साथ चलनेके लिये हमें जितनी तेजीसे रूपान्तरित होना चाहिये उसे असंभव कर देती है।

कहा जा सकता है कि व्यक्तिको यह भय होता है कि यदि वह सबके साथ अधिक और मुक्त मेल-मिलाप रखेगा तो दूसरोंसे पर्याप्त रूपमें पृथक् नहीं रह पायगा।

इसके अतिरिक्त, यह अपरिवर्तनशीलता उत्पन्न होती है संग्रह करनेकी इच्छासे और उस भूलसे जिसके कारण हम यह समझने लगते हैं कि हम संसारमें किसी भी वस्तुके स्वामी हो सकते हैं। हमें ऐसा लगने लगता है कि हम जिन तत्त्वोंसे बने हैं उनपर हमारा जन्मसे अधिकार है, सचेतन या अचेतन रूपमें हम उन्हें अपने लिये सुरक्षित रखना चाहते हैं, साथ ही उनकी वृद्धिके लिये हम अन्य तत्त्वोंको भी अपनी ओर खींचनेको तत्पर

रहते हैं। किन्तु हम भूल जाते हैं कि कोई वास्तविक पृथक्त्व ही नहीं है। वास्तवमें हम न कुछ देते हैं, न पाते हैं।

हमें श्रृंखलाकी एक कड़ी मात्र होना है। अपनी पड़ोसी कड़ियोंको हानि पहुंचाकर वह फूलेगी नहीं। परन्तु उसमें जो शक्ति-तरंग आयी है उसे वह निष्ठासे औरोंमें संचारित करेगी तो उसे अन्य शक्ति-तरंग प्राप्त होगी। और यह कड़ी जितनी अधिक पूर्णता और द्रुततासे इन तरंगोंको संचारित करती जायगी उसका सम्बन्ध उन अनेक शक्तियों या वस्तुओंसे उतना ही अधिक निकट होगा जिन्हें उसे उपयोगमें लाना या अभिव्यक्त करना है। इस प्रकार, कुछ न लेते हुए, अपने लिये कुछ न रखते हुए, वह धीरे-धीरे समग्रके साथ सायुज्यसे प्रत्येक वस्तुका ज्ञान प्राप्त कर लेगी।

इस बातके विरुद्ध जिन आपत्तियोंकी मैं कल्पना कर सकती हूं उनके लिये मैं यह कहना चाहूंगी :

जब मैं व्यक्तित्वके भ्रमकी बात कहती हूं तो मैं यह अस्वीकार नहीं करती कि प्रत्येककी अभिव्यक्तिका ढंग भिन्न-भिन्न होता है। परन्तु विभिन्नता-का अर्थ विभाजन नहीं है।

यदि प्रत्येकका अपना-अपना कार्य न होता तो श्रृंखलामें इन अनगिनत कड़ियोंका प्रयोजन ही क्या था?

यहां पहली तुलना पूरी करनेके लिये एक और तुलनाकी आवश्यकता पड़ेगी, क्योंकि प्रत्येक तुलनाका अपूर्ण होना अनिवार्य है।

यदि हम अपने-आपको एक विशाल जीवन्त शरीरके कोषाणु मान लें तो तत्काल समझ जायंगे कि जो कोषाणु अपने जीवनके लिये औरोंके जीवन-पर निर्भर है और औरोंसे विच्छिन्न होनेमें जिसके नाशका भय है, उसकी भी समष्टिमें अपनी विशेष भूमिका जरूर होती है।

और यह भूमिका ठीक वही है जो हमारी सत्ताकी गहराईसे स्वतः स्फूर्त होती है। इसे खोजनेके लिये हमें अहंकारके साथ अपना व्यक्तित्व प्रकट करनेकी आवश्यकता नहीं होती। इसके विपरीत, हम अपने-आपको निर्वैयक्तिक कार्यमें जितना अधिक लगायेंगे, यह भूमिका उतनी ही अधिक सुदृढ़ और सुस्पष्ट हो जायगी। ठीक यही भूमिका हमारे सच्चे व्यक्तित्व-का निर्माण करती है, क्योंकि भागवत तत्त्वको, जो सब व्यक्तियों और सब वस्तुओंमें एक है, अभिव्यक्त करनेका हमारा विशेष ढंग यही है।

२८ मई, १९१२

यह कौन-सी मनोवैज्ञानिक कठिनाई है जिसका सबसे अच्छा अध्ययन अनुभवद्वारा किया जा सकता है?

हममें प्रत्येकके अन्दर एक कठिनाई अन्य सब कठिनाइयोंसे अधिक केन्द्रीय होती है। यह संसारमें हमारी भूमिकाओंके सम्बन्धमें आती है, मानों उस प्रकाशकी छाया हो; जैसे-जैसे वह प्रकाश अधिक तेज, उज्ज्वल और प्रबल होता जायगा और सारी सत्ताको अधिकृत करेगा, यह छाया क्रमशः क्षीण तथा विलीन होती जायगी।

प्रत्येक व्यक्तिकी एक विशेष कठिनाई होती है जिसपर उसे सारे ध्यान और उद्योगको केन्द्रित करनेकी आवश्यकता होती है, क्योंकि यदि हम अपना निरीक्षण करना जानें तो देखेंगे कि इसी कठिनाईमेंसे ही वे सब कठिनाइयां निकलती हैं जो हमारा रास्ता रोककर खड़ी हो सकती हैं।

आज शाम मैं इसी प्रकारकी कठिनाईके विषयमें कुछ कहना चाहती हूं।

एक प्रकारकी अतिरिक्त संवेदनशीलता होती है जो बाहर कम प्रकट होती है और इस कारण अधिक क्रियाशील रहती है। यह वस्तु हृदयकी भावना या प्राणके आवेगोंकी श्रेणीकी होती है।

इस संवेदनशीलताका कारण एक अति-स्नायविक तत्त्व होता है, यह तत्त्व बौद्धिकतासे रंजित रहता है, किन्तु जितना बौद्धिक होता है, उसी अनुपातमें काफी आध्यात्मिक नहीं होता।

यह विकास-क्रमकी वह अवस्था होती है जिसमें व्यक्ति अपने प्रति सचेतन हो जाता है और इस नाते आत्म-समर्पणके लिये तैयार हो जाता है; परंतु साथ ही व्यक्तित्व और बौद्धिकताके विकासके कारण प्रत्येक वस्तुको अपने संबंधमें रखकर देखनेकी आदत बना लेता है और फलस्वरूप व्यक्तित्वके भ्रमको उसकी चरम सीमातक प्रश्रय भी देता है।

कभी-कभी उसके लिये यह कल्पना करना अत्यंत कठिन हो जाता है कि वह कर्म नहीं कर रहा, अनुभव नहीं कर रहा तथा सोच नहीं रहा। इस कारण उसमें सहजता नहीं रहती, यह अवस्था कपटसे बहुत भिन्न नहीं है।

सत्ता इस उत्कट संवेदनशीलतामें रस लेती है, वह एक ऐसा नाजुक यंत्र बन जाती है जो छोटे-से-छोटे स्पंदनके प्रति भी आश्चर्यजनक रूपसे सचेत रहता है। इसका फल यह होता है कि अपने-आपको बाहर करने,

अपने-आपको भूलनेके स्थानपर, वह अपनी ही ओर अभिमुख हो उठता है, अपना निरीक्षण तथा विश्लेषण करने लगता है, प्रायः अपने-आपको ही ध्यानका विषय बना लेता है।

इस प्रकार साथी हुई भावुक संवेदनशीलता बढ़ती जाती है, उत्तरोत्तर सूक्ष्म और परिष्कृत होती जाती है। और चूंकि जीवनमें कष्टके अवसर हर्षके अवसरोंकी अपेक्षा अधिक आते हैं, भावकी इन सूक्ष्म गतिविधियोंका अनुभव तथा अध्ययन करनेकी आवश्यकता व्यक्तिके अंदर दुःखके प्रति एक झुकाव, एक रुचि उत्पन्न कर देती है। यह वास्तवमें एक सूक्ष्म विकृति है और दुःखके द्वारा अपनी आत्माकी खोजके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यह अहंका एक परिष्कृत, किंतु अत्यंत हानिकारक रूप है।

दुःखकी इस प्रवृत्तिके व्यावहारिक परिणाम बिलकुल ही सांघातिक हो जाते हैं जब उसके साथ यह अंतःस्फूर्त, पर अस्पष्ट अनुभव भी सम्मिलित हो जाता है कि तुम्हारा काम, तुम्हारे जीवनका अर्थ ही दूसरोंके कष्ट अपनी ओर खींचना तथा अपने ऊपर ले लेना है, ताकि तुम उन्हें सुसामंजस्यमें परिवर्तित कर सको।

एक ओर तो वास्तवमें, तुम्हारा यह ज्ञान ही अधकचरा है, क्योंकि तुम यह नहीं जानते कि दूसरोंको सांत्वना देनेका, संसारका थोड़ा-सा भी दुःख दूर करनेका केवल एक उपाय है। वह यह कि किसी भी भावुकताको, चाहे वह कितनी ही कष्टप्रद क्यों न हो, अपने अन्दर दुःख न पैदा करने दो, अपनी शान्ति और धीरता भंग न करने दो। दूसरी ओर, यह विचार कि हमें कुछ काम करना है, व्यक्तित्वके भ्रममें पड़कर मिथ्या हो जाता है। सही धारणा यह नहीं है कि तुम अपने ऊपर सारे कष्ट खींच लो, और यह है भी असंभव। वरन् ठीक यह है कि अन्य जनोंके समस्त कष्ट-के साथ एकात्म हो जाओ जिससे तुम उस कष्ट और उन व्यक्तियोंके अंदर प्रेम और प्रकाशके बीज बन सको। इस बीजसे उपजेंगे गभीर समझ, आशा, विश्वास तथा शान्ति।

जबतक यह बात भली-भांति समझमें नहीं आ जाती, आत्म-बलिकी रुचि व्यक्तिमें बनी रहती है। और जब-जब व्यक्तिको ऐसा अवसर मिलता है — आत्म-बलिकी कामनाके कारण वह इस विषयकी ओरसे अनासक्त तो है नहीं — यह इच्छा भाव-प्रवण हो जाती है, बुद्धिकी बात नहीं सुनती और मूर्खतापूर्ण गलतियोंका कारण बन जाती है, यहांतक कि कभी-कभी तो विनाशकारी परिणाम भी पैदा कर देती है। कार्य करनेसे पहले यदि तुम्हें सोचनेका अभ्यास है तो भी तुम्हारा सोचना अनिवार्य रूपसे पक्ष-पातपूर्ण होगा, क्योंकि दुःखके लिये तुम्हें जो अनुराग है, कष्टपूर्ण आत्म-

बलिके लिये अवसर प्राप्त करनेकी जो कामना है, उससे तुम्हारा सोच-विचार विकृत हो जायगा।

इस प्रकार सचेतन रूपसे हो या न हो, तुम्हारा आत्म-त्याग दूसरोंके हितके लिये न होकर तुम्हें त्यागमें जो रस मिलता है उसके लिये होता है। यह व्यर्थ होता है, इससे किसीको लाभ नहीं होता।

कोई कार्य तभी अच्छा समझा जा सकता है और हाथमें लिया जाना चाहिये जब हम उसके तात्कालिक, और संभव हो तो दूरके परिणाम भी जान लें और हमें यह प्रतीत हो कि अन्तमें ये परिणाम पृथ्वीकी भलाईमें, भले ही चाहे कितने थोड़े परिणाममें हो, वृद्धि करेंगे। परन्तु इस बातका स्वस्थ भावसे निर्णय करनेके लिये यह आवश्यक है कि उसमें किसी प्रकारकी व्यक्तिगत रुचि या अरुचिकी बाधा न पड़े — इसका अर्थ है अनासक्ति।

वह अनासक्ति नहीं जो अनुभव करनेकी शक्ति ही नष्ट कर दे, वरन् वह जिससे दुःख भोगनेकी प्रवृत्तिका उन्मूलन हो जाय।

स्पष्ट ही, इस समय मैं उन व्यक्तियोंको गिनतीमें नहीं ले रही जो संवेदना-शून्य हैं, जो अभी दुःख सहने योग्य ही नहीं हुए हैं, जिन्हें कष्ट इस कारण नहीं होता कि वे जिस तत्त्वके बने हैं वह इतना अमार्जित, इतना स्थूल है कि वह अनुभव करनेके योग्य नहीं।

परन्तु जो व्यक्ति संवेदनशीलताकी यह ऊंची विकसित अवस्था प्राप्त कर चुके हैं, उनके विषयमें कहा जा सकता है कि उनकी कष्ट उठानेकी क्षमता उनकी अपूर्णता ही का बिलकुल सही माप है।

वास्तवमें, सत्ताके अन्दर सच्चे चैत्य जीवनका प्रकट होना ही है शान्ति, प्रफुल्ल प्रशान्ति।

तो, दुःख चाहे कैसा भी हो, हमारे लिये किसी दुर्बलताका यथार्थ चिह्न है, उस दुर्बलताका जिसका प्रतिकार समस्त आध्यात्मिक प्रयत्नोंद्वारा करना बाकी है।

दुःखके प्रति अपने इस आकर्षणको दूर करनेके लिये हमें दुःखोंके विविध कारणोंकी मूढ़ता और तुच्छ अहं-भावनाको समझना होगा।

आत्म-बलिदानकी इस प्रबल और हास्यास्पद कामनाका अस्तित्व अधिकांशतः स्वयं उसके अपने ही निमित्त होता है, यह कामना अपने किसी लाभकारी परिणामके लिये नहीं होती, इससे त्राण पानेके लिये हमें यह जान लेना चाहिये कि यदि हम संवेदनशीलताद्वारा समस्त मानवीय कष्टों-से संबंध रखना चाहते हैं तो हमें इतना सतर्क और विवेकशील रहना चाहिये कि जो दुःख स्पष्टदर्शियोंके समक्ष कोरी कल्पना है उन्हें हम विलीन कर सकें।

इस दृष्टिकोणसे मनुष्यकी सहायता करनेका केवल यही उपाय है कि उसके दुःखके प्रतिकारमें एक ऐसी अविचल और प्रफुल्ल प्रशान्ति उपस्थित की जाय जो निर्वैयक्तिक प्रेमकी उच्चतम मानवीय अभिव्यक्ति होगी।

और अन्तमें, अन्य क्षेत्रोंकी अपेक्षा इस क्षेत्रमें, जिसे अभी आपके सम्मुख रखा है, यह ध्यान रखना आवश्यक है कि सच्ची निर्वैयक्तिकता केवल काम करते समय अपने-आपको भूल जानेमें ही नहीं है, बल्कि यह भी भूल जानेमें है कि हम अपने-आपको भूल रहे हैं।

संक्षेपमें, सच्चे रूपमें निर्वैयक्तिक बननेके लिये हमें यह भी अनुभव नहीं होना चाहिये कि हम निर्वैयक्तिक हैं।

तभी कोई कार्य खुलकर सहज-भावमें, अपनी परिपूर्णतामें संपन्न हो सकता है।

४ जून, १९१२

हम अपने सम्मेलनोंको ज्यादा अच्छा कैसे बना सकते हैं?

कितनी ही समितियां बनती रहती हैं जो प्रायः देखते-ही-देखते समाप्त भी हो जाती हैं। इस विषयपर हमने एक दिन कहा था कि इनकी द्रुत मृत्युका कारण यह है कि इनके गठनमें कोई रूढ़िगत और अनियमित चीज आ जाती है।

वास्तवमें, इनका निर्माण एक ऐसे आदर्श रूपको सामने रखकर किया जाता है जो एक या अधिक मस्तिष्ककी उपज होता है, अथवा किसी ऐसे सूत्रके अनुसार किया जाता है जो सिद्धान्त-रूपमें तो अतिसुन्दर होता है, किन्तु उन व्यक्तियोंकी अवहेलना करता है जो अपनी कठिनाइयों और दुर्बलताओंके साथ संगठनके सजीव कोष बनते हैं।

मेरे विचारमें किसी व्यक्ति या समूहको मनमाना रूप देना असंभव है। उसका रूप उसे बनानेवाले तत्त्वोंके गुणोंकी पूरी-पूरी बाहरी अभिव्यक्तिसे बनता है।

गठनके इस मूल नियमकी अवहेलनाके कारण ही एक-पर-एक असंख्य संगठन बने रहते हैं और शीघ्र ही मृत्युको प्राप्त होते जाते हैं। क्योंकि वे ऐसे सजीव शरीर बननेके स्थानपर, जो स्वाभाविक वृद्धि, विकास और

उन्नतिके योग्य हों, केवल जड़-तत्त्वोंका सम्मिश्रण बन जाते हैं जिनमें उन्नतिकी जरा भी संभावना नहीं रहती।

हमने यह निश्चय किया था कि हम इस नियमको ध्यानमें रखेंगे और अपनी इस छोटी-सी गोष्ठीके जीवनकी अवस्थाओंको पहलेसे ही निर्धारित करनेसे बड़ी सावधानीके साथ बचेंगे। पर इस गोष्ठीका तो अभी जन्म ही नहीं हुआ है, यह अभी मुश्किलसे गर्भकी आरंभिक अवस्थामें है। हमें इसके जीवनको नियमित रूप देनेसे पहले इसे अपने-आप निर्मित होनेके लिये और शनैः-शनैः खिलनेके लिये छोड़ देना चाहिये।

अतः इस गोष्ठीको किसी पूर्व-निर्धारित योजनाके अनुसार, या हममेंसे किसी एक या दूसरेके या फिर सबोंके सम्मिलित आदर्शके अनुसार बनानेका यत्न करना विनाशकारी मालूम होता है। ऐसा करनेसे हमारी गोष्ठी मतवादोंपर खड़ी कृत्रिम रचनाओंके समान होगी। इन रचनाओंकी आयु उन संस्थाओंसे कम होती है जो अपने सदस्योंकी विभिन्न प्रवृत्तियोंको एकत्रित करती हुई सहज-भावसे विकसित होती हैं।

निश्चय ही हमारी समिति विकसनशील होनी चाहिये, लंबी आयुका आधार यही है। और यह तभी हो सकता है जब यह हममेंसे प्रत्येकको उन्नतिका अवसर प्रदान करे।

वास्तवमें यदि हम गभीर और सच्ची उन्नति चाहते हैं तो वस्तुतः यह हमारे ऊपर ही निर्भर है।

यदि हम अधिक ज्ञान, अधिक बुद्धिमानी प्राप्त करनेकी तीव्र अभीप्सा अपने साथ लायें तो यहां एक शान्त अन्तर्मुखी वातावरण बनेगा जिसे मैं धार्मिक वातावरणका नाम देना चाहूंगी, यह वातावरण हमारी पूर्णताकी साधनाके बहुत अनुकूल होगा।

कई बार आध्यात्मिक वातावरण शब्दोंके आदान-प्रदानकी अपेक्षा कहीं अधिक सहायता पहुंचाता है। सुन्दर-से-सुन्दर विचार भी हमारी उन्नतिमें तबतक सहायक नहीं हो सकते जबतक कि हममें उन्हें अधिक उच्च भावनाओं, अधिक यथार्थ संवेदनों तथा अधिक श्रेष्ठ कार्योंमें उतारनेका दृढ़ संकल्प न हो।

अतएव, हमारे संगठनके सुधारकी आवश्यक शर्त है हमारा अपना सुधार।

आओ, हम एक हों, अपनी चेतनाको अपने अन्दरके भागवत 'मैं'से एकात्म कर दें, तब हमारा संगठन ऐक्यबद्ध हो जायगा। हम अपनी बौद्धिक शक्तियोंको उज्ज्वल करें, आलोकित करें, तब हमारा संगठन ज्योतिको अभिव्यक्त करेगा। हम निर्वैयक्तिक प्रेमको अपनी सारी सत्तामें व्याप्त होने दें, तब हमारा संगठन प्रेम विकीर्ण करेगा। और हम अपने-आपमें

व्यवस्था स्थापित करें तो हमारा संगठन स्वतः व्यवस्थित हो जायगा; हमें उसके गठनमें मनमाना हस्तक्षेप करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

संक्षेपमें, इस पृथ्वीपर जिस समष्टिगत जीवनकी सृष्टि करनी है, हममेंसे प्रत्येक उसका एक-एक जीवन्त कोष बने। साथ ही हम यह भी न भूलें कि इस सामूहिक गठनके अस्तित्व और कार्यका मूल्य तथा विश्व-संगतिके कार्यमें उसकी उपयोगिता पूरी तरहसे उसके कोषोंके गुणोंपर निर्भर होगी।

११ जून, १९१२

अपने विचारोंका स्वामी कैसे बना जाय?

पहली शर्त: अवलोकनके द्वारा खोज करके यह जानें कि हमारी क्रियाएं हमारे विचारोंकी ठीक-ठीक अभिव्यक्ति होती हैं और जबतक हमें अपनी मानसिक क्रियाओंपर पूरा-पूरा अधिकार न हो तबतक यह विचार सब प्रकारके बाहरी प्रभावों (संवेदनों और सुझावों)के प्रतिबिम्ब या प्रतिक्रिया रूप ही होते हैं। इस तरह हम स्वयं अपने नहीं होते और जबतक अपने विचारोंपर स्वामित्व न पा लें किसी तरह भी अपने लिये उत्तरदायी नहीं होते।

दूसरी शर्त: अपनी मानसिक क्रियाओंके सार्थक निर्देशनके लिये निरन्तर दृढ़ संकल्प करें।

तीसरी शर्त: अपने विचारोंका अवलोकन करें ताकि हम उनसे परिचित हो जायं, उनकी अभ्यस्त धाराको जान सकें और उनकी ओर ध्यान दे सकें जिनका हमारी संवेदनशील और भाव-प्रधान प्रकृतिसे विशेष मेल है।

चौथी शर्त: अपने अन्दर उस भावको ढूंढें जो सबसे ऊंचा, सबसे उदात्त, सबसे अधिक निःस्वार्थ प्रतीत होता हो और जबतक इसके स्थानपर इससे अच्छा भाव न मिल जाय तबतक इसे वह धुरी बना लें जिसके चारों ओर मानसिक समन्वयकी रचना की जाय, इसे वह नियामक भाव बनाया जाय जिसके प्रकाशमें और सब विचारोंको देखा और जांचा जाय, यानी, स्वीकार या अस्वीकार किया जाय।

पांचवीं शर्त : एक नियमित और दैनिक अनुशासनके आधीन होना। इस विषयमें दी गयी सभी शिक्षाओंमेंसे उस विधिको चुन लेना जो सबसे बढ़-कर प्रभावशाली प्रतीत होती हो और फिर उसका ईमानदारीसे, कठोरतासे, शक्ति और अध्यवसायके साथ अनुसरण करना।

कुछ महत्त्वपूर्ण परामर्श

हमें आवश्यक मानसिक विश्राम लेना जानना चाहिये।

अपने-आपसे हम जितना कर सकते हैं उससे अधिककी मांग नहीं करनी चाहिये।

समयको भी उसका भाग दो। अपने उद्योगके फलकी प्रतीक्षा धीरज-से करना जानो।

अन्तमें, हम जो कुछ कर सकते हैं, उसकी जरा भी उपेक्षा किये बिना, अपने-आपको उस सर्वोच्च महान् शक्तिके ऊपर नन्हें बच्चेके विश्वासके साथ छोड़ देना सीखना चाहिये, उस भागवती शक्तिपर जो सब प्राणियों और सब चीजोंमें एक है।

१८ जून, १९१२

शब्दोंकी शक्ति

यह मुझे निरर्थक प्रतीत होता है कि मैं तुम्हारा ध्यान उन बहुत-से अनुपयोगी शब्दोंकी ओर खींचूं जो हम नित्य-प्रति उच्चारित करते रहते हैं। इस दोषको स्वीकार सभी लोग करते हैं, परंतु इसका उपाय कम लोग ही सोचते हैं।

इनके अतिरिक्त, और भी बहुत-से शब्द हैं जो हम अनुपयोगी तरीकेसे बरतते हैं। अथवा यूं कहिये कि दिनमें बहुत बार कोई शब्द बोलते हुए हमें एक लाभदायक भावनाको अभिव्यक्त करनेका अवसर मिलता है यदि हमें यह पता हो कि उन अवस्थाओंमें शब्दके पीछे क्या भाव रखना चाहिये।

परंतु कितनी ही बार हम अपने मिलनेवालोंके चारों ओर एक हितकारी

मानसिक वातावरण उत्पन्न करनेका ऐसा अवसर खो देते हैं। इस उपेक्षा-का प्रतिकार करना अत्यंत हितकर होगा।

इसके लिये हमें अपनी मानसिकताको उस अनिश्चित और निष्क्रिय भाव-में निवास करनेसे रोकना होगा, जिसमें वह अधिकतर लगी रहती है।

इस अर्धचेतन अवस्थासे उत्तरोत्तर स्वास्थ्य-लाभ करनेके लिये हमें अवश्य ही, किसी शब्दको उच्चारित करते हुए उसके यथार्थ भावपर एवं वास्तविक क्षेत्रपर विचार करना चाहिये। इससे हम उस शब्दको उसकी पूरी क्षमता प्रदान कर सकेंगे।

इस संबंधमें हम कह सकते हैं कि शब्दोंकी क्रिया-शक्ति तीन विभिन्न कारणोंपर निर्भर है।

पहले दो कारण तो स्वयं शब्दमें ही निहित होते हैं जिससे वह शक्तिका संचायक (शक्तिका संचय करनेवाला यंत्र) बन जाता है। तीसरा, शब्द प्रयुक्त करनेके समय उसके गंभीर भावको सर्वांगीण रूपमें अनुभव करना होता है।

स्वभावतः, यदि क्षमताके ये तीनों कारण इकट्ठे मौजूद होते हैं तो शब्द-की शक्ति बहुत अधिक बढ़ जाती है।

(१) कुछ ऐसे शब्द होते हैं जिनकी ध्वनि भौतिक जगत्में उनके भाव-के अपने निजी जगत्के सूक्ष्म स्पंदनका ठीक स्थूलीकृत पूर्ण स्पंदन होती है।

ध्वनि और भावके साम्यको थोड़ा और पाससे देखनेपर हमें कुछ ऐसे मूल शब्द मिलेंगे जो सर्वथा व्यापक विचारोंको अभिव्यक्त करते हैं और जो अधिकांश बोलनेकी भाषाओंमें लगभग एक ही अर्थमें प्रयुक्त होते हैं। (हमें भाषाके इस उद्गमको लिखित भाषाओंके उद्गमके साथ मिला नहीं देना चाहिये, क्योंकि इन भाषाओंका स्वरूप और है और ये कुछ दूसरी ही आवश्यकताओंको पूरा करती हैं)।

(२) कुछ और शब्द हैं जो शताब्दियोंसे विशेष परिस्थितियोंमें दोहराये जाते रहे हैं और जो उन सबकी मानसिक शक्तिसे, जो उनका उच्चारण कर रहे हैं, भरपूर हो गये हैं। ये शक्तिके सच्चे संचायक बन गये हैं।

(३) अंतमें, फिर वे शब्द हैं जो बोलनेके समय बोलनेवालेके जीवंत भावसे तत्काल एक महत्त्व प्राप्त कर लेते हैं।

मैं जो ऊपर कह चुकी हूं, उसके दृष्टांतके रूपमें मैं एक शब्द प्रस्तुत करती हूं। इसमें तीनों प्रकारके गुण मौजूद हैं और यह है संस्कृतका शब्द "ओ३म्"।

इसे भारतमें दिव्य उपस्थितिको अभिव्यक्त करनेके लिये प्रयुक्त किया गया है। यह व्यापक रूपमें ध्यान, चिंतन और योगाभ्याससे संबद्ध है।

जैसे "ओ३म्" शब्दकी ध्वनि शांति, सौम्यता और शाश्वतताके भावको जाग्रत् करती है वैसे अन्य कोई ध्वनि नहीं करती।

फिर इस शब्दमें, इसका प्रयोग करनेवालोंकी, इसके भाव-संबंधी, शताब्दियोंकी एकत्रभूत मानसिक भावनाएं पूरी तरहसे भर गयी हैं, विशेष-कर हिंदुओंके लिये तो भागवत सत्ताके साथ संबंध स्थापित करनेका यह एक पूरा शक्तिसंपन्न साधन है।

और क्योंकि पूर्वके लोग धार्मिक भाववाले होते हैं और उन्हें चिंतनका अभ्यास होता है, उनमें कम ही ऐसे हैं जो इसकी क्षमताके लिये आवश्यक विश्वासके बिना इसे उच्चारित करते हों।

चीनमें समान लाभ एक और शब्दसे प्राप्त किया जाता है जिसका अर्थ वही है और जिसकी ध्वनि भी "ओ३म्" शब्दसे मिलती-जुलती है। यह शब्द है "ताओ"।

हमारी पश्चिमी भाषाएं उतनी व्यंजनापूर्ण नहीं हैं, ये अपने वर्तमान स्वरूपमें उस मूल भाषासे, जिसने इन्हें जन्म दिया था, बहुत दूर हट गयी हैं। परंतु हम सदा ही अपने सजीव और सक्रिय भावकी शक्तिसे अपने शब्दको जीवंत बना सकते हैं।

इसके अतिरिक्त, कुछ ऐसे सूत्र हैं जिन्हें हम अपने वर्तमान चालू सूत्रों-में और जोड़ सकते हैं।

ये सूत्र कई प्राचीन गुह्यविद्याके संप्रदायोंमें बरते जाते थे। इनका अभिवादनके शब्दोंके रूपमें प्रयोग किया जाता था और उन लोगोंके मुंहमें, जो इनपर विचार करना जानते थे, ये विशेष प्रभावपूर्ण तथा फलोत्पादक हो जाते थे।

ऐसे शिष्योंको, जिन्हें नयी-नयी दीक्षा मिली होती थी और जिन्होंने मार्गपर अभी पहला पग ही रखा होता था, कहा जाता था: "तुम्हें समता-की शक्ति प्राप्त हो।"

उन्हें, जिन्होंने अपने अनवरत तथा विकसनशील हितभावको अपने आंतरिक और बाह्य मनोभावसे प्रमाणित कर दिया था, कहा जाता था: "तुम्हें पूर्ण हित प्राप्त हो।"

और कुछ गुरुओंके दृष्टांतमें, जिन्हें विशेष उच्च शक्तियां प्राप्त होती थीं, ये शब्द रोगमुक्त करनेके समान कई वास्तविक सिद्धियां भी प्रदान करनेकी सामर्थ्य रखते थे।

२५ जून, १९१२

प्रचार करने योग्य सबसे उपयोगी विचार कौन-सा है और लोगोंके सम्मुख प्रस्तुत करने योग्य सबसे उत्तम दृष्टांत कौन-सा है ?

इस प्रश्नपर दो दृष्टियोंसे विचार किया जा सकता है : एक तो है बहुत व्यापक दृष्टि जो समूची पृथ्वीको अपने ध्यानमें रखती है और दूसरी है व्यक्तिगत जो हमारी वर्तमान सामाजिक परिस्थितिसे संबंध रखती है।

व्यापक दृष्टिसे विचार करनेपर मुझे ऐसा लगता है कि प्रचार करने योग्य सबसे उपयोगी विचार दो प्रकारका है :

(१) मनुष्य स्वयं अपने अंदर ही पूर्ण शक्ति, विवेक और ज्ञानको वहन करता है और वह यदि उनपर अपना अधिकार प्राप्त करना चाहे तो उसे अंतर्निरीक्षण तथा चित्तकी एकाग्रताके द्वारा उन्हें अपनी सत्ताकी गहराईमें खोजना चाहिये।

(२) ये सभी दिव्य गुण सभी जीवोंके केंद्रस्थलमें, हृदयमें एक समान पाये जाते हैं और वहींसे आती है सबकी मौलिक एकता और उसके फलस्वरूप पारस्परिक संबंध तथा भ्रातृत्व।

प्रस्तुत करने योग्य सर्वोत्तम उदाहरण होगा शुद्ध प्रशांतिका अपरिवर्तनीय शांतिसे पूर्ण आनंदका उदाहरण। ये चीजें उस मनुष्यके स्वाभाविक गुण बन जाती हैं जो संपूर्ण रूपसे इस विचारके अनुसार जीवन यापन करना जानता है कि सबके अंदर एक ही भगवान विराजमान हैं।

हमारी वर्तमान परिस्थितिके दृष्टिकोणसे, जो विचार प्रचारित करना मुझे सबसे उपयोगी प्रतीत होता है वह यह है :

किसी भी बाहरी उपाय, भौतिक उन्नति या सामाजिक परिवर्तनसे मनुष्यका सच्चा क्रम-विकास साधित नहीं हो सकता — वह क्रम-विकास नहीं हो सकता जो कि उसे परमानंदकी ओर ले जा सके जिसे पानेका वह हकदार है। व्यक्तिके आंतरिक और गभीर उत्कर्ष ही वे चीजें हैं जो उसकी सच्ची उन्नतिका कारण हैं और उसकी वर्तमान परिस्थितिको संपूर्ण रूपसे रूपांतरित करके उसके दुःख और दुर्दशाको प्रशांत और स्थायी परितृप्तिमें, आनंदमें परिवर्तित कर सकती हैं।

अतएव, सर्वोत्तम उदाहरण है सर्वप्रथम व्यक्तिगत उन्नति करना जो इसे अन्य सबके लिये संभव बनाये, वह पहली विजय प्राप्त करना जो अहं-

भावापन्न व्यक्तित्वके ऊपर हमारी जीत है: निःस्वार्थ-भाव ग्रहण करना।

आज सब लोग अपनी असंख्य लालसाओंकी तृप्तिका साधन मानकर धनके पीछे भाग-दौड़ रहे हैं, ऐसे समय जो व्यक्ति धन-संपत्तिके प्रति उदासीन रहता है और किसी लाभकी दृष्टिसे नहीं, वरन् एकमात्र किसी निःस्वार्थ आदर्शका अनुसरण करनेके लिये कार्य करता है, वह निःसंदेह सबसे अधिक तत्काल उपयोगी दृष्टांत प्रस्तुत करता है।

२ जुलाई, १९१२

किस प्रकारके मन मेरे सबसे अधिक निकट हैं और उनके बीच मेरा आदर्श कार्य क्या होगा?

जीवन हमेशा हमारे रास्तेमें, किसी-न-किसी रूपमें, ऐसे व्यक्ति प्रस्तुत करता है जो किसी-न-किसी कारणसे हमारे निकट होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति जैसा वह स्वयं होता है, उसीके अनुसार अपना वातावरण बना लेता है।

और यदि यही हमारी प्रधान कर्म-प्रवृत्ति हो तो वे सब व्यक्ति, जिनसे हम जीवन-पथपर मिलते हैं, ठीक वे होते हैं जिनके लिये हम अधिकतम उपयोगी हो सकते हैं।

जो निरन्तर आध्यात्मिक चेतनामें निवास करता है उसके लिये उसके साथ होनेवाली परिस्थितियोंका एक विशेष अर्थ होता है और वे सब उसके उत्तरोत्तर विकास-क्रममें सहायक होती हैं। ऐसा व्यक्ति अपने सब संपर्कोंका उपयोगी अवलोकन कर सकता है, उनके ऊपरी और गहन कारणोंका अध्ययन कर सकता है और अपनी उपकार-भावनासे प्रेरित होकर वह यह जानना चाहेगा कि इन विभिन्न प्रकारके व्यक्तियोंमेंसे प्रत्येकका वह क्या हित कर सकता है। आध्यात्मिकताका जितना अंश उसके अपने अन्दर होगा उसीके अनुपातमें उसका कार्य भी आध्यात्मिक प्रभाव डालनेकी शक्तिसे युक्त होगा, यह प्रभाव कम या अधिक हो सकता है, पर होगा अवश्य।

यदि हम अपने साथियोंके निकट आनेके कारणोंका जरा ध्यानसे निरीक्षण करें तो देखेंगे कि ये सम्बन्ध हमारी सत्ताके विभिन्न स्तरोंपर, हमारी चेतनाकी विशेष क्रिया-धाराओंके अनुसार, बने हैं।

इन संबंधोंको हम अपनी चेतनाकी क्रियाके चार प्रधान प्रकारके अनुसार चार श्रेणियोंमें बांट सकते हैं: भौतिक, प्राणिक, आन्तरात्मिक और मानसिक। और ये संबंध अपनी व्यक्त क्रियावलिके गुण और प्रकारके अनुसार इन श्रेणियोंमेंसे किसी एकमें अथवा एकसे अधिकमें एक साथ या बारी-बारीसे आ सकते हैं।

भौतिक सम्बन्ध तो एक तरहसे अनिवार्य है, क्योंकि हम भौतिक शरीर-धारी हैं। यह संबंध स्वभावतः उनके साथ होता है जिन्होंने हमें शरीर प्रदान किया है, साथ ही उन सबके साथ भी जिनका इसके साथ भौतिक संबंध होता है। ये रिश्तेदारीके संबंध हैं। कुछ सम्बन्ध पड़ोसी होनेके नाते बनते हैं, उदाहरणार्थ, मकानका पड़ोस, नाना सवारियोंमें पड़ोस, सड़कों-पर मिलन। (यहां एक बात कह दूं — और यह बात अन्य तीनों श्रेणियों-के संबंधमें भी लागू होती है — वह यह कि यह जरूरी नहीं है कि ऐसा संबंध केवल भौतिक ही होता हो; वास्तवमें ऐसा तो शायद ही कभी होता हो, क्योंकि हम बिरले ही अपनी सत्ताके किसी एक ही स्तरपर क्रियाशील रहते हैं। मेरे कहनेका अभिप्राय यह है कि इन संबंधोंमें भौतिक तत्त्व अन्य तीनोंसे प्रबल रहता है।)

प्राणिक संबंध होता है उन आवेगों और इच्छाओंका संबन्ध जो दोनोंमें एक समान हैं या जो आपसमें मिलकर अधिक पूरी या वर्धित हो सकती हैं।

आन्तरात्मिक संबंध वह संबंध है जो आध्यात्मिक अभीप्साओंके मेलसे बनता है।

मानसिक संबंध होता है विचारों और रुचियोंमें सादृश्य होनेसे या उनके आपसमें एक-दूसरेके पूरक होनेसे।

सामान्यतः, जबतक इनमेंसे किसी एक श्रेणीकी प्रधानता बाकी तीनों-पर स्पष्ट रूपसे स्थापित न हो गयी हो, — और यह प्रधानता तभी हो सकती है जब सत्ताकी गहराई और जटिलतामें सुव्यवस्थित विन्यास हो जाय — तबतक जो लोग भौतिक कारणोंसे हमारे समीप हैं हम उन्हें भौतिक रूपमें सहायता दे सकते हैं, और देनी चाहिये भी।

अपवादोंको छोड़कर, अपने कुटुम्बी जनोंके लिये तथा उनके लिये जिनसे हम गाड़ी, जहाज या ट्राम आदिमें मिलते हैं, यह भौतिक सहायता ही सर्वो-त्तम सहायता होती है और इसका रूप होता है आर्थिक सहायता, बीमारी या संकटके समय सहायता।

जो लोग कलात्मक या अन्य रुचियोंके सादृश्यके कारण हमारी ओर आकर्षित हुए हैं हमें उनकी संवेदनशील सत्ताकी सहायता करनी चाहिये।

यह हम उनकी अनुभूतिकी वृत्तियोंको एक सत्यनिष्ठा, एक नयी स्थिति, एक नयी दिशा देकर कर सकते हैं।

जिनके साथ हमारा सम्पर्क प्रगतिकी अभीप्साके सादृश्यके कारण हुआ है उनकी सहायता हम मार्ग दिखाकर, अपने प्रेमके द्वारा उनके मार्गकी कठोरताको कम करके कर सकते हैं।

अन्तमें, जो लोग हमारे निकट मानसिक आकर्षणोंको लेकर आते हैं उनके प्रति हमारा कर्तव्य यह है कि हम उनकी बुद्धिके प्रकाशको तेज करें, यदि संभव हो तो उनके विचार-क्षेत्रको विस्तृत और आदर्शको आलोकित करें।

ये नाना स्तरोंके आकर्षण हमारे मिलनेकी अवस्थाओंमें संकेतों, और प्रायः सूक्ष्म संकेतोंद्वारा प्रकट होते हैं। दूसरी ओर, हमारी निरीक्षणकी कुशाग्रता कभी-कदास ही पूरी सजग रहती है, फलस्वरूप ये संकेत प्रायः हमारी दृष्टिसे बच निकलते हैं।

किन्तु अपनी कार्य-धाराको ठीक रखनेके लिये और अपने साथियोंके प्रति अपने मनोभावमें त्रुटियां लानेवाले कारणोंको यथासंभव कम-से-कम करनेके लिये हमें हमेशा बड़े ध्यानसे उन असंख्य कारणोंको देखना होगा जिनसे हम एक-दूसरेके समीप आते हैं, सादृश्य और मेलकी उन श्रेणियोंको देखना होगा जो हमें उनके साथ बांधती हैं।

कुछ विरल व्यक्ति ऐसे होते हैं जो एक साथ सत्ताके इन चारों प्रकारके संबंधोंसे हमारे निकट हों। मित्रताके गहनतम अर्थमें ऐसे लोग ही हमारे मित्र हैं। इन्हींके लिये हम अत्यधिक समग्र और पूर्ण रूपसे उपयोगी और कल्याणकारी कार्य कर सकते हैं।

हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिये कि दो मानवजीवनोंका संपर्क कितना स्थायी होगा यह इस बातपर निर्भर है कि उनको जोड़नेवाले आकर्षण सत्ताके कितने स्तरोंपर हैं और उन स्तरोंपर कितनी गहराईतक क्रियाशील हैं।

केवल वे ही आपसमें सदाके लिये संयुक्त हो सकते हैं जो अपने तथा समस्त वस्तुओंके शाश्वत तत्त्वमें मिलते हैं, सायुज्य स्थापित करते हैं।

चिर मित्र वे ही हैं जो सदा मित्र रहते हैं, चाहे दूर हों, चाहे पास, चाहे इस जगत्में, चाहे अन्य जगतोंमें।

और ऐसे मित्रोंके साथ हमारा मिलना किसी ऐसे पूर्व-मिलनपर निर्भर है जो हमारी सत्ताकी अजानी गहराईमें हुआ होगा।

इसके अतिरिक्त, जब कभी ऐसा मिलन होता है तो हमारा समस्त मनोभाव बदल जाता है।

जब हम अन्त:स्थित भगवान्‌के साथ एक हो जाते हैं तो सभी चीजोंके साथ उनकी गहराईमें एक हो जाते हैं। वास्तवमें, सबके साथ हमारा संबंध भगवान्‌में और भगवान्‌के द्वारा ही होना चाहिये। तब न आकर्षण रहता है, न विकर्षण, न अनुराग, न विराग। जो भगवान्‌के निकट है, उसके हम निकट होते हैं, और जो उनसे दूर है, उससे दूर।

निष्कर्ष यह निकलता है कि हमें दूसरोंके बीच, सदा और अधिकाधिक रूपमें सर्वांगीण, भौतिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक, क्रिया-कलापका ऐसा दिव्य दृष्टान्त बनना चाहिये जो उन्हें दिव्य जीवनके मार्गको समझने और उसपर चलनेका एक अच्छा सुयोग दे।

भाग ३

१९११ और १९१३के बीच पैरिसमें माताजीने विभिन्न दलोंके आगे कुछ प्रवचन दिये थे। उनमेंसे दो, "विचारके विषयमें" और "स्वप्नोंके विषयमें", भाग १ में प्रकाशित हो चुके हैं। एक ही प्रवचनको थोड़ा-बहुत बदलकर दो या ज्यादा दलोंके सामने प्रस्तुत किया जाता था। थोड़े जोड़े हुये हिस्से या बदले हुए रूप यहां पाद-टिप्पणीमें दिये गये हैं।

इस भागका पहला लेख माताजीकी पाण्डुलिपियोंमें पायी गयी एक टिप्पणी है।

आपके सामने जो बोल रहा है वह भगवान्‌की वफादार सेवक है। हमेशासे, जबसे धरती शुरू हुई है, यह अपने स्वामीकी ओरसे, एक वफादार सेवकके रूपमें बोलता रहा है। और जबतक धरती रहेगी, मनुष्य रहेंगे, वह भगवान्‌के शब्दका प्रचार करनेके लिये सशरीर रहेगा।

मुझसे जहां कहीं बोलनेके लिये कहा जाता है, मैं भगवान्‌के सेवकके रूपमें अपना अच्छे-से-अच्छा प्रयास करती हूं।

लेकिन किसी सिद्धांत-विशेष या किसी मनुष्यकी ओरसे, वह चाहे कितना भी महान् क्यों न हो, बोलना मेरे लिये असंभव है!

शाश्वत परात्पर इसके लिये मना करते हैं।

१९१२

विचारके बारेमें — भूमिका

कुमारी मोल्तितोरने कृपा करके मुझसे कहा है कि मैं विचारके बारेमें कुछ कहूं।

चूंकि आप लोग मेरी वार्ता सुननेके लिये आये हैं इसलिये मैं यह निष्कर्ष निकालती हूं कि आप इन लोगोंमेंसे हैं जो विचारका मूलभूत महत्त्व, जीवनमें उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका जानते हैं और अपने लिये अधिकाधिक सशक्त और सचेतन विचारका निर्माण करनेका प्रयास करते हैं।

इसलिये मैं आशा करती हूं कि विचारका मूलभूत महत्त्व क्या है यह बताते हुए, मैं आपको, हम सबको अच्छी तरह सोचना सीखनेके बारेमें कुछ सलाह दूं तो आप मुझे क्षमा करेंगे।

इसमें मैं केवल उन महान् आचार्यों और महान् दीक्षित पुरुषोंकी बातोंको प्रस्तुत करूंगी जो मनुष्योंको युग-युगमें अपनी बुद्धि और अपनी शांति देनेके लिये आये हैं।

लेकिन हमारे अंदर जो अद्‌भुत क्षमता है जिसे विचार कहते हैं, उसके तर्कसंगत, प्रभावशाली और उचित उपयोगके बारेमें उनकी सुन्दर शिक्षाओंको आपके सामने अनूदित करनेसे पहले यह अनिवार्य मालूम होता है कि हम यह जाननेकी थोड़ी-सी कोशिश करें कि विचार है क्या।

(५ फरवरी, १९१२)

विचारके बारेमें — २

शायद आपको याद होगा कि पिछले महीने हमने दो टिप्पणियां की थीं।

पहली चीज तो यह कही थी कि विचार एक जीवंत, सक्रिय, स्वायत्त सत्ता है।

दूसरी बात यह कि हम जिस दूषित मानसिक वातावरणमें रहते हैं, उसके हानिकारक प्रभावोंके साथ संघर्षमें विजय पानेके लिये यह जरूरी है कि हम अपने अंदर एक शुद्ध, प्रकाशमय, शक्तिशाली बौद्धिक समन्वय तैयार कर सकें।

इस उद्देश्यसे हमें, अपनी पहुंचके अंदर जो उच्चतम विचार हैं, यानी, ऐसे विचार जो हमारी मानसिक गतिविधिके क्षेत्रमें हैं, उन्हें नीचे उतार लाना और अपना बना लेना होगा।

लेकिन चूंकि विचार जीवंत सत्ताएं हैं इसलिये उनमें भी हमारी तरह पसंद-नापसंद, आकर्षण और विकर्षण होते हैं।

इसलिये हमें उनके प्रति एक विशेष मनोवृत्ति अपनानी चाहिये। उनके साथ मनुष्योंके जैसा व्यवहार करना चाहिये। हमें उन्हें रिझाना और सुविधाएं देनी चाहिये, उनकी ओर वैसे ही पैंग बढ़ाना और ध्यान देना चाहिये जैसे हम किसीको दोस्त बनानेके लिये करते हैं।

इस विषयपर एक आधुनिक दार्शनिक लिखते हैं:

"कभी-कभी विचारक अपने ध्यानमें, बौद्धिक जगत्के अन्वेषक और पूर्वेक्षक अपनी खोजोंमें और कवि — विचारके पूर्वाभाव पानेवाले सगुनिये — अपने स्वप्नोंमें यह अनुभव करते हैं कि विचार कोई निरपेक्ष और देह-हीन वस्तु नहीं है। वह उन्हें पंखदार दिखायी देता है, कोई उड़ान भरनेवाला जो कभी नजदीक आता है और कभी भाग जाता है, जो इनकार करता है और अपने-आपको दे देता है, कोई ऐसा जिसे बुलाना, जिसका पीछा करना चाहिये और जिसे जीत लेना चाहिये।

बहुत सूक्ष्मदर्शीको विचार एक अलग-थलग नारी-सा प्रतीत होता है जिसमें सनकें हैं और कामनाएं हैं, जिसकी पसंद है और रानी सदृश अव-हेलना भी, जिसमें अछूता शील-संकोच है। वे जानते हैं कि उसे पानेके लिये बहुत सावधानीकी जरूरत है, लेकिन खोनेके लिये जरा भी चीज काफी है, कि विचारके लिये मनका एक प्रेम होता है — समर्पण और उत्सर्गसे बना हुआ प्रेम। उसके बिना विचार उसका अपना नहीं हो सकता।

लेकिन ये सुन्दर-से प्रतीक हैं और वास्तवमें कम ही लोग उनके नीचेकी बहुत यथार्थ सद्वस्तुको देख सकते हैं।

इस चीजको देखनेके लिये जो जीती है, स्पंदित होती है, घूमती-फिरती है, चमकती है, यात्रा करती है, देश और कालमें प्रसारित होती है और मुक्त रूपसे कार्य करती और संकल्प करती है, अपना समय और स्थान चुनती है — संक्षेपमें कहें तो विचारको सत्ताके रूपमें देखनेके लिये एक अफलातूनकी जरूरत है।"

हम इस सुन्दर प्रसंगमेंसे एक वाक्य-विशेषको चुन लें। "विचारके लिये मनका एक प्रेम होता है, समर्पण और उत्सर्गसे बना हुआ प्रेम। उसके बिना विचार उसका अपना नहीं हो सकता।"

यह कोई रूपक नहीं है, विचारके साथ घनिष्ठ और सचेतन नाता जोड़नेके लिये हमें अपने-आपको उसके अर्पण कर देना चाहिये, उसके साथ, उसके अंदर निःस्वार्थ प्रेम करना चाहिये।

आज हम यह जाननेकी कोशिश करेंगे कि यह प्रेम किस चीजसे बना है, और साथ ही यह कि इसे अपने अंदर खिलानेके लिये हमें क्या करना चाहिये।

सबसे पहली मनोवृत्ति जो हमें अपनानी चाहिये, जो सबसे ज्यादा अनिवार्य है वह है ऐसी अधिक-से-अधिक मानसिक सचाई जिसे प्राप्त करना हमारे वशमें हो।

सब प्रकारकी सचाइयोंमें शायद यही सबसे कठिन है। अपने-आपको मानसिक रूपसे धोखा न देना कोई आसान काम नहीं है।

जैसा कि मैंने पिछले दिसंबरमें कहा था, सबसे पहले तो हमें विचार करनेकी एक विशेष आदत होती है जो हमारी शिक्षा और हमारे वातावरणके प्रभावसे आती है और जो बहुधा सामाजिक रूढ़ियों और सामूहिक सुझावोंसे आती है। स्वभावतः, इस आदतके कारण हम उन विचारोंका ज्यादा अच्छी तरह स्वागत करते हैं जो उन विचारोंके पूरी तरह सदृश न सही, उन जैसे होते हैं जिनसे हमारा मन भरा रहता है। उन विचारोंको ऐसा स्वागत नहीं मिलता जो इस मानसिक ढांचेको किसी हद-तक अस्त-व्यस्त कर सकते हैं।

शायद आपको याद हो, इसी कारण कभी-कभी हमारे लिये अपने-आप विचार करना सीखना बहुत कठिन होता है। हम अपनी सोचनेकी प्रचलित पद्धतिमें जरा-सा हेर-फेर करते हुए भी सकुचाते हैं और यह विचार-पद्धति बहुधा सामाजिक रूढ़ियों और सामूहिक सुझावोंसे मिलकर बनी होती है। हमारा सारा अस्तित्व ही इस आदतपर आधारित होता है। ज्यादा गहरे और

परिणामतः परिवेशके रीति-रिवाजों और रूढ़ियोंसे कुछ अधिक मुक्त विचारोंके प्रकाशमें अपनी सत्ताकी परीक्षा करनेके लिये तैयार होनेके लिये बहुत साहस और प्रगतिके लिये बहुत प्रेमकी जरूरत होती है।

तुम इससे समझ सकते हो कि अपनी आदतोंमें क्रांति लानेके लिये विचारके प्रति कितने अधिक प्रेमकी आवश्यकता होती है और वह भी एकमात्र इस उद्देश्यसे कि उसके साथ अधिक घनिष्ठ होकर अधिक सचेतन संबंध बनानेकी शक्ति प्राप्त की जा सके!

और जब हमारा मानसिक समन्वय उन विचारोंसे बना हो जिन्हें हमने प्राप्त किया है और ध्यानके सतत और अध्यवसाय-भरे प्रयासके साथ अपना बना लिया है तब भी हमें विचारके साथ सशक्त प्रेमके साथ प्रेम करना चाहिये, शायद और भी ज्यादा सशक्त, ताकि हम हमेशा नये विचारकी खोज-में रह सकें और अगर वह हमारे पास आनेको तैयार हो तो उसका बहुत उत्सुकता-भरा स्वागत कर सकें। क्योंकि हम भली-भांति जानते हैं कि हर नया विचार हमें अपने समन्वयमें हेर-फेर करनेके लिये बाधित करेगा, जिन विचारोंको हम चरम कोटिके विचार मानते थे उन्हें पीछे धकेल देगा, जिनकी बहुत लंबे समयतक अवहेलना की गयी है ऐसे विचारोंको प्रकाशमें लायेगा, उन सबकी इस तरहसे पुनर्व्यवस्था करेगा कि उनमें आपसमें टक्कर न हो, जो हमारे मस्तिष्कके लिये बहुत हानिकर है; संक्षेपमें, यह लंबा और कभी-कभी कष्टदायक कार्य होता है। वास्तवमें हम कभी-कदास ही विचारोंके बारेमें उदासीन होते हैं। हम कुछको औरों की अपेक्षा अधिक पसंद करते हैं और परिणामस्वरूप हमारे मानसिक क्रिया-कलापमें ऐसा स्थान पा लेते हैं जिसके वे सदा अधिकारी नहीं होते।

और अगर हमें उनके स्थानपर अन्य अधिक सत्य, अधिक यथार्थ विचारों-को लाना हो तो प्रायः ऐसा करनेसे पहले हम बहुत हिचकिचाते हैं। हम उनसे ऐसे चिपके रहते हैं मानों वे हमारे अनिवार्य मित्र हों और हम उन-के दोषोंको उतना ही प्यार करते हैं जितना उनके गुणोंको, और यह मनुष्योंसे प्यार करनेका सबसे बुरा तरीका है, सबसे आलसी और स्वार्थ-पूर्ण भी, क्योंकि हम जिन लोगोंसे प्रगतिके लिये सतत प्रयासकी मांग करते हैं, उनकी अपेक्षा, जिनकी हम खुशामद करते हैं, वे हमें ज्यादा मान देते हैं। लेकिन हमारी कठिनाइयां यहीं समाप्त नहीं हो जातीं।

बौद्धिक शिक्षाके परिणामस्वरूप या किसी निजी पसंदके कारण हमें यह भी पूर्वाग्रह रहता है कि नये विचार हमारे पास किस रास्तेसे या किन रास्तोंसे लाये जायं।

ये पूर्वधारणाएं पूरे पक्के अंधविश्वास हैं जिनपर हमें विजय पानी चाहिये।

ये हर आदमीके लिये अलग होते हैं।

कुछ लोगोंमें ग्रंथोंके लिये अंधविश्वास होता है। उनकी दृष्टिमें किसी विचारके सम्मान पानेके लिये यह जरूरी है कि वह किसी प्रसिद्ध ग्रंथमें, मानवताके किसी शास्त्रमें लिखा हो। जो विचार किसी और रास्तेसे आयेगा वह उन्हें संदेहास्पद लगेगा।

कुछ लोग ऐसे हैं जो किसी विचारको तभी स्वीकार करते हैं जब वह किसी औपचारिक विज्ञानसे आये; कुछ ऐसे हैं जो केवल नूतन या पुरातन प्रतिष्ठित धर्मकी बात ही मानते हैं और कुछ लोगोंके लिये विचार किसी ख्यातनामा उपाधिकारीके मुखसे आना चाहिये ताकि 'कोई उसके मूल्यके बारेमें उंगली न उठा सके।

कुछ और लोग ऐसे हैं जो अधिक भावुक हैं। विचारके साथ संपर्कमें आनेके लिये उन्हें एक ऐसे गुरुकी जरूरत होती है जो उनकी कल्पनाके द्वारा गढ़े हुए आदर्श मानव मानदंडका पूर्णावतार हो। लेकिन यह निश्चित है कि उन्हें घोर निराशा होगी, क्योंकि वे यह भूल जाते हैं कि वे अपने-आप ही अपने आदर्शको चरितार्थ कर सकते हैं। जिसपर उन्होंने विश्वास किया है उसका अपना कर्तव्य है कि वह अपने आदर्शको चरितार्थ करे, परिणामतः, वह चाहे जितना महान् क्यों न हो, फिर भी उनके अपने आदर्शसे काफी भिन्न हो सकता है। अतः, बहुधा जब वे इस अंतरको जान पाते हैं तो, चूंकि उन्होंने उस मनुष्यकी खातिर ही उस विचारसे नाता जोड़ा था, वे मनुष्यको और साथ ही विचारोंको तिलांजलि दे देते हैं।

लेकिन यह बात बेतुकी है। विचारोंका अपना मूल्य होता है। इस मूल्यका उन व्यक्तियोंके साथ कोई संबंध नहीं होता जिन्होंने उन्हें व्यक्त किया है।

और अंतमें ऐसे लोगोंकी एक पूरी श्रेणी है जो चमत्कारपर लट्टू होते हैं, जो किसी सत्यको तभी स्वीकार करते हैं जब वह अलौकिक अंतः-प्रकाशकी रहस्यमय वेश-भूषा पहनकर स्वप्न या समाधिमें आये।

उनके लिये उनके गुरु ही भगवान् होने चाहिये, या फिर कोई देवदूत या महात्मा जो उनके ध्यानमें या नींदमें उन्हें अपनी अमूल्य शिक्षा दे।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यह तरीका औरोंसे बढ़कर अविश्वसनीय है। किसी विचारका हमारे पास असाधारण रूपमें आना उसके सत्य या यथार्थताके बारेमें गारंटी नहीं है।*

---

*किसी और दलके आगे दी गयी वक्तृतामें जोड़ा गया अंश: —

देखिये, विचारका सच्चा प्रेमी जानता है कि अगर उसमें उत्कट खोज हो तो वह उसे हर जगह पा लेगा, उन भूमिगत और गुप्त स्रोतोंमें ज्यादा आसानीसे पा सकेगा उन स्रोतोंकी अपेक्षा जिन्होंने शानदार और प्रसिद्ध नदियोंमें बदलकर अपनी आदिम शुद्धताको खो दिया है, लेकिन जो सब प्रकारके कूड़े-करकटका भी वहन करते हैं और इस तरह गंदे हो जाते हैं।

विचारोंका प्रेमी जानता है कि विचार उसके पास जैसे किसी विद्वान्के मुखसे आता है उसी तरह एक बच्चेके मुखसे भी आ सकता है।

और वह प्रायः इस अप्रत्याशित मार्गसे भी बहुधा उसके पास पहुंच सकता है।

इसीलिये कहा जाता है: "बालकों और दुधमुंहे बच्चोंके मुंहसे भी सत्य प्रकट हो सकता है।"

क्योंकि अगर बालकके विचारमें मनुष्यके विचारकी-सी यथार्थता नहीं होती तो उसमें वह दृढ़ता भी नहीं होती जो वयस्कोंके अभ्यासके आलस्यसे आती है, जो उसे ऐसे विचारोंको व्यक्त करनेसे रोकती है जो उसकी परिचित विचार-श्रेणियोंके न हों।

और फिर, यही कारण है कि अभ्यास और निश्चितताके वातावरणको दोषोंसे बचानेके लिये पुराने जमानेमें उन विद्यालयोंको नगरोंसे दूर स्थापित किया जाता था जिनमें युवा भविष्यवेत्ता या पैगंबरोंको शिक्षा दी जाती थी।

यह भी एक कारण है कि मनुष्योंके महान् शिक्षकोंने अपना शिक्षार्थीकाल एकांतमें शुरू किया। क्योंकि जैसे अनगढ़ लोगोंके मनमें ऐसी बहुत-सी बातोंका अभाव होता है जिनके द्वारा विचार अपने-आपको व्यक्त कर सकता है, उसी तरह मानव समाजके कृत्रिम जीवनके द्वारा गढ़े गये सभ्य आदमीके मनमें भी बहुत अधिक चीजोंका अभाव होता है।

विचारकी सुदूर वाणी सुननेके लिये कितनी अधिक नीरवताकी जरूरत होती है। बाहरी, भ्रामक और क्षणिक नीरवता नहीं, बल्कि उसके विपरीत, सच्ची, गहरी, समग्र और स्थायी नीरवता।

इसलिये ज्ञानका सच्चा प्रेमी यह भी जानता है कि बड़े-से-बड़े संत हमेशा सबसे अधिक विनयशील और सबसे बढ़कर अज्ञात होते हैं। जिसे ज्ञान और क्षमता प्राप्त हैं वह महिमाके धूम-धड़ाकेकी अपेक्षा, जो उसे

मेरा मतलब यह नहीं है कि इन उपायोंसे किसी विचारके साथ संपर्कमें आना असंभव है, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि यही एकमात्र या सर्वोत्तम साधन है।

मनुष्योंके आगे चारा बनाकर फेंक देगा, नीरवता और निवृत्तिको ज्यादा पसंद करता है जहां वह किसी विघ्न-बाधाके बिना अपना काम पूरा कर सकता है।

विचारका प्रेमी जानता है कि वह विचारको हर जगह पा सकता है, छोटे-से फूलमें और दीप्तिमान सूर्यमें भी। उसे कोई चीज और कोई व्यक्ति इतना तुच्छ और धुंधला नहीं लगता कि वह उस विचारका माध्यम न बन सके जिसकी उसे सदा खोज रहती है।

लेकिन सबसे बढ़कर, वह यह जानता है कि विचारके साथ सबसे अच्छा और सबसे अधिक विश्वसनीय संपर्क है प्रत्यक्ष संपर्क।

चूंकि हम वैश्व पदार्थोंसे बने हैं इसलिये हम इस विश्वका लघु रूप हैं।

चूंकि कोई भी तथ्य अपने अनुरूप माध्यमके बिना नहीं रह सकता इसलिये विचारोंकी उपस्थितिका यह अर्थ है कि उनके अनुरूप कोई क्षेत्र होगा जो मुक्त बुद्धिका लोक होगा जो हमेशा साकार तो रहता है पर आकारके आधीन नहीं। और यह क्षेत्र हम सबके अंदर भी है और इस महान् विश्वमें भी।

तो अगर हम काफी एकाग्र हों, अगर हम अपनी अंततम सत्ताके बारेमें सचेतन हो जाएं तो हम उसके साथ संपर्कमें आ सकेंगे और उसके द्वारा मुक्त वैश्व बुद्धिके विचारोंके जगत्के संपर्कमें आ सकेंगे।

तब अगर हमने अपने दर्पणपर अच्छी तरह पालिश कर ली और उसपरसे पूर्वकल्पनाओं और अभ्यासोंकी धूलको साफ कर दिया, तो समस्त विचार अपने-आपको कम-से-कम विकृतिके साथ प्रतिबिंबित कर सकेंगे (तब हम बोधि—ज्ञान—प्राप्त कर लेंगे)। हम सत्यके[1] सूर्यकी किरणोंको प्रतिबिंबित करनेकी शक्ति पा लेंगे—सिद्धार्थ गौतमने हमें यह आशा दिलायी थी। जब उनसे पूछा जाता था: "हमें बोधि कैसे प्राप्त होगी?" तो उनका उत्तर होता था:

"बोधिके कोई विशेष चिह्न या लक्षण नहीं होते। उसके बारेमें जो

---

[1]किसी अन्य दलके आगे दी गयी वक्तृतामें जोड़ा गया अंश:—

तब हमारी मानसिक क्रियाएं अपनी पूर्ण सामर्थ्य और शक्ति पायेंगी। हमारी विचार-रचनाएं उपयोगी और प्रदीप्त संदेशवाहक बनकर अपना शुभ और सामंजस्यपूर्ण कार्य करनेके लिये जायंगी जहां परिस्थितियां हमें भौतिक कारणोंसे ऐसा काम करनेसे रोकती हैं।

और एकाग्रताके थोड़े-से प्रयाससे ही, प्रकट होते विचारके संपर्कमें रहते हुए, हम इन क्रियाओंके प्रति तेजीसे सचेतन होनेमें सफल होंगे।

जाना जा सकता है उसका कोई उपयोग नहीं, लेकिन उसके भावको जीवन-में लानेके लिये हम जो ध्यान देते हैं उसका बहुत अधिक महत्त्व है। वह एक शुद्ध और परिमार्जित दर्पणकी तरह है जो साफ और चमकदार बन गया है ताकि उसपर बिंब स्पष्ट और तीखा आ सके।"

और फिर :

"जिसमें अंधकार न हो, जिसमें कोई दाग न हो, जिसका आचरण दोष-रहित हो, जो पूरी तरह पवित्र हो वह, भले वह कुछ भी न जानता हो, उसने कुछ भी न सुना हो, संक्षेपमें कहें तो उसे बिलकुल ज्ञान न हो, संसारकी और दस लोकोंकी अनादिकालसे आजतककी चाहे कितनी भी कम जानकारी क्यों न हो, फिर भी उसे सर्वज्ञका उच्चतम ज्ञान प्राप्त है। वही ऐसा व्यक्ति है जिसके बारेमें कहा गया है "स्पष्टता।" यहां तुम विद्वत्ताके पूरी तरहसे बाह्य और उपरितलीय पद्धतिके मुकाबिलेमें विचारके साथ सीधे संबंध के गुणगान देखते हो।

इस सीधे संबंधके अनगिनत लाभ हैं।

यह हमें सभी प्रतीतियों, सभी परदों, सभी रूपों, यहांतक कि अधिक-से-अधिक बर्बर, अधिक-से-अधिक अनगढ़, अधिक-से-अधिक अंधविश्वास-पूर्ण रूपोंके पीछेसे उनके वास्तविक विचारको पुनः प्राप्त करने और उससे प्रेम करने योग्य बनाता है।

इस तरह हम संतकी मानसिक अवस्थाको जीवित क्रिया रूपमें परिणत कर सकते हैं जिसके बारेमें मैंने आपसे अपनी पहली वक्तृतामें कहा था। एक गुरुने उसकी यूं व्याख्या की है :

"जो सत्यमें प्रयति करता है वह भूलसे कष्ट नहीं पाता, क्योंकि वह जानता है कि भूल सत्यकी ओर जीवनका पहला प्रयास है।"

परिणामतः हम किसी विचारके एक टुकड़ेको भी कभी नहीं खो सकते। वह जहां कहीं छिपा हो हम उसे खोज लेना और पोसना जानते हैं।

फिर भी, जब हम किसी विचारसे परिचित हो जाते हैं, जब हम उसे उसके अपने रूपमें, उसके लिये जान लेते हैं तो हम उसे विभिन्न आकारों-के पीछे, अधिक-से-अधिक भिन्न रूपोंके पीछे पाते हैं।

यह क्षमता यह जाननेके लिये कसौटीका काम दे सकती है कि कोई व्यक्ति स्वयं विचारके संपर्कमें है या नहीं, अर्थात्, क्या उसने उसे भली-भांति समझकर अपना बना लिया है या वह उन सामान्य लोगोंमेंसे है जिन्होंने अपनी ओरसे अच्छे-से-अच्छी तरह किसी सिद्धांतको, एक भाषा-विशेषको आत्मसात् कर लिया है और जो केवल उसी भाषाके शब्दोंमें सोच सकते हैं — उस सूत्रके बाहर वे और कुछ नहीं समझते।

रूपके लिये यह आसक्ति, जो पूरी तरहसे बौद्धिक नपुंसकताके कारण है, मनुष्योंकी अनबनके सबसे प्रबल कारणोंमेंसे एक है।

लेकिन जो विचारको, नंगे सत्यको देखनेके लिये काफी गहराईमें घुस जाता है वह शीघ्र ही यह अनुभव कर लेता है कि विभिन्न, न्यूनाधिक रूपमें अपारदर्शक पर्दोंके पीछे एक ही विचार या सत्य है।

सहिष्णुता प्राप्त करनेका यह सबसे अधिक निश्चित मार्ग है।

वास्तवमें, हम किसी सिद्धांत, संप्रदाय या धर्म-विशेषके लिये ऐकांतिक आवेग कैसे रख सकते हैं जब हमें यह अनुभव हो चुका है कि उनमेंसे हर एकमें प्रकाश और सत्यके खजाने हैं, उन्हें बंद करनेवाली पेटियां चाहे जितनी भिन्न क्यों न हों।

(१६ फरवरी, १९१२)

विचारके बारेमें — ३

मुझे हमेशा ऐसा लगा है कि कुछ विरले अपवादोंको छोड़कर, हमें दिखायी देनेवाले तत्त्वज्ञानके तथ्योंके बारेमें ऊहापोह करना नारियोंका मानसिक काम नहीं है, उन्हें इन तथ्योंसे क्रियात्मक परिणाम निकालने चाहिये।

पिछले शुक्रवारको श्रीमती मार्सियाल ठीक ही कह रही थीं: अगर नारियां पुरुषोंकी तरह सोचना चाहें तो यह उनकी भूल होगी, इससे उनके अपने गुणों, यानी, गहरे अंतर्भास और क्रियात्मक निगमनके खो बैठनेका भय है और वह भी पुरुषोंके विशिष्ट गुणों, तर्क, ऊहापोह तथा विश्लेषण और समन्वयकी क्षमताको पाये बिना।

इसीलिये मैं आज तार्किक युक्तियोंके द्वारा और अनुभवसे परेकी मीमांसा-द्वारा यह सिद्ध करनेकी कोशिश न करूंगी कि विचार सच्ची, स्वतंत्र, जीवित और सक्रिय सत्ताएं हैं।

इसके अतिरिक्त, यदि हम सुन्दर शब्दोंमें फंसना नहीं चाहते, अगर हम बड़ी सचाईके साथ छोटे-से-छोटे तथ्यकी व्याख्या करना चाहते हैं तो हमें हमेशा व्यापक वैश्व विधानोंतक जाना होगा। बालूके एक कणको समझानेके लिये समस्त संसारकी जरूरत है और "नारी विचार संघ"के लिये हमने यह कार्यक्रम नहीं चुना है। जिन्हें अपनी शिक्षा और अपने-

आप की यही दिमागी कसरतके परिणामस्वरूप बड़ी-बड़ी तत्त्व-मीमांसाकी समस्याओंमें रस है उन्हें 'एकोल द ला पांसे' में हर मासके पहले शुक्रवारको बहुत अच्छा अवसर मिल सकेगा।[१]

आप सहमत हों तो "नारी विचार संघ" में हम कुछ अधिक विनम्र होंगे।

अपने स्वभावसे ही नारी आध्यात्मिक या, अगर हम शब्दको उसके गहरे अर्थोंमें लें तो, नैतिक दृष्टिकोणको अपनानेमें ज्यादा समर्थ है।

इस आध्यात्मिक क्षेत्रमें हम ज्यादा यथार्थवादी और रचनात्मक हैं। हम अच्छी तरहसे जीना जानना चाहते हैं और इसके लिये यह जरूरी है कि हम अच्छी तरह विचार करना सीखें।

विचारका प्राथमिक महत्त्व जाननेके लिये यह जरूरी है कि हम उसे उसी रूपमें जानें जैसा वह है, यानी, एक जीवित सत्ताके रूपमें। आपको

---

[१]एक और दलके लिये पाठांतर :

मुझे नहीं मालूम कि आप विचारके जीवित और स्वतंत्र सत्ता होनेके बारेमें जो धारणा है उससे परिचित हैं या नहीं। मैं यहां उसकी यथार्थता सिद्ध करनेका साहस नहीं करूंगी। इसके दो कारण हैं।

पहला यह कि छोटे-से-छोटे तथ्यको सिद्ध करनेके लिये (क्योंकि सचमुच उसे अपने-आपको समझानेके लिये हमारी यही सामान्य पद्धति है) अधिक-से-अधिक सार्वभौम विधानोंको लाना जरूरी होता है। बहुत बार हमने कहा है कि बालूके एक कणकी व्याख्या करनेके लिये समस्त विश्वकी आवश्यकता है। और यह खोज हमें आज अपने विषयसे बहुत दूर ले जायगी।

और दूसरे, यह करनेके लिये हमें लंबे-चौड़े मीमांसा-भरे चिंतनमें लग जाना होगा और मैं इस प्रकारकी मानसिक क्रियासे अधिक और किसी चीजसे नहीं घबराती।

इस मामलेमें बुद्धका अनुसरण करते हुए मैं इस बातपर विश्वास करती हूं कि बौद्धिक क्षेत्रोंमें इस प्रकारकी जोखिम-भरी यात्राओंपर निकलनेकी जगह हम अपने समयका ज्यादा अच्छा उपयोग कर सकते हैं। यह यात्रा अपने अंतिम विश्लेषणसे हमेशा बच निकलती है और अंतमें हमें अनिवार्य रूपसे अचिंत्यके सामने ला खड़ी करती है।

बुद्ध हमेशा विश्वके आदि और अंतके बारेमें तात्त्विक प्रश्नोंका उत्तर देनेसे साफ इंकार किया करते थे। वे कहते थे : बस एक ही बातका महत्त्व है, मार्गपर आगे बढ़े चलो, यानी, अपनी आंतरिक शुद्धि करो, अपने अंदर समस्त अहंकार-भरी इच्छाका नाश कर दो।

विचारके स्वतंत्र अस्तित्वके बारेमें विश्वास दिलानेके लिये मैं आपसे यही कहूंगी कि आप अपने-आप इसका पता लगा लें। और यह आसान है।

जरासे अवलोकनसे हम यह देख सकते हैं कि बहुधा, उदाहरणके लिये, हमारे अंदर ऐसे विचार आते हैं जो बाहरसे प्रवेश करते हैं — हालांकि उनके साथ वाणी या कथनके द्वारा हमारा नाता नहीं जोड़ा जाता।

कौन है जिसने ऐसी घटना न देखी हो : जैसे हम कहा करते हैं, कोई विचार "हवा"में होता है जिसे कई अन्वेषक, कई वैज्ञानिक, कई साहित्यिक लोग साथ-ही-साथ पकड़ते हैं, भौतिक रूपसे उनके बीच इस विषयमें कोई लेन-देन नहीं होता।

ऐसे बहुतेरे उदाहरण दिये जा सकते हैं। आपमेंसे हर एक अपने-आप सोचकर ऐसे उदाहरण निकाल सकती हैं जो उन्हें सबसे अधिक निर्णायक मालूम होते हों।

अपने विषयपर आगे बढ़नेसे पहले मैं आपको विचारके बारेमें एक पृष्ठ पढ़कर सुनाऊंगी जो शायद समझनेमें आपकी सहायता करे।

यह अभीतक अप्रकाशित एक दार्शनिक ग्रंथमेंसे है।

"किसी भी तथ्यमें उसका अनुरूप द्रव्य अंतर्निहित होता है, किसी भी स्पंदनके लिये उसका अपना माध्यम जरूरी है। और अगर प्रकाशके स्पंदनोंके लिये उस माध्यमकी जरूरत है जिसे हम "ईथर" या आकाश कहते हैं तो क्या विचारके अधिक सूक्ष्म, अधिक रहस्यमय और अधिक तेज स्पंदनोंके लिये अपने माध्यमकी जरूरत न होगी?

"मैं उस विचारकी बात नहीं कर रही जो मस्तिष्ककी दी हुई भौतिकताके साथ अपना रूप और द्रव्य बना चुका है। मनोवैज्ञानिक भली-भांति जानते हैं कि सचेतन क्रियाशीलताका रूप धारण करनेसे पहले विचारको अधिक दूरवर्ती अवस्थाओंमेंसे, जिसे हम अवचेतना कहते हैं, उसके क्षेत्रोंमेंसे गुजरना पड़ता है।

"जैसे उल्का बाह्य अंतरिक्षमेंसे आती है, उसी तरह विचार हमारे सचेतन स्वमें आंतरिक गहराइयोंसे आता है।

"इस उल्काका मूल क्या था, इस विचारका स्रोत क्या था? यह हम नहीं जानते, लेकिन उनका अस्तित्व है जरूर, एकका हमारे सूर्यके परे और दूसरेका शायद प्रकाशके परे।

"विचार और प्रकाशमें आरोहणका संबंध है। अचिंत्योंके क्रममें एकसे दूसरेकी ओर जानेके लिये एक सीढ़ी चढ़ना जरूरी है। सोचना देखनेका एक उच्चतर प्रकार है।

"अगर हम विचारको नहीं देखते तो इसका कारण यह है कि उसका पदार्थ प्रकाशसे भी अधिक ईथरी है, ठीक उसी तरह जैसे हम प्रकाशको नहीं सुन पाते क्योंकि उसका पदार्थ शब्दके पदार्थसे ज्यादा सूक्ष्म है।

"अपनी ही श्रेणीके तत्त्वोंमें विचार उसी तरह घूमता-फिरता है जैसे हमारे शरीर भौतिक वस्तुओंमें घूमते हैं। जैसे हमारे हाथ जानते हैं कि इन वस्तुओंको किस तरह ढाला जाय उसी तरह विचार भी जानता है कि इन तत्त्वोंको ढालकर विभिन्न उपयुक्त रूप कैसे दिये जायें।

"इसलिये हमारी बौद्धिक चेष्टाएं शारीरिक चेष्टाओंसे किसी तरह कम सफल नहीं होतीं। इसीलिये बुद्धिने हमेशा यह सिखाया है कि हमें अपने विचारोंपर उसी तरह निगरानी रखनी चाहिये जैसे उत्पादन कार्योंपर रखते हैं।"

हम तो देखते हैं कि विचार जो इस शब्दके उच्चतम अर्थोंमें क्रियाशील है, अपने लिये एक शरीरका निर्माण करनेके लिये अपने क्षेत्रमें रचनात्मक शक्तिकी तरह काम करता है। वह लोहचूर्णपर चुंबककी तरह काम करता है। वह ऐसे सब तत्त्वोंको आकर्षित करता है जो उसके अपने स्वभाव, लक्ष्य और प्रवृत्तियोंके साथ मेल खाते हैं। ये तत्त्व उसके अपने शरीरके अंगीभूत कोषाणु होते हैं, बहुत सारी व्याख्याओंसे बचनेके लिये मैं यही कहूंगी कि ये द्रव्य-सदृश होते हैं। तो विचार उन्हें जीवन प्रदान करता है, उन्हें अनुप्राणित करता है, ढालता है और ऐसा रूप देता है जो उसकी अपनी प्रकृतिके सबसे अधिक अनुकूल हो।

हम विचार और अन्वेषक, निर्माणकर्ता, वह चाहे कोई हो, के कार्योंमें बहुत आश्चर्यजनक सादृश्य पायेंगे।

उदाहरणके लिये, हम भापसे चलनेवाले इंजनको लें। इंजीनियर पूरे विस्तारमें नक्शा बनाता है, हर चीजका हिसाब लगाकर व्यवस्था करता है। तब वह अपनी धारणाकी चीजको मूर्तरूप देनेके लिये योग्य सामग्री चुनता है और निर्माण कार्यपर निगरानी रखता है, आदि।

और जब इंजन काम करता है और अपनी गतियोंद्वारा वास्तवमें एक जीवित सत्ता बन जाता है तो वह उसे बनानेवाले विचारकी यथासंभव अधिक-से-अधिक पूर्ण अभिव्यक्ति होता है। उसमें इस विचारकी शक्तिका पूरा परिमाण होता है (इंजन, मोटर, जहाज आदिकी जाग्रत निश्चेतना)। निर्माणकर्ता विचार, एक सजीव सत्ता, उस शरीरको अनुप्राणित करता है जिसे मनुष्यके हाथोंने उसके लिये बनाया है। मानसिक क्षेत्रमें भी सचेतन निर्माता होते हैं।

ऐसे लोग हैं जो विशेष प्रतिभाके कारण या अपने अंदर विशेष क्षमता

या इंद्रियां विकसित कर लेनेके कारण, मुख्य रूपसे दृष्टि और स्पर्शके द्वारा इस क्षेत्रके साथ सीधे संपर्कमें आ सकते हैं।

जब वे घटनाके क्रिया-कलापपर इस तरह नजर रख सकते हैं तो वे प्रयोगशालामें रसायन-शास्त्रियोंकी तरह द्रव्यसे काम ले सकते हैं। वे उन्हें चुन सकते हैं, अपनी इच्छा-शक्तिद्वारा गढ़ सकते हैं और अपने विचारोंको ऐसे रूपोंसे ढक सकते हैं जो उन्हें पूरी तरह अभिव्यक्त कर सकें।

परंतु यह व्यक्तिगत प्रगतिके बहुत-से मार्गोंमेंसे एककी अंतिम अवस्था है। इस भरपूर चेतनाको पानेसे बहुत पहले सशक्त रूपोंका निर्माण संभव होता है। कोई भी व्यक्ति जिसके विचारमें जरा बल और दृढ़ता है बिना जाने हमेशा रचनाएं तैयार करता रहता है।

अगर तुम यह याद रखो कि ये रूप जीवित सत्ताएं हैं जो हमेशा अपने जन्म देनेवाले विचारोंद्वारा दी गयी दिशामें काम करती रहती हैं, तो तुम आसानीसे इन मानसिक क्रियाओंके महत्त्वपूर्ण परिणामोंको देख सकोगे।

जैसे अच्छे, न्याय्य और दयापूर्ण उच्च विचार बहुत लाभदायक हो सकते हैं, वैसे ही द्वेषपूर्ण, नीच, दुष्ट और स्वार्थ-भरे विचार घातक हो सकते हैं।

इस विषयपर मैं आपको 'धम्मपद'का एक उद्धरण सुनाऊंगी जो आपको यह अंदाज देगा कि अतीतकालके मनीषी विचारको कितना अधिक महत्त्व देते थे।

"शत्रु अपने शत्रुके विरुद्ध चाहे कुछ क्यों न करे, घृणा करनेवाला घृणा करनेवालेके प्रति चाहे कुछ क्यों न करे, एक गलत रास्तेपर भेजा गया विचार उससे भी बढ़कर हानि पहुंचाता है।

"न पिता, न माता और न सगे-संबंधी इतना उपकार कर सकते हैं जितना अच्छे रास्तेसे भेजा गया विचार।"

अगर आप उन अनगिनत विचारोंके बारेमें सोचें जो हर रोज निकलते रहते हैं तो आप अपनी कल्पनाके आगे उस जटिल, गतिशील, थरथराते हुए भयानक दृश्यको देख सकेंगे जिसमें ये सब रूप आपसमें — एक स्पंदन-शील गतिमें जो इतनी तेज है कि हम अपनी आंखोंके आगे उसका चित्र भी आसानीसे नहीं बना सकते — टकराते, युद्ध करते, गिरते और विजय पाते हैं।

अब आप समझ सकती हैं कि पैरिस जैसे शहरका मानसिक वातावरण कैसा होगा जहां लाखों व्यक्ति सोचते रहते हैं — और विचार भी कैसे! आप इस उंडेली जाती हुई गतिशील राशि, इस विकट गुत्थीकी कल्पना कर सकती हैं, का चित्र अपनी आंखोंके आगे बना सकती हैं। हां, सब प्रकारकी विरोधी प्रवृत्तियां, इच्छाओं और मतोंके होते हुए, इस सब

स्पंदनोंका एक प्रकारका ऐक्य या सादृश्य स्थापित हो जाता है। क्योंकि सब-के-सब, बहुत छोटे-मोटे अपवादोंको छोड़कर, सभी केवल लालसा, सब प्रकारकी, अपने सभी रूपोंमें, सभी स्तरोंपर लालसा ही प्रकट करते हैं।

दुनियादार लोगोंके सभी विचार, जिनका उद्देश्य केवल भोग-विलास और भौतिक मनोरंजन होता है, लालसा प्रकट करते हैं।

बौद्धिक सर्जकों या कलाकारोंके सभी विचार जो मान-प्रतिष्ठा, ख्यातिके प्यासे होते हैं, लालसा प्रकट करते हैं।

शासक वर्ग और अफसरोंके सभी विचार, अधिक शक्ति और अधिक प्रभावके लिये ललकते हुए विचार, लालसा प्रकट करते हैं।

हजारों नौकरी-पेशा लोगों, मजदूरों, अपने उदास जीवनमें कुछ सुधार लानेके लिये संघर्षरत अत्याचार-पीड़ितों, अभागों, दलित लोगोंके विचार लालसा प्रकट करते हैं।

सभी, गरीब हों या अमीर, बलवान् हों या दुर्बल, सुविधाप्राप्त या अभागे, बुद्धिमान् या मंद बुद्धि, विद्वान् या अनपढ़, सभी सोना चाहते हैं, हमेशा अधिकाधिक सोना ताकि वे अपनी लालसाओंको संतुष्ट कर सकें।

अगर कहीं-कहींसे कभी-कदास निःस्वार्थ विचारकी, भला करनेकी इच्छाकी, सत्यकी सच्ची खोजकी चमक निकलती भी है तो उसे कीचड़के समुद्रकी तरह उमड़नेवाली यह भौतिक बाढ़ तुरंत लील जाती है...।

फिर भी हमें उन तारोंको प्रकाशित करना चाहिये जो एक-एक करके इस रातको जगमगा देंगे।

लेकिन अभी तो हम उसीमें रह रहे हैं, उसमें शराबोर हैं, क्योंकि मानसिक क्षेत्रमें भी भौतिक क्षेत्रकी तरह हम सारे समय वातावरणके साथ लेन-देनकी अवस्थामें रहते हैं।

यह बात आपको यह बतलानेके लिये है कि हम प्रतिदिन, प्रतिक्षण कैसे दूषित होते रहते हैं।

क्या हममेंसे कोई कह सकता है कि उसे कभी लालसा नहीं हुई और फिरसे कभी नहीं होगी? और फिर हम लालसाका अनुभव ही कैसे न करें जब सारा वातावरण ही उससे भरा हुआ है? हम अपने अंदर उठती हुई कामनाओंकी भीड़का अनुभव कैसे न करें जब हमारे पास आनेवाला हर एक स्पंदन कामनाओंसे बना हुआ है?

और फिर भी यदि हम चाहते हैं कि हमारे विचार लाभदायक और प्रभावशाली हों तो हमें अपने-आपको इस दासतासे मुक्त करना होगा।

इस तथ्यको याद रखते हुए हम एक व्यावहारिक परिणाम निकाल सकते

हैं: हम सभीके प्रति उदार हों, क्योंकि प्रलोभन बहुत मजबूत है और मानव अज्ञान वास्तवमें बहुत बड़ा है।

लेकिन जैसे हमें औरोंके साथ दयालु और उदार होना चाहिये, ठीक उसी तरह अपने साथ कठोर और निर्मम होना चाहिये, क्योंकि हम अंधकारमें प्रकाश, रातमें मशाल बनना चाहते हैं।

इसलिये हमें सफल रूपमें इस दैनिक प्रदूषणका प्रतिरोध करना चाहिये।

यह जान लेना ही कि संक्रमणका भय है, अपने-आपमें मुक्तिकी ओर एक बड़ा कदम है। लेकिन यह पर्याप्तसे बहुत दूर है।

दो प्रकारकी विजयकी संभावना है, एक सामुदायिक और दूसरी वैयक्तिक। पहली, सकारात्मक और क्रियाशील; दूसरी, नकारात्मक और निष्क्रिय।

सकारात्मक विजय पानेके लिये विचारके विरुद्ध विचारके युद्धकी घोषणा करना जरूरी है। यह जरूरी है कि निःस्वार्थ, महान् और उदात्त विचार उन विचारोंसे लड़ें जो स्वार्थपूर्ण, तुच्छ और गंवारू हैं। यह वास्तवमें हाथापाई है। यह हर क्षणका युद्ध है जो पर्याप्त मानसिक शक्ति और स्पष्टताकी मांग करता है। क्योंकि विचारोंके विरुद्ध लड़ाई करनेके लिये सबसे पहले यह जरूरी है कि विचारोंको आने दिया जाय, उन्हें अपने अंदर स्थान दिया जाय, जान-बूझकर अपने अंदर संक्रमण होने दिया जाय, अपने-आपको रोगी होने दिया जाय और फिर अपने-आपको स्वस्थ करके घिनौने कीटाणुओंको नष्ट किया जाय। यह एक सचमुचका युद्ध है और इसमें हर क्षण मानसिक संतुलन खोनेकी संभावना रहती है —और किसी युद्धके लिये योद्धाओंकी जरूरत होती है। मैं किसीसे यह पद्धति अपनानेकी बात न करूंगी। इसे अपनानेका अधिकार उन दीक्षितोंको है जो लंबी, कठोर तपस्याके द्वारा अपने-आपको इसके लिये तैयार करते हैं, इसे हम उन्हींके लिये छोड़ देते हैं।

जहांतक अपनी बात है, हम अपने-आपको सब प्रकारके संक्रमणसे बचानेके लिये शुद्ध—"एसेप्टिक"—करके ही संतुष्ट हो जायंगे। इसलिये हम पहले वैयक्तिक विजयके लिये अभीप्सा करेंगे और अगर हम जीत गये तो समझेंगे कि इस भांति हमने समुदायके लिये उससे ज्यादा किया है जितना हम सोच सकते थे।

यह विजय पानेके लिये हमें अपने अंदर एक ऐसी मनोवृत्ति पैदा करनी होगी जो वातावरणके विरुद्ध है। हमें थोड़ा-थोड़ा करके हर रोज अपने मनको अपनी विचार-शक्तिकी क्षमताके अनुसार उच्चतम, पवित्रतम, अधिक-से-अधिक निःस्वार्थ विचारोंसे भरना होगा। उन्हें प्रयासके श्रम

पर्याप्त रूपसे जीवित-जाग्रत बनाना होगा ताकि जब कभी हमारे अंदर बाहरसे गलत विचारोंका प्रलोभन आये तो वे हमें जगा दें और हमारे ऊपर आक्रमण करनेके लिये हमेशा तैयार छायाका सामना करनेके लिये अपनी चौंधियानेवाली ज्योति और भव्यतामें उठ खड़े हों।

आओ, हम अपने अंदर प्राचीन यज्ञाग्नि प्रज्वलित करें जो दिव्य मेधाकी प्रतीक है, जिसे प्रकट करना हमारा कर्तव्य है।

यह काम एक दिन, एक महीने या एक सालमें भी पूरा होनेवाला नहीं है। हमें संकल्प करना चाहिये और अध्यवसायके साथ संकल्प करना चाहिये। अगर आपको यह मालूम हो कि इससे क्या लाभ होते हैं, अगर आप उस शांति, उस पूर्ण निरभ्र शांतिसे परिचित हों जो धीरे-धीरे हमारे अंदरकी उत्तेजना और अशांतिका स्थान लेती है, जो कामनासे पैदा होनेवाली चिंता और भयका स्थान लेती है, तो आप बिना संकोच काममें लग जायेंगे।

और फिर शुद्ध और सशक्त विचारोंके समन्वयका निर्माण केवल हमें ही अपने सुखतक नहीं पहुंचाता। ज्वाला जितनी स्पष्ट और ऊंची होगी उतना ही अधिक प्रकाश अपने चारों ओर फैलायेगी।

हम जिस तारेको अपने अंदरसे होकर चमकने देंगे, वह अपने उदाहरणसे ऐसे ही तारोंको जन्म देगा। सौभाग्यवश, केवल अंधकार और अज्ञान ही नहीं, ज्ञान और प्रकाश भी संक्रमक हो सकते हैं।

और फिर हम अपने उच्चतम विचारोंके बारेमें सचेतन रहनेके लिये जितना ध्यान रखेंगे, वह हमें निरंतर अपने विचारोंका संयम करनेके लिये बाधित करेगा। और यह संयम, जैसा कि मैंने पिछले महीने बतलाया था, विश्लेषण, चिंतन, ध्यान आदिके द्वारा धीरे-धीरे प्राप्त होता है। जिन लोगोंने अपनी मनोमय सत्ताका संयम कर लिया है वह अपनी बौद्धिक शक्तिके एक अंशको जहां उचित समझें वहां भेज सकते हैं और साथ ही उसके बारेमें पूरी तरह सचेतन रह सकते हैं।

ये निःसृत अंश, जो सच्चे संदेशवाहक होते हैं, जहां किसी कारणसे आपका सशरीर पहुंचना असंभव है वहां आपका स्थान ले सकते हैं।

इस शक्तिके लाभ तो आपके लिये आसानीसे स्पष्ट होंगे।

कौशलके साथ भेजा हुआ और निभाया हुआ विचार सादृश्यके द्वारा अंधेरेमें लिपटे हुए बहुत-से मनोंमें मेधाकी झलकको चेता सकता है और इस तरह उन्हें क्रमिक विकासकी ओर आगे बढ़ा सकता है। वह बीमारके लिये मध्यस्थ बनकर उसे नीरोग करनेके लिये आवश्यक प्राणिक शक्तियोंको खींच सकता है। वह किसी प्रिय मित्रपर निगरानी रखते हुए

उसे बहुत-से संकटोंसे बचा सकता है — चाहे मानसिक सूचनाद्वारा उसे सावधान करके अंतर्भासद्वारा या सीधे संकटके ऊपर क्रिया करके।

दुर्भाग्यवश इससे उलटी बात भी सच्ची है और बुरे विचारोंमें भी क्रिया करनेकी शक्तिकी कमी नहीं होती।

हम कल्पना नहीं कर सकते कि हम बुरे विचारों, घृणा, प्रतिशोध, ईर्ष्या, द्वेष, दुर्भावनापूर्ण विचार, कठोर निंदा, कट्टरता-भरे मूल्यांकनको अपनेसे बाहर भेजकर या अपने-आप ग्रहण करके कितना नुकसान करते हैं . . .।

हम सब जानते हैं कि निंदात्मक गप्पोंको सुनना या फैलाना कितना अनिष्टकर है। लेकिन केवल शब्दोंसे परहेज करना काफी नहीं है, हमें विचारोंसे भी परहेज करना चाहिये।[1]

इसके अतिरिक्त, इसके लिये जरा-सा चिंतन ही काफी है; हम शीघ्र ही समझ जायंगे कि हमारे निर्णय और हमारे मूल्यांकन हमेशा कितने मूर्खतापूर्ण होते हैं।

जब हम तथ्योंपर विचार कर रहे हों, ऐसे कामोंके बारेमें सोच रहे हों जो किये जा चुके हैं तो हम अपने-आपसे बार-बार यह कह सकेंगे कि हम उन्हें ठीक वैसा नहीं जानते जैसे वे हैं, हर हालतमें इन कामोंके पीछेके हेतु, उनको निश्चित करनेवाले कारण प्रायः हमारी नजरोंसे बिलकुल बच निकलते हैं।

---

[1]किसी अन्य दलके सामने बोलते समय यह हिस्सा जोड़ा गया था :—

मनकी इस स्वार्थपूर्ण स्थितिसे बढ़कर हमारे लिये या औरोंके लिये कोई और विषाक्त चीज नहीं है। हमने अपने और अपने किसी परिचितके बीच कितनी बार एक प्रकारका अलंघ्य व्यवधान उठते हुए देखा है। फिर भी उस व्यक्तिके प्रति हमारे वचन और कर्म हमेशा पूरी तरह शिष्ट और कभी-कभी मैत्रीपूर्ण भी रहे हैं।

लेकिन जहां इस आदमीका संबंध है, हमने अपने अंदर विश्लेषण और आलोचनाके हाथमें बाग सौंप दी है जो सद्गुणोंको तो यूं ही टाल जाती है और द्वेषके बिना, जरा-से व्यंग्य या दुर्भावना और अपनी श्रेष्ठताके भावके साथ उसकी त्रुटियोंसे ही चिपकी रहती है। हम नीच और अभागे जो ठहरे! अतः थोड़ा-थोड़ा करके, बूंद-बूंद इस व्यक्तिके और हमारे बीच एक सचमुचकी नदी बन जाती है जो भौतिक रूपसे एक-दूसरेके नजदीक आनेके सब प्रकारके प्रयत्नोंके बावजूद, एक-दूसरेसे अधिकाधिक दूर करती जाती है।

जब हम त्रुटियोंपर विचार करते हों तो हमें यह न भूल जाना चाहिये कि जो दोष हमें दूसरोंके अंदर सबसे ज्यादा अखरते हैं वे प्रायः वही होते हैं जो हमारे अंदर खूब फल-फूल रहे हों। बहरहाल, अगर हमारे अंदर इन दोषोंके बीज न होते तो हम उन्हें किसी हालतमें, कहीं न देख पाते। और फिर दोष सचमुच है क्या? बहुधा गुणका दूसरा पहलू, गुणोंका अतिरेक जिसे निकासका मार्ग नहीं मिला है, कोई ऐसी चीज जो अपने स्थानपर नहीं है।

जहांतक हमारा अपना संबंध है, हमें और अधिक समझदार होना चाहिये और एक नियमका बड़ी कठोरतासे, ईमानदारीके साथ अनुसरण करना चाहिये: अपने-आपको दूसरेके स्थानपर रखे बिना कभी उसका मूल्यांकन न करो। वह चाहे कोई भी क्यों न हो, पूरे निर्वैयक्तिक रूपसे उसे अनुभव करनेकी कोशिश करो जो उसने अनुभव किया है, वह देखनेकी कोशिश करो जो उसने देखा है। अगर हम पूरी तरह सच्चे होनेमें सफल हुए तो बहुधा हमारा विचार कम कठोर और अधिक न्यायपूर्ण होगा।

और फिर, एक सामान्य नियमके रूपमें, हम जिस चीजका मूल्यांकन करना चाहते हैं उसे किस प्रकाशमें देखेंगे? हमारी कसौटी क्या होगी? क्या हम यह कल्पना कर बैठते हैं कि हमारे पास चरम बुद्धि है, पूर्ण विवेक है जो निश्चयके साथ कह सकता है: "यह अच्छा है, यह बुरा है?" हमें यह कभी न भूलना चाहिये कि हमारी अच्छे-बुरेकी धारणाएं बिलकुल सापेक्ष और इतनी अज्ञान-भरी हैं कि जहां औरोंका संबंध है, हम बहुधा ऐसे काममें दोष निकालते हैं जो हमारी बुद्धिसे कहीं अधिक बड़ी बुद्धिकी अभिव्यक्ति है।

सच्चा विज्ञान मूल्यांकन नहीं करता। जहांतक बन पड़े वह चीजोंका उनके बहुत-से कारणों और उनके बहुतसे प्रभावोंका ठीक-ठीक अन्वेषण करता है। वह कहता है: "यह उसको निर्धारित करेगा" — इसलिये यह करनेसे पहले देखो कि क्या वह तुम्हारी इच्छाके अनुकूल है। बहरहाल, जहांतक हमारा व्यक्तिगत संबंध है, हम अपने उच्चतम आदर्शके साथ न्यूनाधिक अनुरूपताको — उसकी समस्त तीव्रता और प्रगतिशील भव्यताके साथ — अपनी कसौटी बना सकते हैं। हमें दूसरोंसे यह मांग करनेका कोई अधिकार नहीं है कि वे भी हमारे आदर्शको चरितार्थ करें; जबतक कि हमें यह पता न हो कि हमारा आदर्श दूसरोंकी अपेक्षा अधिक ऊंचा है और उस हालतमें हमें इस बातका बिलकुल निश्चय होना चाहिये कि हमारा आदर्श हर विषयमें परम आदर्शके वैश्व योजनाके अंतरतम सार-तत्त्वके अनुरूप है...।

परंतु इन परात्पर ऊंचाइयोंतक पहुंचनेसे पहले हम हमेशा इस बातका ध्यान रख सकते हैं कि लोगोंसे निकले हुए दुर्भावना या दोषपूर्ण विचार ही मनुष्योंके बीच फूटके मुख्य कारण हैं। अगर मनुष्य एकता चरितार्थ करना भी चाहे तो भी ये विचार उसे असंभव बना देते हैं।

हम भौतिक रूपमें जिस चीज़को प्राप्त करनेके लिये सतत प्रयत्न करते हैं उसमें हमारे प्रयासके साथ-ही-साथ हमारे मानसिक कार्य हमेशा बाधा डालते रहते हैं या उसे नष्ट कर देते हैं।

अतः चलो, हम अपने विचारोंपर नजर रखें, अपने लिये सुंदर और उदात्त विचारोंका वातावरण बनायें। इससे हम पार्थिव समस्वरताको जल्दी लानेके लिये बहुत कुछ कर लेंगे।

और अब समाप्त करनेसे पहले ....

(१९ फरवरी, १९१२)

केंद्रीय विचार*

इस वर्ष, कम-से-कम भौतिक रूपसे, हम अंतिम बार मिल रहे हैं। मुझे आशा है कि सब अवसरोंपर प्रगति और पूर्णताकी समान इच्छामें, हम सदा विचारोंमें एक रहेंगे।

यह इच्छा हमेशा हमारी क्रियाओंका केंद्र होनी चाहिये, जो हमारे संकल्पको अनुप्राणित करती रहा करे, क्योंकि हमारे मनमें चाहे जो लक्ष्य क्यों न हो, हमारे हिस्सेमें चाहे जो कर्तव्य आया हो, हमें जो भी काम सिद्ध करना हो, उस लक्ष्यको पाने, उस कर्तव्यको पूरा करने, उस कार्यको अपनी अधिक-से-अधिक क्षमताके साथ सिद्ध करनेके लिये हमें हर क्षण प्रगति करनी चाहिये। हमें बीते कलका आनेवाले कलतक पहुंचनेके लिये सीढ़ीकी तरह उपयोग करना चाहिये।

जीवन निरंतर गतिमें है, निरंतर रूपांतरमें है। कोई व्यक्ति चाहे कितना भी महान्, विद्वान् या बुद्धिमान् क्यों न हो, अगर वह हमेशा ऊपर चढ़ती हुई कूचमें वैश्व जीवनकी महान् धाराका अनुसरण नहीं करता तो वह अनिवार्य रूपसे पतनकी ओर, अपनी सचेतन सत्ताके विलयकी ओर बढ़ता है।

---

*सबसे पहले यह 'परम आविष्कार' की भूमिकाके रूपमें छपा था।

यही बात पाइथागोरसने बहुत बलपूर्वक अपने उन भावपूर्ण शब्दोंमें कही है जो अभी हालमें श्री हान बाइनरने हमें सुनाये थे।

इन शब्दोंको सुनकर मैंने अपनी पिछली बैठकोंमें अपने अध्ययन-विषयको संक्षिप्त करनेके विरुद्ध फैसला किया।

हमने आपको अपने विचारको विकसित करने, कुशाग्र और व्यापक बनाने, मुक्त और गहरा करनेके बारेमें कुछ सलाह देनेकी कोशिश की है, क्योंकि हमारे विचारोंके मूल्यपर ही हमारी सत्ता और हमारी क्रियाका मूल्य निर्भर है।

सभी देशोंके, सभी युगोंके महान् प्रशिक्षकोंने हमेशा यही सलाह दी है।

जिन लोगोंने गंभीरताके साथ दीक्षाके महान् केंद्रोंद्वारा बतलायी गयी विकास-पद्धतियोंका अध्ययन किया है — कैल्डिया, तिब्बत, चीन, मिस्र, भारत, केपेडोसिया आदिमें — वे देखेंगे कि उन बहुविध रूपोंके पीछे सार-तत्त्व एक ही है।

इन सब विकास-पद्धतियोंका सार-तत्त्व पाइथागोरसद्वारा अपने शिष्यको दी गयी महान् शिक्षामें आ जाता है, जिसके बारेमें श्री बाइनरने हमें बताया था।

हर व्यक्तिकी आत्मा और वैश्व आत्मा एक हैं। हम अपने अंदर भगवान्को लिये रहते हैं।

(१९ अप्रैल, १९१२)

उदारता

अपने सबसे अधिक व्यापक अर्थोंमें कहा जा सकता है कि उदारताका अर्थ है हर एकको वह चीज देना जिसकी उसके पास कमी हो।

अर्थात्, अंतिम विश्लेषणमें कह सकते हैं, हर चीजको उसके अपने स्थान-पर रखना जिसका परिणाम होगा धरतीपर परम न्यासकी स्थापना।

यह तो हुई सिद्धांतकी बात। व्यवहारमें हम कह सकते हैं कि उदारता वह मार्ग है जिसका हर एकको न्यायकी ओर टटोलते हुए बढ़नेमें अनुसरण करना चाहिये।

क्योंकि अपनी वर्तमान अवस्थामें मनुष्य अपने पार्थिव आवासमें न्यायको

प्राप्त करनेमें असमर्थ है, इतना ही नहीं, न्यायका अपने परम धाममें जो रूप है उसकी कल्पना करनेमें भी असमर्थ है। उदारता इस असमर्थताकी जीती-जागती स्वीकृति है।

सच्चा न्याय पूर्ण समस्वरता, पूर्ण संतुलन और पूर्ण व्यवस्थाके साथ होता है। इसे न जाननेकी अवस्थामें हमारे लिये सबसे अच्छा मार्ग यही है कि हम प्रेम-पथको, उदारताके पथको अपनाएं, वह सब प्रकारके मूल्यांकनको दूर रखता है।

यह बात उन लोगोंकी मनोवृत्तिको न्यायसंगत ठहराती है जो हमेशा उदारताको न्यायके विरुद्ध रखते हैं। उनकी दृष्टिमें न्याय हमेशा कठोर और निर्दय होता है और उदारताको उसकी अत्यधिक कठोरताको हल्का करनेके लिये आना चाहिये।

निश्चय ही, यह बात भागवत न्यायके बारेमें नहीं कही जा सकती, लेकिन यह मानव या, यूं कहें, सामाजिक न्यायके बारेमें ठीक है जो एक अहंकारपूर्ण न्याय है जिसे हितोंके न्यूनाधिक विस्तृत समूहोंकी रक्षा करनेके लिये स्थापित किया गया है। वह सच्चे न्यायके उतना ही विपरीत है जितना छाया प्रकाशके।

जब हम उस न्यायकी बात करते हैं जिसका चलन हमारे तथाकथित सभ्य देशोंमें है, तो हम उसे कठोर और निर्दय नहीं, अपने अज्ञानभरे दंभमें अंधा और पैशाचिक कह सकते हैं।

इसलिये हम उसके घातक प्रभावोंके लिये काफी क्षतिपूर्ति कभी नहीं कर सकते और यहांपर उदारता अपना सफल उपयोग करनेका अवसर पाती है।

लेकिन यह प्रश्नका एक केवल पक्ष है। इस विषयकी गहराईमें जानेसे पहले मैं आपको याद दिलाना चाहूंगी कि सभी मानव क्रिया-कलापकी तरह, उदारताके भी चार विभिन्न रूप होते हैं। उसकी क्रियाके प्रभावशाली और समग्र होनेके लिये जरूरी है कि एक साथ सभी रूपोंमें उसका प्रयोग हो। कहनेका आशय यह है कि कोई उदारता तबतक पूर्ण नहीं हो सकती जबतक कि वह साथ-ही-साथ भौतिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक या नैतिक और, सबसे बढ़कर, प्रेममय न हो, क्योंकि प्रेम ही उदारताका मुख्य सार-तत्त्व है।

आजकल उदारताको विशुद्ध बाह्य दृष्टिसे देखा जाता है और इस शब्दका अर्थ हो गया है जीवनके वंचितोंके साथ अपनी संपत्तिका बंटवारा। हम क्षण-भरमें देख लेंगे कि अगर इस धारणाको केवल भौतिक क्षेत्रतक ही सीमित रखा जाय तो भी यह कितनी तुच्छ है।

उदारताकी क्रियाके बाकी रूपोंका सार बुद्धने अपने शिष्योंको सलाह देते हुए इस सराहनीय रूपमें बतलाया था :

"करुणासे उमड़ते हृदयोंके साथ दुःख-दर्दसे पीड़ित जगत्‌में जाओ, वहां शिक्षक बनो; जहां कहीं अज्ञानके अंधकारका राज्य हो वहां दीप जलाओ।"

जो कम जानते हैं उन्हें शिक्षा देना, जो बुराई करते हैं उन्हें ऐसी शक्ति देना कि वे अपनी भ्रांतिमेंसे निकल सकें, जो दुःखी हैं उन्हें सांत्वना देना—ये सब सही अर्थोंमें समझी गयी उदारताके कार्य हैं।

इस भांति, व्यक्तिगत दृष्टिसे, हर एकके लिये अपने साधनोंके अनुपातमें दूसरोंको वह चीज देना ही उदारता है जिसकी उन्हें जरूरत हो।

इससे हम दो बातोंपर आते हैं।

पहली यह कि तुम वह चीज नहीं दे सकते जो तुम्हारे अधिकारमें न हो।

भौतिक दृष्टिसे यह बात इतनी स्पष्ट है कि इसपर जोर देनेकी जरूरत नहीं। परंतु बौद्धिक और आध्यात्मिक दृष्टिसे भी यही नियम सच्चा है।

वास्तवमें जो तुम स्वयं नहीं जानते उसे औरोंको कैसे सिखा सकते हो? अगर तुम अपने-आप उस राहपर नहीं चलते तो दुर्बलोंको बुद्धिमत्ताका मार्ग कैसे दिखा सकते हो? अगर स्वयं तुम्हारे अंदर प्रेम नहीं है तो तुम प्रेमको फैला कैसे सकते हो?

और परम उदारता है पार्थिवके पुनर्निर्माणके महान् कार्यमें समग्र रूपसे आत्म-दान। इसमें यह जरूरी है कि पहले तुम जो देना चाहते हो वह पूरी तरहसे तुम्हारे अधिकारमें तो हो। इसका मतलब यह हुआ कि आदमीको अपने ऊपर पूरा अधिकार हो।

केवल वही जिसे पूरा आत्म-संयम प्राप्त हो, पूरी सच्चाईके साथ अपने-आपको इस महान् कार्यके लिये दे सकता है। क्योंकि वही जानता है कि कोई विरोधी संकल्प, कोई अप्रत्याशित आवेग आकर उसके काममें बाधा नहीं दे सकता। उसे स्वयं अपने विरुद्ध खड़ा करके उसके प्रयासको रोक नहीं सकता।

इस तथ्यमें हमें वह पुरानी कहावत न्यायसंगत मालूम होती है कि उदारता घरसे शुरू होती है—"चैरिटी बिगिन्स ऐट होम।"

यह कहावत हर प्रकारके अहंकारका पोषण करती प्रतीत होती है, परंतु जो इसे भली-भांति समझ सकता है उसके लिये यह एक बहुत बड़ी बुद्धि-मत्ताकी अभिव्यक्ति है।

चूंकि उदार लोग इस सिद्धांतके अनुरूप कार्य नहीं करते इसलिये बहुधा उनके प्रयास निष्फल रह जाते हैं, उनकी सद्भावना परिणामोंमें उलझ

जाती है और अंतमें उन्हें एक ऐसी उदारताको त्याग देना पड़ता है जो, चूंकि उसे ठीक तरह क्रियान्वित नहीं किया, अस्तव्यस्तता, कष्ट और मोह-निवारणका शिकार बन जाती है।

इस कहावतको समझनेका एक गलत तरीका भी है जो कहता है: "पहले हम अपने लिये संपदा, बुद्धि, स्वास्थ्य, प्रेम, सब प्रकारकी ऊर्जाएं इकट्ठी कर लें, तब उन्हें बांटेंगे।"

लेकिन भौतिक दृष्टिकोणसे संग्रह करना कब बंद होगा? जिसे ढेर इकट्ठा करनेकी आदत हो जाय उसे अपना ढेर कभी काफी बड़ा नहीं लगता।

मैंने इस बारेमें यहांतक कहा है कि अधिकतर लोगोंमें उदारता आर्थिक साधनोंसे उल्टे अनुपातमें पायी जाती है।

मजदूरों, जरूरतमंदों और अभागे लोगोंके आपसी व्यवहारको देखकर मैं इस निष्कर्षपर पहुंची हूं कि गरीब लोग ज्यादा उदार होते हैं। वे भाग्य-के लाड़लोंकी अपेक्षा अपने कष्ट पानेवाले साथियोंकी सहायता करनेके लिये ज्यादा तैयार होते हैं। मैंने जो कुछ देखा है उसके विस्तारमें जानेके लिये हमारे पास काफी समय नहीं है, लेकिन मैं विश्वास दिलाती हूं कि वह काफी शिक्षाप्रद है। बहरहाल, मैं यह विश्वास दिला सकती हूं कि गरीब जितना देते हैं, अमीर उसी अनुपातमें अपनी संपत्तिमेंसे दें तो सारी दुनियामें कोई भी भूखा न रह जायगा।

अतः, ऐसा लगता है कि सोना सोनेको आकर्षित करता है। बांटनेसे पहले धन-दौलत इकट्ठा करनेकी इच्छासे बढ़कर घातक और कुछ नहीं है। लेकिन साथ ही, बिना समझे-बूझे, विवेकके अभावमें खुले हाथों लुटानेसे बढ़कर घातक भी कुछ नहीं है। इससे किसीको कोई लाभ पहुंचाये बिना बहुत बड़ी संपदा यूं ही व्यर्थमें उड़ सकती है।

हमें निष्काम वृत्ति, यह सच्ची उदारताकी आवश्यक शर्तोंमेंसे है, और लापरवाहीको, जो प्रमादपूर्ण विचारहीनतासे आती है, आपसमें कभी न मिलाना चाहिये।

हम जो कुछ रख या कमा सकते हैं उसका, अपने व्यक्तित्वका ज़रा भी प्रदर्शन किये बिना, अधिक-से-अधिक विवेकपूर्ण उपयोग करना सीखना चाहिये। और सबसे बढ़कर, यह न भूलना चाहिये कि उदारता केवल भौतिक सहायतातक ही निर्भर नहीं रहनी चाहिये।

शक्तियोंके क्षेत्रमें भी इकट्ठा करना संभव नहीं है। क्योंकि ग्रहण-शीलता व्ययके अनुपातमें होती है। तुम उपयोगी रूपमें जितना अधिक खर्च करोगे, उतना ही अधिक अपने-आपको पानेके योग्य बनाओगे। अतः

तुम जितनी समझ प्राप्त करते हो वह तुम जितनी समझका उपयोग करते हो उसके अनुपातमें होती है। हम अमुक प्रमाणमें बौद्धिक शक्तियां प्रकट करनेके लिये बने हैं, लेकिन अगर हम अपने-आपको बौद्धिक रूपसे विकसित करें, अगर हम अपने मस्तिष्कको काममें लगायें, अगर हम नियमित रूपसे ध्यान करें और सबसे बढ़कर, अगर हम अपने प्रयासके फलसे, वह चाहे जितना सीधा-सादा क्यों न हो, औरोंको भी लाभ पहुंचायें तो हम अपने-आपको अधिक बाहरी और अधिक शुद्ध बौद्धिक शक्तियोंको पानेके योग्य बना लेंगे। प्रेम और आध्यात्मिकताके बारेमें भी यही बात है।

हम नालियोंकी तरह हैं। उनमें जो कुछ आता है उसे खुले रूपमें बहने न दिया जाय तो न सिर्फ यह कि नालियां बंद हो जाती हैं और आगेसे कुछ नहीं आता, बल्कि उनमें जो कुछ है वह भी सड़ जाता है। इसके विपरीत, अगर हम प्राणिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक बाढ़को खुले तौरपर बहने दें, अपने-आपको महत्त्व न देते हुए, अपने छोटे-से व्यक्तित्वको महान् वैश्व धाराके साथ जोड़ सकें तो हम जो कुछ देंगे उससे सौ-गुना पायेंगे।

महान् वैश्व धारासे अपने-आपको काटकर अलग न होने देना, ऐसी श्रृंखलाकी कड़ी होना जिसे तोड़ा न जाय, यही सच्चा विज्ञान है, उदारताकी चाबी है। दुर्भाग्यवश, इस ज्ञानके बारेमें एक बहुत व्यापक भ्रांति फैली हुई है जो इसके व्यावहारिक उपयोगमें गंभीर बाधा है।

यह भूल इस मान्यतामें है कि जगत्‌में कोई चीज हमारी निजी संपत्ति हो सकती है। हर चीज सबकी है। यह कहना या सोचना : "यह चीज मेरी है", एक ऐसी जुदाई पैदा करता है, एक ऐसा भेद लाता है जो वास्तविकतामें नहीं है।

हर चीज सबकी है, यहांतक कि हम जिस द्रव्यसे बने हैं वह भी सबका है। यह परमाणुओंका एक भंवर है जो हमेशा घूमता रहता है। वह किसीका हुए बिना क्षणिक रूपमें आजके लिये हमारे संस्थानको बनाता है, कल वह कहीं और होगा।

यह सच है कि कुछ लोगोंके अधिकारमें बहुत-सी भौतिक संपत्ति होती है। लेकिन वैश्व विधानके साथ मेल खानेके लिये उन्हें अपने-आपको न्यासी, संपत्तिका व्यवस्थापक मात्र समझना चाहिये। उन्हें यह जानना चाहिये कि यह संपत्ति उन्हें इस उद्देश्यसे दी गयी है कि वे सबके हितके लिये उसका अच्छे-से-अच्छा उपयोग कर सकें।

हम उस संकरी धारणासे काफी दूर निकल आये हैं जिसके अनुसार

उदारताका अर्थ यहींतक सीमित है कि हमारे पास जो अतिरिक्त है उसमें-से कुछ अंश उन अभागोंको दे दें जिनसे हमें जीवनमें पाला पड़ता है। और जो बात भौतिक संपदाके बारेमें कही गयी है वही आध्यात्मिक संपदाके बारेमें भी कही जा सकती है।

जो कहते हैं: "यह विचार मेरा है", और जो सोचते हैं कि वे औरोंको उससे लाभ उठाने देते हैं, यह उनकी उदारता है, वे मूर्ख हैं।

विचारोंका जगत् सबका है, बौद्धिक शक्ति वैश्व शक्ति है।

यह सच है कि कुछ लोग विचारोंके इस क्षेत्रके साथ नाता जोड़नेमें और उसे सचेतन मस्तिष्कके द्वारा प्रकट कर सकनेमें औरोंकी अपेक्षा ज्यादा समर्थ होते हैं। लेकिन यह उनके लिये एक अतिरिक्त उत्तरदायित्वसे बढ़कर कुछ नहीं है। चूंकि यह संपत्ति उनके पास होती है अतः वे उसके रक्षक होते हैं और यह उनकी जिम्मेदारी है कि वे देखें कि उसका उपयोग अधिक-से-अधिक लोगोंके हितके लिये हो।

अन्य सभी वैश्व शक्तियोंके बारेमें भी यही बात ठीक है। केवल ऐक्यकी धारणा, हर वस्तु और हर व्यक्तिके तादात्म्यकी भावना ही सच्ची उदारताकी ओर ले जाती है।

अब व्यवहारकी ओर आयें। उदारताकी पूर्ण और सफल अभिव्यक्तिमें एक और बड़ी अड़चन है।

अधिकतर लोगोंके लिये उदारताका अर्थ है कोई भी चीज किसीको भी दे डालना जिसमें यह जाननेकी भी जरूरत न हो कि आवश्यकता और दानके बीच कोई अनुरूपता है भी या नहीं।

इस भांति उदारताको भावुकता-भरी दुर्बलता और बिना समझे-बूझे लुटानेका पर्याय बना दिया जाता है।

इस गुणके सार तत्त्वके विपरीत इससे बढ़कर और कोई चीज नहीं है।

वास्तवमें किसीको ऐसी चीज देना जिसकी उसे जरूरत न हो, उदारताका उतना ही अभाव है जितना जरूरतकी चीजसे उसे वंचित रखना।

और यह बात शरीर और आत्मा, दोनोंकी चीजोंपर लागू होती है।

भौतिक संपत्तिके त्रुटिपूर्ण वितरणसे कुछको प्रयासके द्वारा प्रगति करनेके लिये प्रेरित करनेकी जगह, उनके आलस्यको प्रश्रय देकर उनके पतनको जल्दी लाया जा सकता है।

बुद्धि और प्रेमके लिये भी यही बात ठीक है। किसीको ऐसा ज्ञान देना जो उसके बसका न हो, ऐसे विचार देना जिन्हें वह पचा न सके,

अगर हमेशाके लिये नहीं, तो लंबे समयके लिये उसे अपने-आप विचार करनेकी संभावनासे वंचित कर देना है।

यह ऐसा ही है जैसे कुछ लोगोंपर स्नेह आरोपित करना, एक ऐसा प्रेम देना जिसकी वे आवश्यकता अनुभव नहीं करते, उनके ऊपर एक ऐसा भार लाद देना है जो उनके कंधोंके लिये बहुत ज्यादा है।

इस भूलके दो मुख्य कारण हैं, बाकी सब उन्हींके साथ जोड़े जा सकते हैं: अज्ञान और अहंकार।

यह निश्चित रूपसे जाननेके लिये कि कोई क्रिया लाभदायक है या नहीं, तुम्हें उसके तात्कालिक या बादमें आनेवाले परिणामोंके बारेमें जानना चाहिये। उदारताकी क्रिया इस नियममें अपवाद नहीं है।

भला करनेकी इच्छा करना काफी नहीं है, तुम्हें जानना भी चाहिये।

अपने सच्चे अर्थोंसे भ्रष्ट और परिणाममें पूरी तरह विकृत उदारताके नामपर संसारमें कितनी बुराई हुई है!

मैं तुम्हें ऐसे बहुत-से उदाहरण दे सकती हूं जिनमें उदारताके काम अत्यंत संकटपूर्ण परिणाम ले आये, क्योंकि उन्हें बिना सोचे-विचारे, बिना विवेकके, बिना समझे और बिना स्पष्ट दृष्टिके किया गया था।

सभी चीजोंकी तरह उदारता भी हमारे सचेतन और विवेकपूर्ण संकल्पका परिणाम होनी चाहिये, क्योंकि आवेग भ्रांतिका और सबसे बढ़कर अहंकारका पर्याय है।

दुर्भाग्यवश, हमें यह स्वीकार करना चाहिये कि उदारता बहुत ही विरल उदाहरणोंमें पूर्णतः निःस्वार्थ होती है।

मेरा मतलब उस उदारतासे नहीं है जो किसी व्यक्तिगत देवताकी आंखोंमें पुण्य कमाने या शाश्वत आनंद पानेके लिये की जाती है।

यह एकदम अधम रूप, सौदेबाजीका सबसे भद्दा रूप है और इसे उदारता कहना इस नामको कलंकित करना है।

मेरा मतलब उस उदारतासे है जो इसलिये की जाती है कि तुम्हें उससे प्रसन्नता होती है, फिर भी वह सब प्रकारकी पसंद, नापसंद, आकर्षण, अपकर्षणके अधीन होती है।

इस प्रकारकी उदारता कृतज्ञता पानेकी कामनासे बहुत कम ही मुक्त होती है, और ऐसी कामना उस निष्पक्ष, स्पष्ट दृष्टिको क्षीण कर डालती है जो किसी भी क्रियाको उसका पूरा-पूरा मूल्य देनेके लिये जरूरी है।

जैसे सब जगह होता है, उदारतामें भी बुद्धिमानी होती है और वह है अपव्ययको कम-से-कम कर देना।

इसलिये सचमुच उदार होनेके लिये तुम्हें निर्वैयक्तिक होना चाहिये।

और हम फिरसे देखते हैं कि मानव प्रगतिकी सभी रेखाएं उसी एक आवश्यकतापर आकर मिल जाती हैं : आत्म-संयम, अपने-आपमें मरकर नये और सत्य जीवनमें जन्म लेना।

हम जहांतक हर चीजका संबंध अपने साथ जोड़नेकी आदतसे आगे बढ़ेंगे उतनी हदतक सचमुच प्रभावशाली उदारताको अपनी क्रियाओंमें ला सकेंगे और यह उदारता प्रेमके साथ एक है। इसके अतिरिक्त, एक ऊंचाई है जहां सभी सद्‌गुण मिलकर एक होते हैं: प्रेम, भलाई, करुणा, क्षमा, उदारता अपने सार-तत्त्वमें एक और अभिन्न हैं।

इस दृष्टिसे माना जा सकता है कि उदारता प्रेमके सद्‌गुणोंद्वारा निश्चित व्यावहारिक, साकार बाह्य क्रिया है।

क्योंकि एक शक्ति है जो हमेशा सबको बांटी जा सकती है बशर्ते कि वह एकदम निर्वैयक्तिक रूपमें बांटी जाय। यह है प्रेम, प्रेम जिसमें प्रकाश और जीवन समाये हुए हैं, अर्थात्, समझदारी, स्वास्थ्य और खिलनेकी सभी संभावनाएं हैं।

हां, एक उत्कृष्ट उदारता है जो प्रसन्न हृदय और प्रशांत आत्मासे उठती है।

जिसने आंतरिक शांति पा ली है वह जहां कहीं भी जाये मोक्षका अग्रदूत, आशा और आनंदका वाहक होता है। क्या यही वह चीज नहीं है जिसकी बेचारी कष्टमें पड़ी हुई मानवजातिको सबसे अधिक आवश्यकता है?

हां, कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनके विचार प्रेममय होते हैं, जो प्रेमको विकीरित करते, फैलाते हैं। ऐसे लोगोंकी उपस्थिति मात्र ही सबसे अधिक सक्रिय और वास्तविक उदारता है।

यद्यपि वे कोई शब्द नहीं बोलते, कोई इशारा नहीं करते, लेकिन फिर भी बीमार अच्छे हो जाते हैं, पीड़ितोंको शांति मिलती है, अज्ञानियोंको बोध मिलता है, दुष्टोंको राहत मिलती है, कष्ट सहनेवालोंको सांत्वना मिलती है और सभीके अंदर एक गहरा परिवर्तन आता है जो उनके लिये नये क्षितिज खोल देता है, उन्हें एक कदम आगे बढ़ने योग्य बनाता है है और निस्संदेह यह कदम प्रगतिके अनंत पथपर निर्णायक होगा।

ये लोग जो प्रेमके कारण अपने-आपको सबको दे देते हैं, जो सबके सेवक बन जाते हैं, ये परम उदारताके जीते-जागते प्रतीक हैं।

मैं आप सबको जो यहां उपस्थित हैं, अपने उन भाइयोंको जो उदार होनेकी आकांक्षा रखते हैं, यह निमंत्रण देती हूं कि आप अपने विचारोंको मेरे विचारोंके साथ मिलाकर यह इच्छा करें: हम प्रतिदिन उन लोगोंके

उदाहरणका अधिकाधिक अनुसरण करें ताकि हम उन जैसे हो जायं, संसार-में ज्योति और प्रेमके संदेशवाहक हों।

(२० मई, १९१२)

अन्तरमें भगवान

हमारे अन्दर जो कुछ पूरी तरह अन्तरके भगवान्को निवेदित नहीं है, वह टुकड़े-टुकड़े करके वस्तुओंकी उस समग्रताके अधिकारमें है जो हमें घेरे रहती है और उस चीजपर क्रिया करती है जिसे हम अनुचित रूपमें अपना "आपा" कहते हैं। वह या तो इन्द्रियोंके द्वारा या सुझावोंके द्वारा सीधी मनपर क्रिया करती है।

सचेतन सत्ता बननेका, स्वयं बननेका एक ही मार्ग है और वह है भागवत आत्माके साथ एक होना जो सबमें विद्यमान है। उसके लिये हमें एकाग्रताकी सहायतासे अपने-आपको बाहरी प्रभावोंसे अलग कर लेना चाहिये।

जब तुम अन्तरके भगवान्के साथ एक होते हो तो तुम सभी चीजोंके साथ उनकी गहराइयोंमें एक हो जाते हो। तुम्हें उस भागवत तत्त्वमें, 'उसी'के द्वारा उनके साथ नाता जोड़ना चाहिये। तब तुम बिना किसी आकर्षण या अपकर्षणके, जो 'उनके' नजदीक हो उसके नजदीक और जो कुछ 'उनसे' दूर हो उससे दूर होगे।

दूसरोंके साथ रहते हुए तुम्हें हमेशा एक दिव्य उदाहरण होना चाहिये। तुम्हें एक ऐसा अवसर बनना चाहिये जो उन्हें भागवत जीवनको समझने और उसके मार्गपर चलनेके लिये दिया गया है। इससे बढ़कर कुछ नहीं। तुम्हारे अन्दर यह चाह भी न होनी चाहिये कि वे प्रगति करें क्योंकि यह भी तुम्हारी मनमानी होगी।

जबतक तुम अन्दरके दिव्यत्वके साथ एक नहीं हो जाते तबतक बाहरके साथ सम्बन्धोंके बारेमें सबसे अच्छा तरीका यह है कि जिन्हें इस एकताका अनुभव है उनकी एकमतसे दी हुई सलाहके अनुसार चलो।

हमेशा सतत शुभेच्छाकी स्थितिमें रहना — इसे अपना नियम बना लो, किसी चीजसे परेशान न हो और किसीकी परेशानीका कारण न बनो और, जहांतक हो सके, किसीको कष्ट न पहुंचाओ।

(८ जून, १९१२)

माताजी और अब्दुल बहा

"मैं बहाई धर्मके प्रवर्तक बहा उल्लाके पुत्र और उनके उत्तराधिकारी अब्दुल बहाको भली-भांति जानती थी। वह जेलमें पैदा हुए थे और शायद चालीस वर्षकी आयुतक जेलमें ही रहे। जब वह जेलसे छूटे तो उनके पिता मर चुके थे। उन्होंने अपने बापके धर्मका प्रचार करना शुरू किया।"[1]

***

वह सुप्रसिद्ध बहा उल्लाके बेटे थे जिन्हें सूफियोंसे बढ़कर प्रगतिशील और उदारतापूर्ण विचारोंका प्रचार करनेकी वजहसे जेलमें डाल दिया गया था। कट्टर मुसलमान इनका विरोध करते थे। उनकी मृत्युके बाद, उनके बेटे और एकमात्र उत्तराधिकारीने निश्चय किया कि वह अपने पिताके धार्मिक विचारोंका प्रचार करेगा और इस उद्देश्यसे उसने संसारके बहुत-से देशोंकी यात्रा की। उनका स्वभाव बहुत अच्छा था। वे बहुत ही सरल थे, उनकी अभीप्सा बहुत महान् थी। वह मुझे बहुत अच्छे लगते थे....।

उनकी सचाई और भगवान्‌के लिये अभीप्सा सरल और बहुत स्वाभाविक थी। एक दिन जब मैं उनसे मिलने गयी तो वह अपने शिष्योंके सामने भाषण देनेवाले थे, लेकिन वह बीमार थे और उठ भी न सकते थे। शायद सभाको स्थगित करना पड़ता। जब मैं उनके पास गयी तो उन्होंने कहा: "जाओ, और आजके भाषणमें मेरा स्थान ले लो।" मैं चौंक पड़ी। मैं ऐसी बात सुननेके लिये तैयार न थी। मैंने उनसे कहा: "मैं आपके संप्रदायकी नहीं हूं और उसके बारेमें कुछ जानती भी नहीं। मैं उनके सामने कुछ कैसे कह सकती हूं?" लेकिन उन्होंने आग्रह किया। वे बोले: "इसकी परवाह मत करो, कुछ भी कहो, वह ठीक होगा। जाइये, और कुछ बोलिये...। दीवानखानेमें जरा ध्यान कीजिये और फिर बोलिये।" आखिर उन्होंने मुझे बोलनेके लिये तैयार कर लिया...।

फिर एक बार उन्होंने मुझसे पैरिसमें रहकर उनके शिष्योंकी जिम्मेदारी लेनेके लिये कहा। लेकिन मैंने कहा: "मैं स्वयं आपके संप्रदायकी

---

[1]मातृवाणी खंड ४; प्रश्न और उत्तर १९५०-५१ (१४ अप्रैल) पृ० ३२४।

मान्यताओंपर विश्वास नहीं करती, इसलिये यह काम स्वीकारनेका सवाल ही नहीं उठता।"...[1]

एक वार्ताकी भूमिका

सभी पैगंबर, सभी शिक्षक जो मनुष्योंके लिये भागवत आदेश लेकर आये हैं, कम-से-कम एक बातपर सहमत हैं। उन्होंने इस विषयमें एक-सी शिक्षा दी है।

उनमेंसे सबने हमें सिखाया है कि बड़े-से-बड़े सत्य भी हमारे द्वारा उपयोगी कर्मोंमें रूपांतरित हुए बिना व्यर्थ हैं। सभीने अपने अंतःप्रकाशको दैनिक जीवनमें जीनेकी आवश्यकताकी घोषणा की है। सबने कहा है कि वे हमें पथ दिखाते हैं, परंतु हमें अपने-आप उसपर चलना होगा। कोई भी व्यक्ति, वह चाहे जितना बड़ा क्यों न हो, हमारे बदले यह काम नहीं कर सकता।

बहा उल्ला इस नियमके अपवाद न थे। मैं आपके सामने उनके वचन उद्धृत न करूंगी। आप उन्हें मेरी ही तरह या मुझसे भी ज्यादा अच्छी तरह जानते हैं। बहा उल्लाने कितनी बार कहा है: "कथनी नहीं, करनी। कर्मके बिना शब्द किसी कामके नहीं हैं। हमें संसारके लिये उदाहरण बनना चाहिये।"

वास्तवमें, यह बहुत जरूरी है कि हममेंसे हर एक संसारके लिये उदाहरण हो। हम मनुष्योंको यह दिखाकर ही कि शाश्वत सत्योंके साथ आंतरिक व्यापारके द्वारा अव्यवस्थाको समस्वरतामें, कष्टको शांतिमें बदला जा सकता है, उन्हें उस मार्गपर चलनेके लिये प्रेरित कर सकते हैं जो उन्हें मोक्षकी ओर ले जायगा। लेकिन अब्दुल बहा यह शिक्षा देकर ही संतुष्ट नहीं हो जाते। वे उसे जीते हैं और उनकी विश्वास पैदा करनेकी शक्ति इसीमें है।

सचमुच कौन है जिसने अब्दुल बहाको देखा हो और उसकी उपस्थिति में संपूर्ण भलाई, मधुर प्रशांति, उनकी सत्तासे निकलती हुई शांतिका अनुभव न किया हो?

---

[1]अप्रकाशित वार्तासे।

और अपने पुत्रके मुखसे दिये बहा उल्लाके अंतःप्रकाश हमारी समझमें और भी ज्यादा अच्छी तरह आते हैं और हमें विश्वास दिलाते हैं क्योंकि वे उन्हें अपने जीवनमें उतार रहे हैं।

शायद आपमेंसे कुछको यह ख्याल आये : "अगर बहा उल्ला इस सौंदर्य-को चरितार्थ कर सकते हैं तो इसका कारण यह है कि वे महापुरुष हैं, लेकिन हम लोग..."

निश्चय ही, हमारा प्रमाद प्रयास करनेसे इंकार करनेके लिये इससे अच्छी युक्ति नहीं ढूंढ सकता, परंतु यह है व्यर्थका बहाना।

निःसंदेह व्यक्ति-व्यक्तिके बीच ऐसा भेद होता है जिसे मिटाया नहीं जा सकता और यह सत्ताओंके अनंत सोपानमें उनकी विशेष भूमिका, उनके स्थान और उसकी स्थितिसे पैदा होता है। लेकिन यह स्थिति या भूमिका कुछ क्यों न हो, उसमें रहते हुए व्यक्ति अपने निजी गुणोंको पूर्णतातक विकसित कर सकता है। हर एक पूर्ण सचाई, पूर्ण पवित्रता और उस गहरी समस्वरताके लिये अभीप्सा कर सकता है जो वैश्व व्यवस्थाके साथ उसका मेल बिठाती है, और यह अभीप्सा करनी चाहिये।

मैं एक ऐसे वृद्ध संतको जानती थी जो हर आदमीकी तुलना ऐसे खनिजसे करते थे जो थोड़ा-बहुत घटिया और थोड़ा-बहुत मूल्यवान् है, लेकिन सभीमें सोना है। इस खनिजको आध्यात्मिकताकी पावन आगमें तपाया जाय तो कुठाली-तलीमें कम या ज्यादा भारी डली मिलेगी जो शुद्ध सोनेकी होगी।

इसलिये हमें अपने अंदर छिपे इस सोनेको मुक्त करना चाहिये।

इसके लिये कितने तरीके बताये गये हैं।

वे सब अच्छे हैं, लेकिन हर एक एक विशेष प्रकारकी मानस और चरित्र-श्रेणीके लिये ठीक है और हर व्यक्तिको यह पता लगाना चाहिये कि कौन-सा उपाय उसके स्वभावके साथ ज्यादा मेल खाता है।

अगर मैं भूल नहीं कर रही तो शायद इसीलिये मिस सेंडरसन अलग-अलग लोगोंसे इस विषयमें अपनी विशेष दृष्टि, या वह उपाय जो उसे सबसे ज्यादा उपयोगी लगता हो, प्रस्तुत करनेके लिये कहती हैं।

आज मेरा इरादा इनमेंसे किसी भी विचारको पूरे विस्तारसे आपके सामने रखनेका नहीं है।

चूंकि हमें यह सिखाया गया है कि कर्म करना हमारा पहला कर्तव्य है और हमारे कर्म हमारे लिये रूपांतरके सबसे ज्यादा सशक्त माध्यम हैं, अतः मैं आपका ध्यान दो प्रकारके कर्मोंकी ओर खींचना चाहती हूं जिन्हें,

मेरी रायमें, वह महत्त्व नहीं मिला है जो अपने और औरोंके संबंधमें मिलना चाहिये।

वे शुद्ध रूपसे मानसिक कार्य हैं, फिर भी बहुत ज्यादा जीवित-जाग्रत, बहुत सशक्त और परिणामतः उन्हें दी गयी दिशाके अनुसार बहुत लाभदायक या बहुत हानिकर होते हैं।

पहला है मानसिक रूपोंके निर्माणकी क्षमता — विचार, और दूसरा कार्य है निद्राकी अवस्थाओंमें हमारी क्रियाशीलता जिसे सामान्यतः स्वप्न कहा जाता है। आप देखेंगे कि यह पहलेके साथ बहुत घनिष्ठ संबंध रखता है।[1]

अति प्राचीन परंपराएं चाहे वे कैल्डियन हों या हिंदू, सदासे यही सिखाती आयी हैं कि विचार रूप हैं। मनुष्य अपने विचारके द्वारा वास्तविक, जीवित-जाग्रत और सक्रिय सत्ताओंको जन्म दे सकता है।

और यह न मानिये कि यह केवल असाधारण और भयंकर साधनों — जिन्हें जादू कहते हैं — के द्वारा ही हो सकता है। ऐसी बात बिलकुल नहीं है।

कोई भी विचार जो जरा मजबूत और आग्रही हो, कोई भी इच्छा जो जरा तीव्र हो — यह भी तो विचारका एक प्रकार है — यांत्रिक रूपमें अपने ही माध्यममें एक ऐसा रूप बना देता है जिसका जीवन-काल और क्रिया करनेकी शक्ति उस विचार या इच्छाकी शक्ति और तीव्रतापर निर्भर हो जिसने उसे जन्म दिया है।

अपनी बातको ज्यादा स्पष्ट रूपसे समझानेके लिये मैं, अभीतक अप्रकाशित, एक दार्शनिक ग्रंथसे कुछ उद्धरण लायी हूं।

"जो कुछ जीवित है वह सारवान और वास्तविक है, लेकिन जो कुछ सारवान है वह जीवित भी है। द्रव्यका हर एक स्तर जीवित शक्तियोंका, वास्तविक रूपोंका लोक है।

"सद्वस्तुको केवल उसी क्षेत्रतक सीमित कर देना जिसे हम देख सकते हैं ऐसा है जैसे विश्व समझको उसकी भौतिक अभिव्यक्तिमें ही सीमित कर देना, समस्त प्रकाशको हमारे दृष्टि-क्षेत्रमें बांध देना।

"फिर भी, ऐसा कोई देश नहीं जहां प्रकाशके कुछ स्पंदन न हों, ऐसी

---

[1] लगता है कि यह भूमिका विचारके विषयमें तीसरी वार्ता और स्वप्न-पर वार्ता से पहले दी गयी थी।

कोई गहराई नहीं है जहां बोधगम्यका तत्त्व उचित रूप नहीं धारण करता।"

"जबतक हम यह कल्पना करते हैं कि संपूर्ण वैश्व सद्वस्तु एक ही श्रेणी-के द्रव्यतक सीमित है, उस स्थितिमें बंद है जिसे हम अपनी इंद्रियोंके द्वारा जानते हैं, तबतक हम कुछ नहीं जानते और कुछ नहीं बतला सकते।

"जब विज्ञानने यह जाननेकी कोशिश की कि प्रकाश क्या है तो उसे गोचर तथ्योंके अत्यंत सीमित देश और अत्यंत सीमित क्षेत्रको तोड़कर बाहर निकलना पड़ा, और उसने ईथर (आकाश) नामक सद्वस्तुकी स्थितिकी धारणा की। परंतु इस स्थितितक पहुंचनेमें, उसने अनंत परात्परकी ओर पहला कदम ही बढ़ाया है....।

"इस तरह, हम यह जान सकते हैं कि सत्ताका वह क्षेत्र जिसे हम जानते हैं वह केवल अभिव्यक्तिका क्षेत्र है, उसके अपने सुदूर और पूर्ववर्ती रूपोंका पूर्ण रूपसे भौतिक जीवनके क्षेत्रमें अंतिम रूप है।..."

"अगर हम विचारोंके द्वारा हर क्षण पैदा किये जानेवाले जीवित बिंबोंको अपने चारों ओर देख पाते, अगर हम उनकी निर्माणशक्तिकी सामर्थ्यकी थाह पा सकते तो हम यह जान पाते कि एक जाति, एक सभ्यता, एक प्रजाके द्वारा एक-दूसरेकी ओर अभिमुख संकल्प और सामूहिक विचारों और मान्यताओंसे क्या-क्या पैदा किया जा सकता है।"

"निश्चय ही सभी विचार समान रूपसे सर्जनशील नहीं होते। वास्तव-में, ऐसे मन कम ही हैं जो सच्चे विचार सोच सकते हैं और अधिकतर वैयक्तिक मानसिक रचनाएं किसी गुमनाम विचारकके बनाये हुए विचारों-के घिसे-पिटे, विकृत रूप होते हैं जो सार्वजनिक संपत्ति बन जाते हैं। वे बौद्धिक द्रव्यमें जो रूप लेते हैं वह प्रायः अनगढ़ और मूर्खतापूर्ण होता है और, इसके अतिरिक्त, टिकाऊ भी नहीं होता।

"लेकिन जैसे ही कोई विचार विचार-शक्ति बन जाता है, सच्ची मानसिक गतिशीलताका रूप लेता है, वह ज्यादा स्थायी और यथार्थ रूपमें अपना नमनीय प्रतिनिधि बनाने और बनाये रखनेके लिये प्रवृत्त होता है। वास्तविक तथ्य यह है कि महान् विचार, बौद्धिक शक्तिका समन्वित समन्वय, अपने अपनाये हुए द्रव्यमें जीवित रचनाएं, और सक्रिय सत्ताएं होते हैं।"

(यहां १० मार्चकी इस वार्तामें माताजीने विचारपर दी गयी तीसरी वार्ताकी कुछ सामग्री दुहरायी थी जिसमें "पैरिस जैसे शहरके मानसिक

वातावरणका वर्णन" भी सम्मिलित है (पृ० ८३) — नीचेके वाक्य "रात" का जिक्र।)

फिर भी हमें उन तारोंको जगाना चाहिये जो एक-एक करके इस रातको प्रकाश देनेके लिये आयेंगे। मानसिक दृष्टिसे यही वह चीज है जिसकी अब्दुल बहा हम सबसे आशा करते हैं। बौद्धिक रूपमें जगत्के सामने उदाहरण बननेका यही रास्ता है।

शायद और कामोंकी अपेक्षा इस कामके लिये इस प्रकारकी सभाओंकी उपयोगिता सबसे बढ़कर है।

दो-एक घंटेके लिये अपने विचारोंको बहुत शुद्ध और उदात्त-भावसे चारों ओर निःस्वार्थ प्रगतिके लिये व्यापक संकल्पमें इकट्ठा करके हम एक ऐसा मानसिक वातावरण बनाते हैं जो अधिकाधिक ज्योतिर्मय और शक्तिशाली होता है। लेकिन यह काफी नहीं है। अगर हम बिना किसी सुरक्षाके इन सभाओंके बाद फिरसे अपरिष्कृत और भारी वातावरणमें डूब जायं तो यह कुछ भी न होगा। क्योंकि भौतिककी तरह मानसिक क्षेत्रमें हम अनुरूप वातावरणके साथ सतत अदला-बदलीमें लगे रहते हैं।

(१० मार्च, १९१२)

एक सभाके बारेमें कुछ नोट

सच्ची सभा कैसी होनी चाहिये।

मंत्रोंके बारेमें पिछले शुक्रवारको श्री बर. की वार्ता।

रामकृष्णके अनुसार दो प्रकारके गुरु:

मंत्र देनेवाले गुरु जो परोक्ष रूपमें आध्यात्मीकरणके साधन होते हैं।

ऐसे गुरु जिन्हें भगवान्के साथ ऐक्यकी गहरी अनुभूति हो चुकी है, जो अपनी उपस्थितिसे ही आध्यात्मिकताका संचार करते हैं — अब्दुल बहा।

एक अकेला आदमी अपनी आध्यात्मिक शक्तिसे जो कर सकता है उसीको एक समुदाय भी प्राप्त कर सकता है, यदि वह सद्भावनाके विचारमें इकट्ठा हो जाय:

कैल्बियन दीक्षा :

"अगर तुम बारह, धर्मपरायणतामें एक हो जाओ तो तुम अनिर्वचनीयको अभिव्यक्त कर सकते हो।"

दलोंपर भी वही विधान लागू होते हैं जो व्यक्तियोंपर लगते हैं।

सामूहिक सुझावोंके कारण अधिक अनुकूल क्षण।

पुनर्नवीकरण : हर वर्षका आरंभ, चाहे जिस तारीखको आरंभ-बिंदु मान लिया जाय।

अपने अंदर यह भाव जगानेका अवसर दिया गया है कि सभी चीजें नयी हो सकती हैं। उन्हें नया करनेका दृढ़ निश्चय।

परिणामतः निश्चित समयपर मिलने और मिलकर अनुकूल निश्चय करनेका उपयोग।

पाठ।

(३ जनवरी, १९१३)

अब्दुल बहाको विदाई

पिछले सोमवारको अब्दुल बहाने हमसे विदा ली और वे कुछ ही दिनोंमें पैरिस छोड़ जायंगे। मुझे मालूम है कि इससे बहुत-से हृदय रिक्तताका अनुभव करेंगे और दुःखी होंगे।

फिर भी, केवल शरीर हमें छोड़ रहा है। और शरीर क्या है? ठीक वही चीज जिसमें छोटे-बड़े, बुद्धिमान् या मूर्ख, पार्थिव या दिव्य, सब एक-से हैं। हां, आप विश्वास रखें कि उनका शरीर ही हमसे विदा ले रहा है, उनका विचार निष्ठापूर्वक हमारे साथ रहेगा और उनका अपरिवर्तनशील स्नेह हमें लपेटे रहेगा, उनका आध्यात्मिक प्रभाव सदा एक-सा रहेगा, बिलकुल वह-का-वही। वह भौतिक दृष्टिसे हमारे पास हैं या हमसे दूर इसका कुछ मूल्य नहीं, क्योंकि आजकल दिव्य शक्तियां भौतिक शक्तियोंके विधानोंसे पूरी तरह बाहर रहती हैं, वे सर्वव्यापक हैं, सदा सभी ग्रहणशील लोगोंको, सभी सच्ची अभीप्सा करनेवालोंको संतुष्ट करनेमें लगी रहती हैं।

यद्यपि हमारी बाहरी सत्ताके लिये उनके भौतिक शरीरको देखना, उन-

की आवाज सुनना, उनकी उपस्थितिमें रहना सुखकर है, फिर भी हमें सचमुच अपने-आपसे कहना चाहिये कि चूंकि हमें यह चीजें अनिवार्य लगती हैं, इससे यह प्रकट होता है कि हम अभीतक आंतरिक जीवन, सत्य जीवनके बारेमें बहुत कम सचेतन हैं।

हम दिव्य जीवनकी अद्‌भुत गहराइयोंको भले न पा सकें, उसके बारेमें विरले ही सतत सचेतन होते हैं, फिर भी विचारके क्षेत्रमें हम देश और कालके नियमोंसे छुटकारा पा लेते हैं।

किसीके बारेमें सोचना उसके पास होना है। दो व्यक्ति चाहे कहीं भी क्यों न हों, चाहे वे भौतिक दृष्टिसे एक-दूसरेसे हजारों किलोमीटर दूर क्यों न हों, अगर वे एक-दूसरेके बारेमें सोचते हैं तो वे बहुत वास्तविक रूपमें साथ होते हैं। अगर हम अपने विचारको काफी एकाग्र कर सकें और अपने-आप पर्याप्त रूपमें उस विचारपर एकाग्र हो सकें तो हम जिसके बारेमें सोच रहे हैं उसके बारेमें समग्र रूपसे सचेतन हो सकते हैं और यदि वह मनुष्य है तो कभी-कभी उसे देख और सुन भी सकते हैं—हर हालतमें, उसके विचार तो जान ही सकते हैं।

इस तरह जुदाई नहीं रहती। यह एक भ्रांतिपूर्ण आयास है और, चाहे फ्रांसमें हो या अमरीकामें, ईरान या चीनमें, हम जिससे प्रेम करते हैं, जिसके बारेमें सोचते हैं, हमेशा उसके पास रहते हैं।

लेकिन यह तथ्य हमारे जैसे मामलेमें और भी ज्यादा वास्तविक हो उठता है जहां हम एक विशेष रूपसे सक्रिय, सचेतन विचारके साथ संपर्कमें आना चाहते हैं। एक ऐसे विचारके साथ जो अनंत प्रेमका रूप लेता और उसे प्रकट करता है, एक ऐसा विचार जो प्रेम-भरी, पिता-तुल्य सहायता करनेकी उत्कंठामें सारी धरतीको अपने अंदर ले लेता है और जो अपने-आपको उसके सुपुर्द कर देते हैं उनकी सहायता करनेमें जिसे हमेशा प्रसन्नता होती है।

इस मानसिक संपर्कका अनुभव कीजिये और आप देखेंगे कि दुःखके लिये कोई स्थान नहीं है।

हर सुबह जागते ही, अपना दिन शुरू करनेसे पहले इस महान् परिवारका प्रेम, सराहना और कृतज्ञताके साथ अभिवादन करो। मानवजातिके ये रक्षक जो हमेशा एकरस होकर आते रहे हैं, आये हैं और कालके अंत-तक आते रहेंगे। अपने भाइयोंके विनम्र और अद्‌भुत सेवकोंके रूपमें, उनके पथ-प्रदर्शक और शिक्षक बनकर आते हैं और आते रहेंगे ताकि उन्हें पूर्णताकी सीधी चढ़ाईपर चढ़नेमें सहायता दें। इस तरह जब तुम जागो तो अपने विश्वास और कृतज्ञता-भरे विचारको उनपर केंद्रित करो। तुम्हें

शीघ्र ही इस एकाग्रताके लाभप्रद प्रभावोंका अनुभव होगा। अपनी पुकारके उत्तरके फलस्वरूप तुम उनकी उपस्थितिका अनुभव करोगे, तुम्हारे चारों ओर, तुम्हारे अंदर उनका प्रकाश और उनका प्रेम होगा। तब जरा ज्यादा अच्छी तरह समझने, जरा ज्यादा अच्छी तरह प्रेम करने, अधिक सेवा करनेका तुम्हारा दैनिक प्रयास अधिक सरल और फलदायक होगा। तुम दूसरोंको जो सहायता दोगे वह ज्यादा प्रभावशाली होगी और तुम्हारा हृदय दृढ़ आनंदसे भर जायगा।

(९ जून, १९१३)

भाग ४

प्रार्थना और ध्यान। कुछ १९१४ और १९१६ के बीच लिखे गये और बाकी बिना तारीखके हैं। वे शायद १९२० से पहले ही लिखे गये थे।

जबतक भौतिक शरीरकी क्रियाएं अहंकार-केंद्रित हैं तबतक यह उचित और आवश्यक है कि चेतनाको उससे अलग किया जाय और शरीरको ऐसा सेवक माना जाय जिसे आदेश देना, राह दिखाना और आज्ञापालक बनाना है। जैसे-जैसे पार्थिव सत्ता भागवत शक्तियोंके प्रति अधिक ग्रहणशील बनती जाय और उन्हें अपने प्रकाशमय कार्योंमें व्यक्त करती जाय, व्यक्ति फिरसे उसके साथ एक हो सकता है और कर्ता तथा करणमें भेद करना बंद कर सकता है। लेकिन चूंकि सुरक्षाकी दृष्टिसे दोनों प्रकारकी क्रियाएं अनिवार्यतः एक साथ रहती हैं इसलिये ये दोनों दृष्टि-बिंदु, अनुभवके ये दोनों प्रकार भी एक साथ रहने चाहिये।

(२४ जुलाई, १९१४)

स्नायविक सत्ताकी सच्ची निर्वैयक्तिकता भागवत संकल्पके प्रति संपूर्ण और निरपेक्ष समर्पणमें नहीं है। यह समर्पण तो केवल तैयारी है। संपूर्ण निर्वैयक्तिकता — चाहे प्राणमें हो या सत्ताके अन्य लोकोंमें — पार्थिव प्राणके साथ तादात्म्यमें या, यूं कहें, सभी संवेदनोंकी गहराईमें और उसी तरह वैश्व क्रियावलीकी गहराईमें स्थित दिव्य आनंदके साथ तादात्म्यमें है। परिणामस्वरूप, संवेदनका आनंद अनुभव करनेकी जगह व्यक्ति संवेदनका उपभोग करनेवाले सभी लोगोंमें स्वयं संवेदन होता है। तब व्यक्तिगत प्राणका अस्तित्व नहीं रहता, लेकिन उसके स्थानपर एक शक्ति होती है जो एक ही साथ निर्वैयक्तिक और सचेतन होती है, जो उन सभी अवयवोंमें अभिव्यक्त होती है जो उसे अनुभव कर सकते हैं।

उदाहरणके लिये, व्यक्ति जब अकेला या किसी ऐसे साथीके साथ जिससे उसका पूरा सामंजस्य हो, ऐसे स्थानोंपर घूमने जाय जहां आदमीका गुजर कम ही होता हो या जो देहातके एकदम अछूते प्रदेश हों, जो मानव वातावरणसे बिगड़े नहीं है, जहां प्रकृति शांत, विशाल, अभीप्साके जैसी शुद्ध, प्रार्थना जैसी पवित्र हो, तो पहाड़ोंपर, वनोंमें, स्वच्छ सरिताओंके किनारे या अपार समुद्रके तटपर घूमनेसे एक सूक्ष्म-सी, मधुर और गहरी अनुभूति होती है। जबतक प्राण वैयक्तिक रहता है, तबतक इस आनंदकी अनुभूति तभी होती है जब अमुक बाह्य शर्तें पूरी की जायं। दूसरी ओर, जब प्राण सचमुच निर्वैयक्तिक हो, वैश्व बन जाय तो व्यक्ति स्वयं, उन लोगोंके अंदर जो इसे अनुभव करते हैं, यह आनंदमय हर्ष बन जाता है। इसका रस लेनेके लिये अमुक विशिष्ट भौतिक परिस्थितियोंसे घिरे रहनेकी जरूरत नहीं।

स्नायविक लोकमें तो व्यक्ति पूरी तरह परिस्थितियोंसे मुक्त रहता है। व्यक्ति मोक्ष पा लेता है।

(३० जुलाई, १९१४)

मैंने लहरोंकी आवाज सुनी और उसने मुझे बहुत-सी अद्भुत चीजोंके बारेमें बतलाया। उसने मुझे जीवनके हर्ष और गतिके आनंदके बारेमें बतलाया। हे सागर, एक अनंत और चिर नूतन गानमें तुमने मुझे फिरसे, सभी चीजोंको सत्य बनानेवाली प्रेमकी शक्तिके बारेमें बतलाया। तुम्हारी अजेय क्रियाकी भव्यताका चिंतन करते हुए मैंने उस अबाध तरंगका दर्शन किया जो विश्वको परम सद्वस्तुकी ओर ले जाती है। जो शक्ति तुम्हें उठाती और तुम्हारी सतहको पहाड़ोंकी तरह ऊंचा कर देती है वह उस शक्तिकी न्याईं है जो संसारको उसके तमस्मेंसे उठाती और भगवान्के लिये अभीप्सामें जगाती है।

जब मैं तुम्हें मौन रूपमें देखती रही तो तुमने और भी गहरी बातें कहीं। तुमने मुझे उस शाश्वत प्रेमके महान् रहस्य बतलाये जो सभी रूपोंमें अपने-आपसे प्रेम करता है और जो सभी क्रिया-कलापमें आत्माभिव्यक्त है। पहलेसे ही मेरी सत्तामें यह अकथनीय प्रेम अपने-आपसे अवगत था, लेकिन उस घड़ी उसके जीवनने एक अपवादिक तीव्रता पा ली, या शायद व्यक्तिगत बोध अपवादिक रूपमें स्पष्ट हो गया। हे वन्दनीय प्रभु, हे संसारके परम स्वामी, तुम सब कुछ होनेके नाते सबके स्वामी हो और हर चीजमें आनंद लेते हो। क्या अपनी शाश्वतताके उस क्षणमें तुमने हमारी ओर ज्यादा घनिष्ठ दृष्टिपात किया था जिससे हम प्रेमकी इस भव्यतामें नहा उठे? या फिर, तुम इस क्षण-भंगुर और सीमित सत्ताके इस तुच्छ यंत्रमें ज्यादा अधिक समर्थ और पूर्ण रूपसे, अधिक तीव्र यथार्थताके साथ, अपनी ही सत्ता और अपनी आत्माभिव्यक्तिका रस लेना चाहते थे? अचानक सब कुछ तुम्हारे सत्यके अनिर्वचनीय सौंदर्यसे प्रकाशित हो उठा और व्यक्तिगत-चेतना के दर्पणमें तुमने अपने प्रेमकी अनंत वैविध्य-भरी आत्माभिव्यक्तिको प्रतिबिंबित किया। दु:ख और सुख एक ऐसे आनंदमें इस तरह घुले-मिले थे कि लगता था उसकी ज्वाला समूची सत्ताको अपने अंदर भस्म कर लेगी। ओह! उन अविस्मरणीय क्षणोंमें, तुम्हारे अपने इस अंशने, जिसने उस स्फटिकका रूप धारण किया है जिसे मैं अपनी सत्ता कहती हूं, तुम्हें कितनी अच्छी तरह समझा था, कितनी शक्तिके साथ तुमसे प्रेम किया था। विचार और संवेदनकी सभी बाधाएं लुप्त हो गयी थीं, तुम्हारी दिव्य अग्निके उत्ताप-

ने उसे भस्म कर दिया था। और वास्तवमें उस क्षण तुम ही सब चीजों-के अंदर अपनी शाश्वत और अनंत उपस्थितिमें आनंद ले रहे थे। तुम ही अक्षय और सदा गतिशील सामंजस्यमें समस्त क्रिया-कलाप और अव-रोध थे, सभी विचार और संवेदन थे, प्रेमी भी तुम थे और प्रेमपात्र भी तुम ही थे, देनेवाले भी तुम थे और लेनेवाले भी तुम ही थे।

मैंने लहरोंका संगीत सुना, उसने मुझे बहुत-सी अद्‌भुत बातें बतलायीं. . .।

(मार्च-अप्रैल, १९१५)

जो लोग अपने अनित्य, समग्र जीवनसे अधिक-से-अधिक फल पाना चाहते हैं उनके लिये वर्तमान क्षणकी तुष्टिको अपने आदर्शकी उपलब्धिके लिये त्यागनेकी विधि जानना बहुत बड़ी कला है।

"सफल" लोगोंकी अनगिनत श्रेणियां हैं। उन श्रेणियोंका निर्णय उनके आदर्शका कम या अधिक विशालता, उदात्तता, जटिलता, पवित्रता और प्रकाशके अनुसार होता है। कोई फटे-पुराने कपड़े बटोरने और बेचनेमें "सफल" हो सकता है तो कोई समस्त संसारका मालिक या फिर पूर्ण बैरागी होनेमें सफल हो सकता है। इन तीनों उदाहरणोंमें, यद्यपि वे एक-दूसरेसे बहुत अलग स्तरोंके हैं, व्यक्तिका न्यूनाधिक रूपमें पूर्ण और विस्तृत संयम ही "सफलता"को संभव बनाता है।

दूसरी ओर "असफल" होनेका बस एक ही मार्ग है और यह बड़े-से-बड़ों, सर्वश्रेष्ठ बुद्धिमानोंके लिये तथा साथ ही छोटे-से-छोटे तथा अत्यंत वुद्धिवालोंके साथ, उन सबके साथ होता है जो वर्तमानके संवेदनको अपने अभिप्रेत लक्ष्यके अधीन नहीं कर सकते। वे लक्ष्य तो चाहते हैं, पर उसका मार्ग अपनानेका बल नहीं होता उनमें। उपलब्धितक ले जानेवाला मार्ग अपने विस्तार और जटिलतामें तो नहीं, पर प्रकृतिमें सबके लिये समान होता है।

एक छोरपर है वह व्यक्ति जिसने जो कुछ सोचा था वह सब पूरी तरह पा लिया और दूसरे पर है वह जो कुछ भी पानेमें असमर्थ रहा। इन दोनोंके बीच असीम मध्यवर्ती श्रेणियां हैं। ये श्रेणियां बहुत जटिल हैं क्योंकि लक्ष्यकी उपलब्धिमें बहुत सारे दरजे ही नहीं हैं, बल्कि स्वयं लक्ष्यके गुणोंमें भी बहुत भेद हैं। कुछ ऐसी महत्त्वाकांक्षाएं हैं जो केवल निजी हितों, भौतिक, भावनागत या बौद्धिक हितोंकी खोज करती हैं। कुछ अन्य ऐसी हैं जिनके लक्ष्य अधिक व्यापक, अधिक सामुदायिक

या ज्यादा ऊंचे होते हैं। और फिर कुछ ऐसे लक्ष्य भी हैं जो, हम कह सकते हैं, मनुष्यसे ऊपरके हैं, जो उन शिखरोंपर चढ़ना चाहते हैं, जो शाश्वत सत्य, शाश्वत चेतना और शाश्वत शांतिकी भव्यताओंमें जा खुलते हैं। यह समझना तो आसान होगा कि व्यक्तिके प्रयास और त्याग उसके चुने हुए लक्ष्यकी विशालता और उच्चताके अनुरूप होने चाहिये।

अत्यंत सामान्यसे लेकर सर्वथा लोकातीततक, किसी भी स्तरपर, उस व्यक्तिको जिसने कोई लक्ष्य चुना हो, कदाचित् ही आत्म-संयम और उपलब्ध यज्ञ-शक्तिके योगफल और हर प्रकारके त्यागके योगफलमें पूर्ण संतुलन मिलता होगा।

जब किसी व्यक्तिकी संरचना इस पूर्ण संतुलनको संभव बनाती है तो यह पार्थिव सत्ता अपना अधिक-से-अधिक परिणाम लाती है।

(२३ अप्रैल, १९१५)

कभी-कभी तुम मेरी सत्तामें एक सुलगता हुआ अग्नि-कुंड चेता देते हो और उन अवसरोंपर उसे सब कुछ, सबसे श्रेष्ठ, सर्वोच्च परम उपलब्धियां और साथ ही सबसे अधिक धुंधली और सर्वसामान्य उपलब्धियां संभव दीखती हैं....।

इस उद्‌बुद्ध अग्नि-कुण्डके बिना सत्ता राखके ढेर जैसी होती है। हे प्रभो, तुम उसे कभी-कदास ही सुलगाते हो। क्या इस दुर्बल यंत्रको बचाये रखनेके लिये ?

मन प्रश्न करता है, लेकिन समग्र सत्ता संतुष्ट है और वही चाहती है जो तुम चाहते हो।

लेकिन वह जानती है कि वह तुम्हारी सक्रिय 'उपस्थिति'के बिना दीन, दरिद्र, वसनहीन और व्यर्थ है।

और उसके लिये वह सदा पुकारती है और प्रतीक्षा करती है।

(९ दिसंबर, १९१६)

नीरवता आती है और अभीप्साकी अग्नि चेत उठती है। शरीर ऊष्मासे व्याप्त हो जाता है। और इस ऊष्मामें रूपांतरके लिये आनंदपूर्ण आवेग होता है। दिव्य सामंजस्यका गान सुनायी देता है, स्थिर, शांत और मुस्कराहट-भरी स्वरसंगति है। वह लगभग अगोचर होते हुए शक्तिसे भरी है। तब नीरवता लौटती है, अधिक गहरी, अधिक विशाल, हां,

अंततक फैली हुई। और सत्ता देश और कालकी सीमाओंके परे अस्तित्व रखती है।

हे मेरे मधुर प्रभो, मेरे प्रियतम भगवान्, मेरी समस्त सत्ता एक अबाध प्रवाहमें तुम्हें पुकारती है: "मैं तुमसे प्रेम करती हूं! मैं तुमसे प्रेम करती हूं! मैं तुमसे प्रेम करती हूं!"... और इस प्रेमको कोई वाणी व्यक्त नहीं कर सकती। सारी सत्ता तीव्रतासे अनुप्राणित होकर धधक रही है। हां, केवल मेरा हृदय जो इतनी बार निराश हो चुका है, इतनी बार क्रूरतापूर्वक धोखे खा चुका है, भीरुताके साथ फुसफुसाता है: "तुम भी वैसा तो न करोगे जैसा मनुष्योंने किया है? तुम इस प्रेमको अपने अयोग्य या बहुत दुःसह कहकर ठुकरा तो न दोगे?" हे संदेहशील हृदय! क्या तू नहीं देखता कि स्वयं आराध्य ही तेरे अंदर प्रेम करता है और कभी न बुझनेवाली इस अग्निमें आहुतियां देता है? अब और भीरुता नहीं, अब व्यर्थका अलगाव नहीं...। भूतकाल स्वप्नकी तरह गुजरता जाता है। जो कुछ बच रहता है वह है भव्य 'वर्तमान' जो महान् 'नित्यता'से बना है...। हे मेरे प्रियतम भगवान्, तुमने मुझे अपनी भुजाओंमें — अत्यंत प्रबल और कोमल भुजाओंमें समो लिया है। अब तुम्हारे दिव्य 'आनंद'के सिवा कुछ है ही नहीं।

कला स्नायविक जगत्की मानव भाषा है जिसका उद्देश्य है उस भगवान्को सूचित और अभिव्यक्त करना जो संवेदनके क्षेत्रमें सौंदर्यके रूपमें प्रकट होते हैं।

इसलिये कलाका उद्देश्य है उन लोगोंको, जिनके लिये वह निर्दिष्ट है, परम सद्वस्तुके साथ अधिक मुक्त और अधिक पूर्ण संपर्कमें लाना। इस परम सद्वस्तुके साथ पहला संपर्क हमारी चेतनामें सत्ताके विशाल और शांत आनंदकी पूर्णताके खिलनेमें प्रकट होता है। कला तभी सफल होती है जब वह दर्शकको अनंतके साथ इस तरहका संपर्क दे सके, वह कितना भी क्षणिक क्यों न हो। तभी वह अपने उद्देश्यको पूरा करती है और अपने-आपको अपने लक्ष्यके उपयुक्त सिद्ध करती है।

अतः कोई भी कला, जिसने सदियोंतक लोगोंको प्रभावित किया और आनंद दिया है, रद्द नहीं की जा सकती। उसने कम-से-कम आंशिक रूपमें अपना लक्ष्य पूरा किया है। वह लक्ष्य है — जिसे व्यक्त करना है उसकी सशक्त और न्यूनाधिक रूपमें पूर्ण अभिव्यक्ति।

जो चीज एक राष्ट्रकी संवेदनशीलताको, दूसरे राष्ट्रद्वारा किसी एक या दूसरी कलामें मिलनेवाले आनंदमें रस लेनेसे रोकती है, वह है स्नायविक सत्ताकी अभ्यासगत सीमा। स्नायविक सत्ता भगवान्‌को देख सकनेमें मानसिक सत्तासे भी बढ़कर स्वभावतः ऐकांतिक है। जब वह किसी रूप-विशेषके द्वारा भगवान्‌से नाता जोड़ पाती है तो उसके अंदर संवेदनके अन्य रूपों द्वारा उन्हें पहचाननेमें लगभग अप्रतिरोध अनिच्छा दिखायी देती है।

यह "मैं" कौन है जो समय-समयपर अनंतकी चेतनाके ठीक बीचमें अपनी सीमाओंको देखते हुए बोलता है? यह एकाग्रताका वह बिंदु है जहां परेका संकल्प व्यक्तिगत रूपमें सचेतन होता है ताकि वह पार्थिव यंत्रद्वारा अभिव्यक्त हो सके। संक्षेपमें कहें तो यह यंत्र और कर्ताके विचारके बीच व्यक्तिके रूपमें मध्यस्थ है, एक प्रकारका न्यूनाधिक कुशल हाथ है। "मैं" अपने-आपको वर्तमान अभिव्यक्तिके वर्तमान रूप — आकार, शरीर, परिवेश, शिक्षा, संवेदनकी अनुभूतियां — से बिलकुल मुक्त जानता है। वह सर्वका संघटक तत्त्व, विश्वका अत्यंत क्षुद्र अंग है। अहंके रूपमें 'मैं'की अवधि विश्वकी अवधिके साथ एक और उसपर निर्भर है। वह जानता है कि केवल वही जो अहं नहीं है इस निर्भरतासे मुक्त हो सकता है और नित्य हो सकता है। यह अहं जानता है कि वह अचिंत्य तत्‌के प्रति पूर्ण रूपसे समर्पित है और उसी तत्‌के द्वारा परिचालित है, इसलिये वह यह नहीं कहता: "मैं चाहता हूं।" वह कहता है: "मुझे ऐसा चाहना है" या "मुझसे ऐसी चाह करवायी जाती है।" वह अपने शाश्वत स्वामीके प्रति, इस अस्थायी यंत्रके स्वामीके प्रति समर्पित रहता है और यह जानता है कि वह जिस कार्यके लिये उत्पन्न किया गया था उसके साथ-ही-साथ गायब हो जायगा। वह उसे खुशीके साथ पूरा करता है, न तो खतम करनेके लिये उतावली होती है, न उसे लंबानेकी इच्छा।

भाग ५

“टिप्पणियां और विचार” इस शीर्षकके साथ माताजीके हस्तलिखित कागजोंसे प्राप्त।

भगवान्‌की ओर आरोहणके रहस्योंके बारेमें

इतिहासकी घटनाओंका मूल्यांकन करनेके लिये कुछ दूरीकी जरूरत है। इसी तरह अगर तुम भौतिक संभावनाओंसे काफी ऊपर उठ सको तो तुम समस्त पार्थिव जीवनको समग्र रूपमें देख सकोगे। उस क्षणसे यह अनुभव करना आसान है कि मानव जातिके सभी प्रयास एक ही लक्ष्यकी ओर अभिमुख हैं।

यह ठीक है कि व्यक्तिगत रूपसे हो या सामूहिक रूपसे, मनुष्य वहांतक पहुंचनेके लिये बहुत अलग-अलग रास्ते अपनाते हैं। उनमेंसे कुछ इतने टेढ़े-मेढ़े चलते हैं कि पहली दृष्टिमें लगता है कि वे लक्ष्यकी ओर जानेकी जगह उससे परे जा रहे हैं। लेकिन सभी जाने-अजाने, तेजीसे या धीरे-धीरे जा रहे हैं उसी ओर।

तो यह लक्ष्य है क्या ?

वह मनुष्यके जीवनके उद्देश्य और विश्वमें उसके हेतुके साथ एक है।

लक्ष्य: "उसे चाहे कुछ नाम दे लो, बुद्धिमानोंके लिये वह सभी नामों-वाला है।"

चीनियोंका ताओ, हिंदुओंका ब्रह्म, बौद्धोंका धर्म, हर्मीजका शुभ, प्राचीन यहूदियोंके अनुसार वह जिसे कोई नाम नहीं दिया जा सकता, ईसाइयोंका खुदा, मुसलमानोंका अल्लाह, जड़वादियोंका न्याय, सत्य।

— मानव जीवनका हेतु है 'उसके' बारेमें सचेतन होना।

— उसका उद्देश्य है 'उसे' अभिव्यक्त करना।

— सभी धर्म, सभी संतोंकी शिक्षा इस लक्ष्यतक पहुंचनेके उपायोंसे भिन्न कुछ नहीं है।

— उन्हें तीन मुख्य श्रेणियोंमें बांटा जा सकता है।

— पहली — बौद्धिक उपाय : 'सत्य'के लिये प्रेम, 'निरपेक्ष'की खोज। विवेक, अध्ययन, मनन, विश्लेषण, विचारके संचय और एकाग्रताके द्वारा तुम व्यक्तित्वके भ्रमसे छुटकारा पा जाते हो। वह है एक द्रव्यमें — जो अपने-आपमें एक आभाससे बढ़कर कुछ नहीं है, ईथर या आकाशका घन रूप मात्र है — चक्कर लगाते हुए परमाणु।

जब हम 'मैं' कहते हैं तो हम किसकी बात करते हैं? शरीरकी, संवेदनोंकी, भावनाओंकी, विचारोंकी? इनमेंसे किसीमें स्थिरता नहीं है। सातत्यका आभास एक कठोर नियतिसे आता है जो सत्ताके हर एक क्षेत्रपर लागू

होता है। और इस नियतिमें जितने आंतरिक कारण होते हैं उतने ही बाह्य कारण भी घुस आते हैं। तब फिर 'स्व' कहां है? यानी, कोई स्थायी, निरंतर, हमेशा एकरस तत्त्व कहां है? उसे पानेके लिये, इस निरपेक्षको पानेके लिये हमें गहराईसे गहराईकी ओर, सापेक्षतासे सापेक्षताकी ओर बढ़ना चाहिये। क्योंकि जो कुछ धारण किये हुए है वह सापेक्ष है जबतक कि हम 'वहां' नहीं पहुंच जाते जो हमारी तर्क-बुद्धिके लिये 'अचिंत्य', हमारी वाणीके लिये 'अकथ्य' है, पर तादात्म्यके द्वारा ज्ञेय है क्योंकि हम 'उसे' अपने अंदर लिये रहते हैं, वह हमारी सत्ताका केंद्र और उसका जीवन है।

— दूसरा तरीका: भगवान्‌का प्रेम। यह उन लोगोंका तरीका है जिनमें धार्मिक भाव विकसित है।

सभी चीजोंके भागवत 'सार तत्त्व'के लिये अभीप्सा, जिसे हमने संपूर्ण प्रदीप्तिके क्षणोंमें देखा है।

. और तब इस भागवत 'सार तत्त्व'के प्रति आत्म-निवेदन, इस 'शाश्वत धर्म'के प्रति हर क्षण, हर क्रियामें समग्र आत्म-दान, संपूर्ण समर्पण। अब व्यक्ति केवल एक विनीत यंत्र, 'परम प्रभु'के सामने एक आज्ञाकारी सेवक रह जाता है। 'प्रेम' इतना पूर्ण हो जाता है कि वह उन सब चीजोंसे अनासक्ति पैदा कर देता है जो निरपेक्ष ब्रह्म और उनपर पूर्ण एकाग्रता नहीं है।

"और इसके अतिरिक्त इससे भी ऊपर उठना असंभव नहीं है क्योंकि स्वयं प्रेम भी प्रेमी और प्रेम पात्रके बीच अवगुंठन बन जाता है।"

तादात्म्य

तीसरा उपाय — मानव जातिके लिये प्रेम।

मानव जातिके अत्यधिक दुःख-दर्दके तीव्र प्रत्यक्ष ज्ञानके और एक स्पष्ट दृष्टिके परिणामस्वरूप इस दुःख-दर्दको समाप्त कर देनेके लिये अपने-आपको पूरी तरह समर्पित कर देनेका संकल्प उठता है।

चाहे कितनी भी कम मात्रामें क्यों न हो, औरोंकी सहायता करनेके लिये अपने समस्त विचार, अपनी समस्त शक्ति, अपने सारे क्रिया-कलाप अर्पित कर देनेमें आत्म-विस्मृति।

—"करुणासे उमड़ते हृदयोंके साथ दुःख-पीड़ित संसारमें जाओ, प्रशिक्षक बनो, जहां कहीं अविद्या-अंधकारका राज्य है वहां ज्योति जगाओ।"

समर्पण मानव जातिके प्रति चार क्षेत्रोंमें अभिव्यक्त होता है। तुम औरोंको चार तरहसे दे सकते हो:

भौतिक उपहार। बौद्धिक उपहार: ज्ञान। आध्यात्मिक उपहार: सामंजस्य

सुंदरता, लय। संपूर्ण उपहार उन्हीं लोगोंके द्वारा चरितार्थ किया जा सकता है जिन्होंने तीनों मार्गोंका अनुसरण किया है, जिन्होंने अपने अंदर विकासके सभी तरीकोंका, शाश्वतके बारेमें सचेतन होनेका, उदाहरणके उपहारोंका समन्वय कर लिया है। एक ऐसा उदाहरण जो आत्म-चेतन नहीं है, तुम उदाहरण बनते हो क्योंकि तुम हो, क्योंकि तुम 'शाश्वत दिव्य चेतना'में निवास करते हो।

दो समान्तर गतियां

व्यक्तिके विकासमें दो समांतर गतियां होनी चाहिये और चूंकि वह साधारणत: इन दोमेंसे केवल एकपर एकाग्र होनेके लिये दूसरीकी उपेक्षा करता है इसलिये उसकी प्रगति इतनी रुकती हुई और असंतुलित होती है।

इन गतियोंमेंसे एक है अपनी सत्ताके सभी संघटक तत्त्वोंके बारेमें सचेतन होना। भौतिक और संवेदी, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक तत्त्वोंके बारेमें सचेतन होना। हमें अपने अंदर जीवनकी यंत्र-रचनाओंसे, उसकी सभी प्रवृत्तियों, उसके गुणों, उसकी क्षमताओं और विभिन्न गतियोंके साथ बहुत निष्पक्ष रीतिसे परिचित होना चाहिये, अर्थात्, भले-बुरेके पूर्व-निर्धारित विचारके बिना, क्या बच रहना चाहिये और किसे गायब हो जाना चाहिये, किसे प्रोत्साहित करना और किसे दबा देना चाहिये, के बारेमें किसी निरपेक्ष या मनमाने निर्णयके बिना (क्योंकि हमारे निर्णय अनिवार्य रूपसे स्पष्ट दृष्टिरहित होते हैं) परिचित होना चाहिये। हम क्या हैं इसके बारेमें हमारी दृष्टि वस्तुनिष्ठ और पक्षपातहीन होनी चाहिये, अगर हम चाहते हैं कि वह सच्ची और संपूर्ण हो। हम एक ऐसे जगत्‌के सामने खड़े हैं जिसका हमें छोटे-से-छोटे ब्योरेमें अन्वेषण करना है, एक पूर्णत: मानसिक अवैयक्तिक वैज्ञानिक वृत्तिके साथ, अर्थात्, बिना किसी पूर्व निर्णयके उसे अधिके-से-अधिक अस्पष्ट और छोटे-से-छोटे तत्त्वमें भी जानना है।

हम चाहे कुछ सोचें, अवलोकन, विश्लेषण और अंतर्दर्शनका यह काम कभी पूरा नहीं होता। हर हालतमें, हम जबतक धरतीपर, भौतिक शरीर-में हैं, तबतक हमें सदा इस अत्यधिक जटिल सत्ताका, यानी, अपना अध्ययन

करना चाहिये ताकि कोई भी तत्त्व हमारे ज्ञान और इसी कारण हमारे अधिकारसे बच न रहे। हम उसी चीजको वशमें कर सकते हैं जिसे हम जानते हैं और उसीपर प्रभुत्व पा सकते हैं जो हमारे वशमें हैं।

अब हम दूसरी गतिपर आते हैं जो पहलीके साथ-ही-साथ और उसके समान्तर रहनी चाहिये। यह है निवेदन, जो कुछ हमारे अधिकारमें हो उसका परम प्रभु और भागवत विधानके प्रति निरंतर और निरंतर रूपसे दोहराया जानेवाला समर्पण।

प्रत्येक तत्त्व जो अपने बारेमें सचेतन हो गया है, हर वृत्ति, हर क्षमता-को सत्ताके शाश्वत सार-तत्त्वके परम मार्ग-दर्शनके प्रति एक बच्चेके सरल विश्वासके साथ समर्पित होना चाहिये। वही शक्ति इन सब तत्त्वोंकी व्यवस्था और वर्गीकरण करेगी और इनका उचित रूपसे उपयोग करेगी। वही और केवल वही उन चीजोंको अलग कर सकती है जो उपयोगमें आ सकती हैं और नहीं आ सकतीं, जिन्हें प्रोत्साहन देना चाहिये और जिन्हें अलग कर देना चाहिये। और निस्संदेह, उसके सामने हर चीजका मूल्य एक समान है, हर चीजका उपयोग हो सकता है क्योंकि उसके संकल्पसे सब कुछ बदल सकता है, प्रकाशमान और रूपांतरित हो सकता है, जो कुछ उस दिव्य शक्तिके बारेमें सचेतन होता है और अपने-आपको उसके अर्पण कर देता है, वही बन जाता है और इस तरह शुभ-अशुभकी सभी धारणाओंसे बच निकलता है जो शुद्ध रूपसे बाह्य और मानवीय हैं।

इन गतियोंमेंसे एक गति, इन वृत्तियोंमेंसे एक वृत्ति दूसरीके बिना अपूर्ण और एकपक्षीय है। अपनी सत्ताको परम तत्त्वपर पूरी तरह एकाग्र करना पर्याप्त नहीं है। इस तरहके सब तत्त्व जिन्हें हम नहीं जानते और जिन्हें हमने वशमें नहीं किया है इस निवेदनसे बच निकलते हैं और इस तरह शाश्वत विधानके अनुसार चलनेकी जगह, अपना ही विधान अपनाते हैं और ऐसे व्यक्तिमें हर प्रकारकी अव्यवस्था, हर प्रकारके अप्रत्याशित विद्रोहका स्रोत बनते हैं जिसने अपने-आपको पूरी तरह भागवत विधानका सेवक माना था। लेकिन वह अपनी सत्ताके उन अज्ञात कोनोंको भूल गया था जिन्हें जीवन और क्रियाशीलतापर उतना ही अधिकार है, वे भी अपनी बारी आनेपर अभिव्यक्त होते हैं। वे चूंकि केंद्रीय संकल्पसे बच निकलते हैं इसलिये उनकी सारी क्रियाशीलता सत्ताके संबंधमें अव्यवस्थित और समन्वयहीन होती है।

इसके विपरीत, अपने छोटे-से-छोटे ब्यौरेमें भी अपने बारेमें सचेतन होना व्यर्थ और निष्फल है, बल्कि खतरनाक है यदि यह ऐसी व्यवस्थाके लिये न किया जाय जिससे भागवत सार-तत्त्व इन सब तत्त्वोंका सर्वसमर्थ

शासक बन सके, अगर हम उनका भगवतीके चरम मार्ग-दर्शन और परम विधानके प्रति निष्कपट और अबाध समर्पण न प्राप्त कर सकें।

इन दोनों वृत्तियोंका संतुलित ऐक्य होनेपर ही मनुष्य अपने-आपको शाश्वतका सच्चा और संपूर्ण सेवक कह सकता है।

परम ज्योतिकी ओर

कुछ लोग, प्रायः सब, अपने संवेदनोंमें जीते हैं। यहांतक कि वे केवल अपने वर्तमान क्षणके बारेमें ही सचेतन होते हैं। इन्हें अपने सारे जीवनकी चेतना सिखानी चाहिये और यह बताना चाहिये कि वे जो कुछ अनुभव करते हैं वह अस्थायी है और वह उनके जीवन-कालमें अनगिनत विपरीत संवेदनोंके द्वारा प्रतिस्थापित किया जायगा।

(मोम बत्ती)

जो अपने संपूर्ण जीवनके बारेमें सचेतन हो गये हैं उन्हें अपनी चेतनाको पृथ्वीकी चेतनाके साथ एक करना सिखाना होगा (अपनी सत्ताकी गहराइयोंमें प्रवेश करना जो पार्थिव नियतियोंके साथ एक है) — धरतीके जीवन-कालकी तुलनामें एक जीवनकी अवधि है ही क्या?

(गैसकी रोशनी)

जो पार्थिव जीवनके बारेमें सचेतन हो गये हैं उन्हें अपनी चेतनाका वैश्व चेतनाके साथ तादात्म्य करना सिखाना होगा, अपने अंदर वह चीज खोजनी होगी जो विश्वके साथ एक है और तबतक रहेगी जबतक विश्व है। (समस्त विश्वके जीवन-कालकी तुलनामें धरतीकी अवधि क्या है? एक श्वास!)

(बिजलीकी रोशनी)

जो वैश्व जीवनके बारेमें, उसके सब रूपोंमें सचेतन हो गये हैं, उन्हें 'उस' चेतनाके साथ तादात्म्य साधना सिखाना होगा जो शाश्वत है, जो अनादि और अनंत है, जो स्थायी और अक्षर है, जिसके परे कुछ नहीं।

और उनके लिये कभी न बुझनेवाली ज्योति जगेगी।

('परम ज्योति')

तीन स्वप्न

१

हम एक इतने ऊंचे पहाड़की चोटीपर थे कि घाटियां दिखायीतक न देती थीं। आकाश बिलकुल स्वच्छ और नीरंग था। पर्वत शिखरपर हरी-भरी चरागाहें थीं। इन चरागाहोंमें गौओंके चार झुंड चर रहे थे। उनकी देखभाल चार रखवाले कर रहे थे। ये झुंड एक-दूसरेसे प्रायः समान दूरीपर थे और इस तरह लगभग सम-चतुष्कोण बना रहे थे। हर रखवालेका अपना ही रूपरंग था, अपनी ही विशेषता थी। "वे" (भगवान्) कोई चीज खोज रहे थे जिसे 'वे' प्रकट करना और प्रभावशाली बनाना चाहते थे और इसके लिये अमुक तत्त्वोंकी कमी थी। ये तत्त्व पर्वतके उस पार पड़े थे। 'वे' मुझसे पूछ रहे थे कि क्या इन्हें वहांसे लानेका कोई उपाय है? प्रश्न ऊंची आवाजमें किया गया था और जो गल्ला हमारे सबसे नजदीक था उसकी गायें 'उनकी' तरफ खुशीसे रंभाती हुई बढ़ चलीं। जो आदमी उनके आगे था वह लंबा, मजबूत, गठीला था। वह चमड़ेके कपड़े पहने हुए था। उसकी चमड़ी सफेद और बहुत ज्यादा बालोंसे भरी थी। उसके बाल काले और झबरे थे और उसका चेहरा चौखूंटा था। वह 'उनकी' ओर गया और 'उनसे' ऊंची आवाजमें बोला: "मैं अपने-आपको पूरी तरह आपकी सेवामें अर्पित करता हूं। मेरी गौएं आपकी सेवा करना चाहती हैं और मैं भी। मैं इन्हें उस जगह ले जाऊंगा जहां ज्ञानके वे तत्त्व पड़े हैं जिन्हें आप पाना चाहते हैं। हम उन्हें आपके पास ले आयेंगे।"

जब वह बोल रहा था तो उसी पंक्तिमें दायीं ओरका गल्ला आगे आया। उसका रखवाला उत्सुकताके कारण सुनने आया था। वह लंबा, दुबला, सज-धजके कपड़े पहने हुए था। उसकी त्वचा चिकनी थी, चेहरा लँबोतरा अंडाकार था और उसके बहुत काले और रेशमी बाल कंधोंपर फैले थे। उसके कपड़ोंका एक भाग लाल था, लेकिन और भी कई रंग थे। वह स्नेही और मित्रतापूर्ण था। परंतु उसने अपनी सेवाएं अर्पित नहीं कीं।

(२ अगस्त, १९१४)

२

हम अपने लक्ष्यकी ओर ले जानेवाले चौड़े, सफेद राजमार्गपर बढ़ते चले जा रहे थे। जहां रास्ता फटता है वहां हमने बहुत-से भयभीत लोगोंको इकट्ठा होते और एक-दूसरेके साथ सटते देखा। हम आगे बढ़ते जा रहे थे और हमें आश्चर्य हो रहा था कि यह सब क्यों हो रहा है। सफेद कपड़े पहने हुए एक गड़रियेने हमें आवाज दी और हमें भी औरोंके साथ सड़कके किनारे लोगोंके साथ जा मिलनेके लिये कहा। हमारे प्रश्नके उत्तरमें उसने कहा: "गौओं और सांडोंका एक बहुत बड़ा झुंड अभ्रीतक बंदी रखा गया था। अब उन्हें छोड़ देनेका समय आ गया है, जो रस्सा उन्हें रोके हुए है वह हटा दिया जायगा। वे आक्रमण करेंगे और संभवतः अपने रास्तेमें पड़नेवाली हर चीजको नष्ट कर देंगे।" मैं उत्तर देती हूं: "ये जानवर निश्चय ही बलसे भरपूर हैं और कभी-कभी इनमें अंधी हिंसा भी दिखायी देती है, लेकिन हम दोनोंकी तरह जो लोग सीधे रास्तेपर चले जा रहे हैं कोई भयकी बात नहीं है। सांडोंने हमें कभी कोई हानि नहीं पहुंचायी।" लेकिन गड़रिया आग्रह करता है, कहता है कि यह वास्तवमें अपवादरूप और अभूतपूर्व चीज है। हम उसे नाराज न करना चाहते थे इसलिये रुककर भीड़के आगे, सड़कके किनारे खड़े हो गये। लेकिन उसने फिर आग्रह किया: "वहां नहीं, वहां नहीं, वहां आप लोग कुचल दिये जायंगे, इधर, पीछे।" और वह हमें औरोंके पीछे, सड़कके किनारेके पीछे खड़ा कर देता है।

उसी समय, दूरीपर गायों और सांड़ोंका एक बहुत बड़ा झुंड दिखायी देता है, जो रस्सा उन्हें रोके हुए था वह उठा लिया जाता है और वे उमड़ पड़ते हैं। वे नाककी सीधमें दौड़ते हैं। अगर कोई उनके रास्तेमें होता तो वे निश्चय ही उसे कुचल डालते। जब सब गुजर गये तो झुंडके नेताको छोड़ा गया। उसे अंतके लिये रखा गया था। वह एक भव्य, विशाल, सफेद सांड है। वह औरोंकी राह पकड़नेकी जगह दायीं ओरको, हमारे सामने मुड़ता है और उतारका रास्ता अपनाता है। क्षण-भरके बाद वह रुक जाता है, किसी चीजको ढूंढता है, उसे नहीं पाता, लौटता है और अंतमें ठीक मेरे सामने खड़ा हो जाता है। तब मैं देखती हूं कि यह तिहेरा सांड है, तीन सांडोंसे मिलकर बना जो बहुत पास-पास एक साथ बंधे हैं। तीनमेंसे एक (शायद बीचका) बाकी दोनोंसे कुछ कम सफेद था। मेरी बायीं ओर एक पुजारी था जो इस विशालकाय पशुको हमारी ओर दौड़ते हुए और मेरे आगे ठहरते हुए देखकर बहुत ही ज्यादा डर

गया। वह डरके मारे बेचैन होकर इधर-उधर फिरने लगा। तब मैंने उससे कहा: "भगवान्‌पर तुम्हारी श्रद्धा कहां गयी? अगर भगवान्‌ने निश्चय किया है कि तुम इस सांडके द्वारा कुचले जाओ, तब भी क्या तुमको यही लगेगा कि उनकी इच्छा अच्छी नहीं है?" वह शरमाया हुआ-सा यह कोशिश करता है कि अपने-आपको बहादुर दिखलाये। वह सांडसे बातें करने लगता है और उसके थूथनेपर दोस्तीसे हाथ फेरता है। लेकिन वह बलवान् पशु धीरज खो रहा था और मैं सोच रही थी: "अपने डरके कारण यह मूर्ख सचमुच संकट पैदा करके रहेगा।" मैंने भगवान्‌की ओर मुड़ते हुए कहा: "ज्यादा अच्छा है कि हम यहांसे चल पड़ें।" और सांड-की कोई परवाह किये बिना हम फिरसे अपनी राहपर चल पड़े। हम रास्तेपर कुछ ही कदम चले होंगे कि हमने शांत, बलवान् सांडको चुपचाप अपने पाससे गुजरते देखा। जरा आगे चलकर मैंने उल्टी दिशामें आते हुए एक और सांडको देखा। यह भूरा ललछौंहा था। इसका चेहरा जंगली और भयंकर दीखता था। वह बड़े-बड़े सींग आगे किये हुए दौड़ रहा था। मैंने अपने कुछ कदम पीछे चलते हुए "उन" की तरफ मुड़कर देखा और उनसे कहा: "यह सचमुच भयंकर प्राणी है। यह जो अकेला है और औरोंसे उल्टी दिशामें चल रहा है, इसके इरादे खराब हैं। यह हमें देख भी नहीं पाता क्योंकि हम सीधे रास्तेपर और सुरक्षित हैं। लेकिन मुझे औरोंके लिये बहुत डर है।" और जरा आगे चलकर हमें टापें सुनायी दीं मानों वह भयानक सांड औरोंके साथ वापिस आ रहा था। मुझे लगता है कि लक्ष्यपर पहुंच जानेका समय हो गया। उस समय रास्ता बंद मालूम होता है। हमारे सामने एक दरवाजा है जिसे मैं खोलना चाहती हूं, लेकिन मेरा हाथ मूठपरसे फिसल जाता है, और मैं उसे घुमा नहीं सकती। और समयका दबाव बढ़ रहा है। तब मुझे गंभीर 'वाणी' स्पष्ट सुनायी देती है: "देखो।" मैं ऊपर देखती हूं और हमारे ठीक सामने बंद दरवाजेके पास एक पूरी तरह खुला हुआ दरवाजा है जो उस चतुष्कोण कमरेमें खुलता है जो हमारा लक्ष्य है। वही वाणी फिर कहती है: "प्रवेश करो। इसी जगह सब द्वार पाये जाते हैं और तुम सबको खोल सकोगी।"

बड़ी शांति और प्रशांत बलकी अनुभूतिके साथ मैं जाग जाती हूं।

१९१४ (अगस्तके बाद)

३

भगवान्, कल रातको तूने मुझे एक स्वप्न दिया।

मुझे जो याद है वह यूं है:

एक ऊंचे पहाड़पर खड़े बहुत ऊंचे मीनारकी चोटीपर एक इतना बड़ा कमरा था कि वह देखनेमें नीचा लगता था। मैं एक ओरकी दीवारसे टेक लगाये हुए थी। मेरे आगे एक खिड़की थी जो बाहरको खुलती थी। मेरी बायीं ओर एक ऊंचा सिंहासन था जिसमें कई सीढ़ियां थीं। सिंहासनपर 'राष्ट्रोंका स्वामी'[1] बैठा था। मैं यह जानती थी पर मैंने उसे देखा न था। उस विशाल कमरेके दूसरे छोरपर, मेरी दाहिनी ओर एक प्रकारकी शय्या कोष्ठमें, जिसमें ऊपरसे रोशनी आ रही थी, एक युवा नारी, एक राष्ट्र, बैठी हुई थी। वह छोटी-सी उदास बालिका थी जिसके बाल काले थे और जिसका रंग फीका और द्युतिहीन था। वह विवाहकी वेश-भूषा पहने थी, उसके सिरपर सफेद फूलोंका ताज था (उसका वेश प्रायः सफेद था जिसमें जरा-सी नीलिमा और कुछ स्वर्णका संस्पर्श था।) मैं जानती थी कि इस राष्ट्रको इस तरह सजानेमें और इस पहाड़पर चढ़कर मीनारतक और इस कमरेमें आनेमें मैंने सहायता की थी। वह अपने-आपको राष्ट्रोंके स्वामीकी सेवामें दुलहिनके रूपमें अर्पित करने आयी थी और इस उद्देश्यसे उसे स्वामी द्वारा प्रस्तावित कई अग्नि-परीक्षाओंमेंसे गुजरना था ताकि वे जान सकें कि वह उनके योग्य थी या नहीं। ये अग्नि-परीक्षाएं आतंककी परीक्षाएं थीं।

पहली अग्नि-परीक्षाके लिये उसके पास एक सुराहीके साथ भरा हुआ गिलास भिजवाया। उसे दोनोंको पी जाना था। उसे यह लग रहा था

---

[1] 'राष्ट्रोंका स्वामी' एक असुर है, यानी, मानसभावापन्न प्राण लोककी एक विरोधी सत्ता है। इसके बारेमें माताजीने १९५३ में कहा था: "अब भी उन सत्ताओंमें, उन आसुरिक सत्ताओंमें जिनका पृथ्वीके साथ संबंध है, सबसे बड़ा असुर है मिथ्यात्वका असुर जो वर्तमान कालमें पृथ्वीके साथ व्यस्त है। वह अपने-आपको राष्ट्रोंका स्वामी कहता है। उसने एक सुंदर-सा नाम अपनाया है, वह राष्ट्रोंका स्वामी है। जहां कहीं कोई गड़बड़ी होती है वहीं वह या उसका कोई प्रतिनिधि उपस्थित होता है।"

श्रीमातृवाणी, खण्ड ५ (प्रश्न और उत्तर १९५३, १० जून, पृ० ९२)

कि दोनोंमें रक्त, मनुष्यका ताजा रक्त भरा है। और वह अपने सिंहासन-की ऊंचाईसे उससे कह रहा था: "यह दिखानेके लिये कि तुम्हें डर नहीं लग रहा इस रक्तको पी जाओ।" गरीब लड़की घृणासे कांप रही थी और इस भयानक पेयको छू भी न पा रही थी। लेकिन, प्रभु, उस समय तूने मुझे सत्यकी पूरी चेतना और शक्ति प्रदान की थी। मैं जहां खड़ी थी वहांसे स्पष्ट देख सकती थी कि गिलास और सुराहीमें सचमुच शुद्ध पारदर्शक पानी था। लड़की अभी संकोच कर रही थी और राष्ट्रोंका स्वामी बड़े तानेके साथ कह रहा था: "यह क्या? तुम अभीसे कांप रही हो? यह तो तुम्हारी पहली अग्नि-परीक्षा है और वह भी सबसे सरल। अगली परीक्षामें तुम क्या करोगी?"...

तब परिणामोंकी परवाह किये बिना, मैं एक ऐसी भाषामें चिल्लायी जिसे राष्ट्रोंका स्वामी न समझ सकता था: "तुम बिना सकुचाये इसे पी सकती हो। मैं शपथसे कहती हूं यह केवल पानी है, शुद्ध पानी है।" और लड़कीने उस सुझावको दूर करनेवाली मेरी बातपर विश्वास करते हुए शांतिके साथ पीना शुरू कर दिया...।

लेकिन मैं जिस शक्तिके साथ बोली थी उससे राष्ट्रोंके स्वामीको कुछ संदेह हो गया और उसने बड़े गुस्सेमें मुझे फटकारा कि मैं चुप रहनेकी जगह बोल क्यों रही थी। मैंने परिणामोंकी परवाह किये बिना कहा — मुझे मालूम था कि वे अनिवार्य हैं — "मैंने जो कुछ कहा है उसके साथ तुम्हारा कोई संबंध नहीं। तुम वह भाषा ही नहीं समझ पाते जिसमें मैं बोली थी!"...

तब वह स्मरणीय घटना घटी...।

अचानक सारा कमरा रातकी तरह अंधेरा हो गया और इस रातमें एक और अधिक अंधेरा आकार प्रकट हुआ। इस आकारको मैं स्पष्ट रूपसे देख रही थी पर कोई और न देख पा रहा था।

अंधकारका यह आकार मेरे अंदरके सत्यके प्रकाशकी छायाके जैसा था, और यह छाया 'आतंक' थी।

तुरंत लड़ाई शुरू हो गयी। उस सत्ताके बाल क्रुद्ध सर्पोंके जैसे थे। वह बहुत भद्दी विकृतियोंके साथ भयंकर रूपसे दांत पीसती हुई मेरी ओर झपटी। अगर वह अपनी किसी एक उंगलीसे मेरे वक्षको उस स्थानपर छू पाती जहां हृदय है तो संसारपर एक महान् विपदा आ पड़ती। किसी भी मूल्यपर इससे बचना जरूरी था। यह एक भयानक युद्ध था। मेरी चेतनाके अंदर सत्यकी सभी शक्तियां केंद्रित थीं। 'आतंक' जैसे भयंकर शत्रुके साथ लड़नेके लिये इससे कमसे काम न चलता!

लड़ाईमें उसका बल और उसकी सहन-शक्ति विलक्षण थे। आखिर लड़ाईका चरम मुहूर्त आ गया। हम एक-दूसरेके इतने निकट थे कि एक-दूसरेको न छूना असंभव मालूम होता था। उसकी आगे बढ़ी हुई उंगली नजदीक, और नजदीक आ रही थी — मेरा वक्ष संकटमें था . . .।

ठीक उसी क्षण राष्ट्रोंके स्वामीने, जो इस अनर्थकारी युद्धको बिलकुल न देख सकता था, अपने पास रखी छोटी-सी मेजसे कुछ चीज उठानेके लिये हाथ बढ़ाया। बिना जाने ही यह हाथ मेरे और मेरे विरोधीके बीचमेंसे गुजरा। तब मैं उससे सहारा ले सकी और इस बार 'आतंक' निश्चित रूपसे पराजित हो गया और अंधेरी, शक्तिहीन या वास्तविकताहीन धूलकी तरह धरतीपर गिर गया . . .।

तब सिंहासनपर बैठे हुए व्यक्तिको पहचानकर, उसकी शक्तिको श्रद्धांजलि देते हुए, मैंने अपना सिर उसके कंधेपर रख दिया और बड़े आनंदके साथ कहा: "हमने मिलकर 'आतंक'को जीत लिया है।"

यह था मेरा स्वप्न — और उसके साथ ही तूने मुझे उसकी पूरी समझ भी प्रदान की।

इस सबके लिये, इस अमूल्य उपहारके लिये मैं तुझे कृतज्ञता अर्पण करती हूं।

३१ जनवरी–१ फरवरी (१९१५?)

युद्ध

१

मैंने रेलें देखी हैं, जिनमें मोरचेसे आनेवाले पांच-छः सौ घायल सैनिक लाये जाते हैं। यह बड़ा हृदयस्पर्शी दृश्य होता है, इतना ज्यादा इस कारणसे नहीं कि ये सब अभागे कितना कष्ट पा रहे हैं, बल्कि इस उदात्त रीतिके कारण जिससे ये सब अपनी मुसीबतोंको झेल रहे हैं। उनकी अंतरात्मा उनकी आंखोंमेंसे चमकती है। गहनतर शक्तियोंके साथ ज़रा-सा संपर्क भी उसे जगा देता है। सच्चे प्रेमकी शक्तियोंकी तीव्रता और पूर्णतासे, जो उनकी उपस्थितिमें पूर्ण नीरवताके साथ प्रकट की जा सकती है, उनकी ग्रहणशीलताके महत्त्वको जान लेना आसान था।

तब जो मनोवृत्ति चरितार्थ करनेके लिये नयी रचनाएं बनानेमें मजा लेती है, उन सब चीजोंकी कल्पना करने लगती है जो इस ग्रहणशीलताकी सहायतासे चरितार्थ की जा सकती हैं। एकके बाद एक संभाव्य उपलब्धियोंके विशाल और जटिल दृश्य अपने प्रकाश और प्रेमकी भव्यतामें धाराप्रवाह बढ़ते जाते हैं — उनका कहीं अंत नहीं।

इसके अतिरिक्त, इस समय, छोटी-से-छोटी घटना, बाहरी दुनियाके साथ जरा-सा संपर्क भी अनगिनत रचनाओंके लिये एक बहाना बन जाता है। ये रचनाएं मनको विशाल, प्रकाशमय, एक तीव्र जीवन और चरितार्थ करनेकी महान् शक्तिसे भरी हुई मालूम होती हैं। ये मानों अभिव्यक्तिके बहुत सारे बाहरी ढांचों या रूपोंकी नाईं हैं जिन्हें अभिव्यक्त होनेवाले 'उस' की स्वीकृति और पसंदके लिये प्रस्तुत किया गया है। लेकिन साहसी निर्माताके साथ ही प्यारा और विनयशील बालक खड़ा है जो 'सत्यके परम तत्त्व'की ओर तीव्र अभीप्साके साथ गुनगुनाता है: "हे प्रभो, मैं तेरे संकल्पके संपूर्ण रूपसे अनभिज्ञ हूं। मैं ऐसी घटनाओंका निर्माण करता हूं जो मेरी तुच्छ व्यक्तिगत सीमाओंके अनुरूप हैं, जो संभवत: तेरी योजनाकी विशालतामें ठीक नहीं बैठती। लेकिन तू जानता है कि ये केवल क्षणभंगुर रचनाएं हैं जो बनाये जानेके साथ-साथ विलीन हो जाती हैं। ये किसी प्रकार उस मानसिक दर्पणकी शुद्धताको नहीं बिगाड़तीं जो प्रतिक्षण उस चीजका शुद्ध प्रतिलेखन प्रतिबिंबित करनेके लिये तैयार रहता है, जिसकी क्रियान्वितिकी तू इस संपूर्ण यंत्रसे इच्छा करता है।" और तब सारी सत्ता एक विशाल, प्रकाशमय, निरुद्देश्य आनंदमें "एक सत्ता" नहीं रहती, बल्कि असीम बन जाती है। और ध्यानकी नीरवतामें मन जानता है कि ये सब विभिन्न रचनाएं, जो उसके आगे आती हैं, उस समग्रका भाग हैं जो उसे क्रमश: अधिकाधिक अभिव्यक्त करने लिये दिया जायगा — शायद कई शारीरिक यंत्रोंके द्वारा दिया जाय। सत्ता और संभवनका युगपत् दृश्य उसकी चेतनाको पकड़ लेता है और घंटों नहीं छोड़ता और ये घंटे हमेशा बार-बार आते और अधिक स्थायी होते हैं।

(१२ मई, १९१५)

२

ऐसा लगता है कि समस्त स्नायुलोक धरतीपर बड़े जोरसे उतर आया है लेकिन वह अपने बल और शक्तिके रूपमें लड़ाईके क्षेत्रमें ही सीमित है।

अन्य स्थानोंपर, युद्ध क्षेत्रके पीछे या निष्पक्ष देशोंमें इस लोकने अपने-आपको दुर्बलता, स्नायविक तनाव, ज्वर, अधीरता, उच्छृंखल कल्पना, कार्य करनेकी सारी शक्तिको नष्ट करनेके रूपमें प्रकट किया है। जो लोग लड़ रहे हैं और एक-दूसरेको मार-काट रहे हैं उनके अंदर एक जबर्दस्त शक्ति दिखायी देती है जो उन्हें वास्तवमें पागल किये दे रही है। जो लोग लड़ नहीं रहे उन्हें ऐसा लगता है कि वे इस शक्तिसे वंचित रह गये हैं।

वे सब लोग जो युद्ध क्षेत्रमें जाते हैं, और इस क्षेत्रकी सीमा सक्रिय प्रभाव और वातावरणकी दृष्टिसे स्पष्ट रूपमें निर्धारित है, एक भीषण धारामें पकड़े और बहाये जाते हैं, उनका व्यक्तित्व खो जाता है। यह धारा ठाठें मारते हुए सागरकी तरह प्रचण्ड होती है। इन लोगोंका मानों व्यक्तित्व ही खतम कर दिया जाता है। वे मानों मूल तत्त्वोंकी स्थिति-तक उतार दिये जाते हैं, प्राकृतिक शक्तियोंकी स्थितितक, उदाहरणके लिये, वे भी आंधी, तूफान या पानीकी तरह अपना पार्थिव काम पूरा करनेके लिये किसी ऐसी शक्तिके द्वारा चलाये जाते हैं जिसे वे नहीं जानते। वे और मनुष्य नहीं रहते, गति करनेवाली, क्रिया करनेवाली भीड़ बन जाते हैं। वे अनगिनत उदाहरण भी जो साहस और व्यक्तिगत वीरतासे प्रेरित प्रतीत होते हैं, वे भी चींटियों और मधुमक्खियोंकी वीरतासे मिलते-जुलते हैं। ये प्रायः यांत्रिक या सहज चेष्टाएं होती हैं जो एकाकी तत्त्वमें जातीय प्रतिमाकी सामूहिक चेतनासे प्रेरित होती हैं।

सभी मानसिक रचनाओंको यह मानकर त्यागते हुए कि वे उन चरितार्थ करनेवाली और विनाशक शक्तियोंकी तुलनामें, जो उनके अधिकारमें हैं, क्षीण और शक्तिहीन हैं, वे रूपांतरकारी संकल्पके हाथोंमें अपराजेय यंत्र होंगे। और जबतक वे अपने कार्यके बिलकुल अंतिम छोरतक न पहुंच जायं, तबतक संभवतः भावी पुनर्निमाणके लिये कुछ भी नहीं किया जा सकेगा।

अभी ये शक्तियां, या कम-से-कम उनमेंसे अधिकतर, भागवत चेतनाके साथ बहुत निकटसे जुड़ी हुई हैं। वह चेतना उनकी उमड़ती हुई बाढ़को रास्ता दिखाती है, उनके अनसधे और देखनेमें न साधे जा सकनेवाले प्रवाह-का निर्देशन करती है। वास्तवमें, चूंकि वह किसी मानसिक निर्देशनके अधीन

नहीं इसलिये वे उसके आवेगके अनुसार ही चलते हैं। क्या वे जान पायेंगे कि यह कैसे होता है, क्या वे ठीक अंततक आज्ञाकारी रह सकेंगे? क्या अधिकाधिक नाचनेपर भी काली अपने नाचपर अधिकार न खो बैठेगी?...

सब कुछ इसपर निर्भर है कि भागवत इच्छा कितनी स्पष्टताके साथ धरतीपर अभिव्यक्त होती है, क्या वह समयपर अपने लिये ऐसे यंत्र तैयार कर सकी है जो काफी ग्रहणशील और पवित्र हों, ऐसे यंत्र जो सचेतन रूपसे उसके सार-तत्त्वमें निमज्जित होते हुए क्रियाशील स्नायविक शक्तिके साथ प्रभावशाली संपर्क बनाये रख सकें? तब बेलगाम ऊर्जाओंका प्रचंड पाशविक प्रपात धरती और मनुष्यके रूपांतरके लिये अपना अधिक-से-अधिक परिणाम ला सकेगा।

पैरिस (२८ अक्तूबर, १९१५)

भाग १

१९१६ और १९२० के बीच जापानमें लिखे गये लेख, चिट्ठियां आदि।

नारी और युद्ध

आपने पूछा है कि मैं नारी-आंदोलनके बारेमें क्या सोचती हूं और उसपर वर्तमान युद्धका क्या प्रभाव होगा।

युद्धका सबसे पहला प्रभाव निश्चय ही यह हुआ है कि उसने इस प्रश्न-को एक नया ही पहलू दे दिया। स्त्री-पुरुषके सतत विरोधकी निरर्थकता एकदम स्पष्ट रूपसे प्रकट हो गयी और नर-नारीके संघर्षके पीछे, केवल बाहरी तथ्योंके साथ संबंध रखते हुए, परिस्थितियोंकी गंभीरताने सतत विद्यमान, यद्यपि हमेशा तथ्यके रूपमें प्रकट नहीं, वास्तविक सहयोग, मानव जातिके इन परस्परपूरक अंगोंके सच्चे सहयोगकी खोजको संभव बनाया।

बहुत-से पुरुषोंको यह देखकर आश्चर्य हुआ कि स्त्रियां कितनी आसानीसे उनके अधिकतर पदोंपर उनका स्थान ले सकती हैं। उनके आश्चर्यके साथ कुछ खेद भी मिला था कि वे अपने काम और संघर्षमें साथ देनेवालीको पहले न पहचान पाये, उसे वे अधिकतर केवल भोग और मन-बहलावकी चीज या बहुत हुआ तो उनके घर-द्वार और बच्चोंकी देखभाल करनेवाली ही मानते रहे। निश्चय ही, स्त्री यह सब भी है और यह होनेके लिये उसमें बहुत विशेष, अपवादिक गुण चाहिये; लेकिन वह केवल यही नहीं है— आज की परिस्थितियोंने यह बात स्पष्ट रूपसे प्रमाणित कर दी है।

कठिन-से-कठिन भौतिक परिस्थितियोंमें, वास्तवमें दुश्मनकी गोलियोंकी बौछारके बीच, घायलोंकी सेवा करनेके लिये जाकर अबला कहानेवाली-ने यह प्रमाणित कर दिया है कि उसकी ऊर्जा और सहनशक्ति पुरुषके बरा-बर हैं। लेकिन जहां नारियोंने सबसे बढ़कर विशिष्ट प्रतिभा दिखायी है वह है संगठन करनेकी क्षमतामें। मुसलमानोंके आक्रमणसे पहले ब्राह्मण भारतने बहुत पहले स्त्रियोंकी शासन-क्षमताको मान्यता दी थी। एक प्रचलित कहावतके अनुसार: "जिस संपत्तिका शासन नारीके हाथमें होता है वह समृद्ध रहती है।" परंतु पश्चिममें, रोमन कानूनके साथ मिलकर सेमेटिक विचारने रीति-रिवाजोंपर इतना गहरा प्रभाव डाला कि नारीको अपनी संगठन-शक्ति दिखानेका अवसर ही न मिला।

यह सच है कि फ्रांसमें बहुत बार यह दिखायी देता है कि नारी ही घरकी सारी व्यवस्थाकी, आर्थिक व्यवस्थाकी भी स्वामिनी होती है। मध्यम वर्गकी खुशहाली इस व्यवस्थाके अच्छे पक्षको सिद्ध करती है। फिर भी

यह विरल ही रहा है कि बहुत महत्त्वपूर्ण कारोबार आदिकी व्यवस्थामें नारीकी क्षमताका सीधा उपयोग हुआ हो और अभीतक सार्वजनिक प्रशासनके विश्वस्त या गोपनीय पद स्त्रियोंके लिये हमेशा बंद ही रहे थे। इस युद्धने यह सिद्ध कर दिया है कि नारीके सहयोगको अस्वीकार करके सरकारोंने अपने-आपको अमूल्य सहायतासे वंचित रखा है। उदाहरणके लिये मैं एक घटना सुनाती हूं।

युद्ध शुरू होनेके कुछ महीने बाद, जब जर्मनीने लगभग सारे बेलजियमपर अधिकार कर लिया था, अधिकृत प्रदेशोंके वासी बहुत ही बुरी हालतमें थे। सौभाग्यवश, कई धनाढ्य अमरीकन स्त्री-पुरुषोंके नेतृत्वमें इन अत्यधिक पीड़ित लोगोंकी अनिवार्य आवश्यकताओंको पूरा करनेके लिये एक संस्थाका सूत्रपात हुआ। कुछ सामरिक कार्रवाइयोंके कारण बहुत-से छोटे-छोटे गांवोंके समूह अचानक खाद्य-पदार्थोंसे वंचित कर दिये गये। अकाल सिर पर था। अमरीकन संस्थाने इसी प्रकारकी अंगरेजी संस्थाओंको यह संदेश भेजा: "तुरंत एकदम अनिवार्य वस्तुओंकी पांच लारियां भेज दें। इन लारियोंको अपने लक्ष्यतक तीन दिनमें पहुंच जाना चाहिये।" जिन पुरुषोंके सामने यह निवेदन रखा गया उन्होंने उत्तर दिया कि इसके अनुसार करना बिलकुल असंभव है। सौभाग्यवश, एक स्त्रीने यह बात सुन ली। उसे यह बात बहुत ही भयावह लगी कि ऐसी दुःखद परिस्थितियोंमें कोई "असंभव" शब्दका उपयोग कर सकता है। वह स्त्रियोंके एक दलकी सदस्य थी। वह दल घायलों और युद्ध-पीड़ितोंकी सहायता करता था। उन्होंने तुरंत अमरीकन संस्थाको वचन दे दिया कि वे उनकी मांग को पूरा कर देंगी और तीन ही दिनोंमें बहुत-सी बाधाओंको पार कर लिया गया। उनमें कुछ, विशेषकर यातायात-संबंधी कठिनाइयां, सचमुच अलंघ्य मालूम होती थीं। संगठन-शक्तिवाले समर्थ मन और तीव्र संकल्पने चमत्कार कर दिखाया और चीजें तीन दिनमें ठिकाने जा पहुंची और भयंकर अकाल टल गया।

हमारा यह मतलब नहीं है कि वर्तमान युद्धने केवल स्त्रीके विशेष गुणोंको ही प्रकट किया है। उसकी दुर्बलताओं, उसके दोषों, उसकी तुच्छताओंको भी सामने आनेका अवसर मिला है। और अगर स्त्रियां देशों और जातियोंके प्रशासनमें वह स्थान पाना चाहती हैं जिसपर उनका दावा है तो उन्हें आत्म-संयम, विचारों और दृष्टिकोणके विस्तार, बौद्धिक नमनीयता और अपनी भावुकतापूर्ण पसंदोंकी विस्मृतिमें बहुत ज्यादा आगेतक बढ़ना होगा ताकि वे सार्वजनिक कार्योंकी व्यवस्था कर सकें।

यह निश्चित है कि शुद्ध रूपसे पुरुषोंकी राजनीति अपनी अक्षमताका

प्रमाण दे चुकी हैं। वे बहुत बार एकदम व्यक्तिगत और अपनी मनमानी तीव्र क्रियाओंकी खोजमें डूब चुके हैं। निस्संदेह, स्त्रियोंकी राजनीति निःस्वार्थताकी प्रवृत्ति और अधिक मानवीय समाधान लायेगी। परंतु, दुर्भाग्यवश, अपनी वर्तमान अवस्थामें साधारणतः स्त्रियां आवेगों और उत्साहपूर्ण पक्षपातकी कठपुतलियां हैं। उनमें उस तर्कसंगत स्थिरताका अभाव है जो बौद्धिक क्रियासे ही आती है। बौद्धिक क्रियाएं खतरनाक अवश्य हैं क्योंकि वे कठोर, शीत और निष्करुण होती हैं, फिर भी वे निश्चित रूपसे उस भावुकताके उफानको वशमें रखनेके लिये उपयोगी हैं जिसे सामूहिक हितोंके शासनमें प्रधान स्थान नहीं दिया जा सकता।

अगर स्त्रियोंकी क्रियावली पुरुषोंके कामोंका स्थान लेना चाहे तो ये दोष बहुत गंभीर रूप ले सकते हैं। परंतु इसके विपरीत, यदि नर-नारीमें सहयोग हो तो ये पुरुषोंके दोषोंकी एक हदतक क्षतिपूर्ति कर सकते हैं। और यही धीरे-धीरे दोनोंको पारस्परिक पूर्णताकी ओर ले जानेका सबसे अच्छा उपाय होगा। नारीका कार्य पूरी तरह अंदर, घरेलू कामोंतक सीमित रखना और पुरुषको पूरी तरह बाहरके और सामाजिक कार्योंमें लगाये रखना और इस प्रकार जिन्हें इकट्ठा होना चाहिये उन्हें अलग करना तो वर्तमान दुःखद स्थितिको हमेशाके लिये स्थायी कर देना होगा; इससे दोनोंको समान रूपसे कष्ट हो रहा है। ऊंचे-से-ऊंचे कर्त्तव्यों और भारी-से-भारी जिम्मेदारियोंके आगे उनके अपने-अपने पृथक गुणोंको एक विश्वासपूर्ण एकतामें मिल जाना चाहिये।

क्या वह समय नहीं आ गया है जब नर और नारी जातियोंको एक-दूसरेके सामने परस्पर विरोधियोंके रूपमें संघर्षकी मनोवृत्ति रखना बंद कर देना चाहिये? राष्ट्रोंको कठोर और पीड़ाजनक पाठ पढ़ाया जा रहा है। इस समय खंडहरोंके जो ढेर लग रहे हैं उनपर नयी, ज्यादा सुंदर, ज्यादा सामंजस्यपूर्ण इमारतें खड़ी की जा सकती हैं। अब यह दुर्बल प्रतियोगिताओं और स्वार्थपूर्ण अधिकारोंकी मांगका समय नहीं रहा। सभी मनुष्योंको, स्त्री-पुरुषोंको उस उच्चतम आदर्शके बारेमें सचेतन होनेके समान प्रयासमें सहयोग देना चाहिये जो चरितार्थ होना चाहता है और सबको उसे उपलब्ध करनेके लिये बड़े उत्साहके साथ काम करना चाहिये। तो अब जिस प्रश्नको हल करना है, सच्चा प्रश्न केवल उनके बाहरी क्रिया-कलापके अधिक अच्छे उपयोगका नहीं है, बल्कि सबसे बढ़कर आंतरिक विकासका प्रश्न है। आंतरिक विकासके बिना बाहरी प्रगति संभव नहीं है।

इस तरह, संसार-भरकी सभी समस्याओंकी तरह, नारीवादका प्रश्न भी एक आध्यात्मिक समस्या बनकर लौट आता है, क्योंकि आध्यात्मिक सत्य

अन्य सबका आधार है। भागवत जगत्, बौद्ध धर्मका धम्मता, वह शाश्वत आधार है जिसपर और सब जगतोंकी रचना हुई है। इस परम सद्वस्तु-के संबंधमें सभी, पुरुष-स्त्रियां सभी, समान हैं, सभी अधिकारों और कर्तव्यों-की दृष्टिसे समान हैं। इस क्षेत्रमें जो भेद रह सकता है वह सच्चाई और अभीप्साकी तीव्रता और संकल्पकी निरंतरतापर आधारित होता है और नर-नारी संबंधकी समस्याका एकमात्र गंभीर और चिरस्थायी समाधान इस मौलिक, आध्यात्मिक एकताको जानने और स्वीकारनेमें है। समस्याको इस प्रकाशमें रखना चाहिये, हमारी क्रियाओं और नव जीवनका केंद्र इस ऊंचाईपर खोजा जाना चाहिये, दिव्य मानवताका भावी मंदिर इसीके चारों ओर बनेगा।

(७ जुलाई, १९१६)

स्त्री और पुरुष

सबसे पहले हम यह मानकर चलें कि अभिमान और निर्लज्जता (उद्धतता) हमेशा हास्यास्पद चीजें होती हैं। सिर्फ मूर्ख और अज्ञानी लोग ही अक्खड़ और घमंडी होते हैं। जैसे ही मनुष्य इतना प्रबुद्ध हो जाय कि वह, चाहे कितना भी कम क्यों न हो, विश्वके सर्वव्यापक रहस्यके साथ नाता जोड़ सके, वह निश्चित रूपसे नम्र हो जाता है।

स्त्री अपनी वश्यताके कारण ही पुरुषकी अपेक्षा ज्यादा सरलताके साथ सृष्टिमें कार्यरत परम शक्तिका सहज बोध प्राप्त कर सकनेके कारण प्राय: अधिक नम्र होती है।

लेकिन इस नम्रताके तथ्यको आवश्यकतापर आधारित करना गलत है। पुरुषको स्त्रीकी जितनी आवश्यकता होती है, स्त्रीको पुरुषकी उससे ज्यादा आवश्यकता नहीं होती; बल्कि ज्यादा ठीक यह है कि स्त्री और पुरुष दोनों-को समान रूपसे एक-दूसरेकी आवश्यकता होती है।

शुद्ध भौतिक क्षेत्रमें भी जितनी स्त्रियां भौतिक रूपसे पुरुषोंपर निर्भर हैं उतने ही पुरुष स्त्रीपर निर्भर होते हैं। अगर नम्रता इस निर्भरताका परिणाम होती तो जहां पुरुष नारीपर निर्भर हैं वहां पुरुषोंको नम्र और स्त्रियोंको अधिकारशील होना चाहिये।

और फिर, यह कहना कि स्त्रियोंको नम्र होना चाहिये क्योंकि इससे पुरुष खुश होते हैं — गलत है। इससे तो यही समझा जायगा कि स्त्रीको धरतीपर इसीलिये बनाया गया है ताकि वह पुरुषोंको खुश करे — और यह वाहियात है।

सारा विश्व भागवत शक्तिको प्रकट करनेके लिये रचा गया है। और मनुष्योंका, स्त्रियों या पुरुषोंका, यह विशेष प्रयोजन है कि वे उस अनंत भागवत तत्त्वके बारेमें सचेतन हों और उसे अभिव्यक्त करें। उनका लक्ष्य यही है, कोई दूसरा नहीं। अगर वे, स्त्री और पुरुष, इस बातको जानें और अधिक बार याद कर सकें तो वे प्राथमिकता या अधिकारके तुच्छ झगड़ोंके बारेमें सोचना बंद कर देंगे और सेवा करनेकी अपेक्षा, सेवा करवानेमें अधिक प्रतिष्ठा न देखेंगे, क्योंकि तब सब अपने-आपको समान रूपसे भगवान्‌का सेवक मानेंगे और हमेशा पहलेसे ज्यादा और पहलेसे अच्छी तरह सेवा करनेमें ही अपनी प्रतिष्ठा मानेंगे।

जापानके अनुभव

आपने जापानके बारेमें मेरे मनोभाव मांगे हैं। जापानके बारेमें लिखना एक कठिन काम है। वहांके बारेमें इतनी सारी चीजें लिखी जा चुकी हैं, बहुत-सी ऊट-पटांग चीजें भी ... लेकिन ये ज्यादातर देश नहीं, देशवासियोंके बारेमें हैं। वह देश ऐसा अद्‌भुत, चित्रमय, बहुमुख, मनोहर, अप्रत्याशित, जंगली या मधुर है! वह देखनेमें — उत्तरध्रुवीय ठंडे प्रदेशोंसे लेकर उष्ण कटिप्रदेशीय प्रदेशोंतक — दुनिया-भरके सभी देशोंका समन्वय लगता है। किसी कलाकारकी आंख उसकी ओरसे उदासीन नहीं रह सकती। मेरा ख्याल है कि जापानके बहुत-से सुन्दर वर्णन किये जा चुके हैं; मैं अपनी ओरसे उनमें एक और नहीं बढ़ा रही, मेरा वर्णन निश्चित रूपसे उनकी अपेक्षा बहुत कम मजेदार होगा। लेकिन साधारणतः जापानियोंको गलत समझा गया है और गलत रूपमें पेश किया गया है और इस विषयपर कहने लायक कुछ कहा जा सकता है।

अधिकतर विदेशी लोग जापानियोंके उस भागके संपर्कमें आते हैं जो विदेशियोंके संसर्गसे बिगड़ चुका है — यह पैसा कमानेवाले, पश्चिमकी नकल

करनेवाले जापानी हैं। वे नकल करनेमें बहुत चतुर हैं और उनमें ऐसी काफी सारी चीजें हैं जिनसे पश्चिमके लोग घृणा करते हैं। अगर हम केवल राजनेताओं, राजनीतिज्ञों और व्यापारियोंके जापानको देखें तो यही लगेगा कि यह यूरोपके शक्तिशाली देशोंसे बहुत ज्यादा मिलता-जुलता देश है; लेकिन उसमें जीवन-शक्ति और घन-ऊर्जा भरी है जिससे मालूम होता है कि वह अभीतक अपनी पराकाष्ठापर नहीं पहुंचा है।

यह जीवन-शक्ति जापानकी एक बहुत मजेदार विशेषता है। वह हर जगह, हर एक बूढ़े, बच्चे, मर्द, औरत, विद्यार्थी, मजदूर, सभीके अन्दर दिखायी देती है। शायद "नये अमीरों"को छोड़कर सभीके जीवनमें अद्‌भुत घन-जीवन-शक्तिका भंडार दिखायी देता है। प्रकृति और सौंदर्यके आदर्श प्रेमके साथ-ही-साथ यह संचित शक्ति भी जापानियोंकी सुस्पष्ट और सबसे अधिक व्यापक विशेषता है। उदयाचलके उस प्रदेशमें पांव रखते ही आप इस चीजको देख सकते हैं, जहां इतने सारे लोग और इतनी निधियां एक छोटे-से टापूमें जमा हैं।

यदि आपको उन जापानियोंसे मिलनेका सुअवसर मिले, जैसा कि हमें मिला था, जिनमें अभीतक प्राचीन सामुराईका शौर्य और आभिजात्य अछूता है तो आप समझ सकते हैं कि सच्चा जापान क्या है, आप उनकी शक्तिके रहस्यको पा सकते हैं। वे चुप रहना जानते हैं और यद्यपि उनमें बहुत अधिक तीव्र भावुकता होती है—मैं जिन लोगोंसे मिली हूं उनमें—ये सबसे कम प्रदर्शन करते हैं। यहां एक मित्र तुम्हारे प्राण बचानेके लिये बड़ी ही सरलतासे अपनी जान दे सकता है; लेकिन वह कभी तुम्हारे सामने यह न कहेगा कि उसे तुम्हारे लिये इतना गहरा और निः-स्वार्थ प्रेम है। वह यह भी न कहेगा कि उसे तुम्हारे लिये प्रेम है भी। और अगर तुम बाहरी आकारोंके पीछे छिपे हुए हृदयको न पढ़ सको तो तुम्हें बहुत अच्छे बाह्य शिष्टाचारके सिवाय कुछ न दिखायी देगा जिसमें सहज भावोंके लिये कोई स्थान नहीं होता। फिर भी भाव होते हैं और बाहर अभिव्यक्त न होनेके कारण और भी ज्यादा प्रबल होते हैं और यदि कभी मौका आ जाय तो अचानक प्रेमकी गहराईका पता चलता है, और वह भी विनयशील और कई बार छिपा हुआ।

यह जापानी विशेषता है। संसारकी जातियोंमें सच्चे जापानी, जो पश्चिमके प्रभावमें नहीं आये हैं, शायद सबसे कम स्वार्थी होते हैं। और यह निःस्वार्थता पढ़े-लिखे, विद्वान या धार्मिक लोगोंकी विशेषता नहीं है। यह समाजके सभी स्तरोंमें पायी जाती है। यहां कुछ लोकप्रिय और अत्यन्त मनोहर उत्सवोंको छोड़कर धर्म रूढ़ि या संप्रदाय नामकी चीज नहीं है। वह

उनके दैनिक जीवनमें आत्म-त्याग, आज्ञा-पालन और आत्म-समर्पणके रूपमें दिखायी देता है।

जापानियोंको बचपनसे ही सिखाया जाता है कि जीवन कर्तव्य है, सुख नहीं। वे उस कर्तव्यको स्वीकार करते हैं। प्रायः कठोर और कष्टकर कर्तव्यको निष्क्रिय आत्म-समर्पणके साथ स्वीकार करते हैं। वे अपने-आपको सुखी बनानेके विचारसे परेशान नहीं करते। यह सारे देशके जीवनको आनन्द और मुक्त अभिव्यक्ति नहीं, एक असाधारण आत्म-नियंत्रण प्रदान करता है। वह तनाव, प्रयास और मानसिक तथा स्नाय-विक दबावका वातावरण पैदा करता है, उस तरहकी आत्मिक शान्ति नहीं देता जैसी, उदाहरणके लिये, भारतमें अनुभव की जा सकती है। वास्तवमें, जापानमें ऐसी कोई चीज नहीं है जिसकी तुलना भारतमें व्याप्त शुद्ध भागवत वातावरणसे की जा सके। यह वातावरण ही इस देशको ऐसा अनोखा और बहुमूल्य बनाता है। जापानके मन्दिरोंमें, वहांके पवित्र दुर्गम मठोंमें जो बड़े-बड़े देवदारुके पेड़ोंसे ढके हैं, जो सामान्य दुनियासे बहुत ऊंचे हैं, उनमें भी यह वातावरण नहीं है। वहां बाहरी नीरवता है, विश्राम और निश्चलता है, लेकिन शाश्वतका वह आनन्दमय संवेदन नहीं है जो एकमेवके समीप रहनेसे ही आता है। यह सच है कि यहां सब कुछ एकता-के मन और आंखोंको संबोधित करता है— मनुष्यकी भगवान्से एकता, प्रकृतिकी मनुष्यसे एकता और मनुष्य-मनुष्यकी एकतासे। लेकिन यह एकता कम ही अनुभव की जाती है या जीवनमें उतारी जाती है। निश्चय ही जापानियोंमें उदार आतिथ्य, पारस्परिक सहायता, पारस्परिक अवलम्ब-की भावना बहुत विकसित है। लेकिन अपने संवेदनों, विचारों और सामान्य क्रियाओंमें वह सबसे अधिक व्यक्तिवादी और पृथकतावादी प्रजा है। इस प्रजाके लिये रूप प्रधान है, रूप आकर्षक है। वह अभिव्यंजक भी होता है। वह किसी अधिक गहरे सामंजस्य या सत्य या प्रकृति या जीवनके किसी विधानकी कहानी कहता है। प्रत्येक रूप, प्रत्येक क्रिया, बगीचोंकी व्यवस्थासे लेकर प्रसिद्ध चाय समारोहतक, प्रतीकात्मक है, और कभी-कभी एक बहुत ही सादी और सामान्य चीजमें एक गहरा, अलंकृत, इच्छित प्रतीक मिल जाता है जिसे अधिकतर लोग जानते और समझते हैं। लेकिन यह जानना और समझना केवल बाहरी और परंपरागत होता है। वह आध्यात्मिक अनुभवों, ज्योतिर्मय हृदय और मनकी गहराइयोंसे आनेवाला जीवन्त सत्य नहीं होता। जापान मौलिक रूपमें संवेदनोंका देश है। वह अपनी आंखोंके द्वारा जीता है। उसपर सौंदर्यका एकछत्र राज्य है और उसका वातावरण मानसिक और प्राणिक क्रिया-कलाप,

अध्ययन, निरीक्षण, प्रगति और प्रयासको उत्तेजित करता है, लेकिन शांत, आनंदमय एकाग्रताको नहीं। लेकिन इस सारे क्रिया-कलापके पीछे एक उच्च अभीप्सा उपस्थित है जिसे जातिका भविष्य ही व्यक्त करेगा।

(९ जुलाई, १९१७)

जापानके बच्चे

मैंने अपने पिछले पत्र¹में जापानियोंके कर्तव्य बोधके बारेमें लिखा था जो उन्हें बहुत आत्म-नियंत्रण तो प्रदान करता है, परंतु उल्लासपूर्ण, मुक्त विस्तार नहीं देता। यहां मुझे इस नियमका एक अपवाद बताना चाहिये और वह अपवाद है बालकोंके पक्षमें।

हम जापानको बच्चोंका स्वर्ग कह सकते हैं — मैंने और किसी देशमें उन्हें इतना आजाद और इतना खुश नहीं देखा। जापानमें कई महीने रह चुकनेपर भी मैंने अभी तक किसी वयस्कके द्वारा बच्चेकी पिटाई होते नहीं देखी। उनके साथ ऐसा व्यवहार होता है मानों सभी माता-पिता इस बारेमें सजग हैं कि बच्चे ही भविष्यकी प्रत्याशा और उसकी महिमा हैं। और आश्चर्यकी बात यह है कि इतने ज्यादा ध्यान, इतनी अधिक देखभाल, इतनी लगनके बीच रहते हुए भी ये, मैंने जितने बच्चे देखें उनमें, सबसे बढ़कर अच्छे और गंभीर, सबसे अधिक समझदार हैं। जब वे नन्हें-मुन्ने होते हैं और एक मजेदार ढंगसे मांकी पीठपर बंधे रहते हैं तभी वे अपनी पूरी तरह खुली काली आंखोंसे जीवनको बड़ी गंभीरतासे देखते हुए प्रतीत होते हैं और लगता है कि वे जो चीजें देख रहे हैं उनके बारेमें मत बना चुके हैं। वहां बच्चे रोते हुए कभी-कदास ही सुनायी देते हैं। उदाहरणके लिये, जब किसी बच्चेके चोट लग जाय और उसकी आंखोंसे आंसू निकल पड़ें तो मां या बापके धीमी आवाजमें दो-चार शब्द कहनेसे ही सारा दुःख बह जाता है। ये जादुई शब्द कौन-से हैं जो बच्चेको इतना समझदार बना देते हैं? सचमुच बहुत ही सरल: "तुम सामुराइ नहीं हो?"

---

¹यानी, "जापानके अनुभव"।

यह एक प्रश्न इस बातके लिये काफी होता है कि बच्चा अपने सारे बल-को इकट्ठा करके अपनी कमजोरीपर विजय पा ले।

सड़कोंपर तुम सैकड़ों बच्चोंको अपने लुभावने चमकदार किमोनो पहने कुरमा और बाइसिकिलोंके बावजूद सीधे-सादे मौलिक और सरस खेल खेलते देख सकते हो। वे अपने थोड़े-से हंसने-गानेसे संतुष्ट रहते हैं।

जरा बड़े होकर, फिर भी बिलकुल तरुण अवस्थामें तुम उन्हें विदेशी वेश-भूषा पहने मोटरों और रेलोंमें पाते हो। सिरपर विद्यार्थियोंकी टोपी, पीठपर बस्ता, अपने महत्त्वपर गर्वीले, जो कुछ वे सीख रहे हैं और सीखेंगे उसके विचारसे ही उनका मस्तक ऊंचा रहता है। उन्हें अपनी शिक्षासे प्रेम है और वे सबसे ज्यादा गंभीर विद्यार्थी हैं। वे अपने बढ़ते हुए ज्ञानमें वृद्धि करनेका कोई अवसर नहीं चूकते और जब विद्यालयके कामसे कुछ समय बचता है तो वे उसे किताबें पढ़नेमें लगाते हैं। ऐसा लगता है कि युवा जापानियोंको सचमुच पढ़नेसे अनुराग है। टोकियोके मुख्य मार्गोंमेंसे एक लगभग पूरा-का-पूरा पुरानी किताबोंकी दुकानोंसे भरा है। ये दुकानें सालके शुरूसे अंततक विद्यार्थियोंसे भरी रहती हैं। और ये विद्यार्थी साधारणतः उपन्यासोंकी ही तलाशमें नहीं आते।

ये प्रायः सभी विदेशी भाषाएं सीखनेके लिये उत्सुक रहते हैं। यद्यपि वे साधारणतः बाहर वालोंसे मिलते सकुचाते हैं, फिर भी जब मिलते हैं तो अपने भाषापरिचयका यथासंभव लाभ उठाते हैं.

वह देश जहां बच्चे ऐसे हों, और उनके साथ ऐसा व्यवहार होता हो, ऐसा देश है जो अभी प्रगति और प्रभुताकी सीढ़ियोंपर चढ़ रहा है।

जापानकी स्त्रियोंसे

जापानी स्त्रियोंके साथ बच्चोंके बारेमें बात करना, मेरा ख्याल है, उनके सबसे प्रिय, उनके सबसे पवित्र विषयपर बात करना होगा। निश्चय ही, दुनियाके और किसी देशमें बच्चोंको इतना अधिक महत्त्वपूर्ण और प्रमुख स्थान नहीं मिलता। यहां ये सावधानी और मनोयोगके केंद्र होते हैं।[1]

---

[1]यह वाक्य अधूरा ही छोड़ दिया गया था।

भविष्यकी आशाएं उन्हींपर केंद्रित होती हैं और यह है भी ठीक। वे देशकी बढ़ती हुई समृद्धिकी जीती-जागती प्रतिमा हैं। अतः, जापानमें नारियोंका सबसे महत्त्वपूर्ण काम है बच्चोंका निर्माण। 'मातृत्व' ही स्त्रीकी सबसे प्रधान भूमिका है। लेकिन इस बातका अर्थ तभी समझमें आ सकता है जब हम मातृत्व शब्दका ठीक-ठीक अर्थ समझ लें। क्योंकि खरगोशकी तरह सहज रूपमें, बिना जाने-बूझे, मशीनकी तरह बच्चे पैदा करते जाना निश्चय ही मातृत्व नहीं है! सच्चा मातृत्व सत्ताके सचेतन निर्माणसे शुरू होता है। नये शरीरमें बसनेके लिये आनेवाली आत्माके लिये सत्ताको तैयार करना मातृत्व है। इस तरह नारीका सच्चा क्षेत्र आध्यात्मिक है। लेकिन इस बातको हम प्रायः भूल जाते हैं।

केवल बच्चा पैदा करना और उसके लिये अवचेतन रूपसे शरीर तैयार कर देना काफी नहीं है। सचमुच काम तब शुरू होता है जब विचार और संकल्प-शक्तिके द्वारा एक ऐसे चरित्रकी कल्पना और निर्माण किया जाता है जो किसी आदर्शको मूर्त रूप देनेमें समर्थ हो।

यह न कहिये कि हमारे अंदर ऐसा बड़ा काम करनेकी शक्ति नहीं है। इस प्रभावशाली शक्तिके अनगिनत उदाहरण प्रमाणके रूपमें दिये जा सकते हैं।

सबसे पहले चारों ओरके भौतिक वातावरणका महत्त्व पुराने जमानेमें भी जाना और माना जाता था। स्त्रियोंके चारों ओर कला और सुंदरताकी कृतियोंको इकट्ठा करके ही धीरे-धीरे यूनानी लोगोंने अपनी जातिको इतना अधिक सामंजस्यपूर्ण बनाया था।

इस तरहके अलग-अलग व्यक्तियोंके उदाहरण तो बहुत हैं। ऐसे उदाहरण कम नहीं कि गर्भावस्थामें कोई स्त्री किसी सुंदर चित्र या मूर्त्तिको बहुत देखा और सराहा करती थी और जब बालक उत्पन्न हुआ तो उसकी शकल उस चित्र या मूर्त्तिसे बहुत मिलती-जुलती थी। स्वयं मैंने ऐसे बहुतसे उदाहरण देखे हैं। उनमेंसे दो छोटी लड़कियोंका उदाहरण मुझे स्पष्ट रूपसे याद है। दोनों जुड़वां बहनें थीं और पूर्णरूपसे सुंदर थीं; लेकिन आश्चर्यकी बात यह थी कि वे अपने मां-बापसे जरा भी न मिलती थीं। उनकी शकलें अंग्रेज कलाकार रेनाल्डके प्रसिद्ध चित्रकी याद दिलाती थीं। एक बार मैंने यह बात उनकी मांके सामने कह दी। उसने झट कहा, "हैं न उस चित्रके जैसी शकलें! आपको यह जाननेमें दिलचस्पी होगी कि यह कैसे हुआ? जब ये लड़कियां गर्भमें थीं तो मेरे बिस्तरके ऊपर रेनाल्डके उस चित्रकी एक बहुत सुंदर अनुकृति टंगी रहती थी। रातको सोनेसे पहले और सवेरे जागते ही मेरी नजर उसी चित्रपर पड़ती थी और मैं

मन-ही-मन यह आशा किया करती थी कि मेरे बच्चोंके चेहरे इस चित्र जैसे होंगे। आप देख सकती हैं कि मैं काफी सफल रही हूं!" सचमुच यह नारी अपनी सफलतापर गर्व कर सकती थी। उसका उदाहरण दूसरी स्त्रियोंके लिये बहुत उपयोगी हो सकता है।

अगर भौतिक जगत्में ही ऐसे परिणाम आ सकते हैं जहां चीजें बहुत कम नमनीय होती हैं तो फिर मनोवैज्ञानिक जगत्की तो बात ही क्या है। वहां तो विचार और संकल्प-शक्तिका असर कहीं अधिक होता है। फिर आनुवंशिकता और "बापपर पूत, पितापर घोड़ा"की दुहाई क्यों दी जाय। ये बातें इस चीजकी सूचक हैं कि हम अवचेतन रूपसे अपने पुराने ढर्रेको, अपने पुराने चरित्रको ही ज्यादा पसंद करते हैं। हम एकाग्रता और संकल्प-शक्तिके द्वारा, अपनी कल्पनाके ऊंचे-से-ऊंचे आदर्शके अनुरूप जाति-का निर्माण कर सकते हैं। इस प्रकारके प्रयाससे मातृत्व सचमुच बहुमूल्य और पवित्र रूप ले लेता है। निश्चय ही इस प्रकार हम आत्माके भव्य कार्यमें प्रवेश करते हैं और नारीत्व साधारण पाशविकता और उसकी सहज वृत्तियोंसे ऊपर उठकर वास्तविक मानवता और उसकी शक्तिकी ओर उठता है।

तो इस कोशिश, इस प्रयासमें ही हमारा सच्चा कर्तव्य है। और अगर यह कर्तव्य हमेशा ही बहुत महत्त्वपूर्ण रहा है तो धरतीके विकासके वर्तमान मोड़पर इसका महत्त्व निश्चित रूपसे ही बहुत बढ़ गया है।

क्योंकि हम साधारण युगमें, जगत्के इतिहासमें एक असाधारण मोड़पर जी रहे हैं। शायद इससे पहले संसार कभी आजके जैसे घृणा, रक्तपात और अस्तव्यस्तताके अंधेरे कालमें से नहीं गुजरा। साथ ही यह भी ठीक है कि इससे पहले मनुष्योंके हृदयोंमें इतनी प्रबल और इतनी उत्साहपूर्ण आशा भी कभी नहीं जागी। निःसंदेह, अगर हम अपने हृदयकी आवाज-को सुनें तो तुरंत पता चल जायगा कि हम न्यूनाधिक सचेतन रूपसे, न्याय, सौंदर्य, सामंजस्यपूर्ण सद्भावना और भाईचारेके नये राज्यकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, और यह बहुत बड़ा विरोधाभास मालूम होता है, क्योंकि ये चीजें आजके संसारकी स्थितिसे एकदम उल्टी हैं। लेकिन हम सबको मालूम है कि प्रभातसे पहले रात्रि सबसे अधिक अंधेरी होती है। तो यह अंधेरा आती हुई ऊषाकी सूचना तो नहीं दे रहा? अभीतक रात कभी इतनी अंधेरी और भयावह नहीं हुई, इसलिये शायद आनेवाला प्रभात भी बहुत अधिक ज्योतिर्मय, बहुत पवित्र और उज्ज्वल हो। रातके दुःस्वप्नोंके बाद जगत् एक नयी चेतनामें जागेगा।

जिस सभ्यताका आज ऐसे नाटकीय ढंगसे अंत हो रहा है उसका आधार

मनकी शक्तियोंपर था और मन ही जड़ और जीवनपर शासन करता था। हमें यहां इस विषयपर विचार नहीं करना है कि उसने जगत्के लिये क्या किया। हां, एक नया राज्य आ रहा है, यह आत्माका राज्य होगा। मानवके बाद ईश्वरकी बारी है।

फिर भी अगर हमें ऐसे अद्वितीय और अद्‌भुत कालमें धरतीपर जन्म लेनेका अवसर मिला है तो क्या यह पर्याप्त है कि हम बैठे-बैठे होनेवाली घटनाओंको देखते रहें? वे सब जिन्हें लगता है कि उनके हृदय अपने ही व्यक्तित्व या अपने ही परिवारतक सीमित नहीं हैं, उनके विचार अपने व्यक्तिगत स्वार्थों और स्थानीय संबंधोंसे ही जुड़े नहीं हैं, संक्षेपमें कहें तो वे सब जो यह अनुभव करते हैं कि वे स्वयं अपने या अपने परिवारके या अपने देशके भी नहीं हैं, बल्कि उस भगवान्के हैं जो अपने-आपको सभी देशोंमें मनुष्यके रूपमें प्रकट करते हैं, वही लोग जानते हैं कि उन्हें ऊपर उठना चाहिये और मानवजातिके लिये, नव प्रभातके स्वागतके लिये काम करना चाहिये।

इस महान्, अनेक पहलूवाले और अंतहीन काममें स्त्रियोंकी क्या भूमिका हो सकती है? यह सच है कि जब कभी महान् घटनाओं और कार्योंकी बात उठती है तो रिवाजके अनुसार स्त्रियोंको अहसान जताते हुए तिरस्कारके साथ मुस्कराकर एक तरफ कर दिया जाता है जिसका अर्थ होता है: यह तुम्हारा क्षेत्र नहीं है, तुम गरीब, कमजोर, अशक्त प्राणी...। और बहुत-से देशोंमें बालककी तरह, आत्म-समर्पणके साथ और शायद आलस्यके कारण भी, स्त्रियोंने इस शोचनीय स्थितिको स्वीकार कर लिया है। मैं पूरे जोरके साथ कहूंगी कि यह गलत चीज है। भावी जीवनमें इस प्रकार भेद-भावके लिये नर और नारीके बीच इस तरहके असंतुलनके लिये कोई जगह न होगी। नर और नारीका सच्चा संबंध बराबरीका और पारस्परिक सहायता और सहयोग-भरा है। और अब हमें अपना सच्चा स्थान पुनः लेकर अपने वास्तविक स्थानपर बल देना चाहिये। और वह स्थान है आध्यात्मिक रूप देनेवालीका और शिक्षकका। हां, कुछ पुरुष शायद अपने तथाकथित लाभोंकी ऐंठमें आकर स्त्रीकी ऊपरी तौरसे दीखनेवाली कमजोरीको तिरस्कार-भरी दृष्टिसे देखते हैं। (हालांकि यह ऊपरी तौरसे दीखनेवाली कमजोरी भी बिलकुल निश्चित नहीं है), लेकिन फिर भी किसीने ठीक ही कहा है: चाहे जो भी हो, महामानव स्त्रीकी कोखसे ही जन्मेगा।

यह एक महान् निर्विवाद सत्य है कि महामानव नारीसे ही जन्मेगा, लेकिन इस सत्यके आधारपर ही हमें फूल न उठना चाहिये। हमें स्पष्ट

रूपसे इसका अर्थ समझ लेना चाहिये और इससे आनेवाली जिम्मेदारियोंको जानकर सच्चाई और उत्साहके साथ इस बड़े कामके लिये तैयार होजा चाहिये। सारे संसारमें फैले हुए काममें यही हमारा सबसे बड़ा भाग है।

इसके लिये सबसे पहले हमें कम-से-कम रूपरेखाके तौरपर यह जान लेना चाहिये कि वर्तमान अव्यवस्था और अंधकारको प्रकाश और सामंजस्य-में कैसे बदला जा सकता है।

बहुत-से उपाय सुझाये गये हैं। राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक और धार्मिक उपाय भी सामने रखे गये हैं, पर उनमेंसे कोई भी सफलताके साथ इस महान् कार्यको पूरा करने योग्य नहीं है। मनुष्यके अंदर नयी चेतना लानेवाली एक नयी आध्यात्मिक बाढ़ ही इस कामके रास्तेमें आने-वाली बाधाओंके पहाड़को रास्तेसे हटा सकती है। इस समय जरूरत है एक नयी आध्यात्मिक ज्योतिकी, धरतीपर भगवान्की किसी ऐसी शक्तिके उतरनेकी जो अभीतक हमारे लिये अपरिचित है, भगवान्के ऐसे रूप और विचारकी जो हमारे लिये नये हैं।

और यह बात करते ही हम उस बिंदुपर जा पहुंचते हैं जहांसे चले थे। मेरा मतलब है सच्चे मातृत्वसे। क्योंकि यह रूप जिसका निर्माण धरतीकी वर्तमान परिस्थितियोंको बदलनेकी क्षमता रखनेवाली आध्यात्मिक शक्तिको अभिव्यक्त करनेके लिये किया जायगा, उस रूपका निर्माण नारी नहीं करेगी तो कौन करेगा?

इससे स्पष्ट है कि संसारकी इस नाजुक स्थितिमें सिर्फ ऐसे जीवको जन्म देना ही काफी नहीं है जिसमें हमारे ऊंचे-से-ऊंचे आदर्श प्रकट होते हों; हमें यह भी जाननेकी कोशिश करनी चाहिये कि प्रकृति जिस नये रूपको साकार करनेकी कोशिश कर रही है वह कैसा होगा। हमने जिन महापुरुषोंके बारेमें जाना या सुना है उन्हीं जैसे, या उनसे भी बड़े, उनसे ज्यादा प्रतिभाशाली और दक्ष मनुष्योंके निर्माणसे काम न चलेगा। हमें निरंतर प्रयास करके, हमेशा अपने विचारों और संकल्प-शक्तिके द्वारा अभीप्सा करते हुए उस ऊंची-से-ऊंची संभावनाके साथ नाता जोड़ना चाहिये जो सभी मानव मानकों और विशेषताओंसे ऊपर हैं और जिसमेंसे महा-मानव जन्म लेगा।

फिरसे प्रकृतिमें वह महान् आवेग पैदा हो रहा है जो किसी एकदम नयी चीजको जन्म देना चाहता है, किसी ऐसी चीजको जिसकी हम आशा भी नहीं कर सकते। हमें इस आवेगका उत्तर देना चाहिये और उसके अनुसार चलना चाहिये।

हमें यह जाननेकी कोशिश करनी चाहिये कि प्रकृतिका यह आवेग हमें

किस दिशामें ले जायगा। यह जाननेंका सबसे अच्छा उपाय यह है कि हम भूतकालके दिये हुए पाठपर नजर दौड़ायें।

हम देखते हैं कि प्रकृतिकी हर नयी प्रगतिपर, हर नयी क्षमता और नये तत्त्वके धरतपर प्रकट होनेपर एक नयी जातिने जन्म लिया है। इसी भांति, मानव जातिके मार्ग-दर्शकोंके प्रयाससे निरंतर प्रेरणा, नवजीवन और नवीन रूप पाते हुए जातियों, जन-समुदायों और व्यक्तियोंके जीवनके प्रगतिशील रूप मानव चक्रोंका क्रमशः अनुसरण करते हैं। इन सब रूपोंका लक्ष्य एक ही है– प्रकृतिका रहस्यमय और भव्य लक्ष्य।[1]

हमें प्रकृतिकी इस मांगका उत्तर देना है, इस शानदार, इस प्रतापी कार्यमें अपने-आपको लगा देना है। हमें जहांतक हो सके इस कठिन और अभीतक अनजाने मार्गपर प्रगतिके सोपानको अधिक-से-अधिक स्पष्ट करते चलना चाहिये।

सबसे पहले हमें मनुष्य या अतिमानवके भविष्यकी कल्पना करनेमें सावधान रहना चाहिये, हम वास्तविक मनुष्यके रूप ही को पूर्ण करके या बढ़ा-चढ़ाकर न स्वीकार लें। इस भूलसे भरसक बचनेके लिये हमें जीवन-विकासकी शिक्षाओंका अध्ययन करना चाहिये।

हम देख आये हैं कि किसी नयी जातिका प्रकट होना ही घोषणा करता है कि धरतीपर किसी नये तत्त्वका, चेतनाके नये स्तरका, एक नयी शक्ति और ऊर्जाका अवतरण हुआ है। लेकिन साथ-ही-साथ नयी जातिमें जहां अप्रकट शक्ति या चेतना आती है वहां उससे पहलेकी जातिकी एक या कई पुरानी विशेषताएं और पूर्णताएं खो भी सकती हैं। उदाहरणके लिये, अगर हम प्रकृतिके पिछले चरणको ही देखें तो मनुष्य और उसके पूर्ववर्ती वानरमें कौन-से बड़े भेद हैं? हम देखते हैं कि बंदरमें जीवन शक्ति और शारीरिक क्षमता लगभग पूर्णतातक पहुंची हुई है, एक ऐसी पूर्णता जिसे विकासक्रमकी नयी जाति — मनुष्य — को छोड़ना पड़ा। मनुष्य उस तरह न तो पेड़ोंपर चढ़ सकता है, न खाइयोंपर कलाबाजियां करता हुआ एक चोटीसे दूसरी चोटीतक पहुंच सकता है। लेकिन इन चीजोंके बदले उसने बुद्धि पायी है, विवेचन शक्ति पायी है, जोड़नेकी, निर्माणकी क्षमता पायी है। निश्चय ही मनुष्यके अंदर मन और बुद्धिका जीवन है। उसके साथ यही तत्त्व धरतीपर आये थे। मनुष्य तत्त्वतः एक मानसिक प्राणी है और यदि उसे ऐसा लगता है कि उसकी संभावनाएं यहीं पर समाप्त नहीं हो जातीं, अगर वह अपने अंदर अन्य जगत्, अन्य क्षमताएं और

---

[1] देखिये लेखके अंतमें पृ० १५५

मनसे परेकी चेतनाके स्तर देखता है तो ये भविष्यके लिये प्रत्याशाएं और आश्वासन हैं। बंदरमें भी इसी तरह मनकी संभावनाएं छिपी हुई हैं।

यह सत्य है कि कुछ मनुष्य, लेकिन बहुत ही कम, उस पारके जगत्में रह चुके हैं जिसे हम आध्यात्मिक जगत् कह सकते हैं। कुछ लोग निःसंदेह उस जगत्के जीते-जागते अवतार भी थे। लेकिन ये सब अपवाद हैं, जातिको मार्ग दिखानेवाले अग्रदूत हैं। वे साधारण औसत मनुष्य न होकर भावी सिद्धियोंका रास्ता दिखानेवाले थे। जो बातें ऐसे इने-गिने लोगोंका विशेषाधिकार थीं जो देश और कालमें इधर-उधर बिखरे हुए थे वे साधारण रूपमें आनेवाली नयी जातिकी केंद्रीय विशेषताएं बन जायंगी।

अभी मनुष्यका जीवन बुद्धिके द्वारा चलता है। मनकी क्षमताएं उसके लिये साधारण व्यवहारकी चीजें हैं। अवलोकन और अनुमान उसके ज्ञान-प्राप्तिके साधन हैं। वह जीवनमें तर्कके द्वारा किसी निर्णयपर पहुंचता और अपना रास्ता चुनता है, उसे यह विश्वास तो है ही।

नयी जाति सहज ज्ञानके अनुसार चलेगी, यानी वह अपने अंदर भगवान्के विधानको सीधा देख सकेगी। कुछ मनुष्य वस्तुतः सहज बोधसे जान सकते और अनुभव कर सकते हैं, इसी तरह जंगलके कुछ गुरिल्ले निःसंदेह ऐसे भी होते हैं जिनके अंदर बुद्धिकी झांकियां दिखायी देती हैं।

मनुष्यजातिमें बहुत ही कम लोग ऐसे हैं जिन्होंने अपनी अंतरात्मामें इतनी प्रगति की है, जिन्होंने अपनी सारी शक्तियोंको अपनी सत्ताके आंतरिक विधानको जाननेके लिये केंद्रित किया है, उनके अंदर सहज-बोधकी थोड़ी-बहुत क्षमता होती है। जब मन पूरी तरहसे शांत हो, अच्छे दमकते हुए आइनेकी तरह स्वच्छ हो और शांत दिनके सरोवरकी तरह चुपचाप और स्थिर हो तो जैसे तारोंका प्रकाश निश्चल जलोंपर पड़ता है उसी तरह ऊपरसे अतिमानसका प्रकाश, अंदरके सत्यका प्रकाश नीरव मनमें चमकता है और सहजबोधको जन्म देता है। जिन्हें नीरवतामें इस आवाजको सुननेका अभ्यास है वे इसीको अपने कामोंकी प्रेरणा बनानेका अधिक-से-अधिक प्रयास करते हैं और जहां साधारण आदमी बुद्धि और विवेचनके पेचीदा रास्तोंपर भटकता रहता है, वहां ये लोग जीवनके घुमावदार रास्तोंसे होते हुए सहज-बोधके मार्ग-दर्शनमें सीधे चले जाते हैं। यह सहजबोध एक ऊंचे प्रकारकी नैसर्गिक वृत्ति है और एक मजबूत और अचूक मार्ग-दर्शक है।

यह क्षमता आजकल बहुत ही विरल और अपवाद रूप या अस्वाभाविक है, परंतु नयी जातिके लिये, कलके मनुष्यके लिये बिलकुल सामान्य और

स्वाभाविक होगी। लेकिन शायद उसका निरंतर उपयोग मनुष्यकी बुद्धिकी क्षमताओंके लिये हानिकर हो। जैसे आजके मनुष्यमें बंदरकी चरम शारीरिक क्षमताएं नहीं हैं, उसी तरह शायद अतिमानवमें मनुष्यकी चरम बौद्धिक क्षमताएं' नहीं होंगी, उसमें अपने-आपको और औरोंको धोखा देनेकी क्षमता न रहेगी।

जब मनुष्य बेधड़क होकर यह घोषणा कर सकेगा कि उसने अभीतक जो कुछ प्राप्त किया है — इसमें उसकी बुद्धिकी भी गिनती हो जाती है जिसके बारेमें उसे उचित, परंतु साथ ही व्यर्थ गर्व है — वह अब काफी नहीं है और उस महान् शक्तिको खोलना, खोजना, अपने अंदर उसे मुक्त करना ही अबसे उसका सबसे बड़ा और मुख्य काम होगा, तब उसके लिये अतिमानवताका रास्ता खुल जायगा। तब मनुष्यका दर्शन, विज्ञान, नीतिशास्त्र, सामाजिक जीवन, कला-कौशल आदि उसके महत्त्वपूर्ण कार्य-कलाप उसके गोलाकारमें चक्कर लगाने वाले मन और प्राणका व्यायाम न रहकर मन और प्राणके पीछे छिपे सत्यकी खोज बन जायेंगे — और मानव जीवनमें शक्ति उतारनेके साधन होंगे। और यह हमारी वास्तविक सत्ता और प्रकृतिकी खोज है।

फिर भी, वह व्यक्तित्व जो हम अभीतक तो नहीं हैं पर भविष्यमें होंगे, वह बलवान् प्राण नहीं होगा जिसके गीत नीत्शेने गाये हैं। वह एक आध्यात्मिक प्रवृत्ति और आध्यात्मिक व्यक्तित्व होगा। अतिमानवकी बात करते हुए यह सावधानी जरूरी है कि इसे नीत्शेकी बिलकुल ऊपरी और अपूर्ण, किंतु मजबूत कल्पनाके साथ न मिला दिया जाय। जबसे नीत्शेने अतिमानव शब्दका आविष्कार किया है तबसे जो भी आनेवाली जातिके बारेमें इस शब्दका प्रयोग करता है वह जाने-अजाने नीत्शेकी कल्पनाको जगा देता है।

निश्चय ही नीत्शेका यह विचार बिलकुल ठीक है कि वर्तमान असंतोषजनक मानवताओंसे अतिमानवको विकसित करना ही हमारा कर्तव्य है। उसका यह सूत्र कि हमें "अपना सच्चा व्यक्तित्व बनना चाहिये", ऐसा है जिसमें कुछ भी जोड़ने-घटानेकी जरूरत नहीं, क्योंकि इसका भाव

'पुरानी हस्तलिखित पाण्डुलिपिसे प्राप्त एक विकल्प :—

हो सकता है कि समस्त तर्कणा शक्ति और उसकी इंद्रिय या अवयव भी व्यर्थ हो जाय और जरा-जरा करके गायब हो जाय जैसे बंदरकी पूंछ मानव शरीरके लिये बेकार होनेके कारण गायब हो गयी।

यही है कि मनुष्यने अभीतक अपनी सच्ची अंतरात्माको, अपनी सच्ची प्रकृतिको नहीं पाया है जिससे वह सफलतापूर्वक सहज जीवन जी सके। फिर भी नीत्शेने एक बड़ी भूल की जिससे हमें बचना चाहिये। उसका अतिमानव मनुष्यका ही बढ़ा-चढ़ा रूप है जिसमें पूरी तरह शक्ति और बलका ही राज है। मनुष्यकी और सब विशेषताएं इसके नीचे दब गयी हैं। यह हमारा आदर्श नहीं हो सकता। हम भली-भांति देख सकते हैं कि केवल बलकी पूजा हमें कहां ले जाती है। उसका परिणाम बलवानोंके अपराध और जगत्का नाश — बस यही होगा।

नहीं, अतिमानवका मार्ग हमेशा पूर्ण रहनेवाली आत्माके खिलनेमें है। एक बार अगर व्यक्ति आध्यात्मिक बननेके लिये राजी हो जाय तो सब कुछ आसान हो जायगा, सब कुछ बदल जायगा। आध्यात्मिक जीवनकी उच्चतर पूर्णता आध्यात्मिक मनुष्यके सहज रूपसे अपनी उपलब्ध सत्ताके सत्यकी आज्ञाका पालन करनेसे आयेगी, लेकिन तब जब वह अपना सच्चा स्व बन जायगा, अपनी सच्ची प्रकृतिको पा लेगा। यह सहज-प्रकृति पशुओंमें अवचेतन सहज-बुद्धिके रूपमें न होकर समग्र चेतनाके साथ अन्तर्भासिक होगी।

इसलिये जो लोग नव युगमें मानवताके भावीकी सबसे अधिक सहायता करेंगे वे वही होंगे जो आध्यात्मिक विकासको ही नियति और मानवजातिकी सबसे बड़ी आवश्यकताके रूपमें स्वीकार करेंगे — एक ऐसे विकास या परिवर्तनको जो वर्तमान मानव जातिको अध्यात्म मानवतामें उसी तरह बदल देगा जैसे एक बड़ी हदतक पाशविक मनुष्य उच्च स्तरकी मानसिक मानव जातिमें बदला है।

वे अमुक विश्वासों या धर्मके रूपोंकी ओरसे अपेक्षया उदासीन होंगे और मनुष्योंको उन विश्वासों और रूपोंको अपनाने देंगे जिनकी ओर वे स्वभावतः आकर्षित हों। वे इस आध्यात्मिक परिवर्तनमें श्रद्धाको ही आवश्यक मानेंगे। विशेषकर, वे यह सोचनेकी भूल नहीं करेंगे कि यह परिवर्तन यंत्रों या बाहरी प्रथाओंके द्वारा लाये जा सकेंगे। वे यह बात जानते होंगे और इसे कभी न भूलेंगे कि ये परिवर्तन तबतक वास्तविक नहीं बन सकते जबतक कि हर एक इन्हें अपने आन्तरिक जीवनमें साधित न कर ले।

इन व्यक्तियोंमें नारियोंको ही सबसे पहले यह महान् परिवर्तन साधना होगा, क्योंकि उनका विशेष कार्य है इस संसारमें नयी जातिके पहले नमूनेको जन्म देना। और यह कर सकनेके लिये उसे न्यूनाधिक रूपसे अपने विचारोंमें कल्पना करनी होगी कि इस आध्यात्मिक परिवर्तनका क्या परिणाम होगा।

क्योंकि अगर यह केवल बाह्य रूपान्तरसे सिद्ध नहीं होता तो हमें यह जान लेना चाहिये कि अतिमानवको इस रूपान्तरके बिना नहीं बुलाया जा सकता।

वे निश्चित रूपसे बौद्धिककी अपेक्षा सामाजिक और नैतिक क्षेत्रोंमें कम नहीं होंगे।

क्योंकि धार्मिक विश्वास और मत गौण हो जायंगे इसीलिये नैतिक विधि-निषेध, आचरणके नियम या रूढ़ियोंका कोई मूल्य न रहेगा।[1]

वास्तवमें, मानव जीवनमें सारी नैतिक समस्या प्राणिक इच्छाओं और आवेगों तथा मानसिक शक्तिके आदेशोंके संघर्षपर केंद्रित है। जब प्राणिक इच्छा-शक्ति मानसिक शक्तिके आधीन हो तो व्यक्ति या समाजका जीवन नैतिक हो जाता है। लेकिन जब प्राणिक इच्छा और मानसिक शक्ति दोनों, समान रूपसे एक अधिक ऊंची चीज, अतिमानसके आधीन हों, केवल तभी मानव जीवनको पार किया जा सकता है और सच्चे आध्यात्मिक जीवनका, अतिमानवके जीवनका आरंभ होता है। उसका विधान अन्दरसे आयेगा, वह दिव्य विधान होगा जो हर सत्ताके केंद्रमें चमकता, वहींसे जीवनपर शासन करेगा। यह दिव्य विधान अपनी अभिव्यक्तिमें तो बहुविध होता है पर अपने मूलमें एक ही रहता है और इस एकताके कारण ही वह चरम व्यवस्था और सामंजस्यका विधान है।

---

[1]निम्नलिखित अंश पुरानी पाण्डुलिपिसे प्राप्त हुआ :

लेकिन इन व्यक्तियोंमें, जैसा कि हम कह आये हैं, नारीका एक विशेष कार्य होगा — नयी जातिके पहले नमूनोंको इस जगत्‌में जन्म देना। और यह करने योग्य होनेसे पहले हमें न्यूनाधिक रूपमें पहले अपने विचारमें यह समझ लेना होगा कि अतिमानव जो हो सकता है उसका आदर्श क्या है।

वस्तुतः, नयी जाति कैसी होगी, उसका चित्रण करनेसे बढ़कर कठिन काम कोई नहीं है। यह एक ऐसा प्रयास है जो सफल नहीं हो सकता और निश्चय ही हम उसके ब्यौरोंमें जानेकी कोशिश नहीं करेंगे। हम अपने मनसे अतिमन या आत्माकी सृष्टिकी बातको निश्चिति या विशुद्धताके साथ ग्रहण करनेके लिये नहीं कह सकते।

लेकिन हम पहले ही देख आये हैं कि भावी सत्ताके विशेष लक्षणोंमेंसे एक होगा मानसिक तर्कके स्थानपर अंतर्भासिक ज्ञानको बिठाना। इसी तरह नयी जातिके जीवनका नैतिक और समाजिक मानदंड क्या हो सकता है?

निश्चय ही नैतिक दृष्टिसे नयी जातिके व्यक्तिके लिये कोई नयी रोक-थाम, नये आदेश, परिपाटियों या आचरणके नियम न होंगे।

इस भांति व्यक्ति, जो अहंकारभरे हेतुओं, विधि-विधानों, रीति-रिवाजोंसे प्रेरित न होगा, सभी अहंकार-भरे लक्ष्योंको त्याग देगा। पूर्ण अनासक्ति ही उसका नियम होगा। इहलोकमें या परलोकमें व्यक्तिगत लाभ पानेके लिये काम करना उसके लिये कल्पनातीत और असंभव होगा। उसका हर एक कर्म प्रेरणा देनेवाले दिव्य विधानकी आज्ञानुसार पूर्ण, सरल और आनन्दमय आज्ञापालन होगा जिसमें परिणामों या पुरस्कारोंकी मांग न होगी, क्योंकि उस प्रेरणाके अनुसार काम करना, स्वयं अन्तर-स्थित भागवत तत्त्वके साथ चेतना और संकल्पमें ऐक्य प्राप्त करनेका आनन्द ही अपने-आपमें परम पुरस्कार होगा।

और इस तादात्म्यमें ही अतिमानव अपना सामाजिक स्तर पायेगा। क्योंकि वह अपने अन्दर दिव्य विधानको पाकर, उसी दिव्य विधानको हर एक सत्ताके अन्दर देख सकेगा और अपने अन्दर उसके साथ तादात्म्य पाकर औरोंके अन्दर भी उसके साथ तादात्म्यका अनुभव करेगा, और इस प्रकार केवल तत्त्व या सार रूपमें ही नहीं, जीवनके अत्यन्त बाहरी स्तरों और रूपोंमें भी, सबकी एकताका भान प्राप्त कर लेगा। वह कोई मन, प्राण या शरीर न होकर उन्हें अनुप्राणित करने और सहारा देनेवाली नीरव, शान्त और शाश्वत आत्मा होगा जो इन सबपर शासन करती है और वह देखेगा कि यही आत्मा हर जगह, सभी मन, प्राण, शरीरोंको अनुप्राणित करती और सहारा देती है। वह इस 'आत्मा'को भागवत स्रष्टा और सभी कर्मोंके कर्ताके रूपमें जानेगा जो सभी सत्ताओंमें मौजूद है क्योंकि वैश्व अभिव्यक्तिकी अनेक आत्माएं एक ही भगवान्‌के अनेक चेहरे हैं। वह हर एक सत्ताको इस रूपमें देखेगा मानों वही वैश्व भागवत सत्ता उसके आगे विभिन्न रूपोंमें आ रही है। वह अपने-आपको उस एक सत्तामें मिला देगा और स्वयं अपने मन, प्राण और शरीरको उसी आत्माके पहलुओंके रूपमें लेगा और आज वे सब जिन्हें हम अपने से अलग मानते हैं, वे उसकी चेतनाके लिये विभिन्न मन, प्राण और शरीरोंमें उसके स्वके ही रूप होंगे। वह सबके शरीरोंमें अपने शरीरको एक अनुभव कर सकेगा, जिस तरह कि सारे पदार्थकी एकताका भान रखते हुए वह सभी सत्ताओंके मन और प्राणके साथ अपने-आपको एक कर लेगा। संक्षेपमें कहें तो वह औरोंमें अपने-आपको और अपने अन्दर औरोंको देखेगा और अनुभव करेगा। इस प्रकार ऐक्यकी पूर्णतामें सच्ची एकात्मताकी उपलब्धि करेगा।

हमें अतिमानवके वर्णनमें अपने-आपको इन्हीं अनिवार्य संकेतोंतक सीमित रखना चाहिये। उसका रेखांकन करनेके प्रयासमें और आगे बढ़नेकी जरूरत नहीं क्योंकि हमें विश्वास है कि और ज्यादा यथार्थ केवल निःसार

ही नहीं, व्यर्थ भी होगा। न्यूनाधिक रूपमें यथार्थ, बहुत-सी कल्पनाएं नयी जातिके निर्माणमें सहायता न देंगी। अगर हम अपने मन और हृदयमें गतिशीलताको दृढ़ रूपसे पकड़े रहें; ऐसी प्रेरणाको — जो सच्ची और तीव्र अभीप्सासे आती है — बनाये रखें, अपने अंदर भविष्यमें धरतीपर अभिव्यक्त होनेवाली नयी जातिकी परम धारणाकी प्रकाशयुक्त ग्रहणशीलताको बनाये रखें, तभी हम भविष्यकी संतानके निर्माणमें एक निर्णायक कदम उठा सकेंगे और अपने-आपको संसारका त्राण करनेवालोंके निर्माणका उपयुक्त माध्यम बना सकेंगे।[1]

---

[1] पुरानी पांडुलिपिमें अंतमें इतना और जुड़ा हुआ था:

क्योंकि वास्तवमें यह नयी जाति त्राण करनेवालोंकी होगी। क्योंकि इस जातिका प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपने लिये, शासन या समाजके लिये, व्यक्तिगत अहं या सामुदायिक अहंके लिये नहीं, बल्कि इनसे बहुत बड़ी चीजके लिये, स्वयं अपने अंदर भगवान् और संसारके अंदर भगवान्के लिये जियेगा।

(पृ० १४८ की टिप्पणी)

लगता है कि पुरानी पाण्डुलिपिसे प्राप्त यह अंश यहां जोड़नेके लिये लिखा गया था :

यह कौन-सा लक्ष्य है? प्रकृति भविष्यकी किस अप्रत्याशित उपलब्धिकी ओर संधान कर रही है? वह अपने अंधेरे आरंभसे ही किसकी खोजमें है?

हर नया रूप जिसे वह रचती है उसका नया समर्थन और नयी स्वीकृति है जो उसके द्वारा, उसमेंसे उत्पन्न होगा जिसे व्यक्त करना उसका उद्देश्य है।

हर जाति, दूसरोंको तैयार करती हुई, उन्हें संभव बनाती हुई प्रकृतिके अनथक अध्यवसायकी साक्षी है, उसकी गंभीर प्रतिज्ञाका प्रमाण है। हर एकमें जरा ज्यादा रूपांतरित द्रव्य है जो मेधाकी भावी ऊषाओंकी घोषणा करती है। उसे अनगिनत चक्रोंमेंसे होते हुए, मानवाकार, आदिम मानवकी अंतिम गुहातक पहुंचनेमें कितने पथोंका अनुसरण करना पड़ा है?

इसीके सामने आत्माके सौधतक ले जानेवाले राजपथ खुलेंगे। लेकिन इसे खोजे बिना कितनी जातियां, कितनी पीढ़ियां गुजर जायंगी, प्रकृति मनुष्यके चरणचिह्नोंपर चलते हुए कितने गलत रास्ते अपनायेगी। क्योंकि अपने-आपको विश्वकी श्रेष्ठतम कृति माननेवाला मनुष्य यह नहीं जानता कि उसे एक और स्थितिमेंसे गुजरना है।

क्या मनुष्यके अस्तित्वसे पहले, मनुष्यके निकटतम पूर्वज भी मनुष्यके बारेमें सोच सकते थे? क्या अतिमानवके अस्तित्वसे पहले उसका विचार मनुष्यके मस्तिष्कमें घुस सकता है?

फिर भी, संसारमें आनेवाले हर मनुष्यके बालकमें, हर बढ़ती हुई बुद्धिमें, उभरती हुई हर पीढ़ीके प्रत्येक प्रयासमें, मानव प्रतिभाके हर प्रयत्नमें प्रकृति वह रास्ता ढूंढती है जो उसे फिरसे आगे ले जा सके।

शायद पंद्रह-सौ शताब्दियोंसे डेढ़ अरब मनुष्य इस मार्गको पाये बिना भटक रहे हैं।

उन मार्गोंकी भीड़में जिनमें प्रगतिके प्रयास बिखरे पड़े हैं, इस प्रदेशमें भी और अन्य प्रदेशोंमें भी, केवल एक अच्छा है और वह है समन्वयात्मक पूर्णताओंका। उसे कहां पाया जाय?

और मनुष्योंमें ऐसा कौन है जो सरल और घिसे-पिटे रास्तोंको छोड़कर कहीं और बढ़नेकी हिम्मत कर सकता है? कौन है जो यह जानते हुए कि आगे जानेवाला एक और रास्ता है, शायद, उसे पा सकनेके लिये सब कुछ खोनेके लिये तैयार हो, अकेले चलनेके लिये सब कुछ खो सके, अकेले

सोचनेके लिये, औरोंसे हमेशा अलग रहते हुए, इस विश्वासके बिना ही कि वह जिसे ढूंढ रहा है उसे पा ही लेगा — इन स्थितियोंमें अकेला चले?

ऐसे आदमीको उन लोगोंमें खोजनेकी कोशिश न करो जो उत्कृष्ट हैं और चमकते हैं क्योंकि ये केवल अपनी जातिके जैसे होनेमें ही कुछ ज्यादा पूर्णताके साथ ज्यादा अच्छे और चमकदार हैं।

सब पत्थरोंमें मूल्यवान् पत्थर ज्यादा उत्कृष्ट और चमकदार होते हैं। लेकिन सुन्दर-से-सुन्दर मणि भी उन रासायनिक योगोंसे अलग है जिनमेंसे जीवन उत्पन्न होता है। इसी तरह रूपोंके सोपानपर चढ़ते हुए जंगलके सुन्दर-से-सुन्दर वृक्ष भी विकास क्रमकी उस रेखासे अलग हैं जो जैविक प्रक्रियाको ऊपरकी ओर पशु या मनुष्यतक ले जाती है।

ठीक इसी तरह, मनुष्योंमें, सबसे अधिक प्रशंसित, सबसे बढ़कर प्रसिद्ध सबसे बढ़कर कलाकार, सबसे बड़ा विद्वान, सबसे बढ़कर धार्मिक व्यक्ति अपने-आपको उस रास्तेसे बहुत दूर पा सकता है जो अतिमानवकी ओर ले जाता है।

हर जाति, हर सभ्यता, हर मानव समाज, हर धर्म प्रकृतिके एक नये प्रयत्नका प्रतिनिधि है। अनंत कालसे चले आ रहे बहुविध प्रयासोंके क्रममें एक औरकी वृद्धि करता है।

जैसे सभी प्रकारके पाशविक रूपोंमेंसे एक ही ऐसा था जिसमेंसे मनुष्यको विकसित होना था उसी भांति सामाजिक और धार्मिक जातियोंमेंसे एक कोई जाति ऐसी उत्पन्न होगी जिसमेंसे किसी दिन अतिमानव प्रकट होगा।

क्योंकि प्रकृति अपने सभी क्रमिक प्रयासोंमें, प्राणके पहले प्रस्फुटनसे लेकर मनुष्यतक यही खोजती आयी है, उस देवको खोजती है जो मनुष्यसे उत्पन्न होगा।

मनुष्योंकी भीड़में वह अतिमानवकी संभावना ढूंढती है; और उसमेंसे हर एकमें उसका लक्ष्य है भगवान्‌की उपलब्धि।

यादें

हमें यादोंसे इतना स्नेह होता है क्योंकि वे वैश्व की चीजें हैं। उनके अंदर अनंतताके रसका कुछ अंश होता है।

जिसे दैनिक घटनाओंमें बाहरी अहंकारपूर्ण और सीमित संवेदनशीलताके

द्वारा देखा गया है — उस संवेदनशीलता द्वारा जो कष्ट पाती और खुश होती है — वह भ्रांतिके बादलोंकी तरह गायब हो जाता है। लेकिन उस अज्ञान-भरे बोधके पीछे — प्रायः उससे ढका हुआ — एक और बोध होता है, वास्तविक अंतरात्माका बोध जो सभी चीजोंके द्वारा उनकी वैश्व अंतरात्माके साथ नाता जोड़ता है और सभीके अंदर उसके पूर्ण आनंदका अनुभव करता है।

ये बोध हमारी सत्ताकी गहराइयोंमें यादोंके रूपमें रखे रहते हैं और जब उनमेंसे कोई स्मृतिमें उभरती है तो वह भागवत परमानंदका सुनहरा चोला पहनकर आती है।

जिसे हम पहले अपने अज्ञानमय बोधमें कष्ट और पीड़ा कहते थे वही सज-धजकर, रूपांतरित और महिमान्वित होकर, भव्यताके उसी वेशसे अलंकृत होकर फिरसे आती है जिसे हम सुख और चैन कहते हैं। वास्तवमें कभी-कभी पिछली यादोंकी भव्यता, बादकी भव्यतासे कहीं अधिक तीव्र और विस्तृत होती है। उनसे जो हर्ष मिलता है वह कहीं अधिक गहरा और शुद्ध होता है।

इस तरह, थोड़ा-थोड़ा करके हम चीजोंकी वास्तविकता और अपनी अंधी इंद्रियोंकी दी हुई झूठी व्याख्यामें फर्क करना सीखते हैं।

इसीलिये यादें ऐसी मूल्यवान शिक्षिकाएं होती हैं। इसीलिये यादें हमें इतनी प्रिय होती हैं। उनके द्वारा हम शाश्वतके संपर्कमें आते हैं।

मैं और मेरा विश्वास

मैं किसी राष्ट्रकी, किसी सभ्यताकी, किसी समाजकी, किसी जातिकी नहीं हूं। मैं भगवान्‌की हूं।

मैं किसी मालिककी, किसी शासककी, किसी कानूनकी, किसी सामाजिक प्रथाकी आज्ञा नहीं मानती, भगवानकी आज्ञा मानती हूं।

मैंने उन्हें संकल्प, जीवन और आत्मा, सब कुछ समर्पण कर दिया है। मैं उनके लिये बूंद-बूंद करके अपना समस्त रक्त पूरी खुशीसे देनेको तैयार हूं, अगर यह उनकी इच्छा हो। उनकी सेवामें बलि हो ही नहीं सकती, क्योंकि सब कुछ परम आनंद है।

जापान (फरवरी १९१०)

भाग ७

Ces histoires ont été écrites pour aider les enfants à se trouver eux-mêmes et à suivre un chemin de rectitude et de beauté.

Février 1950.

ये कहानियां इस लिये लिखी गयी थीं कि इन्हें पढ़कर बच्चोंको अपने-आपको जानने तथा सत्य और सौन्दर्यके मार्गका अनुसरण करनेमें सहायता मिले।

— श्रीमाताजी

१

आत्म-संयम

हम जंगली घोड़ेको तो वशमें कर सकते हैं, परंतु बाघके मुंहमें लगाम नहीं लगा सकते। यह क्यों? क्योंकि बाघमें एक ऐसी बुरी और क्रूर प्रवृत्ति होती है जो किसी प्रकार सुधारी नहीं जा सकती। इसी कारण हम उससे किसी भी अच्छे व्यवहारकी आशा नहीं करते और उसे मार डालनेके लिये विवश हो जाते हैं ताकि वह हमें कोई हानि न पहुंचा सके।

इसके विपरीत, एक जंगली घोड़ा, प्रारंभमें वह चाहे कितना ही अड़ियल और भड़कैल क्यों न हो, थोड़े-से यत्न और धैर्यद्वारा वशमें किया जा सकता है। कुछ समय बाद वह हमारी आज्ञाका पालन तथा हमसे प्रेम करना भी सीख जाता है। अंतमें तो वह लगाम चढ़वानेके लिये स्वयं ही अपना मुंह आगे बढ़ा देता है।

मनुष्योंमें भी कुछ विद्रोही और उद्दंड प्रवृत्तियां तथा इच्छाएं होती हैं, पर ऐसा शायद ही कभी होता हो कि वे बाघकी भांति वशमें न लायी जा सकें। अधिकांशमें तो वे जंगली घोड़ेके सदृश होती हैं और उनके सुधारके लिये आवश्यकता होती है केवल एक लगामकी। और सबसे बढ़िया लगाम वह है जो मनुष्य स्वयं अपनी प्रवृत्तियोंपर लगाता है। इसे ही हम आत्म-संयम कहते हैं।

हुसैन पैगम्बर मोहम्मदके नाती थे। उनके रहनेका मकान खूब आलीशान था, थैलियां अशर्फियोंसे भरी थीं। उनको नाराज करना धनी मनुष्यको नाराज करना था। और धनीका क्रोध बहुत भयंकर होता है।

एक दिनकी बात है, एक गुलाम खौलते हुए पानीका बर्तन लिये हुसैनके पाससे गुजरा। वे उस समय भोजन कर रहे थे। दुर्भाग्यवश, थोड़ा-सा पानी उछलकर पैगम्बरके नातीके ऊपर गिर पड़ा। वे क्रोधसे चिल्ला उठे।

गुलाम घुटने टेककर बैठ गया। उसका मन उस समय इतना स्वस्थ और संयत था कि ठीक अवसरके उपयुक्त उसे कुरानकी एक आयत स्मरण हो आयी।

"स्वर्ग उन लोगोंके लिये है जो अपने क्रोधको वशमें रखते हैं," उसने कहा।

"मैं क्रोधित नहीं हूं," इन शब्दोंसे प्रभावित होकर हुसैन बीचमें ही बोल उठे।

"और उन लोगोंके लिये है जो मनुष्योंको क्षमा करते हैं," गुलाम बोलता गया।

"मैं तुझे क्षमा करता हूं," हुसैन बोले।

"क्योंकि भगवान् दयालु व्यक्तियोंको प्यार करते हैं," गुलामने अंतमें कहा।

इस बात-चीतके समाप्त होते-न-होते हुसैनका सारा गुस्सा काफूर हो गया। उन्होंने अनुभव किया कि उनका हृदय अत्यन्त कोमल हो उठा है। गुलामको उठाते हुए उन्होंने उससे कहा — "ले, ये चार सौ दिरहम ले, तू आजसे स्वतन्त्र है।"

इस प्रकार हुसैनने अपने उतावले मनपर — जो उतना ही उदार भी था — लगाम लगानी सीखी। उनका स्वभाव न तो बुरा था और न कठोर, वह इस योग्य था कि वशमें किया जा सके।

इसलिये, बालको, यदि तुम्हारे माता-पिता या तुम्हारे अध्यापक कभी तुम्हें अपने स्वभावको वशमें करनेके लिये कहते हैं तो इसलिये नहीं कि उनके विचारमें तुम्हारे छोटे या बड़े दोष किसी प्रकार सुधारे नहीं जा सकते, बल्कि इसलिये कि तुम्हारा तेज और उत्साही मन उस अच्छी नसलके बछड़ेके समान है जिसे लगामकी जरूरत है।

एक मामूली-सी झोंपड़ी और राजमहलके बीच तुम अपने रहनेके लिये किसे पसंद करोगे? निःसंदेह महलको।

एक कहानी है कि जब हजरत मोहम्मद स्वर्ग देखनेके लिये गये तो वहां उन्होंने कुछ ऊंचाईपर बने हुए कई बड़े-बड़े महल देखे। उनकी सुन्दरताके सामने सारे देशकी सुन्दरता फीकी पड़ रही थी!

"ऐ जिब्राइल," मोहम्मदने उस देवदूतसे जो उन्हें स्वर्ग दिखा रहा था पूछा, "ये महल किन लोगोंके लिये बनाये गये हैं?"

देवदूतने उत्तर दिया — "उन लोगोंके लिये जो अपने क्रोधको वशमें रखते हैं और अपना अपमान करनेवालेको भी क्षमा करना जानते हैं।"

सचमुच ही शांत और द्वेषरहित मन वास्तविक महलके समान है। पर आवेश और प्रतिहिंसासे परिपूर्ण मनके लिये यह बात नहीं कही जा सकती। हमारा मन हमारा घर है। इसे हम अपनी इच्छानुसार एक ऐसा स्वच्छ, शांत और सुन्दर घर बना सकते हैं जो सुरीले और तालमय स्वरोंसे भरा हो। और हम इसे दुःखप्रद शब्दों और बेसुरी चिल्लाहटोंसे भरी हुई भयावह और अंधेरी गुफा भी बना सकते हैं।

*
**

उत्तर फ्रांसके एक शहरमें रहनेवाले एक लड़केसे मेरा परिचय था।

वह लड़का मनका तो सरल था पर उसका हृदय बड़ा जोशीला था। क्रोधमें आनेके लिये वह मानों सदैव तैयार बैठा रहता था।

एक दिन मैंने उससे कहा, "जरा सोचकर बताओ तो, तुम्हारे जैसे हृष्ट-पुष्ट लड़केके लिये कौन-सी बात अधिक कठिन है — थप्पड़के बदले थप्पड़ लगाना, मारनेवाले साथीके मुंहपर घूंसा जमा देना या ठीक उसी समय अपनी मुट्ठीको जेबमें डाल लेना ?"

"अपनी मुट्ठीको जेबमें डाल लेना," उसने उत्तर दिया।

"अच्छा, तो अब यह बताओ कि तुम्हारे जैसे साहसी लड़केके लिये सबसे आसान काम करना उचित है या, इसके विपरीत, सबसे कठिन काम ?"

एक मिनट सोचकर कुछ हिचकिचाते हुए उसने उत्तर दिया — "सबसे कठिन काम।"

"बहुत ठीक, अब अगली बार जब ऐसा अवसर आये तो यही करनेका यत्न करना।"

इसके कुछ दिन बाद वह युवक एक दिन मेरे पास आया और उसने मुझे समुचित गर्वके साथ बताया कि वह "सबसे कठिन कार्य" करनेमें सफल हुआ है।

उसने कहा, "कारखानेमें मेरे साथ काम करनेवाले मेरे एक साथीने, जो अपने बुरे स्वभावके लिये प्रसिद्ध है, क्रोधमें आकर मुझे मार दिया। वह जानता था कि मैं साधारणतया क्षमा नहीं किया करता और मेरी बाहुओंमें बल भी है, वह अपनी रक्षाके लिये तैयार हो गया। ठीक उसी समय मुझे आपकी सिखायी हुई बात स्मरण हो आयी। वैसा करना जितना मैंने सोचा था उससे कहीं अधिक कठिन लगा, पर मैंने अपनी मुट्ठी जेबमें डाल ही ली। ज्यों ही मैंने ऐसा किया मेरा गुस्सा न जाने कहां चला गया और उसके स्थानपर मैं उस साथीके प्रति दया अनुभव करने लगा। अब मैंने उसकी ओर अपना हाथ बढ़ाया। इससे उसे इतना आश्चर्य हुआ कि एक क्षण तो वह मुंह बाये मेरी ओर ताकता रहा, एक शब्द भी न बोल सका; फिर वह शीघ्रतासे मेरे हाथकी ओर लपका, उसे जोरसे दबाया और एकदम पिघलकर बोला, अब तुम मेरे साथ जैसा बर्त्ताव करना चाहो कर सकते हो। मैं सदाके लिये तुम्हारा मित्र हूं।'"

उस लड़केने अपना क्रोध उसी तरह वशमें कर लिया जैसे कि खलीफा हुसैनने किया था।

परंतु इसके अतिरिक्त कई और भी चीजें हैं जिन्हें वशमें करनेकी जरूरत है।

*
**

अरब देशके कवि अल-कोजई रेगिस्तानमें रहा करते थे। एक दिन उन्हें नाबाका एक सुन्दर पेड़ दिखायी दिया। उन्होंने उसकी टहनियोंसे एक धनुष और कई तीर बनाये।

रातमें वे जंगली गधोंका शिकार करने निकले। शीघ्र ही उन्हें गधोंके एक झुंडकी पदचाप सुनायी दी। उन्होंने एक तीर छोड़ा। पर धनुषकी डोरी उन्होंने इतने जोरसे खींची कि तीर झुंडके एक जानवरके शरीरको भेदता हुआ पासकी एक चट्टानसे जा टकराया। चट्टानसे तीरके टकरानेकी आवाज सुनकर अल-कोजईने सोचा कि उनका वार खाली गया है। अब उन्होंने दूसरा तीर छोड़ा, और इस बार भी वह एक जानवरके शरीरको पार करता हुआ चट्टानके जा लगा। अल-कोजईने अब भी यही समझा कि निशाना चूक गया। उन्होंने इसी तरह तीसरा, चौथा और पांचवां तीर चलाया और प्रत्येक बार उन्होंने वही आवाज सुनी। पांचवीं बार तो क्रोधमें आकर उन्होंने अपना धनुष ही तोड़ डाला।

अगलें दिन सबेरा होनेपर उन्होंने पांचों गधोंको चट्टानके पास मरा हुआ पाया।

यदि उनमें कुछ अधिक धैर्य होता, यदि उन्होंने दिन निकलनेकी प्रतीक्षा की होती तो अपनी शांतिके साथ-साथ वे अपना धनुष भी बचा लेते।

*
**

पर इससे किसीको यह नहीं समझना चाहिये कि ऐसी शिक्षाको, जो मनुष्य-चरित्रका सारा उत्साह और बल दूर कर उसे दुर्बल बना दे, हम उचित समझते हैं। यदि हम किसी जंगली घोड़ेके लगाम लगाते हैं तो इसलिये नहीं कि वह उसका मुंह काट दे या उसके दांत ही तोड़ दे। यदि हम चाहें कि वह अपना कार्य अच्छी तरह करे तो हम उसकी लगाम ऐसे पकड़ेंगे कि वह आगे बढ़ सके, इतनी निर्दयतासे नहीं खींचेंगे कि वह चल ही न सके।

दुर्भाग्यसे ऐसे अनेक व्यक्ति हैं जिनका स्वभाव भेड़के स्वभावसे मिलता है। उन्हें चलानेके लिये बस मामूली-सा कहना ही काफी होता है।

कुछ गुलामके-से स्वभाववाले होते हैं — जड़, नि:शक्त और बेहद दब्बू।

अबू उस्मान अल-हिरी अपने अत्यधिक धैर्यके लिये प्रसिद्ध था। एक दिन वह एक उत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये निमंत्रित किया गया। जब वह अपने निमंत्रण देनेवालेके घर पहुंचा तो उसने उससे कहा, "मुझे आज

क्षमा कीजिये, आज मैं आपका स्वागत नहीं कर सकता। मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप लौट जायं। भगवान्‌की दया आपपर बनी रहे।"

अबू उस्मान अपने घर लौट गया। उसके घर पहुंचते ही उसका मित्र उसे फिरसे निमंत्रित करनेके लिये आ पहुंचा।

अबू उस्मान भी अपने मित्रके पीछे-पीछे उसके घरके द्वारतक चला आया, पर मित्र वहीं रुक गया और उसने उस दिनके लिये उससे फिर क्षमा मांगी। इस बार भी अबू उस्मान बिना ननुनच किये वापिस लौट गया।

तीसरी बार और चौथी बार भी यही मामला दुहराया गया। परंतु अंतमें उसके मित्रने उसका स्वागत किया और सब लोगोंकी उपस्थितिमें उससे कहा: "मैंने आपके साथ ऐसा बर्ताव इसलिये किया था कि आपके भले स्वभावकी परीक्षा हो जाय। मैं आपके धैर्य और नम्रताकी प्रशंसा करता हूं।"

"मेरी प्रशंसा न कीजिये," अबू उस्मानने उत्तर दिया, "क्योंकि यह गुण तो कुत्तोंमें भी होता है; उन्हें बुलाओ तो वे आ जाते हैं और दुतकारो तो लौट जाते हैं।"

अबू उस्मान मनुष्य था, कुत्ता नहीं; और जो वह न्याय और आत्म-सम्मानका जरा भी ख्याल न करके, अपने मित्रोंकी हंसीका कारण बना, इससे किसीको कोई लाभ नहीं पहुंचा।

तो क्या इस दीन स्वभाववाले मनुष्यके अंदर वशमें लायी जानेवाली कोई चीज नहीं थी? हां, थी। वह ऐसी चीज थी जिसे वशमें लाना सबसे अधिक कठिन है। वह थी उसके स्वभावकी दुर्बलता। इसका कारण यह था कि स्वयं अपने ऊपर शासन करना नहीं जानता था। अतएव, प्रत्येक व्यक्ति उसे अपनी इच्छाके अनुसार चलाता था।

*
**

एक नवयुवक ब्रह्मचारी बड़ा चतुर था और वह अपने इस गुणको जानता भी था। उसकी बड़ी इच्छा थी कि वह अपनी योग्यताएं अधिक-से-अधिक बढ़ाये ताकि सर्वत्र उसकी प्रशंसा हो। इसके लिये उसने एक-के बाद एक कई देशोंकी यात्रा की।

एक तीर बनानेवालेके यहां उसने तीर बनाना सीखा।

कुछ दूर आगे जाकर उसने नाव बनाना तथा उसे खेना सीखा।

एक जगह उसने गृह-निर्माणकी कला सीखी।

फिर एक जगह उसने कुछ और कलाएं सीखीं।

इस प्रकार वह सोलह देशोंका पर्यटन कर वापिस घर लौटा और बड़े गर्वके साथ कहने लगा, "इस पृथ्वीपर मेरे समान गुणी मनुष्य और कौन है ?"

एक दिन भगवान् बुद्धने उस ब्रह्मचारीको देखा और उन्होंने सोचा कि उसे ऐसी कलाकी शिक्षा देनी चाहिये जो उन सबसे, जो उसने अबतक सीखी हैं, अधिक महान् हो। वे एक बूढ़े श्रमणका रूप धारण करके उस नवयुवकके पास गये। उनके हाथमें एक भिक्षापात्र था।

"आप कौन हैं ?" ब्रह्मचारीने प्रश्न किया।

"मैं एक ऐसा मनुष्य हूं जो अपने-आपको वशमें रख सकता है।"

"आपके कहनेका तात्पर्य ?"

"एक धनुर्वेदी तीर चलाना जानता है," बुद्धने उत्तर दिया, "एक नाविक नाव खेता है; एक शिल्पी अपनी देख-रेखमें मकान बनवाता है; पर एक ज्ञानी स्वयं अपने ऊपर शासन करता है।"

"वह कैसे ?"

"यदि कोई उसकी प्रशंसा करे तो उसका मन चंचल नहीं होता; यदि कोई उसकी निंदा करे तो भी वह शांत रहता है; वह सर्वहितके महा-नियमके अनुसार कर्म करता है और इस प्रकार वह सदा शांतिमें निवास करता है।"

अच्छे बच्चो ! तुम भी अपने ऊपर शासन करना सीखो। और अगर अपने स्वभावको वशमें करनेके लिये तुम्हें कठोर लगाम लगानेकी भी आवश्यकता पड़े, तो शिकायत मत करो।

एक चंचल युवा घोड़ा जो धीरे-धीरे संयत हो जायगा उस मूक काठके घोड़ेसे कहीं अच्छा है जो जैसा उसे बना दिया गया है सदा वैसा ही रहता है और जिसपर केवल हंसी-खेलके लिये ही लगाम चढ़ायी जाती है।

२

साहस

तुम पानीमें गिर पड़ते हो। वह विपुल जलराशि तुम्हें भयभीत नहीं करती। तुम हाथ-पांव मारते हो, साथ ही तैरना सिखानेवाले अपने शिक्षकको धन्यवाद देते हो। तुम लहरोंपर काबू पा लेते हो और बच निकलते हो। तुम बहादुर हो।

तुम सो रहे थे। "आग-आग" की आवाजने तुम्हें चौंका दिया। तुम पलंगसे कूद पड़ते हो; सामने तुम्हें अग्निकी लाल-लाल लपटें दिखायी देती हैं। तुम उस घातक भयसे त्रस्त नहीं होते। धुंएं, चिनगारियों और लपटोंके बीचमेंसे होकर तुम भाग निकलते हो और अपने-आपको बचा लेते हो। यह साहसका काम है।

बहुत दिन हुए मैं इंगलैण्डमें बच्चोंका एक स्कूल देखने गयी थी। वहां तीनसे सात वर्ष तकके छात्र थे। उनमें लड़के-लड़कियां दोनों थे। वे सब बुनने, चित्रकारी करने, कहानी सुनने-सुनाने, गाने आदिमें लगे हुए थे।

उनके अध्यापकने मुझसे कहा: "हम अब अग्निसे बचनेका अभ्यास करेंगे। सचमुच आग नहीं लगी है, पर बच्चोंको यह सिखाया जा रहा है कि किस प्रकार खतरेका संकेत पाते ही झटपट उठकर भाग जाना चाहिये।"

उसने सीटी दी। उसी दम बच्चोंने अपनी पुस्तकें, पेंसिलें और बुनने-की सलाइयां छोड़ दीं और उठकर खड़े हो गये। दूसरे संकेतपर सब, एकके पीछे एक, बाहर खुलेमें आ गये। कुछ ही क्षणोंमें श्रेणी खाली हो गयी। उन छोटे बच्चोंने आगके खतरेका सामना करना और साहसी बनना सीखा था।

तुम किसकी रक्षाके लिये तैरे थे? अपनी रक्षाके लिये।

तुम किसको बचानेके लिये आगकी लपटोंमेंसे गुजरे थे? अपने-आपको बचानेके लिये।

बच्चोंने किसके बचावके लिये आगके भयका सामना किया था? अपने बचावके लिये।

प्रत्येक अवस्थामें साहसका प्रदर्शन अपनी रक्षाके लिये किया गया था। क्या यह अनुचित था? बिलकुल नहीं। अपने जीवनकी रक्षा करना और उसे बचानेके लिये वीरताका होना सर्वथा उचित है। परन्तु एक वीरता इससे भी बड़ी है: वह वीरता, जो दूसरोंकी रक्षाके लिये काममें लायी जाती है।

*
**

मैं तुम्हें माधवकी वह कहानी सुनाती हूं जो भवभूतिने लिखी थी।

माधव मंदिरके बाहर घुटने टेके बैठा था कि उसने एक दुःख-भरी आवाज सुनी।

अंदर घुसनेके लिये उसने रास्ता पा लिया और देवी चामुंडाके कक्षमें झांका।

उस भयानक देवीपर बलि चढ़ानेके लिये एक लड़कीको वहां तैयार रखा गया था। वह बेचारी मालती थी। लड़की निद्रित अवस्थामें ही वहां लायी गयी थी। पुजारी और पुजारिनके पास वह बिल्कुल अकेली थी। पुजारीने अपना चाकू जिस समय उठाया उस समय वह अपने प्रेमी माधव-का ध्यान कर रही थी: "माधव, मेरे हृदयेश्वर, मेरी यह प्रार्थना है कि अपनी मृत्युके बाद भी मैं तुम्हारी यादमें रह सकूं। जिनको प्रेम अपनी लंबी और मधुर यादमें सुरक्षित रखता है, उनकी मृत्यु नहीं होती।"

एक चीखके साथ वीर माधव उस बलि-गृहमें कूद पड़ा। पुजारीके साथ उसका घोर युद्ध हुआ। मालती बच गयी।

माधवने इस साहसका प्रयोग किसके लिये किया था? क्या वह अपने लिये लड़ा था? हां, पर उसके साहसका केवल यही कारण नहीं था। उसने दूसरेकी रक्षाके लिये भी लड़ाई की थी। उसने एक दु:खीकी आर्त पुकार सुनी थी जिसने उसके वीर हृदयको सीधा स्पर्श किया था।

*
**

यदि तुम जरा सोचो तो तुम्हें इस प्रकारकी कितनी ही आंखों देखी घटनाएं याद आ जायेंगी। तुमने निश्चय ही देखा होगा किस प्रकार एक व्यक्ति भयका संकेत पाते ही किसी दूसरे पुरुष, स्त्री या बच्चेकी सहायता-के लिये दौड़ पड़ता है।

तुमने समाचार-पत्रोंमें या इतिहासकी पुस्तकमें इस प्रकारकी साहसपूर्ण घटनाओंके बारेमें अवश्य पढ़ा होगा। तुमने यह भी सुना होगा कि आग बुझानेवाले जलते हुए घरोंसे लोगोंको किस प्रकार बचाते हैं; किस प्रकार खानमें काम करनेवाले गहरे कुएंमें उतरकर अपने साथियोंको पानी, आग और दम घोंटनेवाली गैससे बचानेके लिये बाहर निकाल लाते हैं; भूचालसे हिलते घरोंमेंसे लोग घरकी दीवारोंके गिरनेका डर होते हुए भी दुर्बल व्यक्तियोंको बाहर लानेका साहस करते हैं, नहीं तो वे मलवेके नीचे दबकर मर जाते; किस प्रकार नागरिक अपने नगर या मातृभूमिको बचानेके लिये शत्रुओंका सामना करते हैं, भूख-प्यास सहते और चोट तथा मृत्युतक स्वीकार कर लेते हैं।

इस प्रकार हमने दो प्रकारके साहस देखे हैं—एक अपनी सहायताके लिये काममें लाया जाता है, दूसरा औरोंकी सहायताके लिये।

*
**

मैं तुम्हें वीर विभीषणकी कहानी सुनाती हूं। उसने एक ऐसे खतरेका सामना किया था जो मृत्युके खतरेसे भी अधिक बड़ा था। वह एक राजाके क्रोधके सामने डट गया था और उसने उसे एक ऐसी विवेकपूर्ण सलाह दी जिसे देनेका किसी औरको साहस नहीं हुआ था।

लंकाका दैत्य-राजा दस सिरोंवाला रावण कहलाता था। वह सीताको बलपूर्वक अपने रथमें बैठा, लंका-द्वीपमें स्थित अपने महलमें ले गया। जिस महल और जिस बागमें राजकुमारी सीताको बंद कर दिया गया था वे बड़े विशाल और मोहक थे, फिर भी वे दुःखी थीं, दिन-रात रोती थीं। उन्हें यह भी पता नहीं था कि वे अपने स्वामी रामको पुनः देख सकेंगी या नहीं।

यशस्वी रामको बानर-राज हनुमानसे यह पता चल गया कि उनकी स्त्री किस स्थानपर कैद करके रखी गयी है। वे अपने सुशील भाई लक्ष्मण तथा वीरोंकी एक बड़ी सेनाके साथ बंदिनी सीताकी सहायताके लिये चले।

जब राक्षस-राज रावणको रामके आनेका पता चला तो वह डरके मारे कांपने लगा।

अब उसे दो प्रकारकी सलाह मिली। उसके राज-दरबारियोंका एक झुंड उसके सिंहासनके चारों ओर इकट्ठा हो गया और कहने लगा: "सब ठीक है, महाराज! डरकी कोई बात नहीं। आपने देवताओं और असुरों दोनोंको जीत लिया है; राम और उसके साथी हनुमानके बंदरोंको जीतनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी।"

ज्यों ही ये वाचाल सलाहकार राजाके पाससे हटे, उसके भाई विभीषणने वहां प्रवेश किया और उसके आगे घुटने टेककर उसके पैर चूमे। फिर उठकर वह सिंहासनकी दायीं ओर बैठ गया और बोला, "मेरे भाई, यदि तुम सुखसे रहना चाहते हो या लंकाके सुन्दर द्वीपके सिंहासनकी रक्षा करना चाहते हो तो सुन्दरी सीताको वापिस कर दो, क्योंकि वह दूसरेकी पत्नी है। रामके पास जाओ और उनसे क्षमा मांगो। वे तुम्हें निराश नहीं करेंगे। इतने दुःसाहसी और अभिमानी मत बनो।"

एक और बुद्धिमान् व्यक्ति माल्यवानने भी यह बात सुनी और वह प्रसन्न हुआ। उसने राक्षस-राजसे आग्रहपूर्वक कहा, "अपने भाईकी बातपर विचार करो, क्योंकि उसने सत्य कहा है।"

"तुम दोनों ही दुष्ट आशयवाले हो," राजाने उत्तर दिया, "कारण, तुम मेरे शत्रुओंका पक्ष लेते हो।"

उन दस सिरोंकी आंखोंसे ऐसे क्रोधकी चिनगारियां निकलने लगीं कि माल्यवान तो डरके मारे वहांसे भाग गया। पर विभीषण अपने आत्म-

बलसे वहीं डटा रहा और बोला: "राजन्, प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें विवेक और अविवेक दोनोंका निवास है। जिसके हृदयमें विवेक होता है उसके लिये जीवन सुखकारक है; यदि वहां अविवेकका राज्य हो तो फिर दुःख-ही-दुःख है। भाई, मुझे डर है कि तुम्हारे हृदयमें अविवेक अड्डा जमाये हुए है, क्योंकि जो तुम्हें बुरा परामर्श देते हैं तुम उन्हींकी बातपर कान धरते हो। वे तुम्हारे सच्चे मित्र नहीं हैं।"

इतना कहकर वह चुप हो गया और उसने राजाके पांव फिर चूमे।

रावण चिल्लाया: "दुष्ट! तू भी मेरे शत्रुओंमेंसे है! बस, ऐसे मूर्खतापूर्ण शब्द और मत बोल। ऐसे शब्द तू उन साधु-संन्यासियोंको जाकर सुना जो जंगलोंमें रहते हैं, उससे मत कह जिसने युद्धमें अपने सभी शत्रुओंपर विजय प्राप्त की है," ऐसा कहते-कहते उसने अपने वीर भाई विभीषणके एक लात जमा दी।

मनमें व्यथित होकर विभीषण उठ बैठा और राजाका घर छोड़कर चला गया।

उसके मनमें भय नहीं था, इसलिये उसने सब कुछ रावणसे साफ-साफ कह दिया था, और अब, जब कि उस दस सिरवालेने उसकी बात नहीं सुननी चाही तो वह चले जानेके सिवाय और कर भी क्या सकता था।

विभीषणका यह कार्य शारीरिक साहसका कार्य था, क्योंकि वह अपने भाईकी ठोकरोंसे भयभीत नहीं हुआ। पर साथ ही यह एक मानसिक साहसका भी कार्य था। वे बातें, जो अन्य राजदरबारियोंने उतना शारीरिक बल रखते हुए भी अपने मुंहसे नहीं निकाली थीं, उन्हें राजासे कहनेमें उसे जरा संकोच नहीं हुआ। यह आत्माका साहस है जिसे हम नैतिक बल कहते हैं।

***

ऐसा साहस इजराइलके नेता मूसामें भी था। उन्होंने मिस्र देशके राजा फारोसे यह मांग की थी कि वह पीड़ित यहूदी लोगोंको स्वतन्त्र कर दे।

यही साहस पैगम्बर मोहम्मदमें था जिन्होंने अपने धार्मिक विचार अरबनिवासियोंपर प्रकट किये थे। उन लोगोंके मृत्युका डर दिखानेपर भी उन्होंने चुप रहना अस्वीकार कर दिया।

गौतम बुद्धमें भी ऐसा ही साहस था। इन्होंने भारतवासियोंको एक नवीन और उच्च मार्ग दिखाया और बोधिवृक्षके नीचे दुष्ट प्रेतात्माओंद्वारा सताये जानेपर भी डर नहीं माना।

यही साहस ईसामसीहमें था जिन्होंने लोगोंको उपदेश दिया : "एक-दूसरेसे प्रेम करो।" न वे यरुशलमके धर्माचार्योंसे डरे जिन्हें उनकी यह शिक्षा नहीं माती थी और न ही रूमके लोगोंसे जिन्होंने उन्हें सूलीपर चढ़ा दिया था।

हमने अभी साहसकी तीन श्रेणियों, तीन मात्राओंका निरूपण किया है।

शारीरिक साहस, जो अपनी रक्षाके लिये प्रयुक्त होता है।

वह साहस, जो मित्र, पड़ोसी और कष्टमें पड़ी मातृभूमिके लिये दिखाया जाता है।

अन्तमें वह नैतिक साहस आता है जो अन्यायी मनुष्योंका सामना करना सिखाता है—चाहे वे कितने ही बलशाली क्यों न हों—और सच्चाई और न्यायकी आवाज उनके कानोंतक पहुंचाता है।

*
**

अलमोड़ेके राजाके पहाड़ी प्रदेशपर कुछ आक्रमणकारियोंने धावा बोल दिया। उन्हें मार भगानेके लिये एक नई सेना खड़ी की गयी। उसमें जो लोग भरती हुए थे उनमें प्रत्येकको एक बढ़िया तलवार दी गयी।

राजाने आज्ञा दी : "बढ़े चलो।"

उसी दम सबने बड़े जोर-शोरसे अपनी मियानोंमेंसे तलवारें खींच लीं और उन्हें ऊपर हिलाकर वे सब जोरसे चिल्लाये।

"यह क्या ?" राजाने पूछा।

उन्होंने उत्तर दिया : "स्वामी, हम तैयार हो रहे हैं जिससे हमारे शत्रु कहीं हमें असावधान पाकर हमपर चढ़ न आयें।"

"तुम उत्तेजित और घबराये हुए हो," राजाने उनसे कहा, "तुमसे कुछ न होगा। जाओ, सब अपने घर लौट जाओ।"

तुम देखोगे कि राजाने इस प्रकार तलवारें खींच लेने और शोर-गुल मचानेको जरा महत्त्व नहीं दिया। वह जानता था कि सच्ची वीरतामें हल्ला करने और तलवारें बजानेकी आवश्यकता नहीं होती।

इसके विपरीत, निम्नलिखित कहानीमें तुम देखोगे कि लोगोंने कितनी शांतिपूर्वक कार्य किया और किस प्रकार समुद्रके बड़े खतरेके सामने भी वे वीरतापूर्वक डटे रहे।

सन् १९१०के मार्च महीनेके अंतमें स्कॉटलैण्डका एक जहाज ऑस्ट्रेलियाके यात्रियोंको आशा अंतरीप ला रहा था। आकाशमें बादलका नाम-निशान नहीं था। समुद्र नीला और शांत था।

अचानक ऑस्ट्रेलियाके पश्चिमी किनारेसे छः मील इधर, जहाज एक चट्टानसे जा टकराया।

जहाजके सब कर्मचारी एकदम कार्यरत हो गये, प्रत्येक अपनी जगहपर डटा था। सीटियां बजने लगीं। पर इस हलचलका कारण न तो कुप्रबंध था और न भय।

एक हुक्म गूंज उठा—

"डोंगियां उतारो।"

यात्रियोंने सुरक्षाकी पेटियां पहन लीं।

एक नेत्रहीन व्यक्ति अपने नौकरका हाथ थामे डेकपर आया। सबने उसके लिये रास्ता छोड़ दिया। वह दुर्बल था, इसलिये सब चाहते थे कि पहले उसीको सहायता मिले।

कुछ क्षणोंमें ही जहाज खाली हो गया, और फिर शीघ्र ही नीचे बैठ गया।

डोंगीपर बैठी हुई एक स्त्रीने गाना शुरू किया। लहरोंके शोर-गुलसे बीच-बीचमें गानेकी आवाज दब जाती, पर फिर भी जो एक-आध कड़ी मल्लाहोंके कानमें पड़ती उससे उनकी बाहुओंको बल मिलता था।

"बढ़े चलो, हां, बढ़े चलो, मल्लाहो!
मंझदारसे किश्ती पार करो, हां, बढ़े चलो मल्लाहो!!"

अंतमें दुर्घटनासे बचे हुए सब लोग किनारेतक पहुंच गये और दयालु मछुओंने उन्हें बाहर निकाल लिया।

एक यात्रीके भी प्राण नहीं गये। इस प्रकार साढ़े चार सौ व्यक्तियोंने अपने शांत-संयत स्वभावसे अपनी रक्षा कर ली।

*
**

अब मैं तुम्हें एक ऐसे शांतिपूर्ण साहसके विषयमें बताती हूं जो बिना किसी प्रदर्शन और धूम-धड़ाकेके कई उपयोगी और भले कार्य करता है।

भारतवर्षके एक ग्रामके पाससे एक गहरी नदी बहती थी। उस ग्राममें केवल पांच सौ घर थे। उन ग्रामवासियोंने अभीतक भगवान् बुद्धके उपदेश नहीं सुने थे। अतएव बुद्धने उनके पास जाने और उन्हें अपना उत्कृष्ट मार्ग बतानेका निश्चय किया।

वे एक विशाल वृक्षके नीचे बैठ गये। वृक्षकी शाखाएं नदीके किनारेतक फैली हुई थीं। ग्रामवासी नदीके परले किनारे पर इकट्ठे हुए। अब बुद्धने अपनी आवाज उठायी और उन्हें पवित्रता और प्रेमका संदेश सुनाया।

उनके उपदेश चमत्कारपूर्ण ढंगसे उस बहते पानीके ऊपर होते हुए नदीके परले किनारेतक पहुंच गये। फिर भी उन लोगोंने उनके वचनोंपर विश्वास करना स्वीकार नहीं किया और उनके विरुद्ध बड़बड़ाने लगे।

उनमें एक ऐसा था जो अभी कुछ और जानना चाहता था। उसने बुद्धके निकट जाना चाहा, पर वहां न कोई नौका थी और न पुल। और उस प्राचीन कथाके अनुसार उस मनुष्यने मनमें दृढ़ साहस रखकर नदीके गहरे पानीपर चलना शुरू कर दिया।

इस प्रकार वह गुरुके पास पहुंच गया। उसने उन्हें प्रणाम किया तथा बड़े हर्षसे उनके उपदेश सुने।

उस मनुष्यने सचमुच नदी पार की थी या नहीं, यह हम नहीं जानते, पर फिर भी उसने इस मार्गपर चलकर हर तरहसे साहसका ही परिचय दिया — ऐसे मार्गपर जो उन्नतिको ओर ले जाता है। इस दृष्टांतसे प्रभावित होकर गांवके दूसरे लोगोंने भी बुद्धके उपदेश सुने और उनके अंतःकरण उन अत्यंत शुद्ध विचारोंकी ओर खुल गये।

*
**

एक साहस ऐसा है जो नदियां लांघ सकता है। एक ऐसा है जो मनुष्यको न्याय-पथपर ले जाता है। पर सत्य मार्गपर चलना शुरू करनेकी अपेक्षा उसपर दृढ़ रहनेके लिये जिस साहसकी आवश्यकता पड़ती है वह इनसे भी बड़ा है।

मुर्गी और उसके बच्चोंका एक दृष्टांत सुनो।

गौतम बुद्ध अपने शिष्योंसे कहते थे कि तुम अपनी ओरसे पूरा प्रयत्न करो और विश्वास रखो कि उन प्रयत्नोंका फल तुम्हें मिलेगा ही।

वे कहा करते थे : "जिस प्रकार मुर्गी अंडे देकर उन्हें सेती है और इस बातकी जरा चिन्ता नहीं करती कि उसके बच्चे अपनी चोंचोंसे अंडे फोड़कर दिनके प्रकाशमें आ जानेमें समर्थ होंगे या नहीं, उसी प्रकार तुम्हें भी डरना नहीं चाहिये। सत्य मार्गपर दृढ़ रहोगे तो तुम भी प्रकाशतक पहुंचोगे।"

ठीक रास्तेपर चलना, विपत्तियों और अंधकार और दुःखका सामना करना, सदा आगे, प्रकाशकी ओर बढ़नेके प्रयत्नमें लगे रहना ही सच्चा साहस है।

*
**

प्राचीन समयमें ब्रह्मदत्त नामका एक राजा बनारसमें राज करता था। उसके एक शत्रुने, जो किसी और देशका राजा था, अपने हाथीको युद्धकी शिक्षा दी थी।

लड़ाईकी घोषणा हो गयी। वह विशाल हाथी अपने स्वामीको बनारस की चार-दीवारीतक ले आया।

दीवारोंके ऊपरसे उन घिरे हुए सैनिकोंने जलते हुए गोलों और गोफन द्वारा फेंके हुए पत्थरोंकी उनपर झड़ी लगा दी। इस भयानक वर्षाके सामने एक बार तो हाथी पीछे हट गया। पर जिस आदमीने उसे सधाया था वह उसकी ओर दौड़ा और बोला:

"अरे हस्ती, तू तो वीर है; वीरके समान कार्य कर और फाटकको नीचे पटक दे।"

इन शब्दोंसे उत्साहित होकर उस विशाल जन्तुने फाटकपर एक जोरका प्रहार किया, अंदर प्रवेश किया और इस प्रकार राजाको विजय दिलायी।

इसी प्रकार, साहस बाधाओं और कठिनाइयोंको जीतकर विजयका पथ प्रशस्त करता है।

*
**

देखो, किस प्रकार सबको, चाहे वे मनुष्य हों या पशु, बढ़ावेके शब्दोंसे सहायता पहुंचायी जा सकती है।

मुसलमानोंकी एक सुन्दर पुस्तकमें अबू सईद नामके एक वीर-हृदय कविकी कहानी आती है जो इस बातका अच्छा उदाहरण है।

यह जानकर कि वह ज्वरसे पीड़ित है उसके मित्रगण उसका हाल-चाल पूछने उसके घर गये। कविके लड़केने द्वारपर उनका स्वागत किया; उसके होठोंपर मुस्कुराहट थी क्योंकि रोगी पहलेसे अच्छा था। वे लोग उसके कमरेमें पहुंचे और बैठ गये। अपने सदैवके हंसोड़ स्वभावके अनुसार उसे बोलते सुनकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। अब गर्मी बढ़ चली थी, उसे नींद आ गयी; और सब लोग भी सो गये।

सायंकाल तक सब उठ बैठे। अबू सईदकी ओरसे अभ्यागतोंका जलपानसे सत्कार किया गया और कमरेको सुवासित करनेके लिये धूपबत्तियां जला दी गयीं।

अबू सईदने कुछ समयतक प्रार्थना की, और फिर उठकर एक छोटी-सी स्वरचित कविता पढ़नी आरंभ की:

"दुःखके समय निराश न हो, क्योंकि प्रसन्नताकी एक घड़ी तेरे सारे दुःख-दर्द भगा देगी।

मरुभूमिकी तेज गर्म हवा बह रही है, पर वह ठंडे समीरमें बदल सकती है।

काली घटा उमड़ रही है, पर वह जल-प्रलय करनेसे पहले ही हट सकती है।

आग लग सकती है, पर तुम्हारे संदूकों और पेटियोंको छुए बगैर बुझ भी सकती है।

शोक आता है, पर चला जाता है। इसलिये जब विपत्ति आये तो धैर्य न छोड़ो।

समय सब चमत्कारोंसे बड़ा है। ईश्वरकी कृपापर भरोसा रखते हुए तुम्हें सदा अपने कल्याणकी आशा करनी चाहिये।"

इस आशासे भरी हुई सुन्दर कविताको सुनकर सब प्रसन्नता और बल अनुभव करते हुए अपने-अपने घर लौट गये। इस प्रकार एक रोगी-मित्र-ने अपने स्वस्थ-मित्रोंकी सहायता की।

यह सच है कि जो लोग स्वयं साहसी होते हैं वे ही दूसरोंको साहस बंधा सकते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे एक जलती मोमबत्ती अपनी लौसे दूसरी मोमबत्तियोंको जला सकती है।

वीर बालको और बालिकाओ, तुमने यह कहानी पढ़ी है। तुम दूसरों-को साहस बंधाना सीखो और स्वयं भी साहसी बनो।

२

प्रफुल्लता

किसी वर्षाप्रधान देशके एक बड़े शहरमें एक दिन तीसरे पहर मैंने सात-आठ गाड़ियां बच्चोंसे भरी देखीं। वे लोग सवेरे ही गांवोंकी ओर खेतोंमें खेल-कूदके लिये गये थे। पर वर्षाके कारण उन्हें समयसे पहले ही वापिस लौटना पड़ा।

फिर भी बच्चे हंस रहे थे, गा रहे थे और आने-जानेवालोंकी ओर

चंचलता-भरे इशारे कर रहे थे। इस निराशाके समय भी उन्होंने अपनी प्रसन्नता बनाये रखी थी। एक उदास होता तो दूसरे अपने गानोंसे उसे प्रफुल्लित कर देते। काम-काजमें व्यस्त राहगीर जब उनकी खिलखिलाहट सुनते तो उस क्षण उन्हें ऐसा प्रतीत होता मानों आसमानकी काली घटा कुछ कम गहरी हो गयी हो।

खुरासानका एक राजकुमार था। नाम था अमर। खूब ठाट-बाटकी उसकी जिंदगी थी। एक बार जब वह लड़ाईमें गया तो उसके रसोईघरके सामानको लेकर तीन-सौ ऊंट भी उसके साथ गये। दुर्भाग्यसे, एक दिन वह खलीफा इस्माइलद्वारा बंदी बना लिया गया, पर दुर्भाग्य भूखको तो नहीं टाल सकता। उसने पास खड़े अपने मुख्य रसोइयेको, जो एक भला आदमी था, कहा: "भाई, कुछ खानेको तो तैयार कर दे।"

उस बेचारेके पास केवल एक मांसका टुकड़ा बचा था। उसने उसे ही देगचीमें उबलनेको रख दिया और भोजनको कुछ अधिक स्वादिष्ट बनानेके लिये स्वयं किसी साग-सब्जीकी खोजमें निकला।

इतनेमें एक कुत्ता वहांसे गुजरा। मांसकी सुगंधिसे आकर्षित हो उसने अपना मुंह देगचीमें डाल दिया। पर भापकी गर्मी पा वह तेजीसे और कुछ ऐसे बेढंगे तरीकेसे पीछे हटा कि देगची उसके गलेमें अटक गयी। अब तो घबराकर वह उसके समेत ही वहांसे भागा।

अमरने जब यह देखा तो उच्च स्वरमें हंस पड़ा। उसके अफसरने, जो उसकी चौकसीपर नियुक्त था, उससे पूछा: "यह हंसी कैसी? इस दु:खके समय भी तुम हंस रहे हो?"

अमरने तेजीसे भागते हुए कुत्तेकी ओर इशारा करते हुए कहा: "मुझे यह सोचकर हंसी आ रही है कि आज प्रात:तक मेरी रसोईका सामान ले जानेके लिये तीन-सौ ऊंटोंकी आवश्यकता पड़ती थी और अब उसके लिये एक कुत्ता ही काफी है।"

अमरको प्रसन्न रहनेमें एक स्वाद मिलता था यद्यपि दूसरोंको प्रसन्न रखनेके लिये वह उतना प्रयत्नशील नहीं था। फिर भी उसके विनोदी स्वभावकी प्रशंसा किये बिना हम नहीं रह सकते। यदि वह इतनी गंभीर विपत्तिमें भी प्रसन्न रह सकता था तो क्या हम मामूली चिंता-फिकरमें मुंहपर एक मुस्कराहट भी नहीं ला सकते?

*
**

फारस देशमें एक स्त्री थी जो शहद बेचनेका व्यवसाय करती थी।

उसकी बोलचालका ढंग इतना आकर्षक था कि उसकी दूकानके चारों ओर ग्राहकोंकी भीड़ लगी रहती थी। इस कहानीको सुनानेवाला कवि कहता है कि यदि वह शहदकी जगह विष भी बेचती तो भी लोग उसे शहद समझकर ही उससे खरीद लेते।

एक ओछी प्रकृतिवाले मनुष्यने जब देखा कि वह स्त्री इस व्यवसायसे बहुत लाभ उठा रही है तो उसने भी इसी धंधेको अपनानेका निश्चय किया।

दूकान तो उसने खोल ली, पर शहदके सजे-सजाये बर्तनोंके पीछे उसकी अपनी आकृति कठोर ही बनी रही। ग्राहकोंका स्वागत वह सदा अपनी कुटिल भृकुटिसे करता था। इसलिये सब उसकी चीज छोड़ आगे बढ़ जाते थे। कवि आगे कहता है कि एक मक्खी भी उसके शहदके पास फटकनेका साहस न करती थी। शाम हो जाती, पर उसके हाथ खाली-के-खाली ही रहते। एक दिन एक स्त्री उसे देखकर अपने पतिसे बोली : "कड़ुआ मुख शहदको भी कड़ुआ बना देता है।"

क्या वह शहद बेचनेवाली स्त्री केवल ग्राहकोंको आकर्षित करनेके लिये ही मुस्कराती थी? हम तो यही सोचते हैं कि उसकी प्रफुल्लता उसके भले स्वभावका एक अंग थी। संसारमें हमारा कार्य केवल बेचना और खरीदना ही नहीं है; हमें यहां एक-दूसरेको मित्र बनाकर रहना है। उस भली स्त्रीके ग्राहक यह जानते थे कि वह एक दूकानदारिनके अतिरिक्त कुछ और भी थी — वह संसारकी एक प्रसन्नमुख नागरिक थी।

*
**

नीचे मैं जिन महापुरुषका हाल बताने लगी हूं उनकी प्रसन्नता ऐसे प्रवाहित होती थी जैसे एक सुन्दर उद्गमसे पानीकी धारा। इन्हें न लाभ की इच्छा थी, न ग्राहकोंकी, ये प्रसिद्ध गौरवशाली राम थे।

रामने दस शीश और बीस भुजाओंवाले रावणको मारा था। मैं तुम्हें इस कहानीका प्रारंभ पहले बता चुकी हूं। यह युद्ध बड़ा भयानक और कई जातियोंके बीचमें था। हजारों बंदरों और रीछोंने रामकी सेवामें अपने प्राणोंकी आहुति दे दी थी। उनके शत्रु-राक्षसोंके शवोंके भी ढेर लगे थे। उनका राजा निर्जीव पृथ्वीपर पड़ा था। ओह! उसे मार गिराना कितना कठिन था! वार-पर-वार करके रामचंद्रजीने उसके दस सिरों और बीस भुजाओंको काटा था, पर शीघ्र ही वे पुनः उत्पन्न हो जाते थे! उनको लगातार, एकके बाद एक, इतने अंग काटने पड़े कि अंत

में ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानों आकाशसे सिर और भुजाओंकी वर्षा हो रही हो।

जब यह भयानक युद्ध समाप्त हुआ तो वे सब बंदर और रीछ जो लड़ाईमें मारे गये थे जीवित कर दिये गये। वे ऐसे उठ खड़े हुए मानों एक बड़ी सेना आज्ञाकी प्रतीक्षामें खड़ी हो। यशस्वी रामका व्यवहार विजयके बाद सरल और शांत था। उन्होंने अपने विश्वस्त मित्रोंकी ओर अपनी कृपापूर्ण दृष्टि उठायी।

तभी रावणके सिंहासनका उत्तराधिकारी विभीषण इन वीरोंके लिये, जिन्होंने इतने साहससे युद्धमें भाग लिया था, एक गाड़ी-भर बढ़िया गहने और कपड़े ले आया। राम बोले: "सुनो मित्र विभीषण! तुम ऊपर हवामें चढ़ जाओ और वहांसे अपनी इस भेंटको सेनाके सम्मुख बिखेर दो।"

विभीषणने ऐसा ही किया। अपने रथको वह ऊपर ले गया और वहीं-से उसने सब चमचमाते गहने और सुन्दर रंग-बिरंगे कपड़े नीचेकी ओर डाल दिये।

अब क्या था। सब रीछ और बंदर एक-दूसरेको धकेलते हुए इस गिरती हुई निधिके ऊपर टूट पड़े। एक अच्छा खासा तमाशा खड़ा हो गया।

राम और उनकी पत्नी सीता खिलखिलाकर हंस पड़े। उनका भाई लक्ष्मण भी अपनी हंसी रोक न सका।

केवल वीर पुरुष ही इस प्रकार हंस सकते हैं। शुद्ध और सरल आनंद-से बढ़कर प्रसन्नता देनेवाली और कोई वस्तु नहीं है। वास्तवमें 'प्रसन्नता' और 'साहस' अपने मूल रूपमें एक ही हैं। जीवनके कठिन क्षणोंमें हार्दिक प्रसन्नता बनाये रखना ही एक प्रकारका साहस है।

निश्चय ही हर समय हंसनेकी आवश्यकता नहीं; पर प्रफुल्लता, धीरता और शांति जितनी मात्रामें हों उतना ही अच्छा है। कितनी उपयोगी वस्तुएं हैं ये! यह इन्हींका प्रभाव है कि मां गृहको बच्चोंके लिये आनंद-मय बना देती है; एक नर्स रोगको शीघ्र दूर करनेमें सफल होती है; स्वामी अपने सेवकोंका काम सरल कर देता है; एक श्रमजीवी अपने साथियोंमें सद्भावना उत्पन्न करता है; यात्री अपने संगियोंको उनकी कड़ी यात्रामें सुख पहुंचाता है; एक नागरिक अन्य नागरिकोंके हृदयोंमें आशाको बनाये रखता है।

और तुम, प्रसन्नचित्त बालको और बालिकाओ, अपनी प्रफुल्लतासे क्या नहीं कर सकते?

४

आत्म-निर्भरता

प्राचीन समयके अरबनिवासियोंमें हातिम ताई अपनी उदारता और दानशीलताके लिये बहुत प्रसिद्ध था।

एक बार उसके मित्रोंने उससे पूछा, "क्या तुम्हें कभी कोई ऐसा व्यक्ति भी मिला है जो तुमसे भी श्रेष्ठ हो?"

उसने उत्तर दिया: "हां।"

"वह कौन था?"

"एक बार मैंने एक दावत दी थी जिसके लिये चालीस ऊंट हलाल किये गये थे। जो चाहे इस दावतमें शरीक हो सकता था। मैं अपने साथ कुछ सरदारोंको लेकर दूरके मेहमानोंको आमंत्रित करने चला। रास्तेमें मुझे एक लकड़हारा मिला जिसने अभी-अभी कंटीली झाड़ीकी लकड़ियोंका एक गट्ठर काटना समाप्त किया था। उसकी जीविकाका साधन यही था। उसे गरीब देख मैंने उससे पूछा—हातिम ताई इतनी दावतें देता है, तुम उनमें क्यों नहीं जाते? उसने उत्तरमें कहा जो अपनी रोटी आप कमाते हैं उनको हातिम ताईकी उदारताकी आवश्यकता नहीं।"

हातिम ताईने ऐसा क्यों कहा कि वह लकड़हारा उससे बड़ा मनुष्य है?

दूसरोंको भेंट-स्वरूप कुछ दे देनेसे स्वयं काम करके अपनी आवश्यकताओं-को पूरा कर लेना उसे कहीं अच्छा लगा, क्योंकि देनेवालेको इसके लिये न तो परिश्रम करना पड़ता है और न ही वह इसके लिये कोई त्याग करता है। इतना ही नहीं, यह कार्य औरोंको भी दूसरोंपर निर्भर रहने-का पाठ पढ़ाता है।

हां, यह तो स्वाभाविक ही है कि एक मित्र दूसरे मित्रको उपहार देता है। यह भी ठीक है कि बलवान् बाहुओंको दीन और दुःखी मनुष्योंकी सहायताके लिये आगे बढ़ना चाहिये। पर एक सबल और भले-चंगे मनुष्यके लिये अपने हाथसे ही काम करना उचित है, लेनेके लिये दूसरोंके आगे हाथ पसारना ठीक नहीं। हां, जो लोग अपना जीवन सत्यकी खोज और गंभीर चिंतनमें व्यतीत करते हों उनपर हम यह दोष नहीं लगा सकते।

***

लकड़हारेका चरित्र कितना भी भला हो, पर फारसके राजकुमार गुस्तास्पका चरित्र उससे भी महान् है। उसकी कहानी यों है:

प्राचीन समयमें गुस्तास्प नामका एक राजकुमार था। उसके पिताने उसे राजसिंहासनका उत्तराधिकारी स्वीकार नहीं किया; इससे वह बहुत दुःखी हुआ और अपनी जन्मभूमि छोड़कर पश्चिमकी ओर चल पड़ा। अकेला और भूखा-प्यासा गुस्तास्प समझ गया कि जीविकाके लिये अब उसे केवल अपने परिश्रमपर ही निर्भर रहना पड़ेगा। जिस देशमें वह पहुंचा उसके मुखियाके पास जाकर उसने कहा: "मैं एक निपुण लेखक हूं, आप कृपा करके मुझे किसी मुंशीके पदपर नियुक्त कर दें।"

मुखियाको उस समय किसी लेखककी आवश्यकता नहीं थी, इसलिये गुस्तास्पसे उसने कुछ दिन ठहरनेके लिये कहा। पर वह इतना भूखा था कि प्रतीक्षा करना उसके लिये संभव नहीं था। वहांसे चलकर वह कुछ ऊंटवालोंके पास गया और उनसे कोई काम देनेके लिये प्रार्थना की। उन्हें भी किसी नये आदमीकी जरूरत नहीं थी, पर उसे अत्यन्त गरीब देखकर उन्होंने उसे कुछ खानेको दे दिया।

थोड़ी दूर आगे चलकर गुस्तास्प एक लुहारकी दूकानके सामने ठहर गया और लुहारसे कुछ काम मांगा।

लुहारने कहा: "अच्छी बात है, तुम मुझे इस लोहेको पीटनेमें सहायता दे सकते हो।" और उसने एक हथौड़ा गुस्तास्पके हाथमें थमा दिया।

राजकुमारमें बड़ा बल था, उसने वह भारी हथौड़ा उठा लिया और ऐसा जमाया कि पहली चोटमें ही अहरनके दो टुकड़े हो गये। गुस्सेमें भरे हुए लुहारने उसे उसी समय दरवाजेका रास्ता दिखा दिया।

अत्यन्त गंभीर व्यथा और शोकमें डूबा हुआ गुस्तास्प फिर कामकी खोजमें निकल पड़ा। जिस तरफ वह जाता अनुपयोगी ही साबित होता। अंतमें वह एक किसानसे मिला जो अनाजके खेतमें काम कर रहा था। उसे गुस्तास्पकी अवस्थापर दया आ गयी और उसने उसके रहने और खाने-पीनेका प्रबंध कर दिया।

एक दिन यह खबर फैली कि रूमके राजाकी लड़कीके विवाह-योग्य हो जानेके कारण राजवंशके सब युवक राजमहलमें आमंत्रित किये गये हैं। गुस्तास्पने तभी वहां जानेका निश्चय किया। सबके बीचमें वह भी मेजके सामने जा बैठा। राजकुमारी किताबनने उसे देखा और वह उसपर रीझ गयी; अपने अनुरागके चिह्नस्वरूप उसने गुलाबके फूलोंका एक गुच्छा उसे भेंटमें दिया।

राजाको गुस्तास्पकी दरिद्रताके प्रति घृणा हुई, पर वह उससे अपनी

लड़कीका विवाह रोक देनेका साहस नहीं कर सकता था; परंतु ज्यों ही विवाह हो चुका उसने उन्हें अपने महलसे निकाल दिया। वे दोनों जंगलमें रहनेके लिये चल पड़े, वहां उन्होंने नदीके पास ही अपने लिये एक झोंपड़ी बना ली।

गुश्तास्प बड़ा अच्छा शिकारी था। प्रतिदिन वह नावद्वारा नदी पार जाता और वहांसे कभी बारहसिंगा और कभी जंगली गधा पकड़ लाता। अपने शिकारमेंसे आधा वह नाववालेको देता और बाकी अपनी स्त्रीके पास ले जाता।

एक दिन नाववाला माबरीन नामके एक युवकको अपने साथ लाया। वह गुश्तास्पसे मिलना चाहता था। माबरीन बोला: "मैं राजाकी दूसरी लड़की, तुम्हारी स्त्रीकी छोटी बहन, से विवाह करना चाहता हूं। राजाके देशमें एक भेड़िया बहुत उपद्रव करता है। जबतक मैं उसे मार न दूं उस लड़कीसे मेरी शादी नहीं हो सकती और मुझे समझमें नहीं आता कि मैं यह काम कैसे करूं।"

शिकारी गुश्तास्पने उत्तर दिया: "तुम्हारे लिये यह काम मैं कर दूंगा।" वह जंगलकी ओर चल पड़ा। भेड़ियेको देखते ही उसने दो तीरोंसे उसे नीचे गिरा दिया और फिर अपने शिकारी चाकूसे उसका सिर काट लिया।

राजा मृत भेड़ियेको देखने आया और उसने प्रसन्नतापूर्वक अपनी दूसरी लड़की माबरीनको दे दी।

कुछ दिन बाद नाववाला अहरुन नामक एक और युवकको गुश्तास्पके पास ले आया। वह राजाकी तीसरी लड़कीको ब्याहना चाहता था, परंतु इससे पूर्व उसे एक अजगर (ड्रेगन) को मारना था। गुश्तास्पने इस नये दुष्कर कार्यको करनेके लिये उसे भी वचन दे दिया।

उसने चाकुओंकी एक गेंद बनायी जिसके चारों ओर पैनी कीलें जड़ी थीं। अब वह अजगरकी खोजमें निकला। जंगलमें जाकर गुश्तास्पने देखा कि अजगरकी सांसोंमेंसे आग निकल रही है। उसने उसकी देहमें बहुतसे तीर मारे जब कि वह स्वयं उसके पंजेसे बचनेके लिये इधर-उधर कूद जाता था। अब उसने एक बरछीके सिरेपर वह चाकुओंकी गेंद लगायी और उसे अजगरके खुले मुंहमें घुसेड़ दिया। अजगरने अपना मुंह बंद कर लिया और वह गिर पड़ा। तब राजकुमारने अपनी तलवारसे उसका काम तमाम कर दिया।

इस प्रकार अहरुनको राजाकी तीसरी लड़की मिल गयी।

तुम्हें यह जानकर आश्चर्य नहीं होगा कि शीघ्र ही यह वीर राजकुमार अपने पिताके बाद फारसका राजा बना। गुश्तास्पके राज्यकालमें ही संत जरदुश्त या जोरोस्टरने फारसवासियोंको अहुर्मज्दका धर्म सिखाया था।

अहुर्मज्द प्रकाश, सूर्य और अग्नि, सच्चाई और न्यायका देवता माना जाता है।

***

यह तो तुमने देख ही लिया है कि गुश्तास्पको संसारमें न तो एकबारगी स्थान ही मिला और न काम। उसने कई कामोंके लिये प्रयत्न किये, पर उसे असफलता ही हाथ लगी। यही नहीं, शुरूमें तो वह कई लोगोंकी नाराजगीका कारण बना, जिसका दृष्टांत वह मला लुहार है।

परंतु अंतमें उसे अपना उपयुक्त पद प्राप्त हो गया और इस तरह वह अपनी प्रजापर बुद्धिमानीसे शासन करके उसकी सहायता कर सकनेमें समर्थ हुआ। गुश्तास्प लकड़हारेसे ठीक इसी बातमें श्रेष्ठ था कि उसने दूसरोंकी सहायता की थी, जब कि लकड़हारा अपने लिये ही काम करके संतुष्ट था। गुश्तास्प उदार हातिम ताईसे भी श्रेष्ठ था, क्योंकि उसकी तरह अपना अतिरिक्त धन दे देनेके स्थानपर फारसके राजकुमारने अपना बाहुबल दिया और दूसरोंकी भलाईके लिये अपने प्राणतक खतरेमें डाल दिये।

जो मनुष्य अपने ऊपर निर्भर रहकर, अपनी शक्तिसे न केवल अपनी आवश्यकताओंको पूरा करता है पर साथ ही अपने पड़ोसियोंकी समृद्धि और भलाईका भी ध्यान रखता है वह जितना सम्मानका पात्र है, उतना और कोई नहीं।

हम उस पिताके आगे नतमस्तक हैं जो, चाहे वह इंजीनियर हो या लकड़हारा, लेखक हो या मजदूर, व्यवसायी, लुहार, अनुसंधायक, कोई भी हो, अपने प्रत्येक कार्यसे अपने सुख-आरामके साथ-साथ अपने बच्चोंके सुख-आरामका कारण बनता है। हम उस कर्मीका भी आदर करते हैं जो अपने और साथ ही अपने साथियोंके लाभके लिये साझेके कारखाने, दूकानें, कंपनियां और सिंडिकेट चलाता है और प्रत्येकको अपने अधिकारोंकी मांग पेश करनेका अवसर देता है। इस प्रकार एक अकेले व्यक्तिकी दुर्बल और अनुनयपूर्ण आवाजके स्थानपर समूहकी शक्तिशाली आवाज सुनायी पड़ती है।

ये संघ श्रमजीवियोंको अपनी शक्तिपर भरोसा रखना और एक-दूसरेकी सहायता करना भी सिखाते हैं।

विद्यार्थियो! तुम भी अध्यापकद्वारा दिये हुए काममें अपनी बुद्धि लगाकर उसे बढ़ाना सीखो। ज्ञानकी सीढ़ियोंपर चढ़ते हुए तुम सदा अपने ऐसे साथीकी सहायता करनेका अवसर खोजो जो तुमसे कम चतुर और कम तेज हो।

परियोंकी कहानियोंमें केवल एक नाम लेनेसे, लैम्पको रगड़ने तथा लकड़ी घुमानेसे जिन प्रकट हो जाते हैं। वे मनुष्योंको हवामें उड़ा ले जाते हैं, पलक मारते महल खड़े कर देते हैं और जमीनमेंसे घुड़सवारों और हाथियों-की सेना निकाल लाते हैं।

परंतु निजी प्रयत्न इनसे भी बड़े चमत्कार उत्पन्न करता है। यह पृथ्वी-को उत्तम शस्यसे ढक देता है, जंगली जानवरोंको वशमें कर लेता है, पर्वतों-को भेद देता है, बांधों, पुलों और नगरोंका निर्माण करता है, जलमें जहाज-को तथा आकाशमें वायुयानको गति देता है; सबकी भलाई तथा सुरक्षाके इतने साधन उपस्थित करता है।

इसी प्रयत्नके द्वारा मनुष्य अधिक सज्जन, अधिक योग्य और अधिक दया-शील बनता है। सच्ची उन्नति वास्तवमें इसीमें है।

५

धैर्य और अध्यवसाय

पंजाबके निवासियोंका एक गाना है—

सदा ना बागीं बुलबुल बोले,
सदा ना बाग बहारां।
सदा ना राज खुशी दे होंदे,
सदा ना मजलिस यारां।

इस गीतका भाव यह है कि हम सदैव संतुष्ट रहनेकी आशा नहीं कर सकते तथा धीरज एक अत्यंत उपयोगी गुण है। हमारे जीवनमें ऐसे दिन कम नहीं आते जब कि हम इस गुणका अनुशीलन न कर सकते हों।

तुम्हें एक अत्यंत व्यस्त व्यक्तिसे कुछ काम है। तुम उसके घर जाते हो। वहां पहलेसे ही कई मिलनेवाले उपस्थित हैं; मिलनेसे पहले वह तुमसे बड़ी लंबी प्रतीक्षा करवाता है। पर तुम वहां शांतिपूर्वक, शायद कई घंटेतक, ठहरे रहते हो। तुम धैर्यवान हो।

किसी और समय, जिससे तुम मिलने जाते हो वह अपने घरसे अनु-

पस्थित होता है। अगले दिन तुम फिर जाते हो पर उसका द्वार तुम्हें अब भी बंद मिलता है। तीसरी बार तुम फिर पहुंचते हो। अबके वह बीमार है, मिल नहीं सकता। कुछ दिन बाद तुम उसके घरका रास्ता फिर पकड़ते हो। यदि तब भी कोई नई घटना उससे मिलनेसे तुम्हें रोक देती है, तो भी तुम निरुत्साहित नहीं होते, और तुम तबतक अपने प्रयत्नमें लगे रहते हो जबतक तुम उससे मिल नहीं लेते। इस प्रकारका धैर्य अध्यवसाय कहलाता है।

अध्यवसाय — यह सक्रिय धैर्य है, अर्थात्, गतिशील धैर्य।

*
**

जेनेवाका रहनेवाला प्रसिद्ध नाविक, कोलम्बस, स्पेनसे जहाज लेकर पश्चिमके अज्ञात समुद्रोंको पार करने निकला। दिन बीत गये, सप्ताह बीत गये, अपने साथियोंकी बड़बड़ाहटको सहते हुए वह एक नई पृथ्वीको खोज निकालनेकी धुनमें दृढ़ रहा। विलंब हुए, कई कठिनाइयां उपस्थित हुईं पर जबतक वह अमरीकाके किनारेके द्वीपोंतक नहीं पहुंचा, उसने दम नहीं लिया। इस प्रकार उसने एक नया महाद्वीप खोज निकाला।

वह अपने साथियोंसे किस बातकी आशा रखता था? वह उनसे केवल यह चाहता था कि वे धैर्य रखें। उनका कर्त्तव्य केवल इतना था कि वे उसपर भरोसा रखें। और नम्रतापूर्वक उसकी आज्ञाके अधीन रहें। पर इस लक्ष्य-प्राप्तिके लिये स्वयं उसके अन्दर किस वस्तुका होना आवश्यक था? उसमें उस अक्षुण्ण उत्साह और गंभीर लगनकी आवश्यकता थी जिसे हम अध्यवसाय कहते हैं।

प्रसिद्ध कुंभकार बर्नार्ड पालिसी (Bernard Pālissy) की इच्छा थी कि प्राचीन समयके बरतनोंपर जो चमकीले रंगोंद्वारा मीनेका काम होता था उसके लुप्त भेदको वह ढूंढ़ निकाले। अपनी इस खोजको उसने बिना थके महीनों और वर्षों जारी रखा। इन रंगोंको खोज निकालनेके उसके प्रयत्न बहुत समयतक तो निष्फल ही रहे। जो कुछ पूंजी उसके पास थी वह सब उसने इसी कार्यके अर्पण कर दी। रात-दिन वह अपनी भट्ठीके सामने नई-नई क्रियाओं द्वारा बरतनोंको बनाने और उनको पकानेके सतत प्रयत्नोंमें लगा रहता था। इस काममें उसकी सहायता करना तो दूर उसे कोई उत्साहित भी नहीं करता था, उल्टे उसके सब पड़ोसी और मित्र उसे सनकी समझते थे। उसकी स्त्री तक उसके कार्योंके लिये उसे बुरा-भला कहती थी।

धनके अभावमें उसे कई बार अपनी खोज रोक देनी पड़ी, पर ज्यों ही वह इन परीक्षणोंके लिये अपने-आपको समर्थ पाता, त्यों ही एक नए उत्साह-से वह फिर उनमें जुट जाता। अन्तमें एक दिन भट्ठीको तपानेके लिये उसके घरमें ईंधन नहीं रहा। घरके लोगोंकी चीख-पुकारकी जरा भी परवा न करते हुए उसने अपना सारा लकड़ीका सामान एक-एक करके आगमें झोंक दिया। जब सब कुछ जल गया तो उसने भट्ठी खोली। क्या देखता है कि जिन रंगोंकी खोजमें उसने इतने वर्ष लगाये हैं वे सब वहां चमक रहे हैं। अंतमें यही चीज उसकी यशप्राप्तिका कारण बनी।

उसकी स्त्री तथा उसके मित्रोंमें किस वस्तुका अभाव था जिससे कि वे उसे बिना कष्ट पहुंचाये तथा उसके कामको बिना अधिक कठिन बनाये उसकी सफलताकी घड़ीकी प्रतीक्षा नहीं कर सके थे? वह सिवाय धैर्यके और कुछ नहीं था। और वह कौन-सी ऐसी वस्तु थी जिसका उसके अपने अंदर अभाव नहीं था, जिसने कभी उसे धोखा नहीं दिया और जिसने अंत-में उसे कठिनाइयों और व्यंग्योक्तियोंपर विजय प्राप्त करवायी? यह थी अध्यवसायकी शक्ति, वह शक्ति जो सब शक्तियोंसे अधिक बलवती है।

इस संसारमें कोई वस्तु ऐसी नहीं जो अध्यवसायका रास्ता रोक सके। बड़े-से-बड़े काम भी सदा छोटे-छोटे अथक प्रयत्नोंके ही परिणाम होते हैं।

ऐसी बड़ी-बड़ी चट्टानें हैं जो वर्षाकी बूंदोंके लगातार एक ही जगह पड़ने-से पूरी-की-पूरी घिस गयी हैं।

रेतका एक कण अपने-आपमें कोई शक्तिशाली वस्तु नहीं, पर ये ही रेतके कण जब इकट्ठे हो जाते हैं तो एक टीला बन जाता है और इस प्रकार वे समुद्रकी लहरोंतकको रोक देते हैं।

जब तुम प्राकृतिक इतिहास पढ़ते हो तो तुम्हें बताया जाता है कि किस प्रकार अति क्षुद्र जीव एकके ऊपर एक जमा होकर समुद्रमें (मूंगेके) पहाड़ खड़े कर देते हैं और उनके अनवरत प्रयत्नोंसे पानीके ऊपर सुन्दर-सुन्दर द्वीप-समूह निकल आते हैं।

तो क्या तुम सोचते हो कि तुम्हारे नन्हें-नन्हें अनवरत प्रयत्न महान् कार्योंको साधित नहीं कर सकते?

*
**

प्रसिद्ध दार्शनिक शंकर, जिनके नामने मलाबार प्रदेशका मुख उज्ज्वल किया है, अब से लगभग बारह सौ वर्ष पहले हुए थे। उन्होंने बचपनमें ही संन्यासी बननेका निश्चय कर लिया था।

उनकी इच्छाके महत्त्वको स्वीकार करते हुए भी उनकी माताने बहुत समयतक उन्हें इस प्रकारका जीवन ग्रहण करनेकी आज्ञा नहीं दी।

एक दिन माता और पुत्र दोनों नदीमें स्नान करनेके लिये गये। नदीमें प्रवेश करते ही शंकरको ऐसा प्रतीत हुआ कि उनका पांव किसी ग्राहने पकड़ लिया है। मृत्यु निकट जान पड़ी, पर उस कठिन समयमें भी उस वीर बालकके अन्दर वही महान् आकांक्षा प्रबल थी। वह चिल्लाकर अपनी मांसे बोला: "मैं तो गया। एक ग्राहने मुझे पकड़ लिया है। कम-से-कम मुझे संन्यासी होकर तो मरने दो।"

मांने निराश होकर रोते-रोते कहा: "अच्छा, अच्छा, मेरे बेटे।"

शंकरका सौभाग्य! उस समय उनमें ऐसा बल आ गया कि पांवको छुड़ाकर वे अपने-आपको किनारेतक ले आनेमें समर्थ हो गये।

उसके बाद उनकी आयुके साथ-साथ उनका ज्ञान भी बढ़ता गया। वे एक गुरु बन गये। अपने अद्‌भुत जीवनकी अन्तिम घड़ीतक वे ज्ञानोपदेशके महान् कार्यमें लगे रहे।

*
**

भारतसे प्रेम रखनेवाले सभी लोग महाभारतके सुन्दर काव्यसे तो परिचित होंगे ही। कई शताब्दियां पहले यह संस्कृतमें लिखा गया था। अभी कुछ वर्ष पहलेतक बिना संस्कृत जाने कोई यूरोपीय इसे पढ़ नहीं सकता था और संस्कृत जानने वाले यूरोपीय कम ही थे। इसलिये यूरोपकी भाषाओंमेंसे किसी एकमें इसका अनुवाद करना आवश्यक था।

बाबू प्रतापचंद्र रायने इस कामके प्रति अपने-आपको अर्पित कर देनेका निश्चय किया। अपने देशमें ही उन्हें एक ऐसे विद्वान् मित्र मिल गये जो इस संस्कृतकी पुस्तकका अंग्रेजीमें अनुवाद कर सकते थे। इनका नाम था किशोरीमोहन गांगुली। इस पुस्तकके एकके-बाद-एक कई खंड प्रकाशित हुए।

बारह वर्षतक प्रतापचंद्र राय इस काममें लगे रहे। उन्होंने अपनी सारी पूंजी इस पुस्तकके प्रकाशनमें लगा दी और जब उनके अपने पास कुछ न बचा तो देशके भिन्न-भिन्न भागोंमें वे घूमें। जिस किसीने कुछ देनेमें रुचि दिखायी उन सबसे उन्होंने सहायता मांगी। इन सहायता देनेवालोंमें राजा भी थे और किसान भी, विद्वान् भी थे और अनपढ़ भी; यूरोप और अमरीकाके मित्र भी नहीं छूटे थे।

इन्हीं यात्राओंमेंसे किसी एकमें उन्हें एक ऐसे घातक ज्वरने घर दबाया कि वही उनकी मृत्युका कारण बन गया। रोगकी अवस्थामें भी उनके

सारे विचार इस कार्यकी समाप्तिपर केंद्रित थे। उस समय भी जब कष्ट-के कारण वे अधिक बातचीत नहीं कर सकते थे उन्होंने अपनी स्त्रीसे कहा: "यह पुस्तक समाप्त होनी ही चाहिये। मेरे क्रिया-कर्मपर खर्च मत करना, क्योंकि पुस्तकके प्रकाशनके लिये पैसेकी आवश्यकता पड़ेगी। तुम भी यथा-संभव सादगीसे रहना जिससे महाभारतके लिये पैसा बच सके।"

वे भारत और उसके महाकाव्यके लिये प्रेमसे भरा हृदय लिये हुए मरे।

उनकी विधवा पत्नी सुन्दरी बाला रायने पूरी सच्चाईके साथ उस महत् इच्छाका पालन किया। एक वर्षमें अनुवादक महोदयने कार्य पूरा कर दिया और महाभारतकी ग्यारह जिल्दें यूरोपीय जनताके सम्मुख आ गयीं। अब वह उस अद्‌भुत महाकाव्यके अठारह पर्वोंको पढ़कर उसका महत्त्व अनुभव कर सकती थी। महाभारतको पढ़कर वह निश्चय ही भारतके गंभीर विचारकों तथा प्राचीन कवियोंकी महान् प्रतिमा और ज्ञानका मान करना सीखेगी।

ये हैं उन सबके पुरुषार्थके परिणाम, जो प्रतापचन्द्र राय तथा अन्य योग्य व्यक्तियोंकी तरह अनवरत प्रयत्न करना जानते हैं।

और तुम, भले बालको, क्या ऐसे पुरुषों और स्त्रियोंकी पंक्तिमें खड़े होना नहीं चाहते जो अच्छे कार्योंसे कभी नहीं थकते और कार्यको पूरा किये बिना उसे कभी बीचमें नहीं छोड़ते?

इस विस्तृत संसारमें करने योग्य अच्छे कार्योंका अभाव नहीं है और न ही उन अच्छे व्यक्तियोंका अभाव है जो उनको हाथमें ले सकते हैं; पर जिसका प्रायः अभाव होता है वह है अध्यवसाय; केवल वही उन्हें कार्य-सिद्धितक ले जा सकता है।

६

सादा जीवन

पैगम्बर मोहम्मद, जिन्होंने अपना समस्त जीवन ही अरब-निवासियोंके शिक्षणमें लगा दिया था, न तो धनी थे और न ही उनके पास सुख-आरामका कोई साधन था। एक रात वे एक सख्त चटाईपर सो रहे थे, जागनेपर उनकी देहपर उसकी रस्सियों

और गांठोंके निशान पाये गये। एक मित्रसे न रहा गया। वह बोला: "हे ईश्वरके दूत, यह शैय्या आपके लिये अत्यन्त कठोर है। यदि आपने मुझे आज्ञा दी होती तो मैं बड़ी प्रसन्नतासे आपके लिये एक अत्यन्त कोमल शैय्या तैयार कर देता; इससे आपका विश्राम अधिक सुखकर हो जाता।"

पैगम्बरने उत्तर दिया: "भाई, कोमल शैय्या मेरे लिये नहीं है। मुझे इस संसारमें कुछ कार्य करना है। जब मेरे शरीरको विश्रामकी आवश्यकता होती है तो मैं उसे विश्राम देता हूं, पर उस घुड़सवारकी तरह, जो अपने घोड़ेको धूपकी तेजीसे बचानेके लिये पल-भर किसी पेड़की छायामें बांध देता है और फिर आगे चल देता है।"

पैगम्बरका कहना था कि उन्हें संसारमें कुछ कार्य करना है। इसीलिये उनका उच्च जीवन एक सादा जीवन बन गया था। अपने ध्येयमें विश्वास रखते हुए वे सब अरबवासियोंको शिक्षा देना चाहते थे। आमोद-प्रमोदके साधनोंमें उनकी जरा भी आसक्ति न थी, क्योंकि उनका हृदय उच्चतर विचारोंकी ओर झुका हुआ था।

***

निम्नलिखित अरबी कहानीसे हमें पता चलेगा कि एक स्वस्थ आत्माको कोई भी वस्तु उतना संतोष नहीं पहुंचा सकती जितना कि सादा जीवन पहुंचाता है।

मैजूं खल्ब-वंशकी लड़की थी। अपने जीवनके प्रारंभिक वर्ष उसने मरुभूमिके बीच तंबूमें व्यतीत किये थे।

संयोगवश, उसका विवाह खलीफा मुआवियाके साथ हो गया। खलीफाके पास बहुत धन था, दास-दासियां भी प्रचुर संख्यामें थीं, पर उसके साथ रहकर वह प्रसन्न नहीं थी।

चारों ओर भरपूर धन-ऐश्वर्य होनेपर भी उसके मनको शांति नहीं थी। जब कभी वह अकेली होती अरबी भाषाके कुछ स्वरचित पद मधुर स्वरमें गाने लगती। वह गाती:

"ऊंटकी खालसे बने हुए भूरे वस्त्र मेरी आंखोंमें इन राजसी वस्त्रोंसे कहीं सुन्दर हैं।

रहनेके लिये मरुभूमिका तंबू इस महलके विशाल कमरोंसे अधिक सुखकर है।

छोटे-छोटे बछेड़े जो अरबमें तंबूके चारों ओर फुदकते फिरते हैं, इन पुष्ट और कीमती साजसे सजे हुए खच्चरोंसे अधिक फुर्तीले हैं।

चौकसीपर रहनेवाले कुत्तेकी आवाज, जो किसी नए आदमीको देखकर भौंक उठता है, महलके चौकीदारकी हाथीदांतसे बनी हुई तुरहीकी आवाजसे अधिक सुरीली है।"

ये पंक्तियां जब खलीफाके कानमें पड़ीं तो उसने अपनी स्त्रीको महलसे निकाल दिया। वह कवयित्री अपने संबंधियोंके पास लौट आयी। उस ऐश्वर्ययुक्त महलको वह अब कभी नहीं देख सकेगी इससे वह प्रसन्न ही हुई, क्योंकि वह उसे हमेशा उदास कर दिया करता था।

*
**

प्रायः सभी देशोंमें अब लोग यह समझने लगे हैं कि सादा जीवन ऐसे जीवनसे, जो फिजूलखर्ची, दिखावे और मिथ्याभिमानपर अवलम्बित है, कहीं अधिक वांछनीय है।

अधिकाधिक संख्यामें अब पुरुष और स्त्रियां बहुमूल्य वस्तुएं खरीदनेकी क्षमता रखते हुए भी यह सोचने लगे हैं कि उनके धनका और अच्छा उपयोग कैसे हो सकता है। वे बढ़िया खानेके स्थानपर स्वास्थ्यप्रद भोजनका व्यवहार पसंद करने लगे हैं। बड़े-बड़े भारी चटकीले-भड़कीले सामानके स्थानपर वे अपने मकानोंको हलके, सुन्दर और पायदार सामानसे सजाना अधिक अच्छा समझते हैं, क्योंकि यह ऊपरी तड़क-भड़क सिवाय दिखावेके और किसी काममें नहीं आती।

संसारकी उन्नतिमें अपना जीवन उत्सर्ग करने वाले श्रेष्ठ और उत्साही मनुष्य सदासे ही शांति और मितव्ययतासे रहना जानते थे। ऐसा जीवन शरीरको स्वस्थ रखता है और मनुष्यको सर्वहितके कार्यमें अधिकाधिक भाग लेनेके योग्य बनाता है। ऐसे उदाहरणोंसे उन लोगोंके सिर लज्जासे झुक जाते हैं जिन्होंने अपने चारों ओर निरर्थक चीजें जमा-कर रखी हैं और स्वयं तो वे अपने वस्त्रों, घरकी साज-सामग्री तथा अपने नौकर-चाकरोंके दास बन ही जाते हैं।

बिना गढ़ा खोदे टीला नहीं खड़ा किया जा सकता; एकका धन-ऐश्वर्य प्रायः दूसरोंकी दुर्दशाका कारण होता है। इस संसारमें बहुतसे सुन्दर, महान् तथा उपयोगी काम करनेको पड़े हैं, फिर यह कैसे संभव है कि ऐसे लोग जिनमें बुद्धिका सर्वथा अभाव नहीं है अपने समय, पैसे और विचारको अनुपयोगी कार्योंमें खर्च कर दें।

*
**

संत फरांस्वा (Saint François) का मुख्य काम था सत्य जीवन-का प्रचार। यह काम वे धनकी लालसासे नहीं करते थे। उनका अपना जीवन सादा था और उनकी सबसे बड़ी प्रसन्नता इसमें थी कि वे अपने उदाहरण और उपदेशोंसे लोगोंको शिक्षा दें। उन्हें जो कुछ खानेको मिल जाता वे उसीमें संतुष्ट रहते। एक दिन वे अपने साथी मातेओ (Mattéo) के साथ एक शहरके पाससे गुजरे। मातेओ भिक्षाके लिये एक सड़कपर हो लिये और फरांस्वा दूसरी पर। मातेओ लंबे और सुन्दर व्यक्ति थे जब कि फरांस्वा छोटे कदके तथा देखनेमें भी ऐसे वैसे ही थे। लोगोंने मातेओको खूब भिक्षा दी पर बेचारे फरांस्वा थोड़ेसे अन्नके अतिरिक्त और कुछ इकट्ठा न कर सके।

शामको शहरके दरवाजेके बाहर दोनों मिले। पासमें ही बहती हुई निर्मल नदीके किनारे एक बड़ी चट्टानपर वे बैठ गये और उन्होंने अपनी सारे दिनकी कमाई अपने सामने रखी। फरांस्वा प्रफुल्लित मुखसे बोल उठे: "भाई मातेओ, हमें ऐसे बढ़िया भोजकी आशा तो नहीं थी!" मातेओ-ने उत्तर दिया: "रोटीके इन थोड़ेसे टुकड़ोंमें आपको भोज दिखायी दे रहा है? हमारे पास न तो कोई मेज है, न छुरी, न कांटा, और न ही कोई नौकर है।"

"भूख लगनेपर सुन्दर चट्टानकी मेजपर रखी रोटी हो और प्यास लगने-पर नदीका निर्मल जल पीनेके लिये हो, यह क्या किसी भोजसे कम है?" फरांस्वाने उत्तर दिया।

इसका यह अर्थ नहीं कि गरीब मनुष्य सदा अपनी दीन अवस्थामें ही संतोष मानकर उसीमें पड़ा रहे, बरन् इससे यह प्रकट होता है कि किस प्रकार बाह्य धन और सामग्रियोंके अभावमें सुन्दर आत्माओंके अंदर रहने-वाले संतोष और प्रसन्नता-रूपी धन उस स्थूल धनका स्थान ले लेते हैं।

*
**

इसमें संदेह नहीं कि सादा रहन-सहन किसी भी व्यक्तिको हानि नहीं पहुंचाता। पर धन और ऐश्वर्यके बाहुल्यके बारेमें यह नहीं कहा जा सकता। निरर्थक चीजोंका संग्रह प्रायः मनुष्यके लिये क्लेशका कारण बन जाता है।

प्रसिद्ध बादशाह अकबरके राज्यकालमें आगरेमें बनारसीदास नामके एक जैन साधु रहते थे। एक दिन बादशाहने उन्हें अपने महलमें बुल-वाया और उनसे कहा: "आप जो चाहें मुझसे मांग लें। आप संत पुरुष हैं इसलिये आपकी सब इच्छाएं पूरी की जायंगी।"

"परब्रह्मने मुझे आवश्यकतासे अधिक दिया हुआ है," संतने उत्तर दिया।

अकबरने अनुरोध किया: "कुछ तो मांगिये।"

"तब राजन्, मैं यही मांगता हूं कि तुम मुझे फिर कभी अपने महलमें न बुलाना, क्योंकि मैं अपना सारा समय भगवान्के कार्यमें लगाना चाहता हूं।"

"अच्छा, ऐसा ही होगा, पर अब आपसे मेरी भी एक प्रार्थना है।"

"कहो, राजन्!"

"मुझे कोई ऐसी सलाह दीजिये जिसे मैं सदा याद रख सकूं और उस-पर आचरण कर सकूं।"

बनारसीदासने एक क्षण सोचकर उत्तर दिया: "इस बातका सदा ध्यान रखना कि तुम्हारा भोजन शुद्ध और स्वास्थ्यप्रद हो, विशेषकर रात-में मांस और पेय पदार्थका विशेष ध्यान रखना।"

"मैं आपकी सलाह कभी नहीं भूलूंगा," बादशाहने साधुको विश्वास दिलाया।

अवश्य ही वह सलाह उत्तम थी क्योंकि शुद्ध सात्विक भोजन और पेय पदार्थ शरीरको स्वस्थ बनाते हैं। ऐसा शरीर ही शुद्ध विचार और पवित्र जीवनका क्षेत्र बननेके योग्य हो सकता है।

जिस दिन वह साधु अकबरके पास आया था वह रोजेका दिन था। अकबरको उस दिन रात्रिके पिछले पहरमें भोजन करना था। रसोइये शामको ही भोजन तैयार कर चुके थे। सोने-चांदीके थालोंमें सब सामग्री परोसकर वे रोजा खुलनेके समयकी प्रतीक्षामें बैठे हुए थे।

अभी रात कुछ बाकी थी जब अकबरके सामने भोजन परोसा गया। उसे खानेकी जल्दी थी, पर फिर भी उसे एकदम बनारसीदासके वचन याद आ गये: "मांस और पेय पदार्थका विशेष ध्यान रखना।" उसने ध्यानपूर्वक अपने सामने रखे थालको देखा। सैकड़ों भूरी चींटियां उसपर चल रही थीं। नौकरोंके बहुत सावधानी बरतनेपर भी चींटियां बादशाह-के भोजनपर चढ़ गयी थीं और वह अब खानेके कामका नहीं रहा था।

अकबरने थाल वापस भेज दिया, पर इस घटनाने उसके मनमें बनारसी-दासकी सलाहका महत्त्व और भी अधिक बढ़ा दिया।

यह तो तुम समझ गये होगे कि बनारसीदासने अकबरको केवल भूरी चींटियोंसे नहीं, वरन् उन सब भोजनोंसे सावधान रहनेके लिये कहा था जो शरीर और मनके लिये अहितकर हैं।

अपथ्य भोजनसे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं।

जो लोग जानबूझकर दूषित भोज्य पदार्थ बेचते हैं वे अपने नागरिकोंके

प्रति भारी अपराध करते हैं। दूषित पदार्थोंसे हमारा मतलब केवल बासी और सड़े-गले पदार्थोंसे नहीं है, वरन् उन सब पदार्थोंसे है जिन्हें खानेसे किसी प्रकारकी हानि हो।

उपर्युक्त कहानीमें यह नहीं कहा गया कि अकबरने अपने प्यालेमें भी चींटियां देखी थीं, पर बनारसीदासने उसे पेय पदार्थकी ओरसे भी सावधान रहनेके लिये कहा था।

यह सच है कि चमकते हुए प्याले आंखोंको लुभावने लगते हैं; उनमेंका तरल पदार्थ भी रुचिकर और तरोताजगी देनेवाला प्रतीत होता है, फिर भी वह होता है मनुष्यके लिये अत्यंत हानिकर। पर इनमेंसे भी सबसे अधिक हानिकारक होते हैं सुरा-पात्र।

*
**

पैगम्बर मोहम्मदकी शिक्षा थी कि मदिरापान तथा जूआ खेलना पाप हैं। इसलिये जो लोग कुरानके वचनोंपर श्रद्धा रखते हैं उन्हें इन दोनों चीजोंसे बचना चाहिये।

पर संसारमें सर्वत्र ऐसे लोग हैं जो मदिरापानको उचित समझते हैं। हम उनके मतका मान करते हैं, पर ये लोग यह कभी नहीं कहते कि मदिरा न पीना भी कोई अवगुण है।

कुछ लोग मदिरापानको बुरा समझते हैं तो कुछ अच्छा भी समझते हैं, पर ऐसा कोई भी नहीं है जो इसका न पीना दोष माने। इसका पीना लाभदायक है या नहीं यह बात विवादास्पद हो सकती है, पर इसका न पीना हानिकारक है यह बात किसीके मुंहसे नहीं निकलेगी। और यह तो प्रत्येक मानता है कि इसके न पीनेसे पैसेकी बचत होती है।

प्रायः सभी देशोंमें इससे बचनेके लिये समितियां बनायी गयी हैं। इनके सदस्य मदिरा न छूनेकी प्रतिज्ञा करते हैं। कई शहरोंमें तो इसके बेचनेतककी मनाही कर दी गयी है।

इसके विपरीत, कुछ स्थानोंमें, जहां अबतक लोग शराबको जानतेतक नहीं थे, इसका व्यवहार होने लगा है। उदाहरणार्थ, भारतवर्षमें, जहां शताब्दियोंसे इसका व्यवहार नहीं होता था, यह अब प्रचलित हो गयी है। प्राचीन कथाओंमें वर्णित किसी भी राक्षससे यह कम भयानक नहीं है। वे दुर्दान्त राक्षस तो केवल शरीरको ही हानि पहुंचा सकते थे, पर यह शराब तो विचार-शक्तिके साथ-साथ चरित्रको भी नष्ट-भ्रष्ट कर देनेकी शक्ति रखती है। सबसे पहले तो यह शरीरको ही हानि पहुंचाती

है। जो माता-पिता इसका अधिक प्रयोग करते हैं उनके बच्चोंपर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। यह बुद्धिका नाश करती है और जिन्हें मनुष्यमात्र-का सेवक बनना था उन लोगोंको यह अपना दास बना लेती है। हम सबमेंसे प्रत्येकको मनुष्यमात्रका सेवक बनना चाहिये। यदि हम अपने खान-पानसे अपने मन और शरीरको दुर्बल बना लेंगे तो हम अयोग्य सेवक ही बन पायेंगे, ऐसे सेवक जो अपना कार्य करनेमें असमर्थ होंगे।

उस सिपाहीका क्या होगा जिसकी बांह कट गयी है? वह नाविक किस कामका जिसकी नावका मस्तूल खो गया है? वह घुड़सवार कैसा जिसका घोड़ा लंगड़ा हो गया? और वह मनुष्य क्या करेगा जिसका अपनी अमूल्य शक्तियोंपरसे अधिकार उठ गया है? वह पशुसे भी गया-बीता है। पशु भी वही खाता-पीता है जो उसके लिये हितकर होता है।

रोमन कवि वरजिल (Virgil) को खेतमें रहना-सहना बहुत पसंद था। पुष्ट और तगड़े बैल उन्हें विशेष प्रिय थे, क्योंकि वे खेतोंमें हल चलाकर उन्हें फसलके लिये तैयार करते हैं। बैलका शरीर खूब मजबूत होता है; उसके पुट्ठे बड़े पुष्ट होते हैं। वर्षों लगातार कठोर काम करनेका वह अभ्यासी होता है।

वरजिल कहते हैं:

"वह शराब और दावतोंसे सदा दूर रहता है। घास-फूस खाता है और बहती नदियों और निर्मल झरनोंके पानीसे अपनी प्यास बुझाता है। कोई चिंता उसकी सुखद नींदमें बाधा नहीं पहुंचाती।"

बलवान् होनेके लिये संयमी बनो।

यदि तुम्हें कोई कहे कि दुर्बल बनो तो तुम उससे रुष्ट हो जाओगे।

खान-पानका संयम जहां बलवानोंकी शक्तिकी वृद्धि करता है, वहां दुर्बलोंकी शक्तिकी भी रक्षा करता है।

बनारसीदासकी सलाह कभी मत भूलो:

"खाद्यका ध्यान रखो।
पेयका ध्यान रखो।",

७

दूरदर्शिता

ज्यों ही उस हिंदू युवकने तीर छोड़ा और लक्ष्य-वेध किया त्यों ही एक बोल उठा : "वाह खूब !"

किसीने कहा : "हां, पर अभी तो दिनका प्रकाश है। यह धनुर्धारी निशाना ठीक लगा सकता है, पर दशरथ जैसा होशियार यह नहीं है।"

—"तो फिर दशरथ क्या कर सकता है ?"

—"वह शब्द-वेधी है।"

—"अर्थात् ?"

—"वह शब्दके सहारे निशाना लगाता है।"

—"तुम्हारे कहनेका तात्पर्य ?"

—"वह अंधेरेमें तीर चला सकता है। रातमें जंगलमें जाकर वह आहट सुनता है। जानवरके पैरों या पंखोंकी आवाजसे जब उसे पता चल जाता है कि उसे किस शिकारको मारना है तो वह तीर चला देता है और इस प्रकार अपने लक्ष्यको प्राप्त कर लेता है, मानों खुले प्रकाशमें निशाना साधा हो।"

इस प्रकार अयोध्याके राजकुमार दशरथकी कीर्ति चारों ओर फैल गयी थी।

अपनी इस शब्द-वेधी चातुरीपर उसे गर्व था। लोगोंके मुंहसे अपनी प्रशंसा सुनकर वह प्रसन्न हो उठता था। सांझ होते ही वह अकेला अपने रथमें बैठकर, शिकारकी खोजमें, घने जंगलकी ओर चल देता। कभी उसे जंगली भैंसे या नदीपर पानी पीनेके लिये आनेवाले हाथीके पैरोंकी आवाज सुनायी देती तो कभी हरिणकी हल्की या भेड़ियेकी सतर्क पद-ध्वनि।

एक दिन रातके समय जब वह झाड़ियोंमें लेटा हुआ पत्तियोंकी खड़खड़ाहट और पानीके झर-झर शब्दको ध्यानसे सुन रहा था, उसे अचानक तालाबके किनारे किसीके हिलने-डुलनेकी आवाज सुनायी दी। अंधकारमें उसे कुछ सूझ नहीं रहा था, पर दशरथ तो शब्दवेधी था न ! उसके लिये ध्वनि ही काफी थी। उसने सोचा, निश्चय ही हाथी होगा और उसने तीर छोड़ दिया। तभी एक दर्द-भरी आवाज गूंज उठी।

—"बचाओ-बचाओ ! किसीने मुझे मार डाला।" दशरथके हाथसे धनुष-बाण छूट गया; एक प्रबल सिहरन उसके सारे शरीरमें दौड़ गयी। "क्या कर दिया मैंने ? जंगली जानवरके धोखेमें किसी मनुष्यको घायल कर दिया

क्या ?" जंगलको चीरता हुआ वह तालाबकी ओर झपटा। तालाबके किनारे एक युवक रक्तमें लथपथ पड़ा था, बाल बिखरे थे, उसके हाथमें एक घड़ा था जिसे भरनेके लिये वह वहां आया था।

"तात," वह कराह उठा, "क्या तुमने ही यह घातक बाण छोड़ा था? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था जो तुमने मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया? मैं एक ऋषिकुमार हूं, मेरे वृद्ध माता-पिता अंधे हैं। उनकी देख-रेख तथा उनकी सब आवश्यकताओंकी पूर्त्ति मैं ही करता हूं। मैं उन्हींके लिये पानी लेने आया था, पर अब मैं उनकी सेवा नहीं कर सकूंगा। इस रास्तेसे तुम उनकी कुटियाकी ओर जाओ और जो कुछ हुआ है उन्हें बता दो। पर जानेसे पहले मेरी छातीमेंसे यह तीर निकालते जाओ, इससे मुझे बड़ी पीड़ा हो रही है।"

दशरथने घावमेंसे तीर खींच लिया। युवक ने अन्तिम श्वास लिया और प्राण छोड़ दिये।

राजकुमारने वह घड़ा पानीसे भरा और मृतक द्वारा बताये गये रास्ते पर वह चल पड़ा। जैसे ही वह कुटियाके समीप पहुंचा, पिता बोले:

"मेरे बच्चे, आज इतनी देर क्यों लगायी? क्या वहां तालाबमें स्नान करने लगे थे? हम डर रहे थे कि कहीं तुम किसी विपत्तिमें न पड़ गये हो। पर तुम उत्तर क्यों नहीं देते?"

कांपती आवाजमें दशरथ बोला:

"महात्मन्, मैं आपका पुत्र नहीं हूं। मैं एक क्षत्रिय हूं। मुझे अब-तक अपनी धनुर्विद्यापर बड़ा गर्व था। रात मैं शिकारकी खोजमें बैठा था, मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि तालाबके किनारेपर हाथीके पानी पीनेकी आवाज हो रही है; मैंने तीर छोड़ दिया। अफसोस! वह तीर आपके पुत्रके जा लगा। कहिये, कहिये, किस प्रकार मैं अपने पापका प्रायश्चित्त करूं?"

दोनों—वृद्ध और वृद्धा—"हाय-हाय" कहकर विलाप कर उठे। उन्होंने राजकुमारसे उस स्थानपर उन्हें ले चलनेके लिये कहा जहां उनका इकलौता पुत्र पड़ा था। शवके पास पहुंचकर उन्होंने मंत्र-पाठ किया और उसपर जल छिड़का। तब ऋषि बोले:

"सुन दशरथ! तेरे दोषसे हम आज अपने प्यारे पुत्रके लिये आंसू बहा रहे हैं। एक दिन तू भी अपने प्यारे पुत्रके लिये विलाप करेगा। बहुत वर्षोंके बाद ऐसा होगा, पर यह दण्ड तुझे अवश्य मिलेगा।"

शवदाहके लिये उन्होंने चिता तैयार की, फिर स्वयं भी उसमें बैठकर जल मरे।

समय बीत चला। दशरथ अयोध्याका राजा हो गया और कौशल्यासे उसका विवाह हुआ। फिर उसके यशस्वी राम जैसा सुपुत्र उत्पन्न हुआ।

सारी प्रजा रामको प्यार करती थी। जब उनके युवराज बननेकी बात हुई तो देवताओंने मंथराके द्वारा कैकेयीकी बुद्धि फेर दी और उसके कुचक्रके कारण सज्जन रामको चौदह वर्षके लिये वन भेज दिया गया।

तब दशरथने पुत्रके वियोगमें उसी प्रकार विलाप किया जैसे उन वृद्ध माता-पिताने अपने युवक पुत्रके लिये जंगलमें विलाप किया था जिसने आधी रातके समय तालाबके किनारे प्राण छोड़े थे।

दशरथको एक समय अपनी विद्यापर इतना घमंड हो गया था कि उसमें न तो दूरदर्शिता रही और न ही उसने कभी यही सोचा कि अंधकारमें वह किसी मनुष्यको भी घायल कर सकता है। अपनी चातुरीके लिये ऐसा मूर्खतापूर्ण घमंड होनेसे तो उसके लिये यह अच्छा होता कि वह केवल दिनके प्रकाशमें ही तीर चलानेका अभ्यास करता। यह ठीक है कि वह किसीको हानि पहुंचाना नहीं चाहता था, पर वह था अदूरदर्शी।

*
**

एक बार दो बूढ़े गिद्ध बड़े कष्टकी अवस्थामें थे। बनारसके एक सौदागरको उनपर दया आयी और वह उन्हें एक सूखी जगहमें ले गया। उन्हें गर्मी पहुंचानेके लिये उसने आग जलाई और मृत जानवरोंको जहां जलाया जाता है वहांसे मांसके टुकड़े लाकर उनका उदरपोषण किया।

जब वर्षा ऋतु आयी, वे गिद्ध पर्वतोंकी ओर उड़ गये। वे अब खूब स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट हो गये थे। बनारसके सौदागरके उपकारका बदला चुकानेके लिये उन्होंने निश्चय किया कि जैसे भी हो सकेगा वे कुछ वस्त्र इकट्ठे करके अपने दयालु मित्रको देंगे। वे एक घरसे दूसरे घर, एक गांवसे दूसरे गांव उड़ते हुए जाते और जो वस्त्र बाहर हवामें सूखनेको पड़ा होता उसे उठा लाते और सौदागरके घरमें छोड़ आते। सौदागर उनके सदाशयका मान तो करता था पर उन चुराये हुए कपड़ोंको न तो वह अपने किसी व्यवहारमें लाता था और न ही उन्हें बेचता था। वह उन्हें केवल संभालकर रख देता था।

इन दो गिद्धोंको पकड़नेके लिये सब स्थानोंपर जाल लगाये गये। एक दिन उनमेंसे एक पकड़ा गया। वह राजाके सामने लाया गया। राजाने उससे पूछा: "तुम मेरी प्रजाकी चोरी क्यों करते हो?"

पक्षीने उत्तर दिया: "एक सौदागरने मेरी और मेरे भाईकी जान बचायी

थी। उसीका ऋण चुकानेके लिये हमने ये वस्त्र इकट्ठे किये हैं।

अब सौदागरसे पूछताछकी बारी आयी। वह भी राजाके सामने हाजिर हुआ। वह बोला :

"स्वामी, गिद्धोंने सचमुच ही मुझे बहुत-से वस्त्र लाकर दिये हैं, पर मैंने सबको एक स्थानपर रख दिया है। मैं उन्हें उनके स्वामियोंको लौटानेके लिये तैयार हूं।"

राजाने गिद्धोंको क्षमा कर दिया, क्योंकि उन्होंने यह कार्य प्रत्युपकारके लिये किया था, पर उनमें विचार-शक्तिका अभाव था। सौदागरको भी इसके लिये कोई कष्ट नहीं उठाना पड़ा क्योंकि उसमें वह दूरदृष्टि थी।

***

जापानियोंके घरोंमें दूरदर्शिताका विचार मूर्तिमान रूपमें देखनेमें आता है।

उनके एक मंदिरमें कमलके फूलपर ध्यानावस्थामें बैठे हुए महात्मा बुद्धकी मूर्ति है। उनके सामने तीन छोटे-छोटे बंदर हैं। एकके हाथ अपनी आंखोंपर हैं, दूसरेके अपने कानोंपर और तीसरेने तो हाथोंसे अपना मुंह ही बंद कर रखा है। इन तीनों बंदरोंका अर्थ क्या तुम जानते हो? पहला अपनी चेष्टासे कह रहा है: "मैं बुरी और भद्दी चीजें नहीं देखता।" दूसरा कहता है: "मैं इन्हें नहीं सुनता।" और तीसरा: "मैं इन्हें नहीं कहता।"

इसी प्रकार बुद्धिमान् मनुष्य जो कुछ देखता, सुनता या कहता है, उसमें वह बहुत सतर्क रहता है।

वह परिणामके विषयमें विचारता है, अगले दिनकी बात सोचता है, और यदि उसे मार्ग न सूझे तो पूछ लेता है।

सच्चाई

एक सिंह, एक भेड़िया और एक लोमड़ी शिकार करते हुए जंगलमें मिले। उन्होंने एक गधा, एक हरिण और एक खरगोश, ये तीन जानवर मारे।

आखेटको सामने रखकर शेरने भेड़ियेसे कहा :

"बताओ तो, मित्र भेड़िये, इस शिकारका बटवारा हम किस प्रकार करें ?"

भेड़ियेने उत्तर दिया : "इन तीन पशुओंकी काटा-कूटी करनेकी तनिक भी आवश्यकता नहीं। आप गधा ले लीजिये, लोमड़ी खरगोश ले लेगी और मैं तो हरिणसे ही संतुष्ट हो जाऊंगा।"

इसके उत्तरमें शेरने एक क्रोध-भरी गर्जना की और भेड़ियेकी सलाहके पुरस्कारस्वरूप अपने पंजेकी एक ही चोटसे उसका सिर कुचल दिया। अब वह लोमड़ीकी ओर मुड़ा और बोला :

"और मेरी प्यारी बहिन लोमड़ी, तुम्हारा क्या प्रस्ताव है ?"

"यह तो बड़ी सीधी-सी बात है, श्रीमान् !" लोमड़ी एक लंबा दंडवत् करके बोली; "सबेरेका कलेवा आप गधेसे कीजिये, हरिण, शामके खानेके लिये रखिये और इस खरगोशसे दोनों खानोंके बीचमें हल्का-सा जलपान कर लीजिये।"

"बहुत ठीक," सारे-का-सारा शिकार अकेले अपनेको मिलता देख शेर संतुष्ट होकर बोला; "भला ऐसी बुद्धिमानी और न्यायप्रियताकी बातें करना तुम्हें किसने सिखाया है ?"

"भेड़ियेने," लोमड़ीने चतुरतापूर्वक उत्तर दिया।

लोमड़ीने ऐसा क्यों कहा ? क्या उसने अपनी सत्य भावना व्यक्त की थी ? ना, बिल्कुल नहीं। तो क्या वह शेरको प्रसन्न करनेकी सच्ची अभिलाषा रखती थी ? यह भी नहीं। उसने तो भयवश होकर ही ऐसा कहा था और इसके लिये निश्चय ही उसे बुरा-भला नहीं कहा जा सकता। पर फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि उसका कहना सत्य नहीं था; वह केवल उसकी चालाकी थी। और शेरने भी जो उसे पसंद किया वह इसलिये कि उसे मांससे प्रेम था, न कि सत्यसे।

*
**

अबू अब्बास नामक एक मुसलमान लेखकने राजा सुलेमानकी कीर्ति-कथा लिखी है। यह राजा यहूदियोंके पवित्र शहर यरुशलमपर राज्य करता था।

उसके सभा-गृहमें छः सौ चौकियां थीं जिनमेंसे तीन सौपर दरबारके बुद्धिमान् लोग बैठते थे और तीन सौपर "जिन" लोग। ये अपनी जादूकी शक्तिसे राजाकी सहायता किया करते थे।

राजाके एक शब्दपर हजारों बड़े-बड़े पक्षी पंख फैलाये प्रकट हो जाते और, जबतक दरबार होता रहता, वे इन छः-सौ चौकियोंपर बैठे हुए लोगोंके ऊपर अपनी छाया किये रहते। उसके आदेशानुसार ही प्रतिदिन प्रातः और सायं एक तेज हवा उठती जो सारे-का-सारा महल पल-भरमें इतनी दूर ले जाती जितनी दूर वैसे पहुंचनेमें एक मास लग जाता। इसी प्रकार राजा अपने राज्यके अंतर्गत दूर देशोंपर राज्य करता था।

इसके अतिरिक्त, सुलेमानने एक ऐसा चमत्कारी सिंहासन बनवाया था जो किसीकी कल्पनामें भी नहीं आ सकता। वह सिंहासन कुछ इस ढंग-का बना था कि जब राजा उसपर बैठा होता तो कोई व्यक्ति उसके सामने झूठ बोलनेका साहस नहीं कर पाता था।

वह हाथीदांतका था, उसमें मोती-पन्ने और लाल जड़े थे। उसके चारों ओर चार सोनेके खजूरके पेड़ थे जिनपर लाल और पन्नोंके फल लगे थे। उन खजूरके पेड़ोंमेंसे दो की चोटीपर सोनेके दो मोर और दोपर सोनेके दो गीध बैठे थे। सिंहासनके दोनों ओर दो पन्नोंके खंभोंके बीचमें दो सोनेके शेर थे। पेड़ोंके तनेके चारों ओर सोनेकी एक अंगूरकी बेल फैली थी जिसपर लालोंके अंगूर लटक रहे थे।

इजराइलके बड़े-बूढ़े लोग सुलेमानकी दांयीं ओर बैठते थे और इनकी कुर्सियां सोनेकी थीं। 'जिनों' का स्थान राजाकी बांयीं ओर था, इनकी कुर्सियां चांदीकी थीं।

राजा जब अपना न्याय-दरबार करता तो हर कोई उसके पास आ सकता था। जब कोई आदमी किसी दूसरेकी गवाही दे रहा होता और यदि वह सत्यके जरा भी इधर-उधर होता तो एक विचित्र घटना घट जाती। सिंहासन, शेर, खजूरके पेड़, मोर और गीध सब एकदम उसकी ओर घूम जाते। शेर अपने पंजे आगेकी ओर फेंकते और पूंछें जमीनपर पटकने लगते, मोर और गीध भी अपने पंख फड़फड़ाने लगते।

इससे गवाह भयसे कांप उठता था और जरा भी झूठ बोलनेका साहस नहीं कर सकता था।

निःसंदेह, यह सब राजाके लिये बड़े सुभीतेका था और इससे उसका

कार्य अति सुगम हो जाता था। पर भय तो सदा ही एक दुःखदायी वस्तु होता है, इसका सत्यके साथ ठीक मेल नहीं बैठता।

अबू अब्बासकी कहानीके अनुसार भय मनुष्यको कभी-कभी सत्य बोलनेको विवश तो करता है, पर उसे सत्यवादी नहीं बनाता; क्योंकि वह उसे कुछ समयके बाद असत्य बोलनेके लिये भी विवश कर सकता है जैसे कि हमारी पहली कहानीमें लोमड़ीके साथ हुआ था, और ऐसा प्रायः होता है।

सत्य बोलना सीखनेके लिये एक स्वच्छ हृदयवाले मनुष्यको सुलेमानके सिंहासनके चमत्कारकी आवश्यकता नहीं। सत्यका सिंहासन उसके अपने हृदयमें होता है, उसकी आत्माकी सचाई ही उसे सत्य वचन कहनेके लिये प्रेरित कर सकती है। वह इसलिये सत्य नहीं कहता कि उसे किसी शिक्षक, स्वामी या न्यायाधीशका डर है, वरन् इसलिये कि यही एक सच्चे मनुष्यके लिये उचित है, यह उसके स्वभावका एक अंग है।

यह सत्य-प्रेम ही है जो उसे सब भयोंसे निडर बनाता है। वह वही कहता है जो उसे कहना होता है, चाहे उसके लिये उसे कितना भी कष्ट क्यों न उठाना पड़े।

***

विश्वामित्र नामक एक धनी और शक्तिशाली राजाने विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त करनेके लिये तपस्या करनेका निश्चय किया। वह अपनी क्षत्रियजातिसे सर्वोच्च ब्राह्मणजातिमें प्रवेश पाना चाहता था। इसके लिये उसने जो आवश्यक समझा सब किया और वह ऐसी कड़ी तपस्याके जीवनका अनुसरण करने लगा कि सबके मुंहपर यही था: "राजा ब्राह्मण होनेके सर्वथा योग्य है।"

पर ब्राह्मण वशिष्ठ ऐसा नहीं समझते थे, क्योंकि वे जानते थे कि विश्वामित्र अभिमानवश ऐसा कर रहा है और उसका त्याग सच्चा त्याग नहीं है। इसलिये उसे ब्राह्मण मानकर प्रणाम करना वशिष्ठने अस्वीकार कर दिया।

राजाने क्रोधवश वशिष्ठके कुटुम्बके एक सौ बालक मरवा डाले। इतना दुःख-शोक होनेपर भी वे इस बातपर दृढ़ रहे कि जो उनके विचारमें सत्य नहीं है, वह वे कदापि नहीं कहेंगे।

अब राजाने उस सत्यवादी व्यक्तिको भी मार देनेका निश्चय किया। एक दिन सायंकाल वह इस दुष्कर्मको करनेके लिये वशिष्ठकी कुटियाकी ओर चला।

द्वारके निकट पहुंचकर उसने वशिष्ठको अंदर अपनी स्त्रीसे बातें करते

हुए सुना। उसके कानमें जब उसका अपना नाम पड़ा तो वह सुननेके लिये वहीं ठहर गया। जो वचन उसने सुने वे शुद्ध और पवित्र होनेके साथ-साथ क्षमासे भी परिपूर्ण थे। राजाका हृदय द्रवित हो उठा, पश्चात्तापसे भरकर उसने अपना अस्त्र वहीं फेंक दिया और वह अन्दर जाकर ऋषिके चरणोंपर गिर पड़ा।

राजाके मनकी ऐसी अवस्था देखकर वशिष्ठने उसका प्रेमपूर्वक स्वागत किया और कहा: "ब्रह्मर्षि!" राजा ने नम्रतापूर्वक पूछा: "इससे पहले आपने मेरी तपस्याका क्यों आदर नहीं किया?"

"क्योंकि तब तुम अपनी शक्तिके मदसे ब्राह्मणपदकी मांग करते थे, परंतु अब तुम्हें पश्चात्ताप हो रहा है और इसलिये तुम ब्राह्मणकी सच्ची वृत्तिमें आ गये हो," वशिष्ठने उत्तर दिया।

वशिष्ठ निर्भयतापूर्वक और बिना किसी द्वेष भावनाके सत्य बोलना जानते थे।

*
**

क्या तुम्हें ऐसा नहीं लगता कि इस प्रकारका सत्य बोलना कितना सुन्दर है, चाहे ऐसा करनेमें विपत्ति ही क्यों न उठानी पड़े?

और ऐसा प्रायः होता है कि जो लोग इस प्रकारकी विपत्तिका सामना करते हैं, उनके लिये अन्तमें सब बातें भली हो जाती हैं, यद्यपि आरंभमें ऐसा प्रतीत नहीं होता। असत्यकी सफलता सदा अस्थायी होती है, जबकि अधिकतर सत्य कहना ही चतुर बननेका सबसे बढ़िया तरीका है।

एक बार, सवेरेके समय, दिल्लीके बादशाहने योग्य व्यक्तियोंको उपाधियां बांटनेके लिये दरबार किया। जब उत्सव समाप्त होनेको आया तो उसने देखा कि जिन व्यक्तियोंको उसने बुलाया था उनमेंसे सैयद अहमद नामक एक युवक अभी तक नहीं पहुंचा है।

बादशाह पालकीमें सवार होनेके लिये अपने सिंहासन परसे उठा; इसमें बैठकर वह अपने बड़े महलके एक भागसे दूसरे भागको जाया करता था।

ठीक उसी समय उस युवकने उतावलीसे प्रवेश किया।

"तुम्हारा पुत्र देरसे पहुंचा है," बादशाहने सैयदके पितासे, जो उसका मित्र था, कहा, और स्वयं युवककी ओर कड़ी दृष्टिसे देखकर प्रश्न किया: 'यह देर क्यों हुई?"

"बादशाह सलामत," सैयदने सच्चाईसे कहा, "मैं आज बहुत देरतक सोता रहा।"

दरबारी स्तंभित हो युवककी ओर ताकने लगे। किस ढिठाईके साथ यह बादशाहके सामने अपना अपराध स्वीकार कर रहा है? क्या इससे अच्छा बहाना इसके पास नहीं था? कैसी मूर्खतापूर्ण बात कह दी इसने!

पर हुआ इसके विपरीत। बादशाह एक क्षण तो सोचता रहा, फिर उसने युवककी उसकी सत्यवादिताके लिये प्रशंसा की और उसे मोतियोंकी एक माला और सम्मानके चिह्न-स्वरूप, मस्तकपर धारण करनेके लिये एक रत्न प्रदान किया।

इस प्रकार सैयद अहमदको, जो सत्यसे प्रेम करता था और, बादशाह हो चाहे किसान सबसे सच कहता था, यह प्रतिफल मिला।

यह निश्चित है कि बिना किसी कष्टके सत्य बोल सकनेके लिये सबसे अच्छा ढंग यह है कि हम अपना व्यवहार सदा इस प्रकार रखें कि हमें अपना कोई भी कार्य छुपाना न पड़े। इसके लिये प्रतिक्षण हमें यह याद रखना चाहिये कि हम भगवान्‌के सम्मुख हैं। कारण, वचनकी सच्चाई कार्यकी सच्चाईकी मांग करती है। सच्चा मनुष्य वह है जो अपने वचन और कर्मसे सब पाखंडको निकाल देता है।

शहर "अमरोहे" में एक विशेष प्रकारका बर्तन बनता है जिसे "कागजी" कहते हैं। इसपर रुपहले कामकी सजावट होती है। ये बर्तन होते तो हैं बहुत सुन्दर, परन्तु इतने हल्के-फुल्के और बोदे कि जरासे प्रयोगसे ही टूट जाते हैं। फिर भी देखनेमें ये बड़े उपयोगी मालूम देते हैं, पर उन्हें देखकर ही मनको संतुष्ट कर लेना चाहिये।

बहुत-से व्यक्ति भी इन कागजी बर्तनोंके समान होते हैं। उनका स्वरूप सुन्दर होता है, पर यदि तुम उन्हें किसी भी बातमें कसौटीपर कसनेका प्रयत्न करो तो तुम्हें पता लगेगा कि उनके अंदर दिखावेके अतिरिक्त कहीं कुछ नहीं है। उनपर तनिक भी भरोसा न रखो, क्योंकि उनकी दुर्बलताके लिये वह बहुत भारी बोझ है।

एक ब्राह्मणने अपने पुत्रको बनारसमें किसी पण्डितसे विद्या पानेके लिये भेजा।

बारह वर्षके बाद वह युवक अपने गांव लौटा। बहुत-से लोग यह सोच-कर कि अब वह एक बड़ा भारी पण्डित हो गया है उसके घर उससे मिलनेके लिये आये। उन्होंने उनके सामने संस्कृत भाषाकी एक पुस्तक रखी और उससे कहा: "पूज्य पण्डितजी, इसकी विद्या हमें भी सिखाइये।"

युवक स्थिर दृष्टिसे उस पुस्तककी ओर देखता रहा। वास्तवमें वह तो उसका एक शब्द भी नहीं समझ पा रहा था। बनारसमें उसने सिवाय

अक्षरज्ञानके और कुछ नहीं सीखा था। वे अक्षर भी उसके मस्तिष्कमें इसलिये धीरे-धीरे प्रवेश पा गये थे कि वे वहां खूब बड़े आकारमें श्यामपट-पर लिखे रहते थे और वह उन्हें प्रतिदिन देखा करता था।

वह चुपचाप पुस्तकके सामने बैठा रहा। उसकी आंखोंसे ऐसा प्रतीत होने लगा कि बस अब वे बरसने ही वाली हैं।

आगतोंने कहा : "पण्डितजी, अवश्य ही इस पुस्तककी किसी चीजने आपके हृदयको द्रवित किया है। जो कुछ इसमें है, आप हमें भी बताइये।

"ये अक्षर बनारसमें तो बड़े होते थे, परन्तु यहां ये छोटे हैं," अंतमें वह बोला।

क्या यह पण्डित उस कागजी बर्तनके सदृश नहीं था?

*
**

एक भेड़िया गंगा नदीके किनारे चट्टानोंपर रहता था। पर्वतोंपर बर्फ पिघलनेसे नदीमें बाढ़ आ गयी। एक दिन नदी इतनी चढ़ आयी कि जिस चट्टानपर भेड़िया रहता था उसके चारों ओर पानी-ही-पानी हो गया। उस दिन भेड़िया अपने भोजनकी तलाशमें न जा सका। यह देखकर कि आज खानेके लिये कुछ नहीं है उसने कहा : "अच्छा तो है, आज पवित्र दिन भी है; इसके उपलक्ष्यमें मैं आज व्रत रखूंगा।"

वह चट्टानके एक किनारे बैठ गया और व्रतका पवित्र दिन मनानेके लिये उसने अपनी आकृति खूब गंभीर बना ली।

उसी समय एक जंगली बकरी पानीके ऊपरसे एक चट्टानपर कूदती हुई उसी स्थानपर आ पहुंची जहां भेड़िया खूब भक्ति-भावमें बैठा था।

ज्यों ही भेड़ियेने उसे देखा वह एकदम चिल्ला उठा : "ओह, यह रहा कुछ खानेको!"

वह बकरीपर झपटा, पर चूक गया। दुबारा झपटा, तब भी वह सफल नहीं हुआ। अंतमें बकरी तेज बहती हुई धाराको पार करके पूरी तरहसे भेड़ियेकी पहुंचके बाहर हो गयी।

"बहुत खूब!" भेड़ियेने अपना साधु-भाव फिरसे धारण करते हुए कहा : "मैं आज व्रतके दिन बकरीका मांस खाकर अपवित्र नहीं होऊंगा। व्रतके दिन मांस! कदापि नहीं।"

उस भेड़िये, उसकी भक्ति और व्रतके प्रति उसकी श्रद्धाके बारेमें तुम्हारा क्या विचार है? तुम उसके कपटपर हंसते हो। पर कितने ही लोग ऐसे हैं जिनकी सच्चाई भेड़ियेकी सच्चाई जैसी होती है, जो सुन्दर भावनाओंका

प्रदर्शन करते हैं, क्योंकि उसमें उनका स्वार्थ होता है। वे छोटे-छोटे भक्ति-भावके काम करते हैं क्योंकि वे प्रकट रूपमें बुरे कार्य नहीं कर पाते; पर इस सब चालाकीके होते हुए भी, क्या तुम सोचते हो कि ये कपटी सच्चे और न्यायपरायण लोगोंके सामने अधिक समयतक टिक सकते हैं?

*
**

हनुमानकी सेनाके बंदरों और रीछोंने राम और उनके भाई लक्ष्मणके लिये दस शीशवाले राक्षस रावणके साथ युद्ध किया था।

सैनिकगण चारों ओरसे उसपर आक्रमण कर रहे थे। उनकी चोटोंसे बचनेमें अपनेको अशक्त पाकर रावणने अपनी जादूकी शक्तिका प्रयोग किया।

एकदम जादूके बलसे, उसके चारों ओर, राक्षसोंके बीचमें, बहुत-से राम और लक्ष्मण उत्पन्न हो गये। यह वास्तवमें केवल एक धोखा और इन्द्र-जाल था। परन्तु बन्दरों और रीछोंने उन्हें सच्चा समझकर एकदम युद्ध बन्द कर दिया। अब कैसे वे युद्ध जारी रखते और अपने प्रिय स्वामी राम और लक्ष्मणके ऊपर पत्थर बरसाते ? उन्हें इस प्रकार चिंतित देखकर रावण एक क्रूर हंसी हंसा। रामको भी हंसी आ गयी; इस प्रकारके झूठको छिन्न-भिन्न करने, इस धोखा-धड़ीको व्यर्थ करने और सत्यको विजय दिलानेमें उन्हें अभी कितनी प्रसन्नता होगी ! उन्होंने अपने शक्तिशाली धनुषपर एक बाण चढ़ाया और छोड़ दिया। बाणका उन सब धोखेकी छाया-मूर्त्तियोंमेंसे सर-सर करते हुए निकलना था कि वे लोप हो गयीं। वास्तविक तथ्यके जाननेपर हनुमानकी सेनामें फिरसे साहस आ गया।

सत्यवादी मनुष्यके सत्य वचन भी इसी तीरके समान होते हैं जो बहुत-से झूठ धोखेको नष्ट करनेकी शक्ति रखते हैं।

*
**

दक्षिण भारतकी एक प्राचीन कथा है। "राजाबेला" नामक एक राजाके बारेमें प्रसिद्ध था कि केवल उसकी हंसी मीलों दूरतकके प्रदेशको बेलेके फूलकी मीठी सुगन्धसे भर देती थी। पर इसके लिये उसकी हंसीका उसके हृदयकी आनन्दमयी और स्वाभाविक प्रफुल्लतासे निकलना आवश्यक था। यदि वह बिना सच्ची प्रफुल्लताके हंसनेका प्रयत्न करता तो उसका कुछ फल नहीं होता। जब उसका हृदय प्रसन्न रहता तो उसकी हंसी भी एक सुगंधित स्रोतके समान फूट पड़ती।

इस हंसीका गुण तो पूर्णतया उसकी सच्चाईमें था।

राजा दुर्योधनके महलमें भोजनादिका खूब राजसी ठाट-बाट था। सोने-चांदीके बर्तन थे — लाल, पन्ने और जगमगाते हीरे-जड़े। श्रीकृष्णको भोजनके लिये निमंत्रण मिला पर वे नहीं गये। उसी संध्याको वे एक गरीब शूद्रके घर भोजन करने चले गये; उसने भी उन्हें आमंत्रित किया था। वहां भोजन अत्यन्त सादा था और बर्तन भी अति साधारण, पर कृष्णने एकको छोड़कर दूसरेको चुना, क्योंकि शूद्रका अर्पित किया हुआ भोजन सच्चे प्रेमसे ओत-प्रोत था, जब कि राजा दुर्योधनके राजसी भोज-का आयोजन खाली दिखानेके लिये किया गया था।

ऐसी ही एक कहानी और भी है; प्रतापी रामने एक बार एक नीच जातिकी चिड़ीमारकी स्त्रीके यहां भोजन किया था। वह उनके आगे कुछ फल ही रख सकी थी, क्योंकि उसके पास और कुछ नहीं था। पर उसके पास जो सबसे बढ़िया चीज थी वही उसने इतने प्रेमपूर्ण हृदयसे उन्हें अर्पित की कि इससे रामका हृदय पुलकित हो गया और उन्होंने यह इच्छा की कि सच्चे हृदयद्वारा दी गयी इस भेंटकी स्मृति नष्ट नहीं होनी चाहिये। इसलिये आज भी, कई शताब्दियोंके बाद, लोग इसका वर्णन करते हैं।

जलाल एक बुद्धिमान् और प्रसिद्ध उपदेशक थे। एक दिन दो तुर्क कुछ भेंट लेकर उनके पास आये; वे उनसे उपदेश सुननेकी इच्छा रखते थे। वे बहुत गरीब थे, इसलिये उनकी भेंट भी साधारण थी — एक मुट्ठी दाल। जलालके कुछ शिष्योंने उस भेंटकी ओर अवज्ञाकी दृष्टिसे देखा, परंतु जलालने कहा: "पैगम्बर मोहम्मदको एक बार अपने किसी कार्यके लिये धनकी आवश्यकता पड़ी। उन्होंने अपने शिष्योंसे कहा कि जो कुछ वे दे सकते हों दें। कुछने अपनी संपत्तिका आधा भाग दिया और कुछने तिहाई। अबू बकरने अपना सारा धन उन्हें दे दिया। मोहम्मदको इस प्रकार बहुत-से अस्त्र-शस्त्र और पशु आदि मिल गये। अंत-में एक गरीब स्त्री आयी; उसने तीन खजूरें और गेहूंकी एक रोटी भेंटमें दी। यही उसकी कुल पूंजी थी। यह देखकर बहुत-से लोग हंस पड़े। पर पैगम्बरने उन्हें अपना एक स्वप्न सुनाया जिसमें उन्होंने कुछ स्वर्गदूतों-को हाथमें एक तराजू लिये हुए देखा था; उन्होंने एक पलड़ेमें उन सबकी भेंटें रखीं और दूसरेमें केवल उस गरीब स्त्रीकी तीन खजूरें और रोटी। तराजू स्थिर रही क्योंकि यह पलड़ा भी उतना ही भारी निकला जितना पहला।" जलालने आगे समझाया:

"एक मामूली भेंट यदि वह सच्चे हृदयसे दी गयी है, तो वह भी उतन

ही मूल्य रखती है जितनी कि कोई मूल्यवान् भेंट।"

यह सुनकर दोनों तुर्क बड़े प्रसन्न हुए और फिर किसीको भी एक मुट्ठी दालपर हंसनेका साहस नहीं हुआ।

***

छोटी जातिका एक गरीब मनुष्य एक बार अपने कुटुम्बके भरण-पोषणके लिये सारा दिन शिकार ढूंढ़ता रहा, पर उसके कुछ हाथ न लगा। रात हो गयी पर वह अभी जंगलमें ही था — अकेला, भूखा-प्यासा और अपने असफल प्रयत्नोंसे थका हुआ। इस आशासे कि कहीं उसे कोई घोंसला मिल जाय वह एक बेलके पेड़पर चढ़ गया। इस पेड़के तेहरे पत्ते भक्तोंद्वारा शिवजीको चढ़ाये जाते हैं। पर उसे वहां कोई घोंसला न मिला; उसे अपनी स्त्रीका विचार आया, फिर बच्चोंका आया जो उसकी तथा भोजनकी आशामें बैठे होंगे। वह रोने लगा। कहानीमें आगे आता है कि करुणाके आसुओंमें बड़ा बल होता है। ये उन आंसुओंसे, जो अपने निजके दुःखके लिये बहाये जाते हैं, अधिक कीमती होते हैं।

शिकारीके आंसू बेल वृक्षके पत्तोंपर गिरे और फिर उन्हें लिये वे वृक्षके तनेके पास पृथ्वीपर रखे शिवलिंगपर जा पड़े। उसी समय एक सांपने उस मनुष्यको डस लिया और वह वहीं मर गया। दूतगण उसकी आत्माको देवलोकमें ले गये और उसे शिवजीके आगे उपस्थित किया।

स्वर्गके देवता एक स्वरमें बोल उठे : "यहां इस मनुष्यकी आत्माके लिये कोई स्थान नहीं। यह नीच जातिका है, इसने व्रत-नियमोंकी उपेक्षा की है, अपवित्र खाद्य खाया है और देवताओंपर जो सदासे चढ़ावे चढ़ाये जाते हैं वे भी इसने नहीं चढ़ाये हैं।"

पर शिवजीने कहा : "इसने मुझपर बेलकी पत्तियां चढ़ायी हैं, विशेषकर इसने तो मुझे अपने सच्चे आंसू अर्पित किये हैं। सच्चे हृदयोंके लिये कोई नीच जाति नहीं होती।" और उन्होंने उसे अपने स्वर्गमें अंगीकार कर लिया।

***

ये सब कथाएं हमें बताती हैं कि प्रत्येक देशमें तथा प्रत्येक युगमें मनुष्य और उनके देवता सच्चाईका मान करते रहे हैं। वे सब वस्तुओंमें सत्य और सरलतासे प्रेम करते हैं।

जिसका निवास असत्यमें है वह मनुष्यजातिका शत्रु है।

सब मानवविषयक विज्ञान तथा दर्शन — खगोलविद्या, गणित, रसायन-विद्या और भौतिक विज्ञान — सत्यकी खोज करते हैं। पर छोटी-छोटी बातोंमें भी सत्यकी उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि बड़ीमें।

छोटे बालको, सत्य बोलना सीखनेके लिये बड़े होनेकी प्रतीक्षा मत करो। सत्यवादी बनने और सत्यमें स्थिर रहनेका अभ्यास डालनेके लिये कोई भी समय अति-शीघ्र नहीं कहा जा सकता।

इसीलिये सत्य बोलनेकी इच्छा रखते हुए भी कभी-कभी मनुष्यके लिये सत्य बोलना इतना कठिन हो जाता है। इसके लिये सबसे प्रथम तो मनुष्यको सत्यको समझना और उसे ढूंढना चाहिये और यह सदा इतना सरल नहीं होता।

बनारसके राजाके चार युवक पुत्र थे। प्रत्येकने अपने पिताके सारथी-से कहा : "मैं 'किंशुक' का पेड़ देखना चाहता हूं।"

सारथीने उत्तर दिया : "मैं तुम्हें दिखाऊंगा।" और सबसे बड़े भाईको वह अपने साथ घूमनेके लिये ले गया।

जंगलमें उसने राजकुमारको किंशुकका पेड़ दिखाया। उस समय वह ऋतु थी जब कि उसपर कोंपल, पत्ते, फूल कुछ नहीं था। इसलिये राज-कुमारने केवल एक रूखी-सूखी लकड़ीका तना ही देखा।

उसके कुछ सप्ताह बाद दूसरा राजकुमार रथमें घूमनेके लिये गया। उसने भी किंशुक देखा और उसे पत्तोंसे लदा पाया।

उसी ऋतुमें कुछ दिन बाद तीसरेकी बारी आयी। उसने देखा कि वह फूलोंसे लाल हो रहा है।

सबसे अंतमें चौथेने पेड़को देखा। उसके फल अब पक चुके थे।

एक दिन जब चारों भाई फिर इकट्ठे हुए, एकने पूछा : "किंशुकका पेड़ कैसा है ?"

सबसे बड़ेने कहा : "एक नंगे तनेके समान।"

दूसरा बोला : "फले-फूले केलेके पेड़के समान।"

तीसरा : "लाल-गुलाबी फूलोंके गुलदस्तेके समान।"

और चौथा : "वह तो एक प्रकारका बबूलका पेड़ प्रतीत होता है जिसमें फल भी हैं।"

जब चारोंका मत मिलता न दिखायी दिया तो वे इकट्ठे होकर फैसला करानेके लिये अपने पिताके पास गये। जब राजाने सुना कि किस प्रकार एकके बाद एकने किंशुकका पेड़ देखा तो वह मुस्करा पड़ा। उसने उनसे कहा :

"तुम चारों ठीक कहते हो, पर तुम चारों ही भूल गये हो कि पेड़ सब ऋतुओंमें एक-सा नहीं रहता।"

प्रत्येकने वही कहा जो उसने देखा और प्रत्येकने उसे अस्वीकार किया जो दूसरे जानते थे।

इस प्रकार लोग प्रायः सत्यका एक छोटा-सा अंश ही जानते हैं और उनकी गलती बस यही होती है कि वे समझते हैं कि वे उसे पूरे-का-पूरा जानते हैं।

यह गलती कितनी कम हो जाती है यदि वे बचपनमें ही सत्यकी अधिकाधिक खोज करनेके लिये उससे उचित प्रेम करना सीख जाते।

*
**

हिमालयके पर्वतीय प्रदेशके कुमायूं नामक स्थानका राजा एक बार अल्मोड़ेकी घाटीमें शिकार खेलने गया। उस समय वह स्थान घने जंगलसे ढका था।

एक खरगोश झाड़ियोंमेंसे निकला। राजाने उसका पीछा किया। किन्तु अचानक वह खरगोश चीतेमें बदल गया और शीघ्र ही दृष्टिसे ओझल हो गया।

उस आश्चर्यजनक घटनासे स्तंभित हुए राजाने पंडितोंकी एक सभा बुलायी और उनसे इसका अर्थ पूछा।

उन्होंने उत्तर दिया : "इसका यह अर्थ है कि जिस स्थानपर चीता दृष्टिसे ओझल हुआ था वहां आपको एक नया शहर बसाना चाहिये, क्योंकि चीते केवल उसी स्थानसे भाग जाते हैं जहां मनुष्योंको एक बड़ी संख्यामें बसना हो।"

अतएव, नया शहर बसानेके लिये मजदूर लोग कामपर लगा दिये गये। अन्तमें जमीनकी कठोरता देखनेके लिये एक स्थानपर उन्होंने लोहेकी एक नुकीली शलाका गाड़ी। उस समय अचानक पृथ्वीमें एक हल्का-सा कंपन हो उठा।

"ठहरो," पंडित लोग चिल्ला पड़े, "इसकी नोक सर्पराज शेषनागकी देहमें धंस गयी है। अब यहां शहर नहीं बनाना चाहिये।"

उस कहानीमें आगे आता है कि जब वह लोहेकी शलाका पृथ्वीसे बाहर निकाली गयी तो वह वास्तवमें शेषनागके रक्तसे लाल हो रही थी।

"यह तो बड़े दुःखकी बात है," राजा बोला : "हम यहां शहर बनानेका निश्चय कर चुके हैं, इसलिये अब बनाना ही होगा।"

उन पण्डितोंने क्रोधमें आकर भविष्यवाणी की कि शहरपर कोई भारी विपत्ति आयेगी और राजाका अपना वंश भी शीघ्र ही नष्ट हो जायगा।

जमीन वहांकी उपजाऊ थी और पानी भी खूब था। छः सौ सालसे अल्मोड़ा शहर उस पहाड़पर बसा हुआ है, और उसके चारों तरफ फैले खेत बढ़िया फसलें पैदा करते हैं।

इस प्रकार, बुद्धि रखते हुए भी वे पण्डित अपनी भविष्यवाणीमें गलत निकले। निःसंदेह वे सच्चे थे और उन्हें विश्वास था कि वे सत्य कह रहे हैं। किन्तु लोग ऐसी गलती प्रायः करते हैं और अंधविश्वासको वास्तविकता समझ लेते हैं।

नन्हें बालको, संसार अंधविश्वासोंसे भरा पड़ा है। सत्यको ढूंढ़नेका सबसे अच्छा तरीका यह है कि मनुष्य सदा अपने विचारों, कार्यों और वचनोंमें अधिकाधिक सच्चे और निष्कपट रहें, क्योंकि दूसरोंको सब बातोंमें धोखा देना छोड़कर ही हम अपने-आपको कम-से-कम धोखा देना सीखते हैं।

९

ठीक जांच सकना

एक बिलकुल सीधी छड़ी लो, उसका आधा भाग पानीमें डुबा दो। छड़ी तुम्हें बीचमेंसे टेढ़ी दिखायी पड़ेगी, पर उसका यह रूप झूठा है; और यदि तुम यह सोचो कि छड़ी वास्तवमें टेढ़ी हो गयी तो तुम्हारा विचार गलत होगा, क्योंकि छड़ीको पानीमेंसे निकालते ही तुम देखोगे कि वह ठीक पहलेकी ही भांति सीधी है।

साथ ही यह भी संभव है कि यदि एक टेढ़ी छड़ीको किसी विशेष ढंगसे पानीमें खड़ा कर दिया जाय तो वह सीधी प्रतीत होने लगे।

कई मनुष्य भी इन छड़ियोंके समान होते हैं। कुछ तो, यदि उन्हें ठीक ढंगसे न जांचा जाय तो, उतने सच्चे प्रतीत नहीं होते जितने वे वास्तवमें हैं। और कुछ लोग ऐसा मायावी रूप धारण कर लेते हैं कि वे लगते सच्चे हैं जब कि वे होते वास्तवमें छलिया हैं। इसलिये बाह्य रूपका हमें कम-से-कम विश्वास करना चाहिये, साथ ही किसी व्यक्तिके बारेमें बिना सोचे-समझे मत भी स्थिर नहीं कर लेना चाहिये।

भारतवर्षमें एक साधु एक बार भिक्षा मांगता-मांगता एक प्रदेशमेंसे गुजरा। एक चरागाहमें उसे एक मेढ़ा दिखायी पड़ा। जानवर उस समय क्रोधमें था। उसने साधुपर झपटनेकी तैयारी की और उसके लिये वह सिर नीचे कर कुछ कदम पीछे हटा।

"वाह!" वह धर्माभिमानी साधु बोल उठा, "कैसा चतुर और भला है यह जानवर! इसे पता है कि मैं एक गुणी व्यक्ति हूं। मुझे प्रणाम करनेके लिये इसने मेरे सामने सिर झुकाया है।"

ठीक उसी समय मेढ़ा उसपर कूद पड़ा और अपने सिरकी एक ही ठोकरसे उसने उस गुणवान् व्यक्तिको जमीनपर दे पटका।

अनधिकारीके प्रति अत्यधिक आदर और विश्वास दिखानेसे यही दशा होती है। कुछ लोग कहानीके उस भेड़ियेके सदृश होते हैं जिसने चरवाहे-का लबादा पहन लिया था और भेड़ें उसे अपना स्वामी समझ बैठी थीं और कुछ उस गधेके समान भी होते हैं जो शेरकी खाल ओढ़कर भयंकर प्रतीत होने लगा था।

***

जहां मनुष्य दूसरोंके बाह्य रूपमें विश्वास करनेकी गलती कर सकता है, वहां, इसके विपरीत वह दूसरोंके बारेमें अनुदार और उतावला मत बनानेके प्रलोभनमें भी पड़ सकता है।

फारिसका शाह इस्माइल सफवी खुरासानका राज्य जीतकर अपनी राजधानीको वापिस लौट रहा था। जब वह कवि हातिफीके निवास-स्थान-के पाससे गुजरा तो उसके मनमें कविसे मिलनेकी इच्छा हो आयी। उस प्रसिद्ध व्यक्तिको देखनेकी उसकी इच्छा इतनी प्रबल हो उठी कि उसमें इतना धैर्य भी नहीं रहा कि वह मकानके मुख्य द्वारतक पहुंच सके। इतने-में उसकी दृष्टि अहातेकी दीवारके बाहर लटकती हुई पेड़की एक शाखा-पर पड़ी। वह उसके सहारे झूल गया और दीवारको फांदता हुआ कविके बगीचेमें जा कूदा।

यदि इसी प्रकार सहसा कोई तुम्हारे मकानमें घुस आये तो तुम क्या समझोगे? निश्चय ही, तुम उसे चोर समझोगे और उसका उसी ढंगसे स्वागत भी करोगे।

पर हातिफीने यह अच्छा किया कि उसने घटनाके बाह्य स्वरूपको देख-कर और अपने सर्वप्रथम विचारके अनुसार ही अपना मत स्थिर नहीं कर लिया। उसने अपने अनोखे अतिथिकी खूब आव-भगत की। और कुछ

दिन बाद तो उसने शाहकी उन बीर कृतियोंपर कुछ नयी कविताएं भी लिखीं जिन्हें सुननेके लिये शाह इतना उतावला हो उठा था।

साधारणतया, दूसरोंके अवगुण देखना अधिक आसान होता है। प्रत्येक मनुष्यमें कोई-न-कोई दोष होता है जिसे अपनी अपेक्षा दूसरे लोग जल्दी जान लेते हैं। परंतु यदि हम दूसरोंके प्रति कम-से-कम अन्याय करना चाहते हैं तो हमें उनके सर्वोत्तम गुण ही देखनेका यत्न करना चाहिये। एक उक्ति है:

"यदि तुम्हारा मित्र काना है तो उसके मुंहको एक ओरसे देखो।"

तुम्हारे जो सहपाठी तुम्हें फूहड़ और सुस्त प्रतीत होते हैं वे ही सबसे अधिक परिश्रमी भी हो सकते हैं।

तुम्हारे जो अध्यापक तुम्हें अनुशासनप्रिय और कठोर मालूम देते हैं वे निश्चय ही तुमसे प्रेम करते हैं और केवल तुम्हारी उन्नतिकी ही इच्छा करते हैं।

वह मित्र जो तुम्हें कभी दुःखदायी अथवा गंवार प्रतीत होता है तुम्हारा सबसे अधिक हितैषी हो सकता है।

कई ऐसे व्यक्ति होते हैं जिन्हें हम दुष्ट समझकर उनसे प्रेम नहीं करते। उनके अंतरतममें भी कोई-न-कोई ऐसा गुण होता है जिसे हम देख नहीं पाते।

आगोबियो शहरके आस-पासके खेतों और जंगलोंमें एक विशालकाय भेड़ियेका इतना आतंक छाया हुआ था कि वहां कोई रास्ता चलनेका साहस नहीं करता था। वह अनेक मनुष्यों और पशुओंका सफाया कर चुका था।

अंतमें संत फ्रांस्वाने उस भयानक जानवरका सामना करनेका निश्चय किया। वे शहरसे बाहर निकले। उनके पीछे पुरुषों और स्त्रियोंकी एक भारी भीड़ थी। ज्यों ही वे जंगलके समीप पहुंचे, त्यों ही भेड़िया मुंह फाड़े संतकी ओर लपका। परंतु फ्रांस्वाने शांतिपूर्वक एक संकेत किया और भेड़िया ठंडा होकर उनके पैरोंके पास ऐसे लोट गया मानों भेड़का बच्चा हो।

"भाई भेड़िये," संत फ्रांस्वाने कहा, "तूने इस देशको बहुत हानि पहुंचायी है। जो दंड हत्यारोंको मिलना चाहिये उसी दंडका तू अधिकारी है; सब लोग तुझसे घृणा करते हैं। परंतु यदि तेरे और आगोबीओके मेरे इन मित्रोंके बीच मैत्री स्थापित हो जाय तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।"

भेड़ियेने अपना सिर झुका लिया और वह अपनी पूंछ हिलाने लगा।

संत फ्रांस्वाने फिर कहा : "माई मेड़िये, मैं तुझसे प्रतिज्ञा करता हूं कि यदि तू इन लोगोंके साथ शांतिपूर्वक रहना स्वीकार कर ले तो ये तेरे साथ अच्छा बर्ताव करेंगे और तुझे प्रतिदिन खाना भी देंगे। क्या तू भी यह प्रतिज्ञा करता है कि आजसे तू इन्हें कोई हानि नहीं पहुंचायेगा ?"

अब तो मेड़ियेने अपना सिर पूरी तरहसे झुका लिया और अपना दायां पंजा संतके हाथमें रख दिया। इस प्रकार सच्चे दिलसे दोनोंमें संधि स्थापित हो गयी।

तब फ्रांस्वा भेड़ियेको आगोबीओके विशाल जनपथकी ओर ले चले। वहां नागरिकोंकी एक बड़ी भीड़के सामने उन्होंने उक्त वचन फिर दुहराये। मेड़ियेने भी फिरसे अपना पंजा संतके हाथमें रख दिया जिसका अर्थ था कि वह भविष्यमें अच्छे आचरण करनेकी प्रतिज्ञा करता है।

उसके बाद वह मेड़िया उस नगरमें दो वर्षतक रहा और उसने इस बीचमें किसीको कोई हानि नहीं पहुंचायी। नगरवासी भी उसके लिये प्रतिदिन भोजन लाते थे। जब उसकी मृत्यु हुई तो सबको दुःख हुआ।

वह मेड़िया कितना भी बुरा क्यों न प्रतीत होता हो, पर उसके अंदर एक ऐसी चीज थी जिसे, वास्तवमें, तबतक किसी व्यक्तिने नहीं जाना अबतक संत फ्रांस्वाने उसे "माई" कहकर संबोधित नहीं किया। इस कहानीमें मेड़िया निःसंदेह एक बड़े अपराधीका दृष्टांत उपस्थित करता है जिससे सब लोग घृणा करते हैं; परंतु यह हमें बताती है कि उन लोगोंमें भी, जिनसे किसीको कोई आशा नहीं होती, भलाईके कुछ ऐसे बीज होते हैं जो तनिक-सा प्रेम पाकर फूट निकलते हैं।

ऐसा कोई भी लकड़ीका तख्ता न होगा — चाहे वह कितना भी सड़ा-गला क्यों न हो — जिसमें एक कुशल मिस्त्री कुछ रेशे ठीक अवस्थामें न देख सके। एक फूहड़ कारीगर अज्ञान और घृणावश उसे फेंक देगा, पर एक प्रवीण बढ़ई उसे उठाकर रख लेगा और जो हिस्सा सड़ गया है उसे निकालकर बाकीको होशियारीसे रंदा फेरकर साफ कर लेगा। वृक्षों-की कठोर गांठें मूर्त्ति बनानेवाले कलाकारके बड़े काम आती हैं, क्योंकि उन्हींमें वह छोटे-छोटे अत्यंत आकर्षक चित्र खोद सकता है।

*
**

गियाना प्रदेशका जलवायु यूरोप-निवासियोंके लिये अत्यन्त घातक है। वहां दंडितों और निर्वासितोंके लिये बंदीगृह बने हुए हैं। कई वर्षोंकी बात है, वहां एक बार एक प्रहरी अपनी देख-रेखमें कैदियोंका एक गिरोह

"केन" नामक स्थानको ले जा रहा था। अचानक, तटके समीप ही, जब लहरें किनारेकी ओर बढ़ रही थीं, वह पानीमें गिर पड़ा।

उस बंदरगाहमें लहरोंके उतारके समय इतनी रेत भर जाती थी कि नौकाको वहां खड़ा करना सर्वथा असंभव हो जाता था। इसके विपरीत, ज्वारके समय पानीके तेज बहावके साथ-साथ शार्क मछलियां बड़ी संख्यामें आकर सारे तटको घेर लेती थीं।

पानीमें गिरे हुए उस प्रहरीकी अवस्था अत्यन्त चिंताजनक हो उठी थी, क्योंकि तैरना भी उसे नाममात्रको ही आता था। क्षण-क्षणमें यह भय बढ़ रहा था कि हिंसक जन्तु उसे निगल जायंगे। उसी समय किसी कोमल भावनासे प्रेरित होकर एक कैदी पानीमें कूद पड़ा। वह उस प्रहरीको पकड़नेमें सफल हो गया और यथेष्ट प्रयत्नोंके बाद वह उसे बचा सका।

वह मनुष्य एक अपराधी था—ऐसा अपराधी जिसे यदि कोई रास्ता चलता कैदीकी पोशाकमें, नम्बर और निशानसहित देख ले तो घृणासे मुंह फेर ले। उसका तो अब अपना कोई नाम ही नहीं रह गया था, नंबर ही उसका नाम था। वह अब एक कृपापूर्ण दृष्टि, एक दयापूर्ण शब्दका भी अधिकारी नहीं था। पर इस विचारको हम न्यायपूर्ण नहीं कह सकते क्योंकि उसके अंदर भी दया नामकी वस्तुका निवास था। सब दोषोंके होते हुए भी उसका हृदय कोमल था। उसने अपनी जान भी खतरेमें डाली तो किसके लिये? उस मनुष्यके लिये, जिसे अपने कर्त्तव्य-पालनके हेतु उसके साथ निरंतर कठोरताका बर्ताव करना पड़ता था।

अपराधियोंकी एक और कहानी भी है। इससे हमें यह पता चलेगा कि यदि मनुष्योंके बाह्य स्वरूपोंको देखकर हम अपना मत स्थिर करें तो कितना धोखा खा सकते हैं।

दो कैदी जेलसे छूटनेके बाद कुछ ऊंचाईपर स्थित "मारोनी" नामक स्थानके कच्चे सोनेके एक व्यापारीके यहां नौकर हो गये। व्यापारी उन्हें विश्वस्त मानकर वर्षोंतक स्वर्ण-धूलि और किनारेकी रेतसे रासायनिक क्रियाद्वारा निर्मित स्वर्णमिश्रित कच्चे धातुकी डलियां उन्हें सौंपता रहा। वे उन्हें पासके स्वर्ण-बाजारमें बेचनेके लिये ले जाते, पर वह बाजार भी इतना दूर था कि नावद्वारा वहां पहुंचनेमें तीस दिन लग जाते थे।

एक दिन दोनों कैदियोंने भागनेका निश्चय किया।

इस प्रकारके कैदियोंको अपना दण्ड भुगत लेनेके बाद भी वापिस घर जानेकी स्वतंत्रता नहीं थी। उन्हें वहीं प्रायश्चित्तगृहोंमें, कभी-कभी तो जीवन-भर, रहना होता था। गिंयाना प्रदेश बंजर और सूखा तो था ही; साथ ही वह घने जंगलों और दलदलोंसे इतना भरा था कि उन लोगोंको

सदा ही वहां भूख और ज्वरसे मरनेका डर रहता था। उनमेंसे अधिक-तर तो अवसर मिलते ही भाग खड़े होते थे।

सोनेके व्यापारीके इन नौकरोंने भी अपने पास नाव पाकर उससे लाभ उठाना चाहा। अतएव, उन्होंने परले किनारेपर स्थित हॉलैण्डके किसी उपनिवेशमें भाग जानेका निश्चय किया।

पर इससे पहले जितना भी स्वर्ण उनके स्वामीका उनके पास था उसे उन्होंने एक स्थानपर रख दिया और व्यापारीको पत्र लिखकर उसे उस स्थानका पता बता दिया।

उन्होंने लिखा: "आपने हमपर सदा कृपा रखी है। अतः, भागते समय हम इतने कृतघ्न नहीं हो सकते कि जिस धनको आपने विश्वास-पूर्वक हमें सौंपा है, उससे हम आपको वंचित कर दें।"

स्मरण रहे, ये दोनों कैदी चोरी-डकैतीके लिये दण्डित हुए थे। जो स्वर्ण उनके हाथमें था वह उनके काम आ सकता था। परंतु उनके अंदर कोई चीज सच्ची और खरी भी थी। उन लोगोंके लिये, जो उनके पूर्व इतिहासको जानते थे और उसीके आधारपर अपना मत बनाते थे, वे कुकर्मी, चोर और डाकू थे, परन्तु जो व्यक्ति उनपर विश्वास करना जानता था उसके प्रति वे, सब दोषोंके होते हुए भी, विश्वासपात्र बन सकते थे।

नन्हें बच्चो, हमें अपने विचारोंमें उदार और दूरदर्शी होना चाहिये; अपने साथियोंके बारेमें कोई भी उतावला मत स्थिर कर लेनेसे हमें बचना चाहिये। सबसे अच्छा तो यह है कि यदि इसके बिना काम चल जाय तो उनके विषयमें कोई मत स्थिर ही न करो।

१०

व्यवस्था

प्राचीन कालके हिन्दू पृथ्वी और जगत्के बारेमें एक सुन्दर विचार रखते थे; इस विचार-का आशय था व्यवस्थाका निरूपण करना।

जिस भूमि-खंडपर मनुष्य रहते थे उसका नाम जम्बूद्वीप था। उसके चारों ओर खारे पानीका एक सागर था। इसके चारों ओरकी पृथ्वी

क्षीर-सागरसे घिरी थी। फिर पृथ्वी और उसके चारों ओर नवनीतका सागर। उसके बाद पहलेकी तरह पृथ्वी और दधि-सागर, पृथ्वी और सुराका सागर, फिर पृथ्वी और खांडका सागर, वही क्रम। सातवां और अन्तिम सागर शुद्ध निर्मल जलका था। यह बहुत मीठा, सब सागरोंसे अधिक मीठा था।

यदि तुम पृथ्वीका मानचित्र देखो, जिसका आजकल स्कूलोंमें व्यवहार होता है, तो तुम्हें वहां न खांडका सागर मिलेगा, न दूधका और न कोई और। वे हिन्दू भी यह नहीं मानते थे कि इन सागरोंका सचमुच कोई अस्तित्व है। यह तो एक गहन विचारको समझनेका एक मौलिक ढंग था।

यह प्राचीन कथा और अन्य बातोंके साथ-साथ हमें यह भी बताती है कि संसारमें सारा काम व्यवस्थित रूपमें, एक क्रमसे होता है और यदि इस पृथ्वीपर प्रत्येक वस्तु ठीक अपने स्थानपर न पायी जाती तो यह एक विश्रामदायक, उचित और निवासयोग्य जगह कभी न हो सकती। यदि नमक, दूध, मक्खन, सुरा, खांड, जल या कोई और बढ़िया पदार्थ पृथक्-पृथक् किसी ढंगसे न रखे होते, वरन् इसके विपरीत सब मिलाकर खिचड़ी होते, तो कैसे कोई उनका स्वाद ले सकता?

*
**

मनुष्यजातिकी सब धर्म-पुस्तकें, कई बातोंमें विभिन्न होती हुई भी, इसी व्यवस्थाका पाठ पढ़ाती हैं।

यहूदियोंकी प्राचीन पुस्तक 'बाइबल'में भी व्यवस्थासंबंधी, अपने ढंगकी एक कहानी है।

प्रारंभमें सब कुछ अस्तव्यस्त था, अर्थात्, चारों ओर अव्यवस्था और अंधकारका साम्राज्य था। ईश्वरने तब जो पहला काम किया वह था इस अव्यवस्थाके ऊपर प्रकाश फेंकना, ठीक उसी प्रकार जैसे कोई मनुष्य एक अंधेरी और मलिन गुफामें उतरते समय उसपर दीपकका प्रकाश डालता है।

उसके बाद—जैसा कि 'बाइबल'में लिखा है—दिन-प्रतिदिन सब वस्तुएं क्रमानुसार उस अस्तव्यस्त साम्राज्यसे निकलकर व्यवस्थित रूपमें प्रकट होती गयीं और अन्तमें मनुष्यजाति प्रकट हुई।

व्यवस्थाका निर्माण करने और उसे सर्वत्र खोज निकालनेका यश मनुष्यको ही मिला है।

ज्योतिषविद् नक्षत्रोंकी ओर आंखें उठाये देखते रहते हैं और आकाशका मानचित्र बनाते हैं; वे नक्षत्रोंकी नियमित गतिका अध्ययन करते हैं, उन्हें नाम देते हैं तथा सूर्यके चारों ओर ग्रहोंके घूमनेका हिसाब रखते हैं। वे पहले ही बता देते हैं कि किस समय चन्द्रमा पृथ्वी और सूर्य-मंडलके बीचमें आकर एक ऐसी वस्तुको उत्पन्न करेगा जिसे हम चन्द्रग्रहण कहते हैं। सारा ज्योतिष-विज्ञान ही व्यवस्था-ज्ञानके ऊपर निर्भर है।

गणितविद्या तो है ही व्यवस्थाका विज्ञान। एक बहुत छोटा बालक भी ठीक क्रममें ही गिनती कहना पसंद करता है। उसे शीघ्र ही इस बातका ज्ञान हो जाता है कि एक, पांच, तीन, दस, दो कहनेका कोई अर्थ नहीं, चाहे वह उंगलियोंपर गिने या फिर कांचकी गोलियोंके द्वारा। वह गिनता है: एक, दो, तीन, चार; सारा गणितशास्त्र ही इसी क्रममेंसे निकलता है।

और, किसी क्रमके बिना, गानविद्या जैसी सुन्दर वस्तुका क्या रूप होगा? परदेमें सात सुर हैं—सा, रे, ग, म, प, ध, नि। यदि तुम इन सुरोंको एकके बाद एक बजाओ तो सब ठीक चलेगा, पर यदि तुम सबको एकबारगी ही दबाकर उनका एक सुर कर दो, तो वह क्या होगा! केवल एक विकट कोलाहल। मिलकर तो वे तभी एक सुरीला स्वर निकाल सकेंगे यदि उनमें किसी प्रकारका क्रम होगा। उदाहरणार्थ सा, ग, प, सा इकट्ठे बजकर एक ऐसा स्वर निकालते हैं जिसे हम "पूर्ण स्वर" कहते हैं। इसी क्रमपर सारी संगीत-विद्या आधारित है।

हम यह सिद्ध कर सकते हैं कि मनुष्यद्वारा आविष्कृत सभी विज्ञानों और कलाओंका आधार व्यवस्था ही है।

*
**

पर यह क्या और सब वस्तुओंमें भी उतनी आवश्यक नहीं है?

यदि तुम एक ऐसे गृहमें प्रवेश करते हो, जहां गृहस्थीका सब साज-समान, छोटी-बड़ी चीज इधर-उधर कोनोंमें बिखरी पड़ी है और उनके ऊपर धूल-मिट्टीकी एक मोटी तह जम गयी है तो तुम एकदम चिल्ला पड़ते हो: "कैसा कुप्रबन्ध है, कैसी गंदगी है!" क्योंकि गंदगी और अव्यवस्था एक ही चीज है।

इस जगत्में धूल-मिट्टीके लिये भी स्थान है, पर उसका स्थान इन चीजों-पर नहीं है।

इसी तरह स्याहीका स्थान दावातमें है, न कि तुम्हारी उंगलियों या गलीचेपर।

सब काम ठीक तभी चलता है जब प्रत्येक वस्तु अपने स्थानपर हो। स्कूलमें तुम्हारी पुस्तकोंका और घरमें तुम्हारे वस्त्रों और खिलौनोंका, प्रत्येकका, अपना निश्चित स्थान होना चाहिये जो केवल उसीका हो, दूसरे उसमें हस्तक्षेप न करें। अन्यथा, दूसरोंके साथ तुम्हारे झगड़े होंगे, पुस्तकें फट जायंगी, वस्त्र मैले हो जायंगे और खिलौने खो जायंगे। इतना ही नहीं, उस गड़बड़झालेमेंसे तुम्हें अपनी वस्तुएं खोज निकालने तथा उन्हें फिरसे ठीक-ठाक करनेमें कष्ट तो उठाना ही पड़ेगा, साथ ही अत्यधिक धैर्यकी भी आवश्यकता पड़ेगी, जब कि सब वस्तुओंके अपने स्थानपर होनेसे कितनी सुविधा हो जाती है।

मनुष्यका समस्त जीवन, उसके सारे कार्य तथा देशकी श्री और समृद्धि सब व्यवस्थाके इसी सिद्धांतपर आधारित हैं। इसीलिये किसी भी देशकी सरकारका पहला कर्त्तव्य है वहां सुव्यवस्था स्थापित करना। सम्राट्, राजा अथवा राष्ट्रपतिसे लेकर साधारण सिपाहीतकको इसके लिये पूरा प्रयत्न करना चाहिये। प्रत्येक नागरिकका, चाहे वह कोई भी व्यवसाय करता हो, यह कर्त्तव्य है कि वह इस कार्यमें योग दे, क्योंकि इस प्रकार वह अपने देशको समृद्ध तथा शक्तिशाली बनानेमें सहायक हो सकता है।

थोड़ी-सी अव्यवस्थाके कितने गंभीर परिणाम उत्पन्न हो सकते हैं, जरा उनके बारेमें सोचो तो !

स्टेशनके अनेक कर्मचारियोंको ही लो, चाहे वे फाटकपर चौकीदार हों या इंजन-चालक या फिर कांटा ठीक करनेवाले हों, सबको बड़ी सावधानीसे नियम और समयका पालन करना होता है जिससे ये इतनी सारी रेलगाड़ियां जो सारे देशमें चक्कर लगा रही हैं ठीक समयपर चल तथा पहुंच सकें; एक-एक मिनिटका ध्यान उन्हें रखना होता है, जिससे किसीको असुविधाका सामना न करना पड़े। और यदि संयोगवश या असावधानीसे यह समस्त क्रम कभी नष्ट हो जाय— चाहे वह एक क्षणके लिये ही हो —तो इसके कितने दु:खद परिणाम हो सकते हैं? गाड़ीका मामूली-सा देर होना ही कितनी बातोंको उलट-पुलट सकता है। नियत समयपर लोग अपने मित्रोंसे नहीं मिल सकेंगे, काम-काजी लोग अपने दफ्तरोंमें देरसे पहुंचेंगे, जहाजके यात्री अपने जहाजको नहीं पकड़ सकेंगे; इनके अतिरिक्त, और जो-जो कष्ट लोगोंको उठाने पड़ेंगे उनकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते।

यदि संसारसे समस्त व्यवस्था और क्रम अचानक लोप हो जायं तो उसके जो दु:खदायी परिणाम होंगे उनके बारेमें जरा सोचो तो !

मान लो घड़ी ही नियमितताका अपना सुन्दर उदाहरण देना बंद कर-दे और पागलकी भांति कभी आगे और कभी पीछे चलने लगे तो गृह कार्यमें कितनी गड़बड़ हो जायगी! ऐसी अवस्थामें तो अधिक अच्छा यही रहेगा कि यदि वह ठीक समय नहीं दे सकती तो उससे पीछा छुड़ा लिया जाय।

एक किसानके पुश्तैनी मकानके एक कमरेमें एक बड़ी पुरानी घड़ी रखी हुई थी। वह १५० वर्षसे बड़ी ईमानदारीसे लोगोंको अपनी टिक-टिक सुनाती आ रही थी। प्रतिदिन प्रभात होते ही किसान अपनी घड़ीके पास जाकर देखता कि वह ठीक समय दे रही है या नहीं। एक दिन ज्यों ही वह कमरेमें घुसा, घड़ी बोल उठी : "मुझे लगातार काम करते और ठीक समय देते हुए डेढ़ शताब्दी बीत गयी है; मैं अब थक गयी हूं। क्या यह अच्छा नहीं होगा कि मैं अब विश्राम करूं और अपनी टिकटिक बंद कर दूं?"

"पर मेरी अच्छी घड़ी, तुम्हारी यह मांग उचित नहीं," चतुर किसान-ने उत्तर दिया, "तुम शायद यह भूल गयी हो कि प्रत्येक टिक-टिकमें तुम्हें एक सेकंडका विश्राम मिल जाता है।"

घड़ीने एक क्षण तो सोचा और फिर सदाकी भांति अपना काम आरंभ कर दिया।

बच्चो, इस कहानीसे यह सिद्ध होता है कि व्यवस्थित कार्यमें थकावट और विश्राम समान रूपसे साथ-साथ चलते हैं और नियमितताका पालन करनेसे व्यर्थके परिश्रम और कष्टोंसे बचा जा सकता है।

उचित व्यवस्था होनेसे प्रत्येक वस्तुकी शक्ति कितनी बढ़ जाती है। अधिक शक्तिशाली मशीनें वही होती हैं जिनका प्रत्येक कल-पुर्जा अपना कार्य ठीक और नियमित ढंगसे करता है। यही नहीं, ऐसी मशीनोंमें एक छोटा-सा पेच, यदि वह अपने ठीक स्थानपर हो, तो उतना ही उपयोगी हो सकता है जितनी कि कोई बड़ी कल।

इसी प्रकार एक छोटा बच्चा जो अपना कार्य ध्यानपूर्वक करता है अपने स्कूल, घर, अर्थात्, उस छोटे-से संसारकी व्यवस्थाका एक उपयोगी अंग बन जाता है जो उसे बड़े संसारमें प्राप्त है।

व्यवस्था सीखनेके लिये प्रारंभमें तो कुछ कष्ट उठाना ही पड़ता है, बिना परिश्रमके कुछ नहीं सीखा जाता। तैरना, नौका खेना, कुश्ती लड़ना, इनका सीखना कोई सरल नहीं होता। मनुष्य धीरे-धीरे ही इन्हें सीख पाता है। कुछ समयके उपरांत ही हम अपने कार्य नियमित ढंगसे और कम-से-कम कष्टके साथ करना सीख सकते हैं। और अंतमें तो ऐसा

हो जाता है कि अव्यवस्था हमें अरुचिकर और दुःखदायी प्रतीत होने लगती है।

जब तुम पहली बार चलना सीखे थे तो तुमने कई गलतियां की थीं; तुम गिरे, तुम्हें चोट लगी, और तुम रोये भी। अब तुम बिना इस तरफ ध्यान दिये चलते हो, निपुणतासे दौड़ लेते हो। और चलने और दौड़नेकी तुम्हारी क्रिया भी तो व्यवस्थाकी एक बढ़िया मिसाल है; तुम्हारी नसें, तुम्हारे पुट्ठे तथा तुम्हारे सब अंग एक नियमित ढंगसे ही तो काम करते हैं।

इस तरहसे व्यवस्थित ढंगसे किया हुआ काम अंतमें स्वभाव बन जाता है।

यह कभी मत सोचो कि नियमित ढंगसे और ठीक समयपर काम करनेसे तुम प्रसन्न नहीं रह पाओगे, या हंस नहीं सकोगे। जब कोई अपना काम विधिपूर्वक करता है तो उसके लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह अपना मुंह गंभीर और उदास बना ले। इस बातकी सत्यता सिद्ध करनेके लिये हम व्यवस्था-संबंधी इस लेखको एक मजेदार प्रसंगसे समाप्त करेंगे।

समय पालनका एक दृष्टांत सुनो, परंतु तुम उसका अनुकरण करनेकी चेष्टा मत करना।

अरब देशकी एक स्त्रीके पास एक नौकर था। उसने उसे पड़ोसके घरसे आग लानेके लिये भेजा। नौकरको रास्तेमें मिश्र देशको जाता हुआ एक काफिला मिला। कुछ देर तो वह उन लोगोंके साथ बातें करनेमें लगा रहा और अंतमें उसने उन्हींके साथ चल देनेका निश्चय कर लिया। वह पूरे एक वर्षतक वहांसे अनुपस्थित रहा।

वहांसे लौटनेपर वह अपनी स्वामिनीकी आज्ञानुसार पड़ोसीके घरमें आग मांगने गया। जब वह जलते हुए कोयले ला रहा था तो उसे ठोकर लग गयी और वह गिर पड़ा, साथ ही उसके हाथसे कोयले भी गिर पड़े और बुझ गये। तब वह चिल्ला पड़ा:

"उतावली कितनी बुरी चीज है!"

११

बनाना और तोड़ना

बालको, यह तो तुम जानते हो कि "बनाने" और "तोड़ने" के क्या अर्थ हैं।

एक सैनिक हाथमें शस्त्र लेकर तोड़ने, अर्थात्, किसीका नाश करने जाता है।

एक कारीगर नक्शे बनाता है, नींवें खोदता है और फिर मनुष्योंके परिश्रमी हाथ किसानके लिये झोंपड़ा अथवा राजाके लिये महल खड़ा कर देते हैं।

तोड़नेसे बनाना अच्छा है, पर कभी-कभी तोड़ना भी आवश्यक हो जाता है।

और तुम बच्चो, तुम्हारी तो बांहें और हाथ खूब बलिष्ठ हैं; क्या तुम केवल निर्माण ही करोगे? कभी तोड़ोगे नहीं? और यदि कभी ऐसा किया तो किसे तोड़ोगे, किसका नाश करोगे?

दक्षिण भारतके हिंदुओंकी एक प्राचीन कथा है।

एक नवजात शिशु एक बार वृक्षोंके एक झुरमुटमें पड़ा पाया गया। तुम यह सोच सकते हो कि वह वहां पड़ा-पड़ा मर गया होगा, क्योंकि उसकी मां उसे वहां छोड़ गयी थी और उसे वापिस ले जानेका उसका कोई विचार नहीं था। जानते हो क्या हुआ? जिस वृक्षके नीचे वह पड़ा था, वह "हयूपैंइल" नामका एक विशेष प्रकारका वृक्ष था। उसके सुन्दर फूलोंसे मधुके समान मीठी बूंदें टप-टप उस नन्हें शिशुके मुंहमें गिरती रहीं और इस प्रकार उसका पालन होता रहा। अंतमें एक भली स्त्रीने उसे देखा, वह पासके शिव-मंदिरमें पूजा करनेके लिये आयी थी। उसका हृदय बच्चेको देखकर द्रवित हो उठा। उसे गोदमें लेकर वह घर आ गयी। क्योंकि उनका अपना कोई पुत्र नहीं था, उसके पतिने प्रसन्न हृदयसे बच्चेका स्वागत किया।

दोनों उस कुंजमें पड़े पाये गये अज्ञातकुलशील बालकका पालन-पोषण करने लगे। प्रारंभसे ही उनके पड़ोसी उनपर व्यंग्य करने लगे थे और कहते थे कि न जाने किस जातिके बच्चेको ये लोग उठा लाये हैं। इस डरसे कि उनके पड़ोसी इस बच्चेकी खातिर उनसे नाराज न हो जायं उन्होंने उसे एक पालनेमें डालकर पालनेको गोशालाकी छतसे लटका दिया।

और बच्चेकी रक्षाका भार वहां रहनेवाले एक पारिया कुटुम्बको सौंप दिया।

कुछ वर्ष बाद वह लड़का बड़ा हुआ। शरीरके साथ-साथ उसकी मानसिक शक्तियोंकी भी वृद्धि हुई। अब उसने अपने दयालु पालन-कर्त्ताओंसे विदा ली और अकेला यात्राके लिये निकल पड़ा। कुछ समयतक चल चुकनेके बाद वह एक ताड़के वृक्षके नीचे सुस्तानेके लिये लेट गया। पेड़ धूपसे उसकी रक्षा करने लगा मानों वह भी उसे उस स्त्रीके समान ही प्यार करता हो जो उसे वृक्षोंके झुरमुटमेंसे उठा लायी थी। यह विश्वास करना कठिन तो है कि ताड़का पेड़ जिसका तना इतना लंबा होता है किसीको अपने पत्तोंसे सारे दिन छाया दे सकता है, पर कहानीसे हमें यही पता चलता है कि सारे समय उसकी छाया निश्चल रही और जबतक वह लड़का सोता रहा उसे ठंडक पहुंचाती रही।

यह सब क्यों और कैसे हुआ?

जन्मसे ही बच्चेकी इस सुरक्षाका क्या कारण था और ताड़के पेड़ने भी धूपसे उसका बचाव क्यों किया? क्योंकि उसका जीवन मूल्यवान् था। उस बच्चेको एक दिन तिरुवल्लुवर नामक प्रसिद्ध तामिल कवि, "कुरल" की मधुर कविताओंका रचयिता बनना था।

उन वस्तुओं और उन व्यक्तियोंकी जो संसारके लिये संदेश लाते हैं रक्षा होनी ही चाहिये।

हमको बलिष्ठ बाहु पाकर प्रसन्न होना चाहिये क्योंकि उनकी शक्तिसे हम रोग और मृत्युसे उन सबकी रक्षा कर सकते हैं, जो सत्य, शिव और सुन्दर हैं।

इन्हींकी रक्षा करनेके लिये हमें कभी-कभी लड़ना तथा नाश करना पड़ता है।

*
**

तिरुवल्लुवर लोगोंको अपने अमृतवचनोंका आस्वादन ही नहीं कराते थे वरन् वे लड़ना और मारना भी जानते थे। उन्होंने कावेरीपकम गांवके दैत्यको मारा था।

कावेरीपकममें एक किसान रहता था। उसके पास एक हजार पशु और अन्नके कई विस्तृत खेत थे। पर इनके आस-पास एक दैत्यका बड़ा डर रहता था। खड़ी फसलको वह जड़ समेत उखाड़ देता; पशुओं और मनुष्योंकी हत्या कर देता। कावेरीपकमके निवासियोंके हृदय इससे बहुत विक्षुब्ध हो उठे थे।

उस धनी किसानने घोषणा की : "जो वीर हमें इस दैत्यके अत्याचारसे मुक्त कर देगा उसे मैं एक मकान, खेत तथा बहुत-सा धन दूंगा।"

बहुत समयतक कोई वीर आगे नहीं बढ़ा। किसान तब पर्वतवासी मुनियोंके पास गया और उनसे उसने राक्षससे छुटकारा पानेका उपाय पूछा।

पर्वतवासी मुनि बोले : "तिरुवल्लुवरके पास जाओ।"

इस प्रकार वह किसान इस युवक कविके पास आया और उनसे सहायता-के लिये प्रार्थना की। उन्होंने कुछ राख अपनी हथेलीपर ली और उस-पर पांच पवित्र अक्षर लिखे, फिर मंत्र पढ़कर वह राख ऊपर हवामें उड़ा दी। उन अक्षरों और मंत्रोंकी शक्तिका उस दैत्यपर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह मर गया। कावेरीपकमके लोग इससे बहुत प्रसन्न हुए।

कुछ वर्ष बाद तिरुवल्लुवर मदुरा शहर गये। बहुत-से लोग उनकी सुन्दर कविताको सुननेके लिये वहां एकत्र हुए। वृक्षोंके कुंजमें पाये गये बच्चेद्वारा रचित इन पदोंको सुनकर वे मुग्ध हो गये :

"भला बननेसे बढ़कर और कोई वस्तु इस संसारमें मिलनी अत्यन्त कठिन है।"

वहां पास ही खिले कमलोंवाले एक तालाबके किनारे चौकीपर विद्वान् कवियोंकी एक टोली बैठी थी। ये लोग एक नीच जातिवाले कविको चौकीपर अपने साथ स्थान नहीं देना चाहते थे। प्रश्न-पर-प्रश्न करके वे उन्हें भ्रममें डालने तथा उनकी भूलें पकड़नेकी कोशिश कर रहे थे। अन्तमें उन्होंने तिरुवल्लुवरसे कहा : "ओ पारिया, अपनी कविताकी पुस्तक तू इस चौकीपर रख दे। यदि यह सचमुच ही सुन्दर साहित्यिक कृति हुई तो यह चौकी "कुरल"के अतिरिक्त और किसीको अपने ऊपर स्थान नहीं देगी।"

तिरुवल्लुवरने अपनी पुस्तक पानीके समीपवाली उस चौकीपर रख दी। कहानीमें आगे आता है कि पुस्तकका उसपर रखा जाना था कि वह इतनी छोटी हो गयी कि उसपर केवल उस पुस्तकको ही स्थान मिल सका और मदुराके वे अभिमानी और ईर्षालु कवि दूसरी ओर तालाबके जलमें गिर पड़े। हां, वे उनंचास द्वेषी तालाबमें कमलोंके मध्यमें जा पड़े। लज्जित मुख, भीगे शरीर लिये वे बाहर निकले। उस दिनसे तामिल भाषा-भाषी "कुरल" से बड़ा प्रेम करने लगे हैं।

*
**

बच्चो, कावेरीपकमके राक्षसके मारे जानेसे क्या तुम्हें दुःख हुआ है?

और मदुराके वे उनंचास शरारती कवि जो पानीमें गिर पड़े थे यह क्या तुम्हें बुरा लगा है ?

इस संसारमें भली वस्तुएं भी हैं और बुरी भी। हमें भली वस्तुओंसे तो प्रेम करना चाहिये, उनकी रक्षा करनी चाहिये और बुरी वस्तुओंसे लड़ना तथा उनका नाश करना चाहिये।

इस भले कविकी तरह सभी बुद्धिमान् लोग ऐसा करना जानते हैं और कर भी सकते हैं। वे जितने अधिक बुद्धिमान होंगे उतनी ही अच्छी तरह यह कार्य कर सकेंगे। छोटे बच्चे, जिनकी बुद्धि अभी उतनी विकसित नहीं हुई है और उतना बल भी नहीं रखते, उनका अनुकरण करके अपना साहस बढ़ा सकते हैं।

तिरुवल्लुवरकी बहन 'अव्वई'ने अपने भाईका इसी प्रकारका अनुकरण किया था।

एक दिन वह उराइयूर गांवकी एक छोटी-सी गलीमें जमीनपर बैठी थी। वहांसे तीन व्यक्ति घूमते हुए निकले। एक राजा था और दो कवि। जब राजा आया तो उसने एक घुटना टेककर उसके प्रति अपना सम्मान प्रदर्शित किया। अब पहला कवि गुजरा तो उसके सम्मानार्थ उसने अपना दूसरा घुटना झुकाया। पर जब दूसरा कवि उसके समीप पहुंचा तो उसने अपनी दोनों टांगें फैलाकर उसका रास्ता ही रोक दिया।

अव्वईका यह व्यवहार देखनेमें तो अशिष्ट था, पर वह अपने उत्तरदायित्वको भली-भांति समझती थी। वास्तवमें दूसरा कवि एक ढोंगी मनुष्य था। उसमें प्रतिभा तो कुछ थी नहीं, वह कोरा प्रदर्शन ही करता था।

उस कविको इससे बड़ी खीज हुई और उसने अव्वईसे उसके इस बर्त्तावका कारण पूछा।

"एक ऐसे पदकी रचना करो जिसमें "विवेक" शब्द तीन बार आये," अव्वईने उत्तर दिया।

यह देखकर कि वहां बहुतसे लोग इकट्ठे हो गये हैं, कविने भी सोचा कि यह विद्वत्ता दिखानेका अच्छा अवसर है। उसने बहुतेरा प्रयत्न किया पर दो बारसे अधिक वह किसी प्रकार भी उस शब्दको अपनी कवितामें न ला सका।

अव्वईने व्यंग्य किया : "तुम्हारे उस अन्तिम "विवेक"का क्या हुआ जो अभी बाकी बचा है और जिसे तुम्हारी कवितामें भी स्थान नहीं मिला ?" इस प्रकार उसने ढोंगीको लज्जित किया।

क्या तुम यह सोचते हो कि अव्वईने अपने इस अशिष्ट व्यवहारसे

प्रसन्नता अनुभव की थी ? नहीं, तनिक भी नहीं। पर ढोंग उसको सम्मानयोग्य प्रतीत नहीं हुआ। वह इस बातकी विवेचना कर सकती थी कि किसका आदर होना चाहिये और किसका नहीं। वह कहती थी : "श्रेष्ठ पुरुष उस हंसकी तरह हैं, जो सदा खिले कमलोंसे युक्त झीलकी ओर जाता है, सदा भली वस्तुकी ओर झुकता है। पर दुष्टप्रकृतिके लोग सदा बुराईकी ही खोज करते हैं, जैसे गिद्ध दुर्गन्धद्वारा आकर्षित होकर सड़े-गले मुर्दोंपर झपटता है।"

संसारके सब देशोंके बालको, वे कौन-सी बुरी वस्तुएं हैं जिनके विरुद्ध तुम्हें लड़ाई करनी सीखनी चाहिये ? किन वस्तुओंका तुम्हें नाश करना चाहिये ? किन वस्तुओंपर तुम्हें अधिकार स्थापित कर लेना चाहिये ? उन सब वस्तुओंपर जो मनुष्यके जीवन या उसकी उन्नतिके लिये हानिकारक हैं, जो उसे दुर्बल बनाती हैं, जो उसे अधोगति या दुःखकी ओर ले जाती हैं।

वेगवती नदियोंके ऊपर पुल और बाढ़को रोकनेके लिये बांध बनाकर मनुष्यको पानीके दुर्दाम वेगको अपने अधीन करना चाहिये।

उसे ऐसे मजबूत जहाज बनाने चाहिये जो हवा और लहरोंकी प्रचण्डताका सामना कर सकें।

दलदलवाली भूमिके घातक कीचड़-पानीको निकालना या सुखा देना चाहिये और इस प्रकार उसकी सीलमें जो ज्वररूपी दैत्य रहता है उसका नाश कर देना चाहिये।

जहां-जहां जंगली जानवरोंका डर है वहां-वहां उनसे लड़ाई ठानकर उनका नाश कर देना चाहिये।

ऐसे होशियार डाक्टर पैदा होने चाहिये जो सब जगहसे दुःख-दर्द और बीमारीको भगा दें।

मनुष्यकी भूखके सबसे बड़े कारण — गरीबीको — जीतनेका प्रयत्न करना चाहिये। यह भूख ही उन माताओंको रुलाती है जिनके बच्चोंको रोटीतक नसीब नहीं होती।

सबके जीवनको दुःखमय बनानेवाली दुष्टता, ईर्ष्या और अन्यायका उसे नाश करना चाहिये।

*
**

इसके विपरीत वे कौन-सी वस्तुएं हैं जिनके साथ मनुष्यको प्रेम करना चाहिये, जिनकी रक्षा की जानी चाहिये ? वे वस्तुएं जो उसे जीवित रखती

हैं, उसे अधिक भला बनाती हैं तथा उसे शक्ति एवं आनन्द प्रदान करती हैं।

उसे संसारमें आनेवाले प्रत्येक बच्चेके अमूल्य जीवनकी रक्षा करनी चाहिये।

उसे लाभकारी वृक्षोंकी रक्षा करनी चाहिये; ऐसे फूल और पौधे लगाने चाहिये जो उसे आहार और आनन्द प्रदान करते हैं।

ऐसे मकान बनाने चाहिये जो मजबूत, स्वास्थ्यप्रद और खुले हों।

पवित्र देवालयों, मूर्त्तियों, चित्रों, बर्त्तनों, कसीदेके कामों, सुमधुर गीतों और ललित कविताओंकी बड़ी सावधानीसे रक्षा की जानी चाहिये। संक्षेप-में उन सब चीजोंकी रक्षा की जानी चाहिये जो सुन्दर होनेके कारण मनुष्यके आनन्दकी वृद्धि करती हैं।

भारतवर्ष और दूसरे देशोंके बच्चो, सबसे बड़ी बात तो यह है कि मनुष्यको उन हृदयोंकी रक्षा करनी चाहिये जो प्रेम करते हैं, उस बुद्धिकी रक्षा करनी चाहिये जो सत्यका चिंतन करती है, उन हाथोंकी रक्षा करनी चाहिये जो सच्चे और न्याययुक्त काम करते हैं।

परिशिष्ट

"सुन्दर कहानियां" के पहले संस्करणोंमें अप्रकाशित कहानियां

१२

दाता

राजा रन्तिदेवने घर-बार छोड़ दिया और जंगलमें रहने लगे। उन्होंने अपना धन-धान्य गरीबोंमें बांट दिया था और जंगलमें सीधा-सादा जीवन बिता रहे थे। उनके पास अपने और अपने परिवारके लिये बस उतना ही था जितना जीवन-निर्वाहके लिये जरूरी था।

एक बार अड़तालीस घंटेके उपवासके बाद उनके लिये दूध-भात पकाया गया। एक गरीब ब्राह्मण उनकी झोंपड़ीके दरवाजेपर आया और उनसे खाना मांगा। रन्तिदेवने आधा भात उसे दे दिया, उसके बाद ही एक शूद्र सहायताकी मांग करता हुआ आ पहुंचा और रन्तिदेवने बचे हुए भातमेंसे आधा उसे दे दिया।

अब एक कुत्तेका भौंकना सुनायी दिया। गरीब जानवर बहुत भूखा मालूम होता था। रन्तिदेवने बाकी भात उसे दे दिया। अन्तमें राजाके दरवाजेपर सहायता मांगता हुआ एक चांडाल आ पहुंचा। रन्तिदेवने दूध और शक्कर उसे देकर अपने-आप उपवास किया।

अब आये चार देवता और उन्होंने कहा: "रन्तिदेव, तुमने हम चारोंको भोजन दिया था क्योंकि हम ही ब्राह्मण, शूद्र, चाण्डाल और कुत्तेका रूप धारण करके आये थे। हम तुम्हारी प्रेम-भरी भावनाकी सराहना करते हैं।"

इस तरह एक सद्हृदय सभी मनुष्योंके साथ, यहांतक कि पशुओंके साथ भी ऐसे व्यवहार करता है मानों वे सब एक ही परिवारके, एक ही मानवजातिके सदस्य हों।

***

क्या हमें हर रोज ऐसे लोग नहीं मिलते जो हमसे कम जानते हैं? बहुत बार हम उन्हें भोजन, वस्त्र, व्यायाम, व्यापार और आमोद-प्रमोदके बारेमें उपयोगी बातें बता सकते हैं। जैसे भूखेको रोटी देना हमारा कर्तव्य होता है उसी तरह इन्हें ज्ञान देना भी हमारा कर्तव्य है। अज्ञानी अपने-आपको नुकसान पहुंचाता है, वह अपने चारों ओरके लोगोंको भी नुकसान

पहुंचाता है जैसे बुरे बंसीवालेने किया था। तुमने यह कहानी नहीं सुनी ?

एक ब्राह्मण किसी देहातमें गया। वहां एक पीपलके पेड़से आती आवाजने उसे चौंका दिया। उस आवाजने चार बार कहा : "इस तालाबमें मत नहाओ, संध्या-वन्दन मत करो, खाना मत खाओ और यहांसे जाओ मत।"

ब्राह्मणने कहा, "तुम कौन हो जो मुझे ऐसे निर्दोष काम करनेसे मना कर रहे हो।" पीपलके पेड़से आवाज आयी : "मैं ब्रह्मराक्षस हूं। पिछले जन्ममें मैं ब्राह्मण था और संगीतके बारेमें सब कुछ जानता था। लेकिन मैं अपनी विद्या औरोंको देनेसे कतराता था। मैं अपना ज्ञान अपने अन्दर ही छिपाये रहता था। इसीलिये मुझे ब्रह्मराक्षस बनना पड़ा और हर रोज मुझे एक आदमीको नाद स्वरम् बजाते हुए सुनना पड़ता है और मैं बता नहीं सकता कि वह कितनी बुरी तरह नाद स्वरम् बजाता है। सचमुच भयंकर स्थिति होती है वह। कितनी इच्छा होती है कि बाहर निकलकर उसके हाथसे नादस्वरम् छीन लूं और उसे फूंक मारना और उंगलियां चलाना सिखाऊं! लेकिन यह संभव नहीं है और मुझे उससे भयंकर राग सुनने पड़ते हैं।"

यहां पूरी कहानी सुनानेका अवसर नहीं है। हां, एक उपाय निकल आया और तकलीफमेंसे छुट्टी हो गयी। लेकिन देखो, अपने आस-पासके लोगोंके बुरे काम, बुरे गान या बुरी कलासे कितनी तकलीफ हो सकती है।

*
**

अगर कोई भूखा है तो उसे किस चीजसे मदद मिल सकती है? भोजनसे।

अगर कोई प्यासा है तो उसे कौन-सी चीज सहायता दे सकती है? पानी।

अगर कोई काम, कला या संगीतसे अनभिज्ञ है तो उसे किस चीजसे मदद मिल सकती है? ज्ञानसे।

भूखेको रोटी, प्यासेको पानी और अज्ञानीको ज्ञान देना अच्छा है।

पाण्डुके पांचों पुत्र, वीर पाण्डव एक ऐसे महलमें ठहराये गये जो पहली नजरमें आरामदेह और सुन्दर लगता था। लेकिन वह उनके शत्रु पुरोचनने बनवाया था। इसकी दीवारें, फर्श आदि लाखके बने थे। विचार यह

था कि जब यह लोग सो रहे हों तो मकानमें आग लगा दी जाये और उन पांचोंसे छुटकारा पाया जाय जिनसे वह घृणा करता था।

यह चालाकी-भरी बात थी। उसने अपने बुरे उद्देश्यके लिये अपनी मकान बनानेकी कला और षड़यंत्र रचनेकी बुद्धिका उपयोग किया।

एक दिन उस महलमें एक आदमी आया जो खान खोदनेमें होशियार (खनिक) था। उसने चुपके-से पांडवोंसे कहा: "आपके एक मित्रने मुझे भेजा है ताकि मैं आपकी सेवा कर सकूं। मैं एक खनिक हूं। राजकुमार, मैं जानता हूं कि आपका शत्रु, पुरोचन, आपको जलाकर जिन्दा ही भस्म कर देना चाहता है।"

तब सबसे बड़े भाई, युधिष्ठिरने कहा: "अपनी खोदनेकी विद्याका उपयोग करके एक ऐसी सुरंग बना दो मित्र, जिसमेंसे होकर बाहर जाया जा सके। यहां दरवाजेपर चाहे सन्तरी लगे हों पर तुम्हारी सुरंग हमें यहांसे सुरक्षित रूपसे बाहर कर दे।"

खनिकने लाक्षा गृहके बीचमें ही सुरंग खोदनी शुरू की। जब कभी पुरोचन मकान देखने आता तो वह सुरंगके मुंहको तख्तों और कालीनोंसे ढका पाता। इस तरह धोखेबाज आदमी धोखा खा गया।

आखिर उन पांचों राजकुमारोंको सूचना दी गयी कि सुरंग तैयार है और इस मकानसे जंगलमें एक सुन्दर स्थानपर निकलती है।

एक रात राजकुमारोंने लाक्षा गृहमें आग लगा दी और अपनी मां, कुन्तीको लेकर सुरंगमेंसे होकर निकल पड़े। रास्ता अंधेरा पर सुरक्षित था। जब बलवान् भीमने देखा कि उसके साथी काफ़ी तेज नहीं चल पा रहे तो उसने मांको कंधेपर बिठाया, दो भाइयोंको भुजाओंमें और दोको कमरपर लिया और हवाकी गतिसे दौड़ पड़ा। उसे रोकना असंभव था। वे सब जलकर मरनेसे बच गये।

पुरोचनकी दुष्टताको खनिककी बुद्धिने हरा दिया। खनिकने अपनी कलाका अपने लिये खजाने खोदनेमें उपयोग नहीं किया। उसने दूसरोंके लिये सुरंग खोदी। उसने अपने ज्ञानसे दूसरोंकी मदद की। उसने अपने विज्ञानमें हिस्सा बंटाया।

*
**

दुनियाके बड़े-से-बड़े आदमी भी अपने आपमें सब कुछ नहीं जानते। हमें एक-दूसरेसे सीखना चाहिये, आदमीको आदमीसे, राष्ट्रको राष्ट्रसे, एक देशवालोंको दूसरे देशवालोंसे और हर मनुष्यको, हर जातिको जो वह

जानता है वह चीज दूसरोंको सिखानेमें खुशी होनी चाहिये।

पश्चिमके लोगोंने पूरबवालोंको भौतिक विज्ञान, यांत्रिकी, अर्थशास्त्र आदि विद्याएं दीं।

पूरबवालोंने हमेशा पश्चिमको दर्शन, नीति आदिका ज्ञान दिया।

भारतने औरोंको चारों वेदोंका ज्ञान दिया, बुद्धकी वाणी और अपनी धार्मिक पुस्तकोंका ज्ञान दिया।

एक बच्चा भी ज्ञान दे सकता है। एक बच्चा दूसरे बच्चेको क ख ग सिखा सकता है। एक बच्चा दूसरेको हल्के हिसाब सिखा सकता है, पूरब, पच्छिम, उत्तर, दक्खिनका परिचय दे सकता है, गांठ बांधना, कोई खेल खेलना, बीज बोना आदि सिखा सकता है।

हम सब ही दाता बन सकते हैं। एक पवित्र पुस्तकमें कहा गया है: "लेनेकी अपेक्षा देना ज्यादा धन्य है।"

१३

ज्ञानकी विजय

महर्षि भृगु रोशनीसे चमचमाते कैलाशपर विराजमान थे। भरद्वाजने उनसे कुछ प्रश्न पूछे:

"इस जगत्को किसने बनाया?

आकाश कितना विस्तृत है?

किसने जल, अग्नि, पवन और धरतीको जन्म दिया?

जीवन क्या है?

अच्छा या शुभ क्या है?

इस जगत्के परे क्या है?"

और ऐसे ही बहुतेरे प्रश्न पूछे। प्रश्न महान् थे और एक महर्षि ही उनके उत्तर दे सकता था।

लेकिन भरद्वाजमें पूछनेकी भावना थी, एक ऐसे आदमीकी भावना जो पूछता जाता है, पूछता जाता है और कभी संतुष्ट नहीं होता।

बच्चा प्रश्न करता है। वह हमेशा पूछता है: "यह क्या है? वह क्या है? यह कैसे बना? यह कैसे चलता है? बिजली क्यों कौंधती

है? ज्वार-भाटा क्यों आता है? सोना कहांसे आता है? और कोयला? और लोहा? पुस्तकें कैसे छपती हैं? ..." और ऐसे ही अनेकानेक प्रश्न।

बच्चे और आदमी पूछते हैं। वे बताते भी हैं। जब हम कोई बात जानते हैं तो प्रश्नोंके उत्तर दे सकते हैं। हम सिखा सकते हैं, हम ज्ञानका प्रसार कर सकते हैं।

हम क्या सीखें? क्या सिखायें? क्या जो कुछ, जब कभी हुआ है वह सब सीखनेकी कोशिश करें? क्या हम वह सब सीखनेकी कोशिश करें जो मनुष्यकी वाणीसे निकलता है?

महाभारतके काव्यमें पाण्डवों और दूसरे योद्धाओंके बाणोंके अनेक नाम आते हैं जैसे: शर, बाण, इषु, सायक, विशिख, नाराच, रोप, अंजिलिका, सिलीमुख आदि। हमें इन सबको सीखने और याद करनेकी जरूरत नहीं। ऐसी ही और भी बहुत-सी चीजें हैं जिन्हें याद रखनेकी जरूरत नहीं।

हम समाचारोंकी बात करते हैं: हम जहाजोंके नष्ट होनेकी, हत्या, चोरी, डकैती, लड़ाई-झगड़े, मुकदमे, युद्ध, अग्निकाण्ड, नाच-गान, विवाह-शादी और इसी तरहकी सैंकड़ों चीजोंकी बातें कुछ मिनटोंमें पढ़ते और साथ-ही-साथ भूल जाते हैं।

हम कुरान खोलते हैं तो एक अध्यायपर लिखा है "समाचार" और हमें ख्याल आता है जहाजोंकी बरबादी, हत्या ... लेकिन ठहरो!

हजरत मोहम्मद ऐसे हल्के मनवाले आदमी न थे कि उन्हें बुरी बातोंमें या ऐसी गप्पोंमें मजा आता जिनसे हम कोई उच्च प्रकारकी शिक्षा न पा सकें। आओ इस "समाचार"के अध्यायका शुरूका भाग पढ़ें:

शुरू साथ नाम अल्लाहके जो कृपालु और दयालु हैं।
वे किस बारेमें पूछते हैं?
महान् समाचारके बारेमें।
वे उसके बारेमें बहस कर रहे हैं?
नहीं, पर वे जानना चाहते हैं।
हां, वे जरूर जानेंगे।
"क्या हमने (खुदाने) धरतीको बिस्तर नहीं बनाया?
और पहाड़ोंको तम्बूकी खूंटियां नहीं बनाया?
और तुम्हें जोड़ोंमें नहीं बनाया?
और तुम्हें आरामके लिये नहीं सुलाया?
और रातका लबादा बनाया?

और दिनको रोटी कमानेके लिये बनाया ?
और तुम्हारे ऊपर सात आकाश बनाये ?
और उनमें एक जलता चिराग रखा ?
और बादलोंको निचोड़कर नीचे पानी भेजा
ताकि अनाज और औषधियां पैदा हों
और बड़े-बड़े पेड़ोंवाले घने बगीचे बनाये ?"

इस तरह पैगम्बरने लोगोंके हृदय और मन आलोकित किये, उन्हें बड़ी चीजोंके बारेमें सोचना सिखाया, ऐसी चीजोंके बारेमें जिनमें चिरस्थायी सौन्दर्य है, जो मनुष्यको यह सिखाती हैं कि जीवनका यह संसार कितना सुन्दर है।

यहां हम इस निष्कर्षपर पहुंचते हैं कि कुछ शब्द और अमुक प्रकारके समाचार ऐसे हैं जो कहने-सुनने लायक नहीं। दूसरी ओर, इसके विपरीत, ऐसी चीजें हैं जिन्हें ढूंढनेमें चाहे जितना कष्ट उठाना पड़े, फिर भी वे कहने-सुनने लायक हैं।

आदमीकी शक्ति उसके मनमें है। उसके अंग, हाथ-पांव, उंगलियां, चतुर अंगूठा — ये सब मनके गुलाम हैं जो सोचता और योजना बनाता है।

और जबसे मानवजाति इस धरतीपर बसी है, उसने प्रकृतिपर कितनी बड़ी-बड़ी विजयें प्राप्त की हैं! हम इसका एक चित्र रामके समुद्र पार करनेकी कहानीमें पाते हैं। जब राम समुद्रके किनारे पहुंचे और उन्हें पता लगा कि उनकी पत्नी, सीता, समुद्र-पार लंकामें बंदी हैं तो उन्होंने समुद्र पार करनेकी ठानी। उनकी सेनामें भालू और बन्दर थे। ये किस तरह लहराते पानीको पार करते? रामका मन गंभीर था, उनकी बुद्धि तीक्ष्ण थी और उनका हृदय साहसपूर्ण था।

पहले उन्होंने समुद्रसे मृदु शब्द कहे। उन्होंने कहा: "महान् सागर, मैं तुमसे निवेदन करता हूं, मेरी सेनाको पार हो जाने दो।"

उन्होंने तीन दिनतक उत्तरकी प्रतीक्षा की, लेकिन जब कोई उत्तर न मिला तो उन्होंने अपने भाईसे कहा: "लक्ष्मण, मेरा धनुष-बाण लाना। मैंने इस सागरसे बात करके अपने शब्द गंवाये जैसे कोई रेतमें बोकर अपने अन्नके दाने गंवाए।"

भगवान् रामने एक बाण छोड़ा। समुद्रको एक मर्मान्तिक पीड़ा हो चली और सभी जलचर घबरा गये। तब सागर ब्राह्मणके रूपमें भगवान्के आगे प्रकट हुआ। उसके हाथोंमें एक सोनेका थाल था जिसमें नाना प्रकारके उपहार थे।

सागरने रामके चरण पकड़कर कहा : "भगवन्, मेरा अपराध क्षमा हो। मैं भी अपने साथी पवन, धरती और अग्निकी तरह जड़ और मन्दमति हूं, जो केवल शक्तिकी भाषा ही समझते हैं। मैंने आपके शब्दोंका उत्तर न दिया। आजसे पहले कोई वीर मुझसे अपनी आज्ञा नहीं मनवा सका। आप मेरे स्वामी हैं। आपको जो योग्य लगे वही कीजिये।"

भगवान् राम मुस्कराये और बोले: "अच्छा बतलाओ, मेरी सेना तुम्हारी लहरों और तूफानोंके राजको कैसे पार कर सकती है?"

"आपके सैनिकोंद्वारा डाली गयी चट्टानों और पत्थरोंको मेरी लहरें अपनी छातीपर उठाये रहेंगी और इस तरह भारतसे लंकातक एक पुल बन जायगा।"

रामने अपने सैनिकोंसे कहा: "चलो पुल बनाया जाय।" वे रामका जयजयकार कर उठे।

उन्होंने बहुत-से पेड़ उखाड़े, चट्टानें और पहाड़ियां तोड़ीं और उन्हें पुल बनानेमें होशियार नल-नीलके पास ले आये। नल-नीलने लकड़ी पत्थरों-को बांधा ताकि वे समुद्रकी तहपर तैर सकें। रामकी सेना इस पुलको पार कर गयी।

राम एक पहाड़ीपर बैठकर सेनाके समुद्र पार करनेका दृश्य देखते रहे।

जैसे रामने सागरकी आत्माको अपनी आज्ञा माननेके लिये बाधित किया उसी तरह मनुष्यका मन, मानवजातिका शिखर, समुद्रको जीत रहा है, इसके अतिरिक्त और भी बहुतेरी चीजें जीत रहा है। मनुष्यने पवन-पर विजय पायी है। वह उससे अपने जहाज और पनचक्कियां चलवाता है। वह बरफपर विजय पाता है, यात्री उत्तर ध्रुव और दक्षिण ध्रुव-तक जा चुके हैं और पहाड़ोंकी ऊंची-ऊंची चोटियोंपर चढ़ चुके हैं। उसने जंगली जानवरोंको जीता है। उन हिंस्र जानवरोंको मारा है जिनसे उसे और उसके बीवी-बच्चोंको खतरा था: सिंह, बाघ, भेड़िया, सांप, शार्क। अभी उसकी शक्ति समुद्रपर इतनी नहीं दिखायी देती, पर धरतीपर तो उसने काफी कुछ कर दिखाया है। जहां उसने खतरनाक जानवरोंको खतम कर दिया वहीं उपयोगी जानवरोंको — हाथी, घोड़ा, बैल आदिको — पाला भी है।

इन सब चीजोंपर भुजाओं और अस्त्रोंके द्वारा विजय पायी गयी है। और भुजाएं और अस्त्र मनके सेवक हैं।

मनुष्य ज्ञानके द्वारा जीतता है। वह ज्ञानको जीतता है: वह पूछता है और फिर-फिर पूछता है, और जबतक सचमुच जान न ले लगा ही रहता है।

इतिहास कई लोगोंको विजेताके रूपमें स्वीकार करता है, जैसे: सिकन्दर

जिसने एशिया और मिस्रको जीता; रोमका जूलियस सीजर जिसने उस प्रदेशको जीता जिसे अब फ्रांस कहते हैं, वह अपनी सेनाएं समुद्र पार बरतानियाको जीतनेके लिये ले गया था; बाबर जिसने उत्तर भारतपर विजय पायी; नेपोलियन जिसने यूरोपके एक बहुत बड़े भागको अपना लिया।

लेकिन विजय प्राप्त करने और विजेता बननेके और भी उपाय हैं।

तुम भी विजेता बन सकते हो। तुम्हारे चारों ओर दुनियामें ऐसी चीजें हैं जिन्हें अभीतक नहीं जाना और सीखा गया है। पूछो, खोजो, सीखो और विजयी बनो। तब तुम अपने-आपको विजेता कह सकोगे।

१४

विनम्रता

जापानी मकानके सामनेके दरवाजेपर यह कौन आ रहा है?

यह फूलोंका कलाकार है। यह फूलोंको सजानेकी कला जानता है।

गृह-स्वामी एक थाली लिये आ रहा है जिसमें फूल रखे हैं, साथ ही एक कैंची, एक छोटी-सी आरी और एक सुन्दर गुलदान भी है।

"महाशय," वह कहता है, "मैं इस सुन्दर गुलदानके योग्य गुलदस्ता न बना सकूंगा।"

"मुझे विश्वास है कि आप बना सकेंगे," बड़ी सभ्यतासे कहकर गृहस्वामी कमरेसे बाहर निकल जाता है।

अब कलाकार अकेला है। वह काटता, तराशता, मोड़ता, बांधता जाता है और थोड़ी देरके बाद एक सुन्दर-सा गुलदस्ता गुलदानमें दिखायी देता है। सचमुच आंखोंके लिये देखने लायक चीज बनी है!

गृहस्वामी अपने मित्रके साथ कमरेमें आता है; कलाकार एक ओर खड़ा होकर धीरे-से ओठों-ही-ओठोंमें कहता है: "मेरा गुलदस्ता कुछ बन नहीं पाया। इसे हटा दीजिये।"

"नहीं," गृहस्वामी उत्तर देता है, "अच्छा है।"

गुलदस्तेके पास, मेजपर कलाकारने कैंची रख दी है जिसका मतलब यह है कि अगर किसीको गुलदस्तेमें कोई दोष दिखायी दे, अगर कोई ऐसी

चीज हो जो आंखोंको नहीं भाती तो वह उसे काटकर ठीक कर दे।

कलाकारने सुन्दर काम किया है, लेकिन वह उसका गुणगान नहीं करता। वह स्वीकार करता है उसमें भूलें हो सकती हैं। वह विनयशील है।

शायद जापानी कलाकार वास्तवमें यह सोचता हो कि उसका काम प्रशंसनीय है। मुझे उसके विचारोंका पता नहीं। लेकिन कम-से-कम वह घमण्ड तो नहीं छांटता और उसका व्यवहार अच्छा लगता है।

दूसरी ओर, हम घमण्डी लोगोंपर हंसते हैं।

दमिश्कका खलीफा, सुलैमान, घमण्डी था। एक शुक्रवारको वह गरम पानीसे स्नान करके आया, हरे-हरे कपड़े पहने और सिरपर हरा साफा बांधकर हरे बिस्तरपर बैठ गया। उसके कमरेमें कालीन भी हरा था। उसने आईना लेकर अपना मुंह देखा तो खुश होकर बोल पड़ा:

"हजरत मोहम्मद पैगम्बर थे, अबू बकर सत्यके निष्ठावान साक्षी थे। उमर सत्य और असत्यमें विवेक कर सकते थे, उस्मान विनयशील थे, अली वीर थे, मुआविया दयालु थे और यजीद धीर, अब्दुल मालिच एक अच्छे प्रशासक थे और वालिद एक बलवान स्वामी थे, पर मैं, मैं युवा और सुन्दर हूं।"

गुलदानमें फूल सुन्दर ढंगसे सजाये गये हैं और उन्हें देखकर हमारी आंखें खुश होती हैं। लेकिन यह बात हमें कहनी चाहिये, कलाकारको नहीं।

सुलैमान सुन्दर है। यह तो ठीक है कि यह जाननेमें कोई हर्ज नहीं, लेकिन हम उसकी शेखीपर हंस पड़ते हैं जब वह अपने-आपको आईनेमें देख-देखकर अपने-आपसे कहता है कि अपनी सुन्दरताके कारण वह सच्चे उमर और धीर यजीदसे बड़ा है।

*
* *

इससे भी बढ़कर अनर्गल है उस आदमीकी शेखी जो यह समझता था कि यह पृथ्वी उसकी महिमाके लिये काफी बड़ी नहीं है और उसे अन्य लोकोंमें जाना चाहिये।

कहानी यूं है।

ईरानका एक राजा कै कौस था जिसने बहुत-से युद्ध लड़े और जीते। वह पराजित देशोंको लूट-मारकर इतना धनी बन गया था कि उसने अलबर्ज नामक पहाड़ीपर दो नये महल बनवाये। वहां इतना चांदी-सोना भरा था कि रातको भी दिनका-सा प्रकाश रहता था।

कै कौस गर्वसे भर गया कि वही धरतीका सबसे बड़ा राजा है।

अब इबलीस (शैतान) ने राजाके हृदयमें भरे घमण्डको देखा तो उसे

अपने जालमें फंसानेका निश्चय कर लिया। उसने एक भूतको नौकरके वेशमें राजाको एक सुन्दर-सा गुलदस्ता भेंट करनेके लिये भेजा।

नौकरने राजाके सामने धरतीको चूमकर कहा: "राजन्, सारे संसारमें आप जैसा कोई राजा नहीं है। लेकिन अब भी एक दुनिया है जहां आपका हुक्म नहीं चलता और वह है सूरज, चांद और तारोंकी दुनिया। हे राजा, चिड़ियोंके पीछे-पीछे उड़ो और आकाशमें जा पहुंचो।"

"लेकिन मैं पंखोंके बिना कैसे उड़ सकता हूं?" राजाने पूछा।

"यह तो आपके बुद्धिमान् सलाहकार ही बता सकेंगे।"

अब राजा कै कौसने सभी ज्योतिषियों और पंडितोंको बुलाया और उनसे आकाशमें उड़नेका उपाय पूछा। उन्होंने एक योजना बनायी।

उन्होंने एक घोंसलेसे गरुड़के चार बच्चे पकड़वाए और उन्हें विशेष भोजन आदि देकर खूब बड़ा मजबूत बनाया।

अब एक लकड़ीका चौखटा बनाया गया। चारों खूंटोंपर एक-एक लकड़ी बांधी गयी और उसपर बकरेका मांस बांध दिया गया। चार लकड़ियों-पर मांसके चार टुकड़े बांधे गये और हर खूंटेके साथ एक-एक गरुड़ बांध दिया गया। इस चौखटेपर राजाका सिंहासन रख दिया गया और शराब-की सुराहीके साथ राजा उसपर आन बिराजे। गरुड़ मांसतक पहुंचनेके उपायमें ऊपर उड़े। लोगोंके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। उनके राजा सचमुच उड़ रहे थे। ऊपर, और ऊपर मांसके टुकड़े, गरुड़ और राजा उठते ही जा रहे थे; बादलोंसे भी ऊपर, चन्द्रमाके आस-पास। आखिर गरुड़ थक गये। उन्होंने पंख मारना छोड़ दिया और राजा अपनी सुराही और सिंहासन समेत चीनकी पहाड़ियोंमें जा गिरे। बेचारेकी हालत खराब थी। बेचारा राजा भूखा, प्यासा, घायल अकेला पड़ा था। उसके दूत इधर-उधर ढूंढते आये और उसे लेकर राजधानी लौटे।

राजाने जान लिया कि उसकी योजना कितनी बेवकूफीसे भरी थी, उसने कितना झूठा गर्व किया था। उसने निश्चय कर लिया कि अब अपने बूतेसे बाहर उड़ानें न भरेगा। वह राजकाजमें लग गया और इतनी अच्छी तरह काम संभाला कि प्रजासे तारीफ-ही-तारीफ मिलने लगी।

राजा शेखीके मीनारसे उतरकर विनयकी ठोस धरतीपर आ गया।

*
**

कभी-कभी हम ऐसे गर्वीले आदमीसे घृणा करते हैं जो केवल अपनी प्रशंसा ही नहीं करता, बल्कि खूब शेखी भी बघारता है। शेखी बघारने-

वालेको कोई पसन्द नहीं करता, यहांतक कि दूसरे शेखी बघारनेवाले भी उसे पसन्द नहीं करते।

भयंकर रावण रामका शत्रु था। रावणने सीता-हरणका घृणित काम किया था। इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं कि ऐसा राक्षस शेखी बघारा करे।

राम और लंकाके राक्षसोंके अन्तिम युद्धमें भगवान् राम अपने रथमें बैठे रावणके सामने आ गये। रावण भी अपने रथपर आरूढ़ था। आज द्वन्द्व-युद्ध होना था। रावणके राक्षस और रामके भालू-बन्दर दर्शक बनकर खड़े थे।

रावणने भयंकर निनाद करते हुए कहा: "राम, आज यह लड़ाई खतम हो जायगी। हां, तुम मैदानसे भागकर जान बचा लो तो और बात है। कमबख्त, आज मैं तुम्हें मौतके हाथोंमें सौंप दूंगा। याद रखो तुम्हें रावण-से पाला पड़ा है।"

राम शान्त भावसे मुस्कराये। वे जानते थे कि रावणका अन्त आ गया है। उन्होंने कहा: "हां, रावण, मैंने तुम्हारे बलके बारेमें सब कुछ सुन रखा है, अब मैं देखना चाहता हूं। मैं तुम्हें बता दूं कि इस दुनियामें तीन तरहके आदमी हैं। वे इन तीन पेड़ों जैसे होते हैं: ढाक, आम और रोटी-फलके पेड़। ढाकके फूल आते हैं—ये वे लोग हैं जो सिर्फ बोलते हैं। आममें फूल भी आते हैं और फल भी लगते हैं — ये वे लोग हैं जो बोलते भी हैं और काम भी करते हैं। और फिर है रोटी फल[1] जिसमें केवल फल आते हैं। ये वे हैं जो बोलते नहीं, सिर्फ करते हैं।"

राक्षस विवेक-भरे इन शब्दोंको सुनकर हंसा, लेकिन कुछ ही देरमें उसका मुंह हमेशाके लिये बन्द हो गया।

*
**

तुमने यहूदियोंके राजा महान् सुलैमानका नाम सुना होगा। बाइबलमें और दूसरी किताबोंमें उनकी महानताकी बहुत-सी कहानियां मिलती हैं। यहां बाइबलकी एक कहानी सुनो।

यह राजा बहुत अमीर था। उसका सिंहासन हाथी-दांतका था जिसपर सोनेका काम था। उसके थाली, कटोरे आदि सोनेके थे और महलमें

---

[1]कुछ-कुछ छोटे कटहल जैसा फल, इसे आगपर सेकनेसे डबल रोटीकी-सी गंध आती है।

चांदी ऐसे बिखरी थी जैसे यरूशलमकी सड़कोंपर पत्थर। व्यापारी उसके पास सोना, चांदी, हाथी-दांत, मोर, बन्दर, बढ़िया कपड़े, अस्त्र-शस्त्र, मसाले, घोड़े, खच्चर आदि लेकर आया करते थे। इस राजा सुलैमानने अपने पूर्वजों और अपने राष्ट्रके भगवान्‌के मानमें एक बहुत शानदार मन्दिर बनवाया।

अभी मन्दिर बना न था। अभी पहाड़ोंपर उसकी लकड़ीके लिये देवदारूके पेड़ उगाये जा रहे थे। इसी बीच सुलैमानने स्वप्न देखा कि भगवान् उसके सामने प्रकट होकर कह रहे हैं: "बोलो, तुम मुझसे क्या चाहते हो?"

सुलैमानका जवाब था: "मेरे पिता सच्चे और ईमानदार आदमी थे। मैं उनके सिंहासनपर आया हूं। मेरे सामने जो काम पड़ा है वह बहुत बड़ा है। मुझे लगता है कि मैं छोटा-सा बच्चा हूं। मैं अन्दर आना और बाहर जानातक नहीं जानता। मैं जिन लोगोंका राजा बना दिया गया हूं उनपर शासन करना मुझे नहीं आता, इसलिये मैं बुद्धिमानी चाहता हूं ताकि मैं भले-बुरेकी पहचान कर सकूं।"

और भगवान्‌ने कहा: "तुमने लंबा आयुष्य नहीं मांगा, धन-वैभव नहीं मांगा, समझदारी मांगी है और ऐसा हृदय मांगा है जो न्याय और अन्यायको अलग कर सके, इसलिये मैं तुम्हें एक बुद्धिमान् मन देता हूं ताकि समझदारीमें कोई तुम्हें मात न कर सके और साथ ही तुम्हें लंबा आयुष्य और धन भी मिलेगा।"

तुम देखोगे कि राजाने कितने विनम्र शब्द कहे: "मैं एक छोटा-सा बालक हूं।"

क्या हम सुलैमानकी इस नम्रता-भरी भाषाके कारण उनका मान कम करते हैं?

इसके विपरीत, उस महानताको देखकर सच्ची खुशी होती है जो नम्र भी हो।

*
**

मैं तुम्हें पैगम्बर मोहम्मदकी नम्रताकी तीन कहानियां सुनाऊंगी।

कहते हैं कि हजरत मोहम्मद हमेशा गधेपर बैठनेके लिये राजी हो जाते थे, जब कि गर्वीले लोग घोड़ेसे नीचे बात न करते थे। वे कभी-कभी अपने पीछे किसी और को भी बिठा लेते थे। वे कहा करते थे: मैं नौकरोंकी तरह खाने बैठता हूं और नौकरोंकी तरह खाता हूं, क्योंकि सचमुच मैं नौकर ही हूं।"

दूसरी कहानी। एक बार हजरत मोहम्मद एक सभामें गये जहां भीड़ ज्यादा थी और जगह कम। वे उकडूं बैठ गये।

वहां एक बद्दू अरब मौजूद था। वह हजरतको पहचानता था और उसे आश्चर्य हो रहा था कि वे बड़े लोगोंकी तरह मसनदपर क्यों नहीं बैठे।

उसने जरा तिरस्कार-भरी आवाजमें कहा: "बैठनेका यह तरीका है?" हजरतने जवाब दिया: "सचमुच, भगवान्ने मुझे एक गरीब गुलाम बनाया है, घमण्डी राजा नहीं।"

तीसरी कहानी। हजरत मोहम्मद कुरैशी कबीलेके एक सरदारसे बातें कर रहे थे। उस समय अब्दुल्ला नामक एक अंधा बीचमें टपक पड़ा। उसे मालूम न था कि यहां कोई और है। वह हजरतसे कुरान सुनानेके लिये आग्रह करने लगा। हजरतने उसे झिड़ककर चुप रहनेके लिये कहा।

लेकिन बादमें उन्हें अपने कड़े स्वभावके कारण बहुत बुरा लगा। और उस दिनसे वे अब्दुल्लाका बहुत मान करने लगे और उसे मानके पद भी दिये।

*
**

राजा और पैगम्बरकी कहानीके बाद अब एक अंग्रेज वैज्ञानिककी कहानी लें।

न्यूटनका जन्म १६४२ में हुआ था और मृत्यु १७२७ में। अपने लम्बे जीवनकालमें उन्होंने प्रकृतिका अध्ययन किया। उन्होंने हर चीजमें पायी जानेवाली आकर्षण-शक्तिका अध्ययन किया जिसे वे गुरुत्वाकर्षण कहते थे। उन्होंने पता लगाया कि सूर्य और चन्द्रमाके कारण ज्वार-भाटा कैसे आता है; कि सफेद रोशनी सचमुच उन सात रंगोंसे मिलकर बनती है जो इन्द्रधनुषमें दिखायी देते हैं। प्रकृतिकी विलक्षण पुस्तक और उसके आश्चर्यजनक कामोंको पढ़नेवाले इस विद्वान्की बुद्धिमत्ताकी सभी सराहना करते थे। एक बार एक महिलाने न्यूटनके आगे उनकी बुद्धि और उनकी विद्वत्ताकी सराहना की। न्यूटनने जवाब दिया:

"हाय! मैं तो सत्यके विशाल सागरके किनारे बैठा, शंख-सीपियां चुनता हुआ बालक हूं।"

सत्यके विशाल सागरसे न्यूटनका मतलब था प्रकृतिके नियम जिन्हें बहुत अधिक पढ़ा-लिखा विद्वान् भी बहुत कम ही जानता है। समुद्र-

किनारे बैठा बालक शंख, सीपियां इकट्ठी करता है, पर वह समुद्रको जितना बड़ा मानता है समुद्र उससे कितना अधिक बड़ा है ! और हमारे छोटे-मोटे विचारोंकी तुलनामें यह विश्व कितना अधिक बड़ा है !

क्या हम न्यूटनको छोटा मानते हैं क्योंकि उसने अपनी तुलना एक छोटे बच्चेसे की थी ? हरगिज नहीं। हम उसकी नम्रताके लिये उसका मान करते हैं।

*
**

बहुत वर्ष बीत चुके। एक प्रसिद्ध अभिनेत्री थी जो अपने संगीतके लिये काफी ख्याति पा चुकी थी। वह एक समारोहमें गयी जहां एक मधुर स्वरवाली छोटी लड़कीसे गानेके लिये कहा गया। लड़की जो गाना गाना चाहती थी उसमें दो आवाजोंकी जरूरत थी जिसमें लड़कीका मुख्य स्थान होता। छोटी बच्चीके साथ दूसरे स्थानपर गानेके लिये कोई तैयार न था। थोड़ी देर मौन रहा; गायकोंमेंसे कोई भी आगे न आया।

प्रसिद्ध अभिनेत्रीने कहा : "तुम चाहो तो मैं गा सकती हूं।"

और गाना शुरू हुआ। छोटी लड़कीकी आवाज स्पष्ट और ऊंची थी और अपने समयकी ख्यातनामा अभिनेत्री उसके पीछे-पीछे मद्धम स्वरमें गा रही थी और संगीतमें सुन्दर सामंजस्य आ गया था।

उस महिलाका विनयशील हृदय बहुत उदात्त था जो एक छोटी-सी बच्ची-का साथ देनेको तैयार हो गयी।

*
**

सन् १८४४ में 'कलकत्ता संस्कृत कॉलिज'में व्याकरण पढ़ानेवालेकी जरूरत थी। यह काम ईश्वरचन्द्र विद्यासागरको देनेकी बात चली। वे उन दिनों पचास रुपये मासिक पाते थे और नयी जगह नब्बे मासिक मिलते। लेकिन, नहीं, उन्हें अपने मित्र तर्कवाचस्पतिका ख्याल आया जो ज्यादा अच्छी तरह पढ़ा सकता था। उन्होंने अधिकारियोंसे यह बात कह दी और यह काम उसे मिल गया। विद्यासागर बहुत खुश हुए और पैदल चलकर उसके घर जा पहुंचे और उसे यह समाचार दिया।

तर्कवाचस्पति विद्यासागरके विनय और शीलसे बहुत प्रभावित हुआ और चिल्ला पड़ा : "तुम मनुष्य नहीं, मनुष्यके रूपमें देवता हो, विद्यासागर !"

*
**

और अब एक अहंकारी जुगनूकी बात सुनो।

एक आदमीने प्रचंड सूर्यकी ओर देखकर कहा : "कितना चमकदार है!"

"हम सब चमकदारोंकी ही तरह," एक आवाज आयी।

उसने चारों ओर देखा। एक झाड़ीकी छायामें एक छोटा-सा जुगनू दिखायी दिया।

"क्या यह तुम्हारी आवाज थी?"

"हां", जुगनूने कहा : "मैंने कहा सूर्य और मैं दोनों ही प्रकाशमान् हैं।"

"सूर्य और तुम, सचमुच!"

"हां, सूर्य, चंद्र, तारे और स्वयं मैं," जुगनूने बड़े आत्म-संतोषके साथ कहा।

***

इटलीमें चार आदमी एक पहाड़पर चढ़ रहे थे। चारों ईसाई साधु थे। आगे-आगे ईसामसीहके सेवक, संत फ्रांसिस, थे और उनके पीछे तीन और साधु थे। पहाड़ जंगलोंसे ढका हुआ था और चोटीपर एक खुली जगह थी। संत फ्रांसिस वहां जाकर प्रार्थना करना चाहते थे। उन्हें आशा थी कि वहां उन्हें दिव्य चीजोंका दर्शन होगा। संत बहुत प्रसिद्ध आदमी थे। बड़े-बड़े अमीर-उमरा और गरीब किसान उनका आदर करते थे।

दिन गरम था और रास्ता एकदम खड़ा। संत फ्रांसिस चलते-चलते बहुत थक गये थे। एक साथी किसी गांववालेके पास जा पहुंचा और संतकी सवारीके लिये एक गधा मांगा।

गांववाला एकदम राजी हो गया। संत गधेपर सवार हो गये। साधु उनके साथ-साथ चल रहे थे और गांववाला उनके पीछे-पीछे।

गांववालेने पूछा : "क्या आप ही भाई फ्रांसिस हैं?"

"हां", उन्होंने उत्तर दिया।

"तो फिर उतने अच्छे बननेकी कोशिश करो, जितना अच्छा तुम्हें माना जाता है ताकि लोग तुमपर श्रद्धा रख सकें।"

संत फ्रांसिसको गुस्सा नहीं आया। वे राजा और रंक सभीकी अच्छी सलाहको मान लेते थे। वे गधेपरसे उतर पड़े, उस ग्रामीणके पांव चूमे और उसे धन्यवाद दिया।

१५

परिवार

मराक्शमें एक यात्रीने देखा कि हर शाम जब दिनके भेड़ों और मेमनोंके झुंड इकट्ठे होते हैं तो सारे बिछुड़े हुए जानवर इधर-उधर ढूंढते दिखायी देते हैं। हर भेड़ अपने मेमनेको ढूंढती थी और हर मेमना अपनी मांको।

एक बंदरियाके कई बच्चे थे और वह उनसे प्यार करती थी, लेकिन उसका प्यार एक फुहारे जैसा था जो केवल अपने बच्चोंकी प्यास ही नहीं बुझाता था, बल्कि औरोंको भी लाभ पहुंचाता था। वह और बंदरोंके बच्चोंपर भी लाड़ किया करती थी। इतना ही नहीं, वह बिल्लीके बच्चों और कुत्तेके पिल्लोंको भी इकट्ठा कर लेती थी मानों वे उसीके बच्चे हों। वह अपने बच्चोंके साथ ही उन्हें भी खाना दिया करती थी।

मां-चिड़िया अंडोंको गरम रखनेके लिये उन्हें सेती है और बाप उसके लिये दाना चुगता फिरता है। अधिकतर चिड़ियोंमें यही रिवाज है। हां, दूध लानेवाले जानवरोंमें यह रिवाज है कि बाप प्रायः बच्चोंको मांकी निगरानीमें छोड़ देता है। लेकिन हमेशा यही बात नहीं होती। अफ्रीका-का गोरिल्ला अपनी मादा और बच्चोंके साथ परिवार बनाकर रहता है। बनमानुष भी यही करता है। बाप पेड़पर घोंसला-सा बना देता है जिस-में मां अपने बच्चोंको रख देती है और बाप रातके समय चीतेसे रक्षा करनेके लिये पहरा देता है।

जब हमारे जानवर-रिश्तेदार अपने बच्चोंके लिये इतना प्रेम दिखाते हैं और परिवारकी रक्षा करते हैं तो फिर इसमें आश्चर्यकी बात ही क्या है कि जंगली आदमी भी पति, पत्नी और बच्चोंके साथ परिवार बनाकर रहते थे।

मां बच्चेसे प्यार करना कब शुरू करती है? उसके जीवनके आरंभसे ही।

और बच्चा मांसे प्यार करना कब शुरू करता है? उसी समय नहीं, क्योंकि पहले तो उसे अनुभव करना, सोचना और क्रिया करना सोचना पड़ता है। तब वह मां-बापसे प्यार करना सीखता है। हमने सत्रह महीनेकी बच्चीकी कहानी सुनी है जो बापसे कुछ दिनके लिये बिछुड़ गयी थी। बापके लौटनेपर वह दौड़कर उसके पास गयी, उसपर हाथ फेरती रही और उसे अपने खिलौने उपहारमें दिये।

लोगोंको उपहार पाकर कितनी खुशी होती है! हम खलीफा मामूनके बारेमें पढ़ते हैं कि उन्होंने अपनी पत्नीको सोनेका कालीन दिया और एक बड़े बरतनमेंसे उसपर मोती लुढ़काये; वहां काम करनेवाली हर स्त्रीने एक-एक मोती ले लिया, फिर भी वहां चमकदार मोतियोंका एक ढेर बचा रहा।

और एक अच्छी मां अपने बच्चेको क्या उपहार देती है? वह देती है अच्छा स्वास्थ्य, सुडौल अंग, वाणी और ईमानदारीके लिये प्रेम। अगर मां बच्चेकी ओरसे लापरवाह हो तो उसका स्वास्थ्य बिगड़ जायगा, उसका शरीर टेढ़ा-मेढ़ा हो जायगा, वह अच्छे शब्द न बोलेगा और वह सद्-व्यवहार और सद्-विचार न सीख पायेगा। क्या ये उपहार सोनेके कालीन और बहुत-से मोतियोंसे अधिक मूल्यवान् नहीं हैं?

जो मां अपने बच्चेको अच्छे उपहार देती है वह समझती है कि उसका अपना जीवन उसकी अपनी संतानमें है और उसका हृदय बच्चेको स्वस्थ देखकर खुशीसे फूल उठता है और उसकी बीमारी या मृत्यु देखकर दुःखसे भर जाता है। यहां एक तमिल गीतमें मांकी आवाज सुनो:

मेरे दिलमें बसा वह कहां गया?
  हाय, मेरे बाल, मेरे बाल!
किसने लिया मेरा सोनेका खिलौना?
  हाय, मेरे बाल, मेरे बाल!
मीठी बोलीमें वह पुकारता था, अम्मा, अम्मा,
  हाय, मेरे बाल, मेरे बाल!
कभी न देखा ऐसा मुखड़ा
  हाय, मेरे बाल, मेरे बाल!
वह मेरे घुटनोंपर खेला करता था,
  हाय, मेरे बाल, मेरे बाल!
बाप उसे देखकर खुशीसे फूल उठता था,
  हाय, मेरे बाल, मेरे बाल!
उसके माथे पर सौभाग्य-रेखाएं खिंची थीं,
  हाय, मेरे बाल, मेरे बाल!
बुरा हो उस बुरी दृष्टिका जो उसपर पड़ी,
  हाय, मेरे बाल, मेरे बाल!
ठहरो, बेटा, ठहरो, ठहरो आती हूं मैं बस मैं भी साथ,
  हाय, मेरे बाल, मेरे बाल!

आओ, आओ, छोड़ न जाओ,
हाय, मेरे बाल, मेरे बाल!

एक अच्छे पिताका हृदय भी अपने बालकके प्राणमें रहता है और उसकी मृत्युसे घायल होता है।

जब हज़रत मोहम्मदका छोटा बच्चा, इब्राहीम, मरा तो उनके हृदयको कैसा आघात लगा होगा! प्राचीन ग्रंथोंमें कहा गया है कि वह पन्द्रह या सोलह महीनोंका होकर ही मर गया था, लेकिन एक मशहूर नाटक (हसन और हुसैन) से लगता है कि वह काफी बड़ा होकर मरा था। इस नाटकमें इजराईल (मौतका फरिश्ता) हज़रत मुहम्मदके घर आकर बच्चेकी मांग करता है। हज़रत बहुत दुःखी होकर कहते हैं: "मैं निवेदन करता हूं कि इसे कल सवेरेतक मेरे पास रहने दिया जाय।" फरिश्ता थोड़ी देरके लिये ठहर जाता है। उसी समय हज़रतके कानोंमें बच्चेकी आवाज आती है जो पास ही मकतबमें कुरानका पाठ कर रहा है: "मैं शैतानसे बचनेके लिये अल्लाहकी शरणमें जाता हूं। हे आरामसे रहने-वाली आत्मा, अल्लाहके नामपर जो दयालु और कृपालु है, खुश होकर, खुश करता हुआ अपने मालिकके पास आ जा, मेरे सेवकोंमें भरती हो जा, मेरे स्वर्गमें निवास कर।"

हज़रत मुहम्मदके कानोंके लिये कितने मधुर शब्द थे!

मां-बापके लिये अपना पाठ दोहराते हुए बेटे-बेटियोंकी आवाज कितनी मीठी होती है! यहां हम इब्राहीमके अन्तिम क्षणोंका पूरा दृश्य नहीं दे रहे। तुम्हें बस यही बताना है कि उसकी मां मरियम कितने प्रेमसे उसे ताकती है, अध्यापक कितनी कृपाके साथ अपने छोटे विद्यार्थीको देखता है, इब्राहीमकी बहन फातिमा कितने स्नेहसे उससे बातें करती है, पैगम्बरका देवता हुसैन कैसे उसका सिर अपनी गोदमें रख लेता है और कैसे इब्राहीमका प्राणान्त होनेपर उसके पिता रोते हैं।

*
**

क्या मां-बाप केवल बुद्धिमान् और चालाक बच्चोंसे ही प्रेम करते हैं? नहीं, उनकी भुजाएं सभी बच्चोंको कस लेती हैं।

एक दिन हमें किसी कस्बेकी एक झोंपड़ीमें जानेका मौका मिला। बाप जूतोंकी मरम्मत करता था। वह एक जूतेमें नया तल्ला लगानेके लिये उसे पीट रहा था। मां रसोईघर साफ कर रही थी। दोनों मेरे साथ

अपने बच्चेके बारेमें बात करनेके लिये रुक गये। बेचारा बच्चा लगभग गूंगा था। मैं उसके शब्दोंका अर्थ न समझ सकता था पर उसके मां-बाप उसकी चीखोंका भाव समझ लेते थे। उसमें इतनी समझ भी न थी कि अपने-आप खा ले या कपड़े पहन ले। उसके मां-बापको सारे समय निगरानी रखनी पड़ती थी कि कहीं वह अपने-आपको चोट न लगा ले या किसी दूसरेको नुकसान न पहुंचाये। और यह सिलसिला सात-आठ वर्षसे जारी था। इन सब तकलीफोंके बावजूद उन्हें अपने बच्चेसे प्यार था।

रामायणका कवि बच्चोंके लिये बापके प्रेमके बारेमें कहता है: "एक बापके कई बच्चे हैं, हर एककी आत्मा अलग है, स्वभाव अलग है और चाल-ढाल अलग है। एक विद्यार्थी है, दूसरा अध्यापक जो उपवास करता है, एक पैसा कमाता है या उदार योद्धा है या चतुर संसारी आदमी है या नम्र साधु है। बापके अन्दर सबके लिये समान प्रेम होता है। एक और बालक पढ़ाई-लिखाईमें मन्द होते हुए मन, कर्म, वचनसे बापका भक्त हो सकता है, बाप इसे अपनी आत्मा मानता है।"

प्यारी मांकी आंखें और आंखोंकी अपेक्षा कुछ ज्यादा देखती हैं। वे आंखें उन विशेषताओं और क्षमताओंको देख सकती हैं जिन्हें और लोग नहीं देख पाते।

इसी तरह भगवान् रामकी मां कौशल्याने अपने पुत्रकी महिमाका अन्तर्दर्शन पाया था। एक बार उनके देखते-देखते उनका बालक बदल गया था। एक क्षण वह नन्हा बालक था और दूसरे क्षण "रोम रोमपर राजहिं, कोटि कोटि ब्रह्माण्ड", उसके शरीरमें अनगिनत सूर्य चन्द्र चमक रहे थे, नदियां, पहाड़, सागर और भूमि भी अनगिनत संख्यामें उनके शरीरपर विद्यमान थे; प्रकृतिकी सभी शक्तियां उस छोटे-से बालकके शरीरमें समायी हुई थीं। रानीने हाथ जोड़ लिये और चुपचाप खड़ी रह गयी। वह आंखें बंद करके रामके पैरोंपर झुकी। फिर जो आंखें खुलीं तो सामने वही छोटा बच्चा था।

हम देख आये हैं कि जानवर अपने बच्चोंको बड़े सरल ढंगसे प्रेम दिखाते हैं, कि मां-बाप बच्चेके पैदा होते ही उससे प्रेम करते हैं। वह बीमार हो या स्वस्थ, भला-चंगा हो या मर रहा हो वे हमेशा उससे प्यार करते हैं और उनमें, विशेषकर मांमें बच्चेकी आत्माको देखनेकी दृष्टि होती है।

परिवार मानवजातिके लिये बहुत मूल्यवान् चीज है। वही सच्चा घर है। लकड़ी, पत्थर, घास-फूस बकरेके बाल या संगमरमरके महल घर

नहीं है। परिवारका प्रेम ही घर बनाता है जो बड़े-छोटे सभीको मां मुरगीकी तरह अपने पक्षमें ले लेता है।

***

एक धर्मात्मा मुसलमानको हर रोज अपने साथियोंके साथ जानेसे पहले अपनी मांके पांव चूमनेकी आदत थी।

एक बार उसे आनेमें देर हो गयी तो उन्होंने कारण पूछा। उसने कहा: "मैं जन्नतके बागकी सैर कर रहा था क्योंकि मैंने सुना है कि जन्नत मांके चरणोंमें है।"

अल मुस्ततराफ नामक पुस्तकमें कहा गया है कि जब मूसाने भगवान्‌से बातचीत की तो भगवान्‌ने ३५०० शब्द कहे। बातचीतके अंतमें मूसाने कहा: "भगवन्, कोई नीति वाक्य कहिये।"

"मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं अपनी मांके साथ अच्छा व्यवहार करो," भगवान्‌ने कहा। ये शब्द सात बार दोहराये गये और मूसाने कहा वे उन्हें जरूर याद रखेंगे। भगवान्‌ने कहा: "मूसा, अगर तुम्हारी मां तुमसे संतुष्ट रहेगी तो मैं भी संतुष्ट रहूंगा, वह नाराज होगी तो मैं भी नाराज होऊंगा।"

मां-बापका प्रेम बच्चोंसे बड़े प्यारे-प्यारे शब्द कहता है।

एक अरब मांने अपने बच्चेको प्यार करते हुए कहा: "मैं अपने बच्चोंसे ऐसे प्यार करती हूं जैसे लोभी अपने धनसे।" लेकिन अगर मां-बापका प्यार बच्चोंकी ओर जाता है तो क्या बच्चोंका प्यार मां-बापकी ओर नहीं जाता? क्या हम प्रेमके बदले प्रेम नहीं देते? दुनिया-भरमें अनगिनत लड़के-लड़कियां अपने मां-बापसे प्रेम करते और उनकी सेवा करते हैं। मां-बापके प्रति बच्चोंके प्रेमकी कहानी कहनेके लिये हिन्दुस्तानके सभी कवियों और विद्वानों-की लिखी सभी पुस्तकोंसे बड़ी पुस्तककी जरूरत होगी।

हम बहुत-से बड़े-बड़े उदाहरणोंमेंसे एक लेते हैं। यह प्राचीन यूनानकी कहानी है।

बूढ़ा राजा ओडियस अंधा था। उसने देवताओंको नाराज किया था और अब उसे गांव-गांव भटकना पड़ता था। दयालु लोग उसे भोजन देते थे। उसे घरमें आश्रय देते थे, पर, आंखें कोई न दे पाता था। तब उसे एक जगहसे दूसरी जगहतक ले कौन जाता? उसकी बेटी, एंटीगोन, के सिवा ऐसा कौन था? वही उसे सड़ककी पटरीपर ले जाती और नये यात्रियोंसे मिलनेपर उनसे दयाकी भिक्षा मांगती। वही उसके संदेश लाती, ले जाती। एंटीगोनने कुछ समयके लिये ओडियसको छोड़ दिया तो वह बहुत दुःखी

हुआ। और जब वह लौट आयी तो वह बहुत खुश हुआ। उसने बेटीका सिर छूकर कहा :

"मेरे लिये जो कुछ अमूल्य है वह सब मेरे पास है। अगर मैं तुम्हारे यहां रहते मर जाऊं तो मुझे दुःख न होगा।"

अंतमें देवोंने कृपा की। उसे लगा कि मरनेका समय आ गया है, लेकिन उसे लगा कि उसे दीप्तिमानोंके निवास-स्थानतक उठना होगा। वह अंधा तो था ही, पर वह अपने-आप ही आगे बढ़ा और ऊंची पहाड़ियोंके बीच एक तराईतक आ पहुंचा। यहां आकर स्नान किया और अच्छे कपड़े पहने। एक गर्जन सुनायी दिया और अंधा ओडियस समाप्त।' वह देवोंसे जा मिला। एंटीगोन बहुत रोयी और उसने कहा :

"उसके साथ दुःख भी अच्छा लगता था,
उसके साथ रहते अप्रिय-से-अप्रिय चीज भी प्रिय लगती थी।"

वह सचमुच बहुत दुःख-दारिद्र्यमें रहा था, लेकिन अगर बेटीका प्यार भरा आश्वासन न मिलता तो उसका कष्ट कितना अधिक बढ़ जाता।

*
**

हमने बच्चोंके लिये मां-बापके प्रेमकी बात की है। अगर कोई तुमसे पूछे कि परिवार किससे बनता है तो तुम क्या कहोगे?

एक लड़केसे यही प्रश्न पूछा गया तो उसने कहा : "परिवार माने दो, यानी, पति-पत्नी।" एक और लड़केने कहा : "तीन, यानी, पति, पत्नी और बालक।"

हम देखेंगे कि परिवार इससे भी बड़ा हो सकता है। मान लो चार : पति, पत्नी और दो बालक। इसमें एक नया विचार, एक नया संबंध प्रवेश करता है। वह है भाई-भाई या भाई-बहनका संबंध। इस संबंधमें हम मां-बापकी तरह ऊपर नहीं देखते, न बच्चेकी तरह नीचेको देखते हैं। हमारा एक ऐसे मित्रके साथ संबंध होता है जो लगभग हमारे बराबरका होता है। इस तरह भाई-बहनके संबंधद्वारा हम परिवारमें एक नया रत्न जोड़ते हैं।

जब राम अपनी कमलनयन पत्नी सीताके साथ अयोध्या लौटे तो लक्ष्मण-ने भी उनके आनंदमें पूरा भाग लिया। चारों ओर मनोरंजनके लिये तंबू तने थे। रास्तोंपर आम, सुपारी और केलेके पेड़ लगे थे। बाजार सुन्दर फूलों और झंडियोंसे सजे थे। ध्वजाएं फहरा रही थीं। हाथी, घोड़े, रथ रास्तोंपर दौड़ रहे थे। नगाड़े बज रहे थे और नाना प्रकारका मधुर संगीत हो रहा था। लोग राम-राम चिल्ला रहे थे और रामका हृदय आनंदसे भरपूर था।

और लक्ष्मणका भी। भाई भाईकी खुशीमें हिस्सा ले रहा था। एक दिन आया जब जीवनपर बादल छा गये। अयोध्याके वृद्ध राजाने आदेश दिया कि रामको चौदह वर्षके लिये बन जाना पड़ेगा। लक्ष्मणने यह क्रूरता-पूर्ण समाचार सुना तो उनकी आंखें भर आयीं। वे दौड़े-दौड़े रामके पास गये और उनके पांव पकड़ लिये। उनके मुंहसे एक भी शब्द न निकल रहा था।

"भाई," रामने कहा: "अपने-आपको कष्ट न दो। अंतमें सब कुछ ठीक होगा। तुम मेरे साथ नहीं जा सकते। तुम्हें अयोध्यामें रहना और राजा तथा प्रजाकी सहायता करनी होगी।"

"नहीं, तात, नहीं, ऐसा कभी न होगा," लक्ष्मणने उत्तर दिया। "मैं सिर्फ तुम्हारे चरणोंका दास हूं। मैं पूरे दिलसे घोषणा करता हूं कि जहां तुम जाओगे मैं भी वहीं जाऊंगा।"

फिर रामने भाईको उठाकर गलेसे लगा लिया और बोले:

"जाओ, अपनी मांसे विदा ले आओ और फिर मेरे साथ वनवासके लिये चलो।"

और लक्ष्मण खुश हो गये।

भाई-बहन एक-दूसरेकी रक्षा करते हैं। भ्रातृ द्वितीयाके अवसरपर भारतीय परिवारोंमें बहनें भाईके माथेपर चंदन, कुमकुमका टीका लगाती हैं और उन्हें मिठाई देती हैं और अगर हो सके तो कपड़ेका भी उपहार देती हैं। वे आशा करती हैं कि इस तरह वे यमराजके आगमनको टाल सकती हैं। वे गाती हैं:

मैंने भाईके माथेपर टीका लगा दिया,
यमके द्वारपर अर्गला लग गयी।

यहां रक्षा और आशीर्वाद चंदन और कुमकुमसे नहीं, प्रेमसे मिलता है — भाईको बहनके प्रेमसे और बहनको भाईके प्रेमसे।

***

हम परिवारको और भी बड़ा बना सकते हैं जिसमें हमारे प्यारे दादे-दादियां, चाचे-चाचियां, नातेके भाई बहनोंका भी समावेश हो जाय। इससे भी अधिक विस्तृत परिवारमें वे सब आ जाते हैं जो हमारे नातेदार तो नहीं हैं, हमारे रक्तके भी नहीं हैं पर घर साफ रखनेमें, कपड़े धोनेमें, खाना पकाने और बरतन धोनेमें और इसी तरहके अनेकानेक कामोंमें हमारी मदद करते हैं। मेरा मतलब है घरके नौकरोंसे। वे भी हमारे परिवारके अंग

होते हैं। जब प्राचीन रोममें कोई नागरिक अपने परिवारकी बात करता था तो उसमें केवल अपनी पत्नी और बच्चोंकी ही नहीं, गुलामोंकी भी गिनती करता था।

यहां हम ईरानके प्रिय नाटक 'हसन और हुसेन' का एक दृश्य लेते हैं: इमाम हुसैन, जो कर्बलाकी लड़ाईमें शहीद हुए थे, अपनी आखिरी लड़ाईके लिये तैयार थे। उनके सब साथी काम आ चुके थे, वे अकेले बचे थे। उनके अपने शब्दोंमें, वे बगीचेमें खड़े आखिरी खजूरके पेड़ थे। परिवारकी स्त्रियोंने मरे हुए लोगोंके लिये स्यापा शुरू किया, और हुसैनके लिये भी जो बस दुश्मनोंके हाथों मरने-मरनेको थे।

इमाम हुसैनने एक-एक करके अपनी पत्नी, उम्म लैला; अपनी बहनें, जनैब और कुलसूम; और अपनी बेटी, सुकीना, से बिदा ली।

एक हब्शी दासी सामने आयी और हजरतसे बोली: "स्वामी, मैं यह सोचकर ही मरी जा रही हूं कि मुझे आपसे जुदा होना पड़ेगा। मैं बहुत बूढ़ी हो चुकी हूं और अब मेरे जीनेका कोई कारण नहीं है। बस एक याचना है, मैंने जो-जो अपराध किये हों उनके लिये मुझे क्षमा कर दीजिये।"

जिरह बकतरमें लैस, महान् योद्धा हुसैनने — जो बस अब कुछ ही देरके मेहमान थे — बूढ़ी हब्शिनकी ओर करुणाभरे नेत्रोंसे देखा और बोले: "हां, तुमने एक जमानेतक हमारी सेवा की है। तुम मेरी मांके लिये सब तरहके नीरस काम करती रहीं। तुमने अनाज पीसा और बहुत मेहनत की। तुमने मुझे अपनी भुजाओंमें खेलाया। यह तो सच है कि तुम्हारा चेहरा काला है पर तुम्हारा हृदय एकदम सफेद है। आज मैं तुमसे बिदा लेता हूं। मैं तुम्हारा इतना कृतज्ञ हूं कि इसका कोई हिसाब नहीं लगा सकता। मैंने तुम्हारे साथ लापरवाहीके कारण अप्रिय या अनुचित व्यवहार किया होगा, उसके लिये मुझे क्षमा करना।"

***

लेकिन अभीतक हम यह पता नहीं लगा पाये हैं कि परिवार कितना बड़ा होता है। क्या अन्य सेवक — दो पाये और चौपाये — हमारे घरकी खुशियोंको नहीं बढ़ाते? क्या चिड़ियां हमारे साथ बोलकर, हमारे आगे गाकर हमें खुश नहीं करतीं? पालतू जानवर हमारे साथ कमरोंमें खेलते हैं और कुछ जानवर हमारे खेतोंमें सेवा करते हैं। क्या हमें इन मूक सहायकोंकी गिनती भी अपने परिवारमें नहीं करनी चाहिये?

सारी दुनिया जानती है कि भारतवासी अपने देशमें बसनेवाले जानवरों-

के साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार करते हैं। लेकिन अपने पशु-बंधुओंके प्रति सद्भावना रखनेवाले वे अकेले नहीं हैं। सुदूर उत्तरमें, जहां सागर बरफ-में बदल जाता है, एक जाति रहती है जिसे एस्किमो कहते हैं। उस प्रदेशमें एक सफेद भालूने तीन आदमियोंकी जान बचायी। शायद वे समुद्रमें गिर पड़े होंगे और तैरते हुए भालूको पकड़ लिया होगा और वह उन्हें किनारेपर ले आया होगा। बहरहाल, वे उसका बहुत उपकार मानते थे और उसे कुछ पुरस्कार देना चाहते थे।

कहानीके अनुसार भालूने कहा: "धन्यवाद, अभी मुझे कुछ नहीं चाहिये, लेकिन अगर कभी तुम दूसरे लोगोंके साथ शिकारपर आओ और मैं पकड़ा जाऊं तो मेरी रक्षा करना। तुम मुझे गंजे सिरके कारण पहचान सकोगे।"

यह कहकर भालूने डुबकी लगायी और गायब हो गया।

अगले जाड़ोंमें उस जातिके एस्किमो लोगोंने बरफपर एक भालू देखकर उसका पीछा किया। उस दलमें वे तीन भी थे जिनकी जान गंजे भालू-ने बचायी थी। हां, यह तो वही भालू था। तीनोंने अपने साथियोंसे आग्रह किया कि उसको छोड़ दिया जाय। इतना ही नहीं, उन्होंने उसे एक बड़ा भोज दिया। खा-पीकर भालू वहीं सो गया। किसी आदमीने उसे कोई कष्ट नहीं पहुंचाया। छोटे बच्चे उसके साथ खेलते रहे। जब भालू जागा तो और कुछ खाकर समुद्रमें घुस गया और फिर कभी न दिखायी दिया, परंतु उस एस्किमो जातिने उसे हमेशा याद रखा।

*
**

हां, तो परिवारमें हमने मां, बाप, बच्चे, भाई, बहन, दादा, दादी आदि, नौकर-चाकर और सहायता देनेवाले जानवरोंकी गिनती कर ली। निश्चय ही, सभी देशों और जातियोंमें परिवारोंके रीति-रिवाज एक जैसे नहीं होते। यह जानने लायक बात होगी कि जापान, चीन, मिस्र, ईरान, यूरोप, अमरीका आदिमें कैसे रिवाज हैं, उनमें बहुत भेद हैं। तुम उनके बारेमें किताबोंमें पढ़ सकते हो या अपने अध्यापकसे सुन सकते हो। लेकिन सब-के हृदयमें प्रेम राज्य करता है और दया और सद्भावना सामान्य नियम है। हो सकता है कि किसी परिवारके लोग एक-दूसरेसे प्यार न करते हों, तब हम कह सकते हैं कि वह सच्चा परिवार नहीं है।

कोई मनुष्य अमानुषिक व्यवहार कर सकता है, लेकिन तब वह सच्चा मनुष्य नहीं रहता।

*
**

रंगनाथ और उसका बाप

१८३१ में चित्तूरके डिस्ट्रिक्ट जजके दरवाजेपर बारह वर्षके एक बालकने दस्तक दी। वह एक गरीब किसानका बेटा था। बाप लगान न देनेके कारण जेलमें डाल दिया गया था। किसानने कुछ सरकारी जमीन ली थी, परंतु फसल बिगड़ गयी और उन दिनोंके कानूनके अनुसार उसे जेलकी हवा खानी पड़ी। बाप अभी जेलमें ही था कि उसका जन्म-दिन आ गया। मां रो-रोकर हलाकान हो गयी। इसीलिये रंगनाथने जजके घरपर दस्तक दी थी।

जजने सारी बात सुनकर कहा: "मैं तुम्हारे बापको जमानतके बिना नहीं छोड़ सकता। इस बातकी जमानत देनी होगी कि वह मुकदमेके लिये वापिस आ जायगा।" बेटेने कहा: "हमारे पास पैसा तो नहीं है, लेकिन मैं स्वयं जमानत बननेको तैयार हूं, जबतक बाप लौट न आये मैं जेलमें रहूंगा।"

जजका हृदय भर आया। उन्होंने एक क़ागजपर हस्ताक्षर कर दिये, जिसमें किसानको जेलसे छोड़नेका हुकुम था। रंगनाथ हरिणकी तरह दौड़ता हुआ जेल जा पहुंचा और वहांसे अपने बापको साथ लिये बड़ी रात बीते घर पहुंचा।

यही लड़का बादमें चलकर रंगनाथ शास्त्री कहलाया जो पंद्रह भाषाओं-में पढ़ और बोल सकता था।

सफेद हाथी

हिमालयके जंगलोंमें अस्सी हजार हाथियोंका दल घूमा करता था। एक विशालकाय सफेद हाथी उनका राजा था।

राजाकी मां अन्धी थी।

अगर कभी राजा अपने दलके साथ दूर निकल जाता था तो भी उसे मांका ध्यान बना रहता था और वह सेवकोंके हाथ उसके लिये फल भेजा करता था। लेकिन खेदकी बात यह है कि सेवक फल अपने-आप खा लेते थे और प्रेमोपहार अन्धी मांतक न पहुंच पाते थे।

जब राजाको इस धोखेबाजीका पता लगा तो उसने दलको छोड़ देनेका निश्चय किया ताकि अच्छी तरह मांकी सेवा और रक्षा कर सके। वह मांको लेकर किसी कन्दरामें रहने लगा जिसके पास ही एक झील थी।

एक बार बनारसका एक आदमी उधर आ निकला। वह अपना रास्ता

भूल गया था और सात दिनसे इधर-उधर निराश होकर भटक रहा था।

हस्तिराजने उसके आगे झुककर उसे अपनी पीठपर बिठा लिया और बनारसकी सड़कपर छोड़ आया और आगेका रास्ता भी दिखा दिया।

लेकिन हां, मनुष्य बुरे दिलवाला था। उसने बनारसके राजाको बता दिया कि उस कन्दराके पास एक सुन्दर सफेद हाथी मिल सकता है। राजाने उसके साथ कई शिकारी कर दिये और हाथीको पकड़ लानेका हुकुम दिया।

शिकारियोंने देखा सफेद हाथी झीलमें खड़ा है। उन्होंने उसे जा पकड़ा। उसने कोई विरोध नहीं किया। वे उसे पकड़कर बनारस ले आये।

जब सफेद हाथी नहीं लौटा तो उसकी मांको बहुत दुःख हुआ। उसने कहा: "चीढ़, कुटज, कनेर, कुमुदसे लेकर घासतक, सब सुखी हैं, पर मेरा बेटा कहां है? कहां है वह?"

इधर हाथीको एक बहुत बड़ी, फूलोंसे सजी गजशालामें रखा गया। राजा अपने-आप उसे खिलाने आता था। लेकिन हाथी कुछ न खाता था। उसने कहा: "मेरी मां यहां नहीं है।"

राजाने कहा: "लो, सीधी तरह खाओ। मेरे दोस्त बनो।" हाथीने कहा: "लेकिन वह बेचारी अन्धी कन्दरामें रो रही होगी।" राजाने कहा: "तुम्हारा मतलब क्या है?" हाथीने कहा: "मेरी मां मेरे लिये रो रही होगी।" राजाने हाथीको छोड़ देनेका हुकुम दिया। हाथी तेजीसे भागा और रास्तेमेंसे सूंड़में पानी भरकर ले गया और जाते ही मांके ऊपर छिड़कने लगा। मांने रोकर कहा: "वर्षा हो रही है। हाय, मेरी देखभालके लिये मेरा बेटा यहां नहीं है।"

"मां, मैं आ गया, राजाने मुझे वापिस भेज दिया।"

समय आनेपर बूढ़ी हथिनी मर गयी और सफेद हाथी भी मर गया। राजाने उनकी समाधि बनवायी और उसपर हाथीकी पत्थरकी मूर्ति बनवा दी। हर वर्ष भारतके कोने-कोनेसे लोग वहां हाथीका उत्सव मनानेके लिये आने लगे।'

१६

सहानुभूति

दुःख दुःखका साथ कब देता है?

जब एक हृदय दुःख पाता है और उसके साथ ही हमारा हृदय भी दुःखी हो उठता है।

प्रसिद्ध योद्धा दुर्योधन कुरुक्षेत्रके मैदानमें गिर पड़ा। उसके साथी इतने अधिक दुःखी हुए कि जब वह धरतीपर गिरकर मर गया तो ऐसा लगा मानों सारी प्रकृति ही अस्तव्यस्त हो गयी। पृथ्वीपर बिना सिरके, अनेक हाथों और अनेक पैरोंवाले प्राणी भयंकर नाच नाचने लगे। झीलों और कुंओंका पानी खून बन गया। नदियां अपने स्रोतकी ओर बह चलीं। पुरुष स्त्रियों जैसे लगने लगे और स्त्रियां पुरुषों जैसी।

यहां कवि हमें यह बताना चाहता है कि एक आदमीके सहे हुए कष्ट इस विशाल संसारमें फैल गये। मरे हुए राजा और हजारों जिन्दा प्राणियों-में सहानुभूति थी।

अब नन्दी हरिणकी कहानी भी सुनो जो शान्तिके समय अपने मां-बापके साथ स्नेह और सन्तोष-भरा व्यवहार करता था और अंधेरे और मुसीबत-के समय भी स्नेहसे भरा रहता था।

कौशल-नरेश बहुत बार उस जंगलमें शिकारके लिये जाया करता था जहां ये तीनों हरिण सुखसे, शान्ति और प्रेमके साथ रहा करते थे। राजाके साथ बहुत-से आदमी रहते थे जिन्हें अपना काम-धाम छोड़कर आना पड़ता था और वे बुड़बुड़ाया करते थे।

आखिर उन्होंने एक उपवन बनाया जिसके बीचमें एक तालाब था और चारों ओर बाड़ और दरवाजे। अब उन्होंने जंगलमें जाकर हरिणोंको घेरकर उपवनमें इकट्ठा करना शुरू किया ताकि राजा वहां मनमाना शिकार कर सके और उन्हें काम छोड़कर आनेकी जरूरत न पड़े।

नन्दीने लाठी लिये लोगोंको आते देखा। वह अपने मां-बापके साथ जंगलके एक कोनेमें चर रहा था। उसने मां-बापसे कहा: "तुम यहीं ठहरो, मैं जाकर इन लोगोंसे मिलता हूं।" उन लोगोंने इसे आते हुए देखा तो यही समझा कि जंगलमें और हरिण नहीं बचे। वे उसे लेकर उपवनमें आ गये। नन्दीके मां-बापको छोड़कर जंगलके सभी हरिण यहां घेर लिये

गये थे। राजा इस योजनासे बहुत खुश हुआ और समय-समयपर दो-एक हरिणोंका शिकार करने लगा, लेकिन नन्दीकी बारी बहुत दिनों-तक न आयी।

आखिर एक दिन उसकी भी बारी आ गयी। वह राजाके सामनेसे भागनेकी जगह सीधा खड़ा हो गया। राजा यह देखकर अचम्भेमें पड़ गया और उसने बाण नहीं चलाया।

"बाण मारिये, राजन्," हरिणने कहा।

राजाने कहा : "नहीं, तुम्हारे अन्दर कुछ विशेषता है, मैं तुम्हें अभयदान देता हूं।"

"राजन्, क्या इस उपवनके सभी हरिणोंको अभयदान मिल सकता है?" हरिणने पूछा।

"हां।"

"और, राजन्, क्या आपकी कृपा हवामें उड़नेवाले पक्षियों और जलकी मछलियोंपर नहीं होगी?"

"चलो, ठीक है।"

कहते हैं स्वयं बोधिसत्वने हरिणका रूप धारण कर राजाको दयाका पाठ पढ़ाया था। फिर उन्होंने चारों ओर ढिंढोरा पिटवा दिया कि राजाने सभी हरिणों, पक्षियों और मछलियोंको अभयदान दिया है।

निस्संदेह, तुम इस बातसे सहमत होगे कि नन्दीने अपने मां-बापकी रक्षा करके अच्छा किया। किसी बहन या भाईकी रक्षा करना भी जरूर अच्छा काम है। लेकिन अगली कहानीमें तुम देखोगे कि एक अरब सर-दारने एक आदमीको अपना भाई बतलाया, हालांकि वह उसका भाई नहीं था।

एक काफिला रेगिस्तानसे गुजर रहा था। बीचमें ही उनका पानी चुक गया और यह जरूरी हो गया कि सबको पानी नाप-नापकर दिया जाय ताकि सबको थोड़ा-थोड़ा, लेकिन बराबर पानी मिल सके।

एक प्यालेमें एक पत्थर रखकर मशकसे पानी डाला जाता था। एक आदमीको उतना ही पानी मिलता था जितना पत्थरको डुबा सके। और इतना भी सिर्फ सरदारोंको ही मिलता था। काब इब्ने मामा पानी पीनेको था कि उसने देखा कि एक नामीर कबीलेका एक अरब उसकी ओर ललचायी आंखोंसे देख रहा है। काबने उसकी तरफ इशारा करके पानी बांटनेवालेसे कहा : "मेरा हिस्सा मेरे इस भाईको दे दो।"

उस आदमीने गटगट पानी पी लिया और काब प्यासा रह गया।

दूसरे दिन, फिर पानी बांटनेका समय हुआ। फिर नामीर अरब नेताने

ललचायी आंखोंसे देखा और फिरसे काबने अपना हिस्सा अपने उस भाईको दिलवा दिया।

लेकिन जब काफिलेके कूचका समय हुआ तो काबमें इतनी शक्ति न थी कि वह ऊंटपर चढ़ भी पाता।

वह रेगिस्तानमें पीछे रह गया।

और लोग नहीं ठहर सकते थे, उन्हें डर था कि कहीं वे भी प्याससे मर न जायं। उन्होंने काबको शिकारी जानवरोंसे बचानेके लिये उसपर कुछ कपड़े डाल दिये और उसे वहीं मरनेके लिये छोड़ दिया।

*
**

तुमने देखा होगा कि जब किसीको दुःख हुआ तो उसके पड़ोसीके हृदयने भी उसे अनुभव किया। जब दुर्योधन मरा तो सारी प्रकृति तुरन्त दुःखी हो उठी। जब नन्दीके मां-बापकी जानपर संकट आया तो उसने उनकी रक्षा की। जब नामीरके अरबने प्याससे व्याकुल होकर देखा तो अरब सरदारने तुरन्त अपने हिस्सेका पानी उसे दे दिया।

दुःख तुरन्त दुःखका साथ देता है और हर्ष हर्षका।

अगर सहानुभूति आनेमें देर लगा दे तो इतनी मूल्यवान् नहीं रह जाती।

फारसीके प्रसिद्ध कवि फिरदौसीने ईरानके राजाओंकी कहानी लिखी और बादशाह महमूदको पढ़कर सुनायी। सुलतान सुनते ही फड़क उठा और कुछ समयतक फिरदौसी उसका विशेष कृपा-पात्र बना रहा। फिरदौसी का काव्य — शाहनामा — तीस वर्षके अथक परिश्रमका परिणाम था और सुलतानने वचन दिया था कि उसके खतम होनेपर वह कविको सोनेकी साठ हजार मुहरें देगा।

लेकिन सुलतानका वजीर फिरदौसीसे घृणा करता था। उसने सुलतान-से कहा : "शाही खजानेकी हालत अच्छी नहीं है। साठ हजार सोनेकी मुहरें देनेकी जगह, साठ हजार चांदीके सिक्के देनेमें ही बुद्धिमानी है।" राजाने बात मान ली और चांदीके सिक्के थैलोंमें भरकर कविके यहां भेज दिये।

जब सिक्कोंके थैले फिरदौसीके घर पहुंचे तो वह स्नान कर रहा था। वह सुल्तानके कमीनेपनको देखकर इतना तैशमें आ गया कि उसने वह उपहार लेनेसे इनकार कर दिया। उसने बीस हजार सिक्के उपहार लाने-वालेको दे दिये, बीस हजार स्नानगृहके मालिक को दे दिये और बाकी बीस हजार एक शराबखानेवालेको दे दिये जो अचानक उस समय वहां मौजूद था।

इस अपमानकी बात सुनकर सुलतान महमूद गरम हो उठा और उसने हुकुम दिया कि कविको हाथीके पैरों तले कुचलवा दिया जाय। फिरदौसी-को इस बातका पता लग गया और वह भागकर तूस नामक नगरीमें जा बसा। यही उसका जन्मस्थान था।

आखिर सुलतानको लगा कि उसने फिरदौसीके साथ न्याय नहीं किया, बल्कि कमीनापन किया है। वह फिरसे कविका मान पाना चाहता था। उसने अपने एक संदेशवाहकके साथ फिरदौसीके लिये सोनेकी साठ हजार मुहरें भेजीं और बहुत-से रेशमी, जरी और मखमलके उपहार भी साथ कर दिये।

लेकिन हाय, जब उपहार पहुंचा तो बहुत देर हो चुकी थी।

सुलतानका सन्देशवाहक राजाके मूल्यवान् उपहार ऊंटोंपर लादे हुए तूसके एक दरवाजेसे घुसा और दूसरे दरवाजेसे फिरदौसी तूसीके भंगुर अवशेष श्मशान-यात्रा कर रहे थे।

***

चीनके लोग कहा करते थे कि हमारे सम्राट् बहुत न्यायप्रिय हैं, वे हमेशा गरीबोंकी फरियाद सुनते हैं।

लेकिन एक दिन आया जब सम्राट्के कान लोगोंकी फरियाद सुननेमें असमर्थ हो गये। राजा अचानक बहरा हो गया। वह चिड़ियोंका चहचहाना, वायुका सरसराना और मनुष्योंका बोलना सुननेमें असमर्थ हो गया।

सम्राट् रो पड़ा। चारों ओर सरदार और अफसर बैठे थे, उन्होंने लिख-लिखकर प्रार्थना की कि सम्राट् इतने दुःखी न हों।

सम्राट्ने कहा : "यह न सोचो कि मैं अपने लिये दुःखी हूं, या मुझे इससे बहुत कष्ट होगा। मुझे दुःख इस बातका है कि मैं जरूरतमन्दोंकी बात न सुन पाऊंगा।"

चारों ओर सन्नाटा छा गया। कोई न जानता था कि क्या कहे। सम्राट्को कैसे सान्त्वना दे।

स्वयं सम्राट् ही चिल्ला उठे : "हां, मुझे सूझ गया एक उपाय! लोगोंमें मुनादी कर दो कि जबतक किसीको मेरी मददकी खास जरूरत न हो तबतक लाल कपड़े न पहने। 'जब मैं किसी स्त्री या पुरुषको लाल कपड़े पहने देखूंगा तो समझ जाऊंगा कि वह कष्टमें है और मेरी सहायता चाहता

है। मेरे बहरे कान उसकी फरियाद सुन लेंगे और उसकी मदद करनेके लिये पूरी व्यवस्था कर दी जायगी।"

सहृदय सम्राट्ने बहरे होनेके कारण अपना काम बन्द नहीं कर दिया। उन्होंने मुहताज और जरूरतमन्दोंको ढूंढ निकालनेका उपाय खोज लिया।

हां, खोज लिया। शरीफ आदमी इस बातकी प्रतीक्षा नहीं करता कि दु:ख उसके सामनेसे गुजरे। वह उसे खोज निकालनेकी कोशिश करता है।

*
**

कुछ हिन्दुओंने मिलकर देव समाजकी स्थापना की है ताकि परोपकारके काम कर सकें। एक महीनेके कामके बारेमें कुछ इस तरहकी सूचनाएं छपी थीं।

पेशावर: दो महिलाओंने स्त्रियों और बच्चोंको हर रोज दो घंटे हिन्दी पढ़ायी। पुरुषोंने घरों और अस्पतालोंमें जा-जाकर बीमारोंकी देखभाल की, गो-सेवा की और रास्तेपरसे कांचके टुकड़े बीनकर रास्ता साफ किया।

मोगा: दो महिलाओंने लड़कियोंको हिन्दी सिखायी। पुरुषोंने जानवरोंको चारा दिया और नये पेड़ लगाये। समाजके एक सदस्यने एक गरीब मजदूरको नि:शुल्क पढ़ाया।

फीरोजपुर: आठ महिलाओंने बीमारोंकी देखभाल की। लड़कोंने बूढ़ी और अपाहिज गायोंकी सेवा की, अन्धोंको रास्ता दिखाया और पेड़ोंको पानी दिया। एक और सदस्यने एक आदमीको सड़कपर पड़ा हुआ पाया। वह गाड़ीकी चपेटमें आकर गिर गया था और उसकी देखमाल करनेवाला कोई न था। यह सदस्य उसे उठाकर हस्पताल पहुंचा आया। एक और सदस्यने गावोंका चक्कर लगाकर अनपढ़, निचली जातिके लोगोंको पढ़ाया और उन्हें सफाई और अच्छा रहन-सहन सिखाया।

सियालकोट: एक विधवा एक दूसरी विधवाके घर गयी जिसका इकलौता बेटा मर गया था। उसे सान्त्वना दी और सन्तवाणी पढ़कर सुनायी।

तुम देखोगे कि कुछ उदाहरणोंमें परोपकारने पढ़ाने-लिखानेका रूप लिया। अध्यापकका हृदय अज्ञान देखकर भर आता है। किसीको ज्ञानकी जरूरत है। ज्ञान भी रोटी और पानीकी तरह एक आदमीके द्वारा दूसरेको दिया जा सकता है।

*
**

भगवान् राम शिकारमें बलवान् और चतुर थे और उनका मन शिक्षण-कलामें बलवान् और चतुर था। जब वे जंगलमें जानवरोंका पीछा करते तो अपने साथ एक भाईको रखा करते थे। जब वे भोजन करते या आराम करते तो एक छोटा भाई उनके साथ रहता। और जब उन्होंने गुरुके घर जाकर चारों वेदोंका अध्ययन किया तो वह सब इस तरहसे सीख लिया मानों वह एक खेल या एक गान हो। जब उन्होंने वेद, पुराण आदि पढ़ लिये और उनका खजाना अपने अन्दर जमा कर लिया तो उनकी यह इच्छा न हुई कि इस अमूल्य निधिको अपने पास ही छिपा कर रखें। उन्होंने अपने भाइयोंको भी शिक्षा दी।

जैसे भद्रता दूसरोंको अच्छा ज्ञान देना चाहती है, उसी तरह वह अच्छे समाचार भी देना पसन्द करती है। जब हनुमान दूसरोंको अच्छे समाचार दे सकते थे तो उनको कितना हर्ष होता था! सुनो :

भरत वनवासकी अवधिके पूरे चौदह वर्षतक रामके लिये प्रतीक्षा करते रहे। परम सुन्दर राम वन-वन मारे फिरे और लड़ाइयोंके संकटमेंसे गुजरते रहे। लेकिन भरतको मालूम न था कि रामपर क्या बीत रही है। जब चौदह वर्षकी अवधि समाप्त होनेको आयी तो विरहकी आग और भी भड़क उठी। रामका कहीं कोई समाचार न था।

बस, एक दिन और था चौदह वर्ष पूरे होनेमें। भरत कुशके आसनपर बैठे थे। उनका शरीर दुर्बल हो चुका था और बालोंकी जटाएं बन गयी थीं। वे बस "राम, राम, हा राम!" रटे जा रहे थे।

अचानक उनके सामने वानरप्रवर हनुमान आ खड़े हुए जिन्होंने इतनी लड़ाइयोंमें भगवान् रामका साथ दिया था, जो उनके कर्तव्यनिष्ठ सेवक थे। वे शुभ समाचार लेकर आये थे और हर्षके मारे स्वयं उनकी आंखें आंसुओंसे छलछला रही थीं। वे खुश थे कि वे भरतके दुःखको सुखमें, उनके आंसुओंको हास्यमें बदल सकेंगे।

उन्होंने कहा : "तुम जिनके विरहमें दिन-रात जलते हो वे आ गये हैं। शत्रुओंको युद्धमें पराजित करके, देवोंकी स्तुति स्वीकार करके भगवान् लक्ष्मण और सीताजीके साथ आ रहे हैं।"

भरत एकदम अपने दुःख-दैन्यको भूल गये। उन्होंने पूछा : "यह शुभ समाचार लानेवाले तुम हो कौन?"

"मैं हूं पवनसुत हनुमान — भगवान् रामका एक सेवक।"

भरतने उन्हें गलेसे लगा लिया और बोले : "हां, सुनाओ, और सुनाओ रामके समाचार, मैं सब कुछ सुनना चाहता हूं।"

और हनुमानने उन्हें सारे समाचार सुनाये और अपने-आप भी बहुत

प्रसन्न हुए कि आखिर वे भरतके मुरझाये शरीरमें फिरसे जान ला पाये।

*
**

और क्या आदमीका हृदय केवल आदमीके दुःखमें दुःखी होता है और दया दिखाता है? नहीं, वह जानवरोंके दुःखमें भी दुःखी और सुखमें सुखी होता है।

लोग एक स्त्रीकी ओर देखकर घृणासे निकल जाते थे। वे उसे पापी कहते थे।

इस पापी स्त्रीने एक प्यासा कुत्ता देखा जिसकी जीभ लटक आयी थी। वह प्यासके मारे मरा जा रहा था। बिना आवाज किये बिचारा जानवर पानीके लिये प्रार्थना कर रहा था।

पापी स्त्रीने अपना जूता उतारा और उसे पासके कुएंमेंसे पानीसे भर लायी और वह पानी प्यासे कुत्तेके सामने रख दिया। प्यासेकी जान बच गयी।

लोगोंकी राय बदल गयी।

उन्होंने कहा: "भगवान्‌ने इसे क्षमा कर दिया है।"

वह पापी भले रही हो, लेकिन वह मानवताका अर्थ समझती थी।

*
**

एक और सुनो:

एक आदमी हजरत मोहम्मदके पास आया और दरीमें लिपटा हुआ चिड़ियोंका घोंसला दिखाया।

"हजरत, मैं एक जंगलमेंसे गुजर रहा था। मैंने इन चिड़ियोंकी चीं-चीं सुनी तो पेड़पर देखा। वहां एक घोंसला था।"

हजरतने कहा: "इसे जमीनपर रख दो।" घोंसला जमीनपर रख दिया गया और मां-चिड़िया बड़ी प्रसन्नतासे चीं-चीं करती हुई अपने बच्चोंसे आ मिली।

हजरतने कहा: "अब इस घोंसलेको वहीं वापिस रख दो जहां यह था।"

फिर बोले: "जानवरोंके साथ अच्छा व्यवहार करो, जब वे स्वस्थ हों तो उनपर सवारी करो पर जब वे थक जायं तो उतर पड़ो। जब वे प्यासे हों तो उन्हें पानी दो।"

इस्लामकी हदीसोंमें कहा गया है कि एक बार जन्नतके फरिश्तोंने खुदा-

से पूछा: "या अल्लाह, क्या दुनियामें चट्टानोंसे भी सख्त कोई चीज है?"

"हां," खुदाने कहा, "लोहा चट्टानसे भी सख्त होता है वह चट्टानको तोड़ सकता है।"

"और लोहेसे सख्त क्या है?"

"आग क्योंकि वह लोहेको पिघला सकती है।"

"और आगसे बढ़कर?"

"पानी, वह आगको बुझा सकता है।"

"और पानीसे ज्यादा सख्त क्या है?"

"हवा, क्योंकि वह पानीमें लहरें पैदा करती है।"

"और उससे भी मजबूत कोई चीज है?"

"हां, दयालु हृदय, जो गुप्त रूपसे दान देता है, जिसके बांएं हाथको मालूम नहीं होता कि दांया क्या कर रहा है।"

आज दान देना ही दयाका मुख्य साधन नहीं है। हम कोमल हृदयसे दिये गये उपहारके द्वारा पड़ोसीकी मदद अब भी कर सकते हैं और कहानीका मतलब यह है कि चाहे उपहार देकर हो या किसी और तरह दूसरोंका स्नेह और मैत्री पानेके लिये दया या सौहार्द ही सबसे अच्छा साधन है।

अपने साथी प्राणीके दुःखसे दुःख और सुखसे सुख जागता है।

सहानुभूतिका यही शानदार स्वभाव है।

भाग ८

माताजीने फ्रांसमें रहते हुए बहुत-सा भारतीय साहित्य पढ़ा था और अपने अध्ययनकी दृष्टिसे कुछ चीजोंका फ्रेंचमें अनुवाद भी किया था। यह माताजीकी अपनी व्याख्या नहीं है। यह इस बातका नमूना है कि उनका दृष्टिकोण कितना विशाल था और भारत आनेसे पहले उन्होंने भारतके बारेमें कितना कुछ पढ़ा था।

नारद भक्ति-सूत्र

अब हम भक्तिकी व्याख्या करेंगे।

उसका स्वरूप है किसीके प्रति (यानी ईश्वरके प्रति) परम प्रेम।

वह अमृतस्वरूप भी है।

उसे प्राप्त करके मनुष्य सिद्ध बन जाता है, अमर बन जाता है और तृप्त हो जाता है।

उसे प्राप्त करके वह न किसी चीजकी इच्छा करता है, न शोक करता है, न द्वेष करता है, न आसक्त होता है, न उसे उत्साह होता है।

उसे जानकर मनुष्य मदोन्मत्त हो जाता है, स्तब्ध हो जाता है और अपने-आपमें आनंद लेता है।

भक्तिका उपयोग कामनाओंकी पूर्तिके लिये नहीं किया जा सकता क्योंकि उसका स्वरूप है निरोध (त्याग)।

निरोध है लौकिक और वैदिक व्यापारोंका त्याग।

भक्तिमें अनन्यता और उसके विपरीतमें उदासीनता।

अनन्यता है अन्य समस्त आश्रयोंका त्याग।

लोक और वेदके कामोंमें जो कुछ उसके अनुकूल है उसका आचरण करना।

जबतक निश्चय दृढ़ न हो जाय तबतक शास्त्रोंके निषेधादेशोंका पालन करना।

अन्यथा पतनकी संभावना है।

इस प्रकार वह सोलह देशोंका पर्यटन कर वापिस घर लौटा और बड़े गर्वके साथ कहने लगा, "इस पृथ्वीपर मेरे समान गुणी मनुष्य और कौन है ?"

एक दिन भगवान् बुद्धने उस ब्रह्मचारीको देखा और उन्होंने सोचा कि उसे ऐसी कलाकी शिक्षा देनी चाहिये जो उन सबसे, जो उसने अबतक सीखी हैं, अधिक महान् हो। वे एक बूढ़े श्रमणका रूप धारण करके उस नवयुवकके पास गये। उनके हाथमें एक भिक्षापात्र था।

"आप कौन हैं ?" ब्रह्मचारीने प्रश्न किया।

"मैं एक ऐसा मनुष्य हूं जो अपने-आपको वशमें रख सकता है।"

"आपके कहनेका तात्पर्य ?"

"एक धनुर्वेदी तीर चलाना जानता है," बुद्धने उत्तर दिया, "एक नाविक नाव खेता है; एक शिल्पी अपनी देख-रेखमें मकान बनवाता है; पर एक ज्ञानी स्वयं अपने ऊपर शासन करता है।"

"वह कैसे ?"

"यदि कोई उसकी प्रशंसा करे तो उसका मन चंचल नहीं होता; यदि कोई उसकी निंदा करे तो भी वह शांत रहता है; वह सर्वहितके महा-नियमके अनुसार कर्म करता है और इस प्रकार वह सदा शांतिमें निवास करता है।"

अच्छे बच्चो ! तुम भी अपने ऊपर शासन करना सीखो। और अगर अपने स्वभावको वशमें करनेके लिये तुम्हें कठोर लगाम लगानेकी भी आवश्यकता पड़े, तो शिकायत मत करो।

एक चंचल युवा घोड़ा जो धीरे-धीरे संयत हो जायगा उस मूक काठके घोड़ेसे कहीं अच्छा है जो जैसा उसे बना दिया गया है सदा वैसा ही रहता है और जिसपर केवल हंसी-खेलके लिये ही लगाम चढ़ायी जाती है।

२

साहस

तुम पानीमें गिर पड़ते हो। वह विपुल जलराशि तुम्हें भयभीत नहीं करती। तुम हाथ-पांव मारते हो, साथ ही तैरना सिखानेवाले अपने शिक्षकको धन्यवाद देते हो। तुम लहरोंपर काबू पा लेते हो और बच निकलते हो। तुम बहादुर हो।

तुम सो रहे थे। "आग-आग" की आवाजने तुम्हें चौंका दिया। तुम पलंगसे कूद पड़ते हो; सामने तुम्हें अग्निकी लाल-लाल लपटें दिखायी देती हैं। तुम उस घातक भयसे त्रस्त नहीं होते। धुंएं, चिनगारियों और लपटोंके बीचमेंसे होकर तुम भाग निकलते हो और अपने-आपको बचा लेते हो। यह साहसका काम है।

बहुत दिन हुए मैं इंगलैण्डमें बच्चोंका एक स्कूल देखने गयी थी। वहां तीनसे सात वर्ष तकके छात्र थे। उनमें लड़के-लड़कियां दोनों थे। वे सब बुनने, चित्रकारी करने, कहानी सुनने-सुनाने, गाने आदिमें लगे हुए थे।

उनके अध्यापकने मुझसे कहा : "हम अब अग्निसे बचनेका अभ्यास करेंगे। सचमुच आग नहीं लगी है, पर बच्चोंको यह सिखाया जा रहा है कि किस प्रकार खतरेका संकेत पाते ही झटपट उठकर भाग जाना चाहिये।"

उसने सीटी दी। उसी दम बच्चोंने अपनी पुस्तकें, पेंसिलें और बुनने-की सलाइयां छोड़ दीं और उठकर खड़े हो गये। दूसरे संकेतपर सब, एकके पीछे एक, बाहर खुलेमें आ गये। कुछ ही क्षणोंमें श्रेणी खाली हो गयी। उन छोटे बच्चोंने आगके खतरेका सामना करना और साहसी बनना सीखा था।

तुम किसकी रक्षाके लिये तैरे थे? अपनी रक्षाके लिये।

तुम किसको बचानेके लिये आगकी लपटोंमेंसे गुजरे थे? अपने-आपको बचानेके लिये।

बच्चोंने किसके बचावके लिये आगके भयका सामना किया था? अपने बचावके लिये।

प्रत्येक अवस्थामें साहसका प्रदर्शन अपनी रक्षाके लिये किया गया था। क्या यह अनुचित था? बिलकुल नहीं। अपने जीवनकी रक्षा करना और उसे बचानेके लिये वीरताका होना सर्वथा उचित है। परन्तु एक वीरता इससे भी बड़ी है: वह वीरता, जो दूसरोंकी रक्षाके लिये काममें लायी जाती है।

*
**

मैं तुम्हें माधवकी वह कहानी सुनाती हूं जो भवभूतिने लिखी थी।

माधव मंदिरके बाहर घुटने टेके बैठा था कि उसने एक दुःख-भरी आवाज सुनी।

अंदर घुसनेके लिये उसने रास्ता पा लिया और देवी चामुंडाके कक्षमें झांका।

ये प्रवृत्तियां पहले तरंग जैसी होती हैं, फिर समुद्र जैसी बन जाती हैं।

वस्तुत: कौन मायाको पार करता है ?

जो कुसंगतिका त्याग करता है; जो महानुभावोंकी सेवा करते हैं, और जो ममतारहित है।

जो निर्जन स्थानमें जाता है, जो लोक-बंधनका उन्मूलन करता है, जो तीनों गुणोंसे परे हो जाता है, जो योग-क्षेमका त्याग करता है।

जो कर्मफलोंका और कर्मोंका भी त्याग करता है और निर्द्वन्द्व बन जाता है।

जो वेदोंका भी त्याग करता है और अखंड अनुराग प्राप्त करता है।

वस्तुतः वह तर जाता है, वह पार होता है और दूसरोंको पार कराता है।

प्रेमका स्वरूप अनिर्वचनीय है।

गूंगेके स्वाद जैसा।

किसी विरले पात्र-विशेषमें वह प्रकट होता है।

यह प्रेम गुणरहित है, कामनारहित है, प्रतिक्षण वर्धमान है, अविच्छिन्न है, सूक्ष्मतर अनुभव स्वरूप है।

इस प्रेमको प्राप्त करके व्यक्ति केवल उसे ही देखता है, उसे ही सुनता है, उसके बारेमें ही बात करता है और उसीके बारेमें सोचता है।

तीन गुणोंके अनुसार, अथवा आर्त आदि भेदके अनुसार तीन प्रकारके भक्त होते हैं।

हर प्रकारमें सबसे पहला गुण सबसे श्रेष्ठ होता है।

बाकी तरीकोंकी अपेक्षा भक्ति सबसे सुलभ है।

स्वयं प्रमाणस्वरूप होनेके कारण वह दूसरे प्रमाणोंपर निर्भर नहीं करती।

और क्योंकि वह शांतिरूप और परमानंद रूप है।

(भक्तको) लोकहानिका विचारतक नहीं करना चाहिये। क्योंकि वह अपना और वैदिक तथा लौकिक कर्मोंका अर्पण कर चुका है।

जबतक तुम्हें भक्ति न प्राप्त हो तबतक लोकव्यवहारका त्याग नहीं करना चाहिये, बल्कि निष्कामभावनासे उसे भक्तिका साधन बनाना चाहिये।

नारी-सौंदर्यका वर्णन, धर्मविरुद्ध ग्रंथों तथा भक्तिके शत्रुओंके चरित्रका श्रवण न करो।

अभिमान और दंभका त्याग करना चाहिये।

सभी आचार उनको अर्पित कर, काम-क्रोध और अभिमानको भी उनके काममें लाना चाहिये।

(प्रेमी, प्रेम और प्रेमपात्र) तीनोंको एक करके, अपने-आपको नित्य-दास या नित्य प्रेयसी भावसे प्रेम ही करना चाहिये।

वे ही भक्त श्रेष्ठ हैं जिनके जीवनमें यही एकमात्र लक्ष्य है।

वे अवरुद्ध कण्ठसे, रोमांचित होकर सजल नेत्रोंके साथ एक-दूसरेके साथ प्रेम-भक्तिकी बातें करते हैं और पृथ्वीपर अपने कुलोंको पवित्र करते हैं।

ऐसे भक्त तीर्थोंके सुतीर्थ हैं। वे सभी कर्मोंको सुकर्म बना देते हैं और शास्त्रोंको सत्-शास्त्र।

वे भगवान्के साथ तन्मय हैं।

उनके पूर्वज प्रमुदित होते हैं। देवता आनंदसे नाचते हैं। और यह पृथ्वी सनाथ हो जाती है।

उन भक्तोंमें जाति, विद्या, रूप, कुल, धन, और पेशे आदिका भेद नहीं है।

क्योंकि वे भगवान्‌के हैं।

व्यर्थके वाद-विवादसे उन्हें बचना चाहिये।

वाद-विवादोंमें बाहुल्य होता और अनिश्चिति होती है।

भक्तशास्त्रका मनन करना चाहिये और ऐसे काम करने चाहिये जो भक्तिको बढ़ाते हों।

सुख, दुःख, इच्छा, लाभकी खोज इत्यादिका त्याग करके, सब कुछ काल-पर छोड़कर, आधे क्षणको भी व्यर्थ न जाने देना चाहिये।

अहिंसा, सत्य, शौच, दया, आस्तिकता आदि चरित्रोंका पालन करना चाहिये।

सारे समय एकाग्रता और निश्चिततताके साथ भगवान्‌का भजन करना चाहिये।

आराधित होनेपर वे शीघ्र ही अपने स्वरूपको प्रकट करते हैं और भक्तोंको अपना अनुभव कराते हैं।

तीनों कालोंमें भक्ति ही श्रेष्ठ है।

महात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, सख्या-सक्ति, कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयासक्ति और परमविरहासक्ति, इस तरह एक रूप होते हुए भी भक्तिके ग्यारह रूप हैं।

इस प्रकार कुमार, व्यास, शुकदेव, शाण्डिल्य, गर्ग, विष्णु कौण्डिन्य, शेष, उद्धव, आरुणि, बलि, हनुमान, विभीषण आदि भक्तिके आचार्य लोगोंकी निंदा या प्रशंसाकी परवाह किये विना बातें करते हैं।

जो व्यक्ति शिवके आदेशपर बोली गई इस नारदोक्तिपर विश्वास करता है और श्रद्धा रखता है वह इस प्रियतमको प्राप्त करता है।

कैवल्योपनिषद्

अथाश्वलायनो भगवन्तं परमेष्ठिनं परिसमेत्योवाच —

अधीहि भगवन् ब्रह्मविद्यां वरिष्ठां
सदा सद्भिः सेव्यमानां निगूढाम्।
ययाऽचिरात् सर्वपापं व्यपोह्य
परात्परं पुरुषमुपैति विद्वान् ॥१॥

तब अश्वलायन भगवान् परमेष्ठीके पास गये और बोले: "भगवन्! मुझे वह वरिष्ठ ब्रह्मविद्या प्रदान करनेकी कृपा करें जिसकी सहायता सत्पुरुष हमेशा लेते हैं, जो पूरी तरह छिपी हुई है और जिसके द्वारा विद्वान् शीघ्र ही सब पाप त्याग कर परात्पर पुरुषको प्राप्त करते हैं

तस्मै स होवाच पितामहश्च —

"श्रद्धाभक्तिध्यानयोगादवेहि" ॥२॥

और वस्तुतः पितामहने उन्हें उत्तर दिया: "श्रद्धा, भक्ति, ध्यान और योग-द्वारा उनको जानो।

न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः।
परेण नाकं निहितं गुहायां विभ्राजते यद्यतयो विशन्ति ॥३॥
वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्वाः।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥४॥

कर्मद्वारा, प्रजाद्वारा, धनद्वारा नहीं, बल्कि त्यागद्वारा महात्मा अमरता प्राप्त करते हैं। जो स्वर्गसे भी ऊंचे हैं, जो गुहामें बैठे देदीप्यमान हैं, उनको वे

अभीप्सु प्राप्त करते हैं जिन्होंने वेदान्त विद्याद्वारा उस वस्तुकी सुनिश्चिति-को जीत लिया है, और जिनकी सत्ता संन्यासयोगके कारण शुद्ध हो गयी है। ब्रह्मलोकमें परान्तकालमें, वे सब परामृतद्वारा मुक्त किये जायंगे।

विविक्तदेशे च सुखासनस्थः शुचिः समग्रीवशिरःशरीरः।
अन्त्याश्रमस्थः सकलेन्द्रियाणि निरुध्य भक्त्या स्वगुरुं प्रणम्य।
हृत्पुण्डरीकं विरजं विशुद्धं विचिन्त्य मध्ये विशदं विशोकम् ॥५॥
अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तरूपं शिवं प्रशान्तममृतं ब्रह्मयोनिम्।
तमादिमध्यान्तविहीममेकं विभुं चिदानन्दमरूपमद्भुतम् ॥६॥
उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात् ॥७॥

निर्जन स्थानमें, गर्दन, सिर और शरीरको तानकर, सुखकर आसनसे बैठे हुए, उच्चतम जीवन बिताते हुए, सभी इन्द्रियोंका नियंत्रण करते हुए, भक्तिके साथ अपने गुरुको प्रणाम करके, हृदयके पापरहित और पवित्र कमलको देखते हुए और अपने केन्द्रमें उस सत्तापर एकाग्र होकर जो हर प्रकारके काम और शोकसे मुक्त है; तथा उनका ध्यान करके जो अचिन्त्य, अव्यक्त, अनन्तरूप, शिव, प्रशान्त और अमर हैं, जो स्वयं ब्रह्माके मूल हैं, जो आदि, मध्य और अन्तसे विहीन हैं, अद्वितीय हैं, जो विभु और चिदानन्द हैं, अरूप हैं और अद्भुत हैं, जो उमाके साथी हैं, परमेश्वर, प्रभु, त्रिलोचन, नीलकण्ठ और प्रशान्त हैं; मुनि सभी प्राणियोंके स्रोतको, सर्वसाक्षीको और उनको प्राप्त करते हैं जो सारे तमस्से परे हैं।

शिवकी संगिनी, उमा, वह ब्रह्मविद्या, कहलाती हैं जो आवेग, प्रेम इत्यादि आक्रमणकारियोंसे शिवकी रक्षा करती है। वे देवी भवानी कहलाती हैं और शिव अर्धनारीश्वर।

' जिनकी संगिनी उमा हैं, और जो उस ध्यानके द्वारा ज्यादा ऊंचे उठ गये हैं जिसका वर्णन किया गया है, वे अविद्यासे विहीन हैं। प्रबुद्धके लिये वह सब कुछके स्व हैं, वे ही सब कुछ हैं। जब शिवकी उमाके साथ कल्पना की जाती है तो वे सगुण कहलाते हैं। वे ही निर्गुण भी हैं।

स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्।
स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः ॥८॥

वे ब्रह्मा हैं, वे शिव हैं, वे इन्द्र हैं, वे अक्षर हैं, परम प्रभु हैं, स्वराट् हैं। वे ही विष्णु हैं, वे प्राण हैं। वे काल हैं, वे अग्नि और चन्द्रमा हैं।

स एव सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं सनातनम्।
ज्ञात्वा तं मृत्युमत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये ॥९॥

वे ही सर्वस्व हैं, भूत, भव्य और सनातन हैं। उनको जानकर व्यक्ति मृत्युसे परे चला जाता है। विमुक्तिका दूसरा मार्ग नहीं है।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
सम्पश्यन् ब्रह्म परमं याति नान्येन हेतुना ॥१०॥

सभी प्राणियोंमें स्थित आत्माको और आत्मामें स्थित सभी प्राणियोंको देखकर व्यक्ति परम ब्रह्मको प्राप्त करता है — किसी दूसरे रास्तेसे नहीं।

आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्।
ज्ञाननिर्मथनाभ्यासात् पापं दहति पण्डितः ॥११॥

आत्माको अरणि और प्रणवको उत्तरारणि करके, पण्डित अपने पाप जला देता है।[1]

स एव मायापरिमोहितात्मा शरीरमास्थाय करोति सर्वम्।
स्त्रियन्नपानादिविचित्रभोगैः स एव जाग्रत्परितृप्तिमेति ॥१२॥

वही अवगुण्ठित रूपमें परिमोहित आत्मा शरीरमें बैठकर सब कुछ करती है। वही जाग्रत होनेपर स्त्री, अन्न, मदिरा इत्यादि विभिन्न उपभोगों-द्वारा तृप्ति प्राप्त करती है।

स्वप्ने स जीवः सुखदुःखभोक्ता स्वमायया कल्पितविश्वलोके।
सुषुप्तिकाले सकले विलीने तमोऽभिभूतः सुखरूपमेति ॥१३॥

---

[1]काष्ठसे अग्निमंथन करके यज्ञाग्नि जलानेका विधान है। यहां ध्यान-की प्रक्रियाकी तुलना इसीसे की जा रही है।

प्राचीन समयमें ब्रह्मदत्त नामका एक राजा बनारसमें राज करता था। उसके एक शत्रुने, जो किसी और देशका राजा था, अपने हाथीको युद्धकी शिक्षा दी थी।

लड़ाईकी घोषणा हो गयी। वह विशाल हाथी अपने स्वामीको बनारस की चार-दीवारीतक ले आया।

दीवारोंके ऊपरसे उन घिरे हुए सैनिकोंने जलते हुए गोलों और गोफन द्वारा फेंके हुए पत्थरोंकी उनपर झड़ी लगा दी। इस भयानक वर्षाके सामने एक बार तो हाथी पीछे हट गया। पर जिस आदमीने उसे सधाया था वह उसकी ओर दौड़ा और बोला:

"अरे हस्ती, तू तो वीर है; वीरके समान कार्य कर और फाटकको नीचे पटक दे।"

इन शब्दोंसे उत्साहित होकर उस विशाल जन्तुने फाटकपर एक जोरका प्रहार किया, अंदर प्रवेश किया और इस प्रकार राजाको विजय दिलायी।

इसी प्रकार, साहस बाधाओं और कठिनाइयोंको जीतकर विजयका पथ प्रशस्त करता है।

*
**

देखो, किस प्रकार सबको, चाहे वे मनुष्य हों या पशु, बढ़ावेके शब्दोंसे सहायता पहुंचायी जा सकती है।

मुसलमानोंकी एक सुन्दर पुस्तकमें अबू सईद नामके एक वीर-हृदय कविकी कहानी आती है जो इस बातका अच्छा उदाहरण है।

यह जानकर कि वह ज्वरसे पीड़ित है उसके मित्रगण उसका हाल-चाल पूछने उसके घर गये। कविके लड़केने द्वारपर उनका स्वागत किया; उसके होठोंपर मुस्कुराहट थी क्योंकि रोगी पहलेसे अच्छा था। वे लोग उसके कमरेमें पहुंचे और बैठ गये। अपने सदैवके हंसोड़ स्वभावके अनुसार उसे बोलते सुनकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। अब गर्मी बढ़ चली थी, उसे नींद आ गयी; और सब लोग भी सो गये।

सायंकाल तक सब उठ बैठे। अबू सईदकी ओरसे अभ्यागतोंका जलपानसे सत्कार किया गया और कमरेको सुवासित करनेके लिये धूपबत्तियां जला दी गयीं।

अबू सईदने कुछ समयतक प्रार्थना की, और फिर उठकर एक छोटी-सी स्वरचित कविता पढ़नी आरंभ की:

"दुःखके समय निराश न हो, क्योंकि प्रसन्नताकी एक घड़ी तेरे सारे दुःख-दर्द भगा देगी।

मरुभूमिकी तेज गर्म हवा बह रही है, पर वह ठंडे समीरमें बदल सकती है।

काली घटा उमड़ रही है, पर वह जल-प्रलय करनेसे पहले ही हट सकती है।

आग लग सकती है, पर तुम्हारे संदूकों और पेटियोंको छुए बगैर बुझ भी सकती है।

शोक आता है, पर चला जाता है। इसलिये जब विपत्ति आये तो धैर्य न छोड़ो।

समय सब चमत्कारोंसे बड़ा है। ईश्वरकी कृपापर भरोसा रखते हुए तुम्हें सदा अपने कल्याणकी आशा करनी चाहिये।"

इस आशासे भरी हुई सुन्दर कविताको सुनकर सब प्रसन्नता और बल अनुभव करते हुए अपने-अपने घर लौट गये। इस प्रकार एक रोगी-मित्र-ने अपने स्वस्थ-मित्रोंकी सहायता की।

यह सच है कि जो लोग स्वयं साहसी होते हैं वे ही दूसरोंको साहस बंधा सकते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे एक जलती मोमबत्ती अपनी लौसे दूसरी मोमबत्तियोंको जला सकती है।

वीर बालको और बालिकाओ, तुमने यह कहानी पढ़ी है। तुम दूसरों-को साहस बंधाना सीखो और स्वयं भी साहसी बनो।

३

प्रफुल्लता

किसी वर्षाप्रधान देशके एक बड़े शहरमें एक दिन तीसरे पहर मैंने सात-आठ गाड़ियां बच्चोंसे भरी देखीं। वे लोग सवेरे ही गांवोंकी ओर खेतोंमें खेल-कूदके लिये गये थे। पर वर्षाके कारण उन्हें समयसे पहले ही वापिस लौटना पड़ा।

फिर भी बच्चे हंस रहे थे, गा रहे थे और आने-जानेवालोंकी ओर

चंचलता-भरे इशारे कर रहे थे। इस निराशाके समय भी उन्होंने अपनी प्रसन्नता बनाये रखी थी। एक उदास होता तो दूसरे अपने गानों-से उसे प्रफुल्लित कर देते। काम-काजमें व्यस्त राहगीर जब उनकी खिलखिलाहट सुनते तो उस क्षण उन्हें ऐसा प्रतीत होता मानों आसमानकी काली घटा कुछ कम गहरी हो गयी हो।

खुरासानका एक राजकुमार था। नाम था अमर। खूब ठाट-बाटकी उसकी जिंदगी थी। एक बार जब वह लड़ाईमें गया तो उसके रसोईघर-के सामानको लेकर तीन-सौ ऊंट भी उसके साथ गये। दुर्भाग्यसे, एक दिन वह खलीफा इस्माइलद्वारा बंदी बना लिया गया, पर दुर्भाग्य भूखको तो नहीं टाल सकता। उसने पास खड़े अपने मुख्य रसोइयेको, जो एक भला आदमी था, कहा: "भाई, कुछ खानेको तो तैयार कर दे।"

उस बेचारेके पास केवल एक मांसका टुकड़ा बचा था। उसने उसे ही देगचीमें उबलनेको रख दिया और भोजनको कुछ अधिक स्वादिष्ट बनानेके लिये स्वयं किसी साग-सब्जीकी खोजमें निकला।

इतनेमें एक कुत्ता वहांसे गुजरा। मांसकी सुगंधिसे आकर्षित हो उसने अपना मुंह देगचीमें डाल दिया। पर भापकी गर्मी पा वह तेजीसे और कुछ ऐसे बेढंगे तरीकेसे पीछे हटा कि देगची उसके गलेमें अटक गयी। अब तो घबराकर वह उसके समेत ही वहांसे भागा।

अमरने जब यह देखा तो उच्च स्वरमें हंस पड़ा। उसके अफसरने, जो उसकी चौकसीपर नियुक्त था, उससे पूछा: "यह हंसी कैसी? इस दुःखके समय भी तुम हंस रहे हो?"

अमरने तेजीसे भागते हुए कुत्तेकी ओर इशारा करते हुए कहा: "मुझे यह सोचकर हंसी आ रही है कि आज प्रातःतक मेरी रसोईका सामान ले जानेके लिये तीन-सौ ऊंटोंकी आवश्यकता पड़ती थी और अब उसके लिये एक कुत्ता ही काफी है।"

अमरको प्रसन्न रहनेमें एक स्वाद मिलता था यद्यपि दूसरोंको प्रसन्न रखनेके लिये वह उतना प्रयत्नशील नहीं था। फिर भी उसके विनोदी स्वभावकी प्रशंसा किये बिना हम नहीं रह सकते। यदि वह इतनी गंभीर विपत्तिमें भी प्रसन्न रह सकता था तो क्या हम मामूली चिंता-फिकरमें मुंह-पर एक मुस्कराहट भी नहीं ला सकते?

*
**

फारस देशमें एक स्त्री थी जो शहद बेचनेका व्यवसाय करती थी।

उसकी बोलचालका ढंग इतना आकर्षक था कि उसकी दूकानके चारों ओर ग्राहकोंकी भीड़ लगी रहती थी। इस कहानीको सुनानेवाला कवि कहता है कि यदि वह शहदकी जगह विष भी बेचती तो भी लोग उसे शहद समझकर ही उससे खरीद लेते।

एक ओछी प्रकृतिवाले मनुष्यने जब देखा कि वह स्त्री इस व्यवसायसे बहुत लाभ उठा रही है तो उसने भी इसी धंधेको अपनानेका निश्चय किया।

दूकान तो उसने खोल ली, पर शहदके सजे-सजाये बर्तनोंके पीछे उसकी अपनी आकृति कठोर ही बनी रही। ग्राहकोंका स्वागत वह सदा अपनी कुटिल भृकुटिसे करता था। इसलिये सब उसकी चीज छोड़ आगे बढ़ जाते थे। कवि आगे कहता है कि एक मक्खी भी उसके शहदके पास फटकनेका साहस न करती थी। शाम हो जाती, पर उसके हाथ खाली-के-खाली ही रहते। एक दिन एक स्त्री उसे देखकर अपने पतिसे बोली : "कड़ुआ मुख शहदको भी कड़ुआ बना देता है।"

क्या वह शहद बेचनेवाली स्त्री केवल ग्राहकोंको आकर्षित करनेके लिये ही मुस्कराती थी? हम तो यही सोचते हैं कि उसकी प्रफुल्लता उसके भले स्वभावका एक अंग थी। संसारमें हमारा कार्य केवल बेचना और खरीदना ही नहीं है; हमें यहां एक-दूसरेको मित्र बनाकर रहना है। उस भली स्त्रीके ग्राहक यह जानते थे कि वह एक दूकानदारिनके अतिरिक्त कुछ और भी थी — वह संसारकी एक प्रसन्नमुख नागरिक थी।

*
**

नीचे मैं जिन महापुरुषका हाल बताने लगी हूं उनकी प्रसन्नता ऐसे प्रवाहित होती थी जैसे एक सुन्दर उद्‌गमसे पानीकी धारा। इन्हें न लाभ की इच्छा थी, न ग्राहकोंकी, ये प्रसिद्ध गौरवशाली राम थे।

रामने दस शीश और बीस भुजाओंवाले रावणको मारा था। मैं तुम्हें इस कहानीका प्रारंभ पहले बता चुकी हूं। यह युद्ध बड़ा भयानक और कई जातियोंके बीचमें था। हजारों बंदरों और रीछोंने रामकी सेवामें आपने प्राणोंकी आहुति दे दी थी। उनके शत्रु-राक्षसोंके शवोंके भी ढेर लगे थे। उनका राजा निर्जीव पृथ्वीपर पड़ा था। ओह! उसे मार गिराना कितना कठिन था! बार-पर-बार करके रामचंद्रजीने उसके दस सिरों और बीस भुजाओंको काटा था, पर शीघ्र ही वे पुनः उत्पन्न हो जाते थे! उनको लगातार, एकके बाद एक, इतने अंग काटने पड़े कि अंत

शेष नहीं रहता। यह अवस्था मनोमणि भी कहलाती है। वह अवस्था जब मनमें पूर्ण एकरूपताका राज्य हो।

इस प्रकारके मनका निरोध इस तरह बताया गया है:

> निरस्तविषयासङ्गं संनिरुद्धं मनो हृदि।
> यदा यात्युन्मनीभावं तदा तत्परमं पदम् ॥४॥

> जब मन, विषयभोगोंके एकाधिकारसे मुक्त होकर, हृदयमें संयत होकर आत्मिक पुरुषको प्राप्त करता है तब परम यात्रा होती है।

जब मन पूर्ण रूपसे हृत्कमलमें संनिरुद्ध एकाग्र हो तब वह आत्मिक पुरुषको प्राप्त करता है, वह जीव और ब्रह्मके तादात्म्यकी चेतनाको प्राप्त करता है, 'ब्रह्माहम्' की चेतना। आत्माकी अवस्थाकी यह प्राप्ति मनकी एकाग्रताका परिणाम है वास्तवमें इससे ऊंची प्राप्त करने लायक कोई चीज नहीं है।

यहां, सच्चे पुरुषकी, यानी, आत्माकी प्राप्तिकी ओर ले जानेवाली मनोनिरोधकी प्रक्रियाका अध्ययन करना रुचिकर होगा। श्री गौडपाद आचार्य, अद्वैतप्रकरणमें (माण्डूक्य उपनिषद्के बारेमें इनकी टीकाका एक भाग), इस प्रक्रियाका वर्णन करनेसे पहले, अनुभूतिद्वारा तर्क करते हुए यह प्रमाणित करते हैं कि आत्मा ही सब कुछ है और फलस्वरूप आत्माको छोड़कर मनका कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं है।

इस उद्देश्यको मनमें रखते हुए आचार्य यह स्थापित करते हैं कि द्विविध विश्वका निर्गम अद्वितीय सत्से उत्पन्न होता है। निम्नलिखित भागमें वह कहते हैं:

> "जिस प्रकार स्वप्नमें मन मायाके द्वारा ऐसे व्यवहार करता है मानों वह द्विविध हो, उसी प्रकार जाग्रतमें भी मन उसी तरह व्यवहार करता है मानों वह द्विविध हो।"

वास्तवमें, दार्शनिकोंका कहना है कि स्वतंत्र सत्ता माना जानेवाला मन ही द्विविधताके संपूर्ण जगत्में उस रूपमें परिवर्तित होता है जिसे हमारी चेतनाकी जाग्रत तथा स्वप्नावस्थाके रूपमें जाना जाता है। फिर भी, तथ्य कुछ भिन्न है। सत्, ब्रह्म, स्वयं आत्मा, मायाके द्वारा, सत्ताके विविध

रूप धारण करता है जिनमेंसे एक रूप है मन। और स्वयं मन सत्के सिवाय कुछ नहीं है, क्योंकि वह ब्रह्मका एक रूपमात्र है। उदाहरणके लिये, जब रज्जुको सांप समझा जाता है तो सांपका वास्तविक अस्तित्व तभीतक है जबतक उसे रज्जुके साथ एक समझा जाता है। उसी प्रकार मनका अस्तित्व भी तब है जब वह आत्माके साथ, उस निरपेक्ष चेतनाके साथ एक हो जो परम सद्वस्तु है, और जिसपर अपने सभी रूपोंसहित मनका सारा ढांचा खड़ा है।

यहां हम यह प्रश्न कर सकते हैं कि वह मन अपने-आपको संपूर्ण विश्वमें कैसे रूपान्तरित कर सकता है जो परम सत् या आत्माके साथ एक है? इस प्रश्नका उत्तर उस स्वप्नावस्थाका आह्वान करके मिल सकता है जिसमें अद्वितीय मन सत्ताके विविध रूपोंमें परिवर्तित होकर द्रष्टा और विविध दृश्योंमें स्थित है। सभी दार्शनिक यह मानते हैं कि स्वप्नमें चेतनाके सामने जो द्विविध जगत् प्रकट होता है वह मायाद्वारा रचित एक भ्रममात्र है, ठीक उसी तरह जिस तरह सांप रज्जुका माया रूप है। जाग्रत और स्वप्न, दोनों अवस्थाओंमें मायाद्वारा ही मन सत्ताके विभिन्न रूप धारण करता है।

यह मानकर हमें यह नहीं समझ बैठना चाहिये कि विश्वके दो कारण हैं: मन और ब्रह्म। क्योंकि, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, मन केवल आत्माकी मायामय अभिव्यक्ति है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार सांप रज्जुकी मायामय अभिव्यक्ति है। और यह होते हुए वह वास्तवमें आत्माके साथ एक है और फलस्वरूप अनन्य और अद्वितीय है। आचार्य कहते हैं:

> "और स्वप्नमें, अनिवार्य रूपसे, अद्वैत मन द्वैत रूपमें प्रकट होता है। उसी प्रकार जाग्रतमें अद्वैत द्वैत प्रतीत होता है।"

वास्तवमें, मन ही स्वप्नकी प्रकट द्वयात्मकताके रूपमें अभिव्यक्त होता है। स्वप्नकी अवस्थामें, जैसा कि हर एक जानता है, सचमुच केवल विज्ञान या चेतनाका ही अस्तित्व है। हाथियोंके जैसे न ठोस विषय होते हैं, न ही उन्हें देखनेके लिये जाग्रत नेत्र इत्यादि बोधकी इन्द्रियां, उसी प्रकार जाग्रतमें, मन, जो आत्मा — पूर्ण रूपसे सत्य और एकमात्र सत्ता — के साथ एक है, संवेदन तथा इन्द्रियोंके रूपमें अभिव्यक्त होता है। इस तरह मन, विज्ञान या चेतनापर आधारित केवल एक मायामय अभिव्यक्ति है, क्योंकि विज्ञान ही बिना परिवर्तनके जाग्रत तथा स्वप्न, दोनों अवस्थाओंमें उपस्थित होनेके कारण पूर्ण रूपसे सत्य है। और इस प्रकारका मन —

वह मन जो सचमुच आत्माके साथ एक हो — इस द्विविध जगत्के रूपमें प्रकट होता है। अतः कारणोंकी अनेकता नहीं है।

हम पूछ सकते हैं: "इसका क्या प्रमाण है कि जिस प्रकार रज्जु माया-द्वारा सांपके रूपमें अभिव्यक्त होती है उस प्रकार केवल मन द्विविधताके जगत्में अपने अन्दर भेद करता है और केवल अविद्यापर ही आधारित है?" प्रश्नका उत्तर इस प्रकार दिया गया है:

> "मनके द्वारा देखी गयी यह द्विविधता, चाहे वह चल हो या अचल, मनकी अमानसिक अवस्थामें द्विविधता नहीं दीखती।"

इस स्थापनाको अनुमामकी शरण लेकर उसके दो पहलुओंद्वारा (अन्वय और व्यतिरेक) इस तरह प्रमाणित किया जा सकता है। जब मन विभिन्न स्तरोंमेंसे गुजरता है तब द्विविधताका यह जगत् दृष्ट होता है। यह है अन्वय, वैसे ही जैसे निष्कर्षात्मक प्रमाणकी हालतमें होता है: जब मिट्टी उपस्थित हो तभी हम घटको देख सकते हैं, फिर भी सारमें वह मिट्टीसे बढ़कर कुछ नहीं है। यहां जिस स्थापनाको प्रमाणित करना है वह यह है कि सारी द्विविधता मन और मन ही है। और कथित प्रमाण-के अनुसार जगत्का अस्तित्व तभी होता है जब मनका अस्तित्व हो।

यह है व्यतिरेकका प्रमाण : जब मन नहीं होता तो द्विविधताका कोई जगत् नहीं होता। निष्कर्षात्मक प्रमाणका यह नकारात्मक पहलू परीक्षण-के फलस्वरूप आनेवाले तथ्योंद्वारा इंगित है। समाधिमें मन मन नहीं रहता। वह उस अवस्थाको प्राप्त करता है जो उन्मनी-भाव कहलाती है। इस तरह वह अपने वस्तुनिष्ठ और आत्मनिष्ठ चक्करोंसे नियंत्रित है और वैराग्य, निरन्तर ध्यान तथा वास्तविक और अवास्तविकमें भेद करनेके ज्ञानद्वारा अ-मनकी अवस्थामें आ गया है। उदाहरणके लिये, जब रज्जुको सांप समझा जाता है तब वास्तवमें वह जो है उसके ज्ञान-द्वारा वह सर्प असर्पकी अवस्थामें चला जाता है। स्वप्नके बिना सुषुप्ति-में मन लयकी ओर जाता है। समाधि और सुषुप्ति, दोनों (अवस्थाओं) में द्विविधताका मन दृष्टिगोचर नहीं होता। और जो चीज दृष्टिगोचर न हो उसके अस्तित्वके बारेमें कुछ नहीं कहा जा सकता। भेद तभी वर्त-मान कहलायगा जब हम उसे देख सकें : **मानाधीन मेयसिद्धिः**। इस तरह समाधि और सुषुप्तिमें, जहां मनका अस्तित्व नहीं होता, द्विविधता-का जगत् दृष्टिगोचर नहीं होता, फलस्वरूप उसका अस्तित्व नहीं होता।

पूर्वकथित तर्कके विरोधमें यह कहा जा सकता है कि समाधि और

सुषुप्तिमें परीक्षित न होनेके कारण, मनका इन दोनों अवस्थाओंमें भी अस्तित्व होना चाहिये, क्योंकि मन अपने-आपमें वास्तविक है और हमेशा बना रहता है। इस आपत्तिका खण्डन इस प्रकार किया गया है:

> "जब आत्माकी वास्तविकतापर विश्वासके द्वारा मन आगे कल्पना नहीं कर पाता, तब वह अ-मन बन जाता है, दृश्यके अभावमें कुछ एकदम नहीं देखता।"

जैसा कि श्रुतिने, मिट्टीका उदाहरण देकर बताया है, आत्मा ही सत्य है। सभी परिवर्तनशील रूप नाममात्र हैं, होठसे निकले शब्दमात्र हैं; केवल वही सत्य है जिसे हम मिट्टी कहते हैं।"

जैसे मिट्टी ही वास्तविक मानी जाती है, क्योंकि घट और दूसरे मिट्टीके अवास्तविक बर्तनोंमें वही स्थिर है, वैसे ही यह मानना होगा कि आत्मा ही सत्य है क्योंकि वह सभी अनात्म मानी जानेवाली वस्तुओंमें वास करती है। जब शास्त्रों तथा आचार्योंकी शिक्षा मनके लिये यह सत्य स्पष्ट कर देती और विचारके विषयोंको असत् और अवास्तविक ठहराती है तो मन उनके बारेमें और कुछ नहीं सोचता। उदाहरणके लिये, ईन्धनके अभावमें आग नहीं जल सकती। इसलिये इन्द्रियोंकी अनुपस्थितिमें मन द्रष्टा, दृष्टि और दृश्यमें भेद नहीं कर सकता। इस तरह अ-मनकी अवस्था प्राप्त करता है।

हमारे साधारण विचारमें, व्यवहारमें मन मन है क्योंकि वह संकल्पों, विचारों और कल्पनाओंसे संगठित है। अपने अस्तित्वके लिये ये विचार विचारके विषयपर निर्भर हैं, और फलस्वरूप पहले विचार दूसरोंकी अनुपस्थितिमें भी अस्तित्व रख सकते हैं। जब यह विश्वास हो कि सब कुछ आत्मा, केवल आत्मा है, तो चूंकि मनमें विचारोंके विषयोंका अभाव है इसलिये मन मन नहीं रहता। इसलिये चेतनाके रूपमें जो देदीप्यमान है वह आत्माके सिवाय कुछ नहीं है। इसलिये विवेक-रहित व्यक्तिकी दृष्टिसे हम जिसे मन कहते हैं उसका अस्तित्व नहीं होता।

जब वह मन, जिसका अस्तित्व भ्रमके कारण है, इस तरह अ-मन बन जाता है, जब उसका अस्तित्व नहीं रहता, या फिर जब उसे अवास्तविक समझा जाता है, तब मनसे मुक्त होकर आत्मा एकाकी वास करता है। इस अवस्थाका वर्णन ज्ञानी इस तरह करते हैं:

> "अचिंत्य, अजात, ज्ञान ज्ञेयसे अविच्छेद्य है। ज्ञेय ब्रह्म अजात

> और शाश्वत है। अजातके द्वारा अजात जानता है (जाना जाता है)।"

तब वह ज्ञान आता है जो कल्पनामें खो नहीं जाता और फलस्वरूप अजन्मा होता है। वह किसी जन्म या सभी प्राणियोंकी तरह दूसरे परिवर्तनोंके लिये बाधित नहीं होता। ब्रह्मवादियोंका कहना है कि यह ज्ञान, जो केवल चेतना ही है, ब्रह्म, परम सद्वस्तुके सिवाय और कुछ नहीं है। वास्तवमें, जिस तरह आगमें कभी गर्मीका अभाव नहीं होता उसी तरह ज्ञानीका ज्ञान कभी नहीं चुकता। अतः, परिणामस्वरूप श्रुतिका कहना है: "ब्रह्म ही ज्ञान और आशीर्वाद हैं, सद्वस्तु, ज्ञान और अनंतता ब्रह्म हैं!" इसी ज्ञानमें ज्ञानी ब्रह्म है। जिस प्रकार गर्मी आगसे अविच्छेद्य है उसी प्रकार ज्ञान ब्रह्मसे अविच्छेद्य है। क्योंकि वह अजात है इसलिये वह अमर है, नित्य है।

अब जो आयेगा उससे हम इसका विरोध कर सकते हैं: अगर सारा द्वैतवाद यह माने कि मन अवास्तविक या अस्तित्वहीन है, तो फिर कुछ रहता ही नहीं जिसके द्वारा आत्मा जाना जा सके, और फलस्वरूप आत्माका कोई भी ज्ञान संभव नहीं है। फिर भी श्रुतिका कहना है: "वह केवल मनके द्वारा भी जाना जा सकता है।" और कहा यह गया था कि मन अवास्तविक या अस्तित्वहीन है।

यह विरोध उस ज्ञानीद्वारा सूचित है जो कहता है: "अजातद्वारा अजात जाना जाता है। जो ज्ञान बच रहता है वह अज्ञानके रूपमें दिखाया गया है और यह अजात ज्ञान आत्माका सार है। इस ज्ञानके द्वारा, अजात — वह आत्मा जिसे जानना चाहिये — अपने-आपको जानता है। कह सकते हैं कि आत्मा एक इकाई है और केवल विज्ञान या साररूपमें चेतनाद्वारा संगठित है, ठीक उसी तरह जैसे सूर्य सारतः अमोघ प्रकाशकी इकाई है। आत्मा स्वयं चेतना है। चमकनेके लिये आत्माको किसी भी बाहरी ज्ञानकी जरूरत नहीं। यानीं, आत्माका ज्ञान केवल इस चेतनाके द्वारा संभव है जो अपने सारमें अंतर्निहित है। मनकी तरह कोई भी चीज, जो उसके बाहर हो, इस उद्देश्यके लिये जरूरी नहीं है।

यह समझ नहीं बैठना चाहिये कि विचारके हर एक क्रिया-कलापके अभावसे होनेवाली समाधि सुषुप्तिसे मिलती-जुलती है।

इस प्रकार नियंत्रित मनका व्यवहार — हर प्रकारकी कल्पनासे मुक्त और ज्ञानसे संपन्न होकर स्पष्ट रूपसे (योगियोंके लिये) दृष्टिगत होता है। सुषुप्तिमें बात अलग है। यह एक ही बात बिलकुल नहीं है।

हमने ऊपर कहा है: जब हमें इस महान् सत्यमें यह दृढ़ विश्वास हो कि केवल आत्मा ही सत्य है, तब ऐसा कोई बाहरी विषय नहीं रहता जिसपर मन चिंतन कर सके। बाहरी विषयोंके अभावमें सोचनेके लिये कुछ भी न होनेके कारण, मन सोचना ही बंद कर देता है। मन उस आगकी तरह शांत हो जाता है जिसके पास अपने पोषणके लिये ईंधन न हो। तब कहा जाता है कि वह निरुद्ध बन गया है, पूर्ण रूपसे नियंत्रित और तटस्थ हो गया है। कहा जाता है कि उसने समाधि प्राप्त कर ली है। और पहले कहा जा चुका है कि जब मन अ-मन बन जाय तब द्वैत अनुपस्थित होता है। क्योंकि वह गतिशील मनके सिवाय और कुछ नहीं है।

जब मनमें विवेक हो, जब यह विश्वास हो कि आत्मा ही सत्य है और बाकी सब कुछ असत्य, तो वह पूर्ण रूपसे नियंत्रित और हर प्रकारकी कल्पनासे मुक्त हो जाता है, यह अवस्था विचारके विषयकी अनुपस्थितिसे आती है।

तब फिर मन प्रत्यागात्मामें परिवर्तित होता है। मनकी इस विशिष्ट अवस्थासे केवल योगी ही परिचित होते हैं। वह है विद्वत्प्रत्यक्ष, केवल ज्ञानी, प्रबुद्ध व्यक्ति ही उसे अंतर्दृष्टिद्वारा जानते हैं।

(पूर्व पक्ष) — चूंकि ज्ञानका सुषुप्ति और निरोधकी अवस्थाओंमें समान रूपसे अभाव रहता है इसलिये मनका व्यवहार निरोधमें जैसा है ठीक वैसा ही सुषुप्तिमें भी होता है। निरोधमें मनकी अवस्था चेतनासे उतनी ही दूर रहती है जितनी सुषुप्तिमें। और फलस्वरूप निरोधकी अवस्थामें कोई ऐसी चीज नहीं बचती जिसके बारेमें योगी सचेतन हो सके।

(उत्तर पक्ष) — सुषुप्तिकी अवस्थामें और निरोधकी अवस्थामें मनका व्यवहार बिलकुल अलग-अलग तरहका होता है।

सुषुप्तिकी अवस्थामें मन अविद्याके भ्रमके, तमस्के काबूमें होता है। और तब उसमें वासनाएं उत्पन्न होती हैं जो मनमें छिपी रहती हैं और उन सब क्रिया-कलापोंका स्रोत हैं जो बहुत ही खराब परिणामोंकी ओर ले जाते हैं। इसके विपरीत, निरोधकी अवस्थामें विद्या और बाकी सभी कीटाणु जो दुःखद परिणामोंकी ओर ले जाते हैं, इस विश्वासकी आग-में नष्ट हो जाते हैं कि केवल आत्मा ही सत्य है और हर प्रकारके दर्दको उत्पन्न करनेवाला रजस् पूर्ण रूपसे तटस्थ हो जाता है। तब मन अपनी ठीक अवस्थामें पूरी तरह स्वतंत्र होता है, क्योंकि उसने ब्रह्मकी सच्ची अवस्था प्राप्त कर ली है। इस तरह मनकी अवस्था सुषुप्तिमें जैसी होती है निरोधमें उससे अलग होती है। और यद्यपि यह जाननेमें कठिन है फिर भी यह एक ऐसी चीज है जिसके प्रति हम चेतनाके द्वारा सचेतन बन सकते हैं।

सुषुप्ति और समाधिके भेदका गौड़पाद इस तरह वर्णन करते हैं:

> "सुषुप्तिमें मन लय प्राप्त करता है। जब वह नियंत्रित होता है तब लय प्राप्त नहीं करता। यही हैं शंकारहित ब्रह्म चारों ओरसे ज्ञानसे देदीप्यमान्। वे अजात, निद्रारहित, स्वप्न-रहित, अनाम, अरूप, सदा देदीप्यमान्, सर्वज्ञ आडंबरहीन हैं।"

सुषुप्तिमें मन लय प्राप्त करता है, यानी अपने जीवाणुओंमें, अपने प्रथम कारणोंमें, सभी वासनाओं, अविद्याकी प्रवृत्तियों और दूसरे हानिकर तत्त्वों सहित तमस्‌के अचेतन तथा कोलाहलपूर्ण तत्त्वमें परिवर्तन होता है। इसके विपरीत निरोधकी अवस्थामें, विवेकके कारण, इस विश्वासके कारण कि आत्मा ही सत्य है, मन नियंत्रित रहता है। वह लय प्राप्त नहीं करता। वह अपने जीवाणु, कोलाहलपूर्ण तमस्‌में फिरसे डूब नहीं जाता। वह अपने सूक्ष्मतम रूपमें भी, कारणके रूपमें भी अस्तित्व नहीं रखता। फल-स्वरूप यह कहना ठीक ही है कि निरोध और सुषुप्तिकी अवस्थाओंमें मन-का व्यवहार अलग होता है।

जब समाधिकी अवस्थातक प्राप्त मन, अविद्यासे उत्पन्न दोनों दुर्दशाओं-से मुक्त हो जाय — प्रत्यक्ष ज्ञानकी दुर्दशा और इन्द्रियोंकी दुर्दशासे — तब मन सच्चा, परम, अद्वितीय ब्रह्म बन जाता है। फलस्वरूप वह सच-मुच निडर होता — क्योंकि द्वैतका वह बोध नहीं रहता जो डरका कारण है — अचल ब्रह्म, और उसे जानकर मनुष्यको किसीसे डरनेकी जरूरत नहीं। वह ज्ञानके रूपमें प्रकट होता है जो आत्माका प्रधान स्वरूप है। कहने-का मतलब यह कि आत्मा ठोस इकाई है, हम कह सकते हैं, वह पूर्ण रूपसे चेतनासे संगठित आकाशकी तरह सबको भेदनेवाला है, यही सच्चा ब्रह्म है। यह अजात: वास्तवमें कहा यह गया था कि अविद्या हर प्रकार-के जन्मका कारण है। जब, उदाहरणके लिये, रज्जुको सर्प समझ लिया जाता है तो निश्चित रूपसे अविद्या ही डोरीमें सांपको जन्म देती है। और अब अविद्याका स्थान इस विश्वासने लिया है कि आत्मा ही सच्ची है। अविद्या, जो हर प्रकारके जन्मका कारण है इस तरह निरोधकी अवस्थामें अनुपस्थित रहती है। इसलिये यह (निरोधकी अवस्था) बनी रहती है, चमकती है और जन्मका शिकार नहीं होती, न अन्दर और न बाहर। जिस कारण अविद्याके अभावसे वह अजात है — उसी कारण वह अनिद्र है। क्योंकि यहां निद्राका मतलब है स्वयं अविद्या, बिना आरंभकी माया। वह अस्वप्न है, निद्रारहित है, क्योंकि

वह मायाकी निद्रासे पूरी तरह जाग गया है और अद्वैत आत्मा बन गया है। वह अनाम और अरूप है: ब्रह्म न नामोद्दिष्ट है, न ही निरूपित। श्रुति कहती है: उसे प्राप्त न कर पानेके कारण जहांसे शब्द और मन भी लौट आते हैं, हमपर लागू होनेवाले नाम या रूप विशुद्ध अज्ञानके परिणाम हैं, ज्ञानद्वारा उन्हें बुझा दिया गया था, ठीक उसी तरह जब डोरीको सांप समझा गया था और सांपको ज्ञानद्वारा नष्ट किया गया था। इसके अतिरिक्त यह सदा ज्योतिर्मय है। यह वह प्रकाश है जो हमेशा जलता है। क्योंकि वह कभी न अदृष्ट होता है, न ही गलत रूपसे देखा जाता है। वह न अभिव्यक्ति प्राप्त करता है, न दृष्टिसे ओझल होता है। कहा यह जाता है कि वह तब अदृष्ट होता है जब जीवमें या उपाधि (अविद्या)से सम्बद्ध व्यक्तिमें अहम् "मैं हूं" की कोई सचेतनता न उठे। तब आत्मा दृष्टिसे ओझल होता है। जब उसी जीवमें "मैं वाहक हूं," की सचेतनता उठती है — जब आत्माको गलत रूपसे देखा जाता है — तब कहा जाता है कि आत्मा अभिव्यक्तिमें प्रवेश करती है। चूंकि ब्रह्म-में अभिव्यक्ति और इस प्रकारके अन्तर्धानकी समान रूपसे अनुपस्थिति होती है इसलिये वह सदा देदीप्यमान होते हैं।

पूर्वपक्ष इसका विरोध कर सकता है: कहते हैं कि श्रुति या आचार्यसे शिक्षित होनेसे पहले, ब्रह्मा दृष्टिगत नहीं होते, और कहते हैं कि शिक्षित होनेके बाद दृष्टिगत होते हैं। अतः ब्रह्म दृष्टि और अ-दृष्टिका शिकार हैं।

हम उत्तर देते हैं: नहीं, क्योंकि बोध और अबोध रात और दिनकी तरह हैं। जिस प्रकार अपने-आपमें सूर्यके लिये रात और दिन नहीं हो सकते। यह शुद्ध रूपसे कल्पनाएं हैं, और एक और धारणासे उत्पन्न होती हैं जो जानती हैं कि सूरज उगता और अस्त होता है। उसी प्रकार अपने-आपमें ब्रह्मके लिये न बोध हो सकता है, न अबोध। यह उपाधिसे उत्पन्न कल्पनाएं मात्र हैं। बिना उपाधिके ब्रह्म हमेशा देदीप्यमान होते हैं।

इसके अतिरिक्त, तमस्, जो अविद्या या अज्ञानके परिवारका ही है, इस बातका कारण है कि ब्रह्म हमारे अन्दर हमेशा देदीप्यमान नहीं होते। ब्रह्मकी दृष्टिसे तमस्के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। और अपने-आपमें ब्रह्म सनातन हैं, सदा देदीप्यमान चेतना हैं। इसी कारण ब्रह्म सर्वस्व हैं और स्वयं ज्ञानी हैं।

उस ज्ञानी मनुष्यके लिये जिसका मन निरोध प्राप्त कर चुका है और फलस्वरूप जिसने ब्रह्मकी अवस्था पा ली है, कुछ करना बाकी नहीं रहता। जहां निरुपाधिक ब्रह्मका सवाल है वहां किसी भी प्रकारकी पूजा-पद्धतिकी जरूरत नहीं रहती। भागवत सत्ताके निकट जानेके लिये केवल उसी

व्यक्तिको समाधि या पूजाके दूसरे रूपोंमें आश्रय लेना पड़ता है जिसने आत्माको प्राप्त नहीं किया, क्योंकि वह उसे अपनेसे बाहर समझता है। उस ज्ञानीके लिये कुछ भी करना बाकी नहीं रहता जिसकी अविद्याको नष्ट कर दिया गया है और जो ब्रह्म बन गया है। उसके लिये ब्रह्म शाश्वत, पवित्र, सचेतन और स्वतंत्र हैं।

हर प्रकारका व्यवहार केवल अविद्याकी अवस्थामें होता है। विद्याकी अवस्थामें अविद्या पूर्ण रूपसे अनुपस्थित रहती है और फलस्वरूप कोई भी व्यवहार उपस्थित नहीं रह सकता। जो अवास्तविक पाया गया है उसकी अवस्थितिके कारण व्यवहारका बाहरी रूप संभव है।

आचार्य समाधिको प्राप्त ज्ञानीका वर्णन इस प्रकार करते हैं:

> "हर प्रकारके वाद-विवादसे मुक्त, हर प्रकारके विचारसे परे,
> पूर्ण रूपसे शान्त, सदा देदीप्यमान, समाधिमें निर्विकार, निडर।"

कहा गया था कि निरोधकी अवस्थामें जो चीज बाहर चमकती है, यानी, अभिव्यक्त होती है उसका न नाम होता है, न रूप इत्यादि। अतः उसमें वाक् शक्ति नहीं होती—कोई इन्द्रिय नहीं होती। वह हर प्रकारके विचारके परे उठ चुकी होती है इसलिये उसमें बुद्धि या अन्तःकरण नहीं होता जिसके द्वारा वह सोच सके। इसलिये वह बिलकुल शुद्ध होती है। उसमें इन चीजोंका लेशमात्र भी नहीं होता, यहांतक कि उनका स्रोत, (अविद्या), अपने सबसे निम्न रूपमें भी नहीं होता। बोधके हर विषयसे मुक्त, वह पूर्ण रूपसे शान्त है। अपने सचेतन आत्माकी तरह वह सदा ज्योतिर्मय है। इसे समाधि कहा जाता है क्योंकि वह प्रज्ञाद्वारा प्राप्त हो सकती है या इसलिये कि वह परम आत्मा है जिसमें जीव और उपाधियोंको विश्राम मिलता है। निरोध-समाधिकी यह अवस्था केवल अच्छे कर्मोंके विशाल समूहके परिणामस्वरूप ही प्राप्त होती है।

निरोध-समाधि प्राप्त करनेपर और कुछ भी करना बाकी नहीं रहता, ऐसा आचार्य कहते हैं:

> "जहां कोई भी विचार न हो वहां कोई चिंता या मुक्ति
> (उद्धार) नहीं हो सकती। आत्मामें एकाग्र ज्ञान होता है,
> अजन्मा, एकरूपता प्राप्त कर चुका होता है।"

चूंकि ब्रह्म ही निरोधमें अभिव्यक्त होते हैं और हम उन्हें निर्विकार

और निर्मम समझते हैं, परिणामस्वरूप, इस अवस्थामें, ब्रह्ममें न तो चिंता हो सकती है, न मुक्ति। जहां परिवर्तन या परिवर्तनकी संभावना होती है, केवल वहीं चिंता और मुक्ति संभव हैं। लेकिन दोनोंमेंसे कोई भी ब्रह्ममें नहीं रह सकता। ब्रह्ममें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता क्योंकि वहां दूसरी कोई चीज नहीं जो परिवर्तन ला सके। और चूंकि ब्रह्ममें खंड नहीं होते इसलिये परिवर्तनकी संभावना भी नहीं हो सकती। ब्रह्ममें किसी भी प्रकारका कोई विचार नहीं हो सकता। जब मन इस प्रकार मन न रहे तब चिंता और मुक्ति कैसे हो सकती है? जिस तरह ईंधन न रहनेपर गर्मी आगमें ही एकाग्र होती है उसी प्रकार बोधके विषयके अभावमें, ज्ञान केवल आत्मामें ही एकाग्र हो जाता है, इस विश्वासके प्रति जाग्रत् हो जाता है कि आत्मा ही सत्य है। इस प्रकारकी चेतना अजन्मा है और निरपेक्ष तादात्म्य प्राप्त कर चुकी है।

इस प्रकार बताया गया है कि किस तरह निर्विकार सर्वव्यापी ब्रह्म वास्तवमें अजात हैं, यद्यपि मायाके कारण ऐसा प्रतीत होता है कि वह अभी यह है और अभी कुछ और। आत्मा ही वास्तविक है—इस विश्वासकी तुलनामें बाकी सब कुछ नीच और तुच्छ है। इस ज्ञानतक पहुंच चुकनेके बाद ब्राह्मण सब समाप्त कर चुकता है और उसके करनेके लिये कुछ बाकी नहीं रहता।

इस प्रकार, ब्रह्म, परम सद्वस्तु, अंतरात्मा, कूटस्थ, सत्, चित्, आनंद, सद्वस्तुके ज्ञानद्वारा, उनके अद्वैतपर दृढ़ विश्वासद्वारा प्राप्त हो सकते हैं। फिर भी जो लोग प्रबुद्ध नहीं हैं और अपने-आपसे संतुष्ट रहते हैं वे मन नहीं लगाते। इस प्रकारके लोगोंके बारेमें आचार्य कहते हैं:

> "सभी योगियोंके लिये शुद्ध योग, अर्थात्, सत्यको देखना मुश्किल होता है। वास्तवमें योगी इससे डरते हैं, और अभयमें भय देखते हैं।"

उपनिषदोंमें निरोध अस्पर्श योगके नामसे प्रसिद्ध है। इसका किसी भी चीजके साथ संपर्क नहीं होता। यह अस्पर्श है क्योंकि इसमें अद्वैत आत्माका अंतर्भास होता है। वर्ण या धर्मका, पुण्य या पंकका आत्मापर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। और यह योग है क्योंकि जीव एक प्रकारसे ब्रह्मके साथ एक हो जाता है। जिसके पास वेदांतिक ज्ञान नहीं है, उस योगीके लिये इसे प्राप्त करना बहुत कठिन है। श्रवण, मनन और निदिध्यासनके क्रमविकासमें अंतर्निहित परीक्षाओंको पार करनेके बाद ही

योगी उसे प्राप्त करता है। गुरुसे पुरातन ज्ञान सीखना, उनकी सीखपर चिंतन-मनन करना, इत्यादि — वह क्रमविकास जिसके द्वारा यह विश्वास प्राप्त किया जा सकता है कि आत्मा ही सद्वस्तु है।

अभीप्सुओंका श्रेष्ठ वर्ग उन लोगोंसे बना है जो मन, इंद्रियों और बाकी सब कुछको ब्रह्मपर आरोपित कल्पनामात्र मानते हैं। ठीक उसी तरह जैसे रज्जुको सर्प समझनेपर सांप कल्पनामात्र होता है। वे स्वयं ब्रह्म हैं और उन्होंने जो सच्चा ज्ञान प्राप्त किया है उसके परिणामस्वरूप ब्रह्म हैं। साहस, अनंत शांति, और मोक्ष, यानी, अभिव्यक्त और अद्वितीय मंगल उनकी अपनी सत्तामें है किसी और पर निर्भर नहीं है। ये ज्ञानी हैं जीवनमुक्त, क्योंकि इन्होंने मुक्ति प्राप्त कर ली है। अतः उनके लिये पथपर आगे बढ़ना जरूरी नहीं है।

ये सब योगी जो अच्छे कर्म करके सीधे मार्गपर चलते हैं, जिन्होंने अपनी बुद्धि शुद्ध कर ली है, लेकिन जो निरपेक्ष सत्यको कम या अधिक दूरकी मान्यताओंद्वारा पकड़े रहते हैं, उनको मनके उस स्वतंत्र अस्तित्वके बारेमें विश्वास हो गया है जो आत्मासे बिलकुल अलग होते हुए भी आत्माके संपर्कमें हैं। जिनको यह विश्वास नहीं है कि आत्मा ही सद्वस्तु है, वे केवल मनके नियंत्रणद्वारा ही साहस, साक्षात्कार और परम सद्वस्तु प्राप्त कर सकते हैं। अभीप्सुओंके इस वर्गके बारेमें आचार्य कहते हैं:

> "कष्टका उन्मूलन, सच्चे ज्ञान और अभंग शान्तिकी तरह सभी योगियोंके लिये साहस मनके नियंत्रणपर निर्भर है।"

जो आत्मा और अनात्मामें भेद नहीं कर सकता, उसके लिये कष्टका निरोध केवल मनके नियंत्रणद्वारा ही प्राप्त हो सकता है। क्योंकि जब-तक मन रहता है तबतक कष्टका होना भी जरूरी है। मन हमेशा आत्माके सम्पर्कमें रहता है, परिवर्तनका शिकार होता है। इसके अति-रिक्त, आत्मामें एकाग्रता, जिसे साहस या निर्भीकता कहा गया है, पूर्ण रूपसे मनके नियंत्रणपर निर्भर है। उसी प्रकार यह अनन्त शान्ति, जिसे मोक्ष कहा जाता है, मनके नियंत्रणपर निर्भर है।

फलस्वरूप जिन्होंने ज्ञानकी इस परम्परागत प्रक्रियाका अनुसरण किया है उनकी पद्धतिके अनुसार सभी योगियोंको मनके नियंत्रणमें आश्रय लेना चाहिये। हम जान-बूझकर सभी योगी कहते हैं क्योंकि वे भटके हुए योगी भी जो अगर अपनी पुरानी दिशासे मुड़कर सीधे मार्गपर काम शुरू करना चाहें तो इस लक्ष्यतक पहुंच सकते हैं। जो अपनी आत्माकी

भलाई चाहता है उसे पहले मनपर विजय प्राप्त करनी होगी। और मनपर विजय यद्यपि कठिन है फिर भी संभव होनी चाहिये क्योंकि शास्त्रमें भी इसपर विजय पानेके लिये कहा गया है और ज्ञानी अपने अनुभवके साक्षी हैं।

कृतसंकल्प और हर्षित हृदयसे अभीप्सुको मनके नियंत्रणके लिये प्रयास करना चाहिये।

> "जिस प्रकार एक-एक बूंद करके कुशके सिरेसे समुद्रको खाली करनेकी क्रिया होती है उसी प्रकार बिना थके मनके नियंत्रणको सिद्ध करना चाहिये।"

फिर भी यह न समझ बैठना चाहिये कि केवल अथक प्रयास ही मनके नियंत्रणमें काफी सफलता पा लेता है। अगर मनको जीतनेकी यही उचित पद्धति होती तो शास्त्रोंमें बतायी गयी दूसरी पद्धतियोंकी कोई जरूरत न होती। इसके अतिरिक्त जो मनुष्य सत्यका अन्तर्भासिक साक्षात्कार प्राप्त करनेके उद्देश्यसे समाधिका अभ्यास करता है उसके पथमें विविध प्रकारकी बाधाएं आती हैं। उन्हें इस प्रकार गिनाया जाता है: लय, विक्षेप, कषाय (सांसारिक पदार्थोंमें अनुराग) और सुखराग। इसलिये उपरिलिखित पद्धतियोंकी शरण लेकर मनको इन अवस्थाओंमें गिरनेसे रोकना चाहिये। वरना साधना या अभ्यासका लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सकता।

नवदीक्षितको शास्त्रोंका अध्ययन करना चाहिये, फिर उनपर चिन्तन और मनन करना चाहिये। इस पद्धतिद्वारा, मनको नियंत्रित करनेके लिये अनगिनत प्रयासोंसे आगे बढ़कर वह सत्यका ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

श्री गौड़पाद आचार्य हमें बताते हैं कि फन्दे क्या होते हैं और उनसे कैसे कतराया या बचा जाय:

> "जब मन कामके कारण विक्षिप्त हो तब विज्ञानद्वारा उसे नियंत्रित करना चाहिये। और तब भी जब वह लयमें शान्त हो। यही है काम, यही है लय।"

जब मन कामनाओं या कामना-विषयोंसे उद्विग्न हो तब नवदीक्षितको निम्नलिखित पद्धतिमें शरण लेकर उसे नियंत्रित करना चाहिये और उसे आत्मामें वास करनेके लिये बाधित करना चाहिये। इसी प्रकार,

उसे मनको लय या मानसिक आलस्यमें प्रवेश करनेसे रोकना चाहिये — जो सुषुप्तिके समान है — यद्यपि इस अवस्थाकी विशेषता है हर प्रकारके कष्टकी अनुपस्थिति। लय या मानसिक क्रिया-कलाप, कामके जितना ही बुराईका कारण है और फलस्वरूप, मनको इस अवस्थामें गिरनेसे उसी तरह रोकना चाहिये जैसे कामसे दूर हटाना चाहिये।

विक्षेप और लयसे बचने या कतरानेके लिये आचार्य ये तरीके बताते हैं:

> "हमेशा यह सोचते हुए कि सब कुछ कष्ट है, उसे कामके सुखसे मनका दमन करना चाहिये। हमेशा यह मानकर कि सब कुछ 'अजात' है, वह किसी जात वस्तुको नहीं देखता।
>
> "लयमें वह चित्तको जाग्रत् करे। जब वह (मन) उद्विग्न हो तब वह उसे और अन्दरकी तरफ खींचे। तब वह जाने कि यह सकषाय (वस्तुओंमें अनुरक्त) है। जब वह सन्तुलित हो तो उसे विक्षुब्ध न करे।"

हमेशा यह सोचते हुए कि अविद्याद्वारा उत्पन्न हर प्रकारका द्वैत केवल कष्टका स्रोत है, उसे (मनको) भोग-विषयोंसे दूर, जिनकी ओर वह काम-द्वारा ले जाया गया था, अन्दरकी तरफ खींच लेना चाहिये। इन पद्धतियों-के नाम हैं वैराग्य-भावना : सांसारिक सुखोंकी क्षणभंगुरता और उनके बुरे या निम्न स्वरूपके बारेमें सोचते हुए उनके प्रति उदासीनता, और भाव-शून्यताका अभ्यास : हमेशा शास्त्रों और गुरुके उन उपदेशोंपर ध्यान देते हुए, जो इस सिद्धान्तपर केन्द्रित होते हैं कि अजात या ब्रह्म सब कुछ है — यानी ज्ञानाभ्यासद्वारा, शास्त्रोंके उपदेशोंके चिन्तन और मननद्वारा लगातार अभ्यास। वह ब्रह्मके विपरीत द्वैतके जगत्को, किसी भी जात चीजको वह कभी नहीं देखता, क्योंकि उसका अस्तित्व ही नहीं है।

इस तरह ज्ञानाभ्यास और वैराग्य-भावनाकी द्विविध पद्धतिद्वारा नव-दीक्षित लय, निद्रा या सुषुप्तिमें गिरे हुए मनको जाग्रत् करता है ताकि मन आत्माको अनात्मासे अलग रूपमें देखनेके लिये व्यस्त रहे। ताकि जब वह कामनाओं या भोगोंके कारण उद्विग्न हो तब वह तुरन्त उनसे अपने विचारको खींच ले।

यद्यपि लगातार अभ्यासद्वारा मन लयसे जाग्रत् होता है और ज्ञाना-भ्यास तथा वैराग्य-भावनाकी द्विविध पद्धतिद्वारा उसका भटकना बन्द हो जाता है, फिर भी पूर्ण सन्तुलन, ब्रह्मकी परम अवस्था प्राप्त करनेसे

वह अभी दूर है। इस मध्यवर्ती अवस्थामें मन सकषाय कहलाता है क्योंकि उसमें अभी राग है जो बाहरी वस्तुओंकी दिशामें उसके क्रिया-कलापका कारण है। इस अवस्थासे, जैसा कि लय और विक्षेपकी अवस्थासे, विशेष प्रयासद्वारा, उस पद्धतिद्वारा जिसे सम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं, मनको खींच लेना चाहिये और फिर पूर्णतया सन्तुलित अवस्था प्राप्त होती है— असम्प्रज्ञात समाधि।

एक बार मन द्विविध समाधिद्वारा, पूर्ण सन्तुलनकी ओर, परम सत्ताकी ओर बढ़ जाय तो फिर उसे विक्षुब्ध नहीं होना चाहिये। इसके प्रति बहुत सावधानी बरती जानी चाहिये कि वह इन्द्रिय-विषयोंकी ओर फिर न भागे।

एक और बाधा है जिसके बारेमें आचार्य कहते हैं:

> "इसमें वह सुखका स्वाद न ले। बिना आसक्तिके वह ज्ञानमें शरण ले। जब चित्त बाहरकी तरफ जाने लगे तो प्रयासके साथ वह उसे स्थिर बनाये।"

जो योगी समाधि प्राप्त करना चाहता है उसे समाधिकी अवस्थामें अभिव्यक्त होते हुए सुखका स्वाद नहीं लेना चाहिये। सविकल्प समाधिमें जो तीव्र सुख अनुभव होता है उसके प्रति भी अभीप्सा रखनेसे उसे (मनको) रोकना चाहिये। तब उसे क्या करना चाहिये? सुखके लिये अभीप्सा किये बिना उसे विवेकमें शरण लेनी चाहिये। उसे विचारमें वास करना चाहिये कि सविकल्प समाधिमें जो सुख अनुभव होता है वह अविद्यासे उत्पन्न भ्रममात्र है और फलस्वरूप गलत है और जो कुछ आकस्मिक है वह केवल भ्रम है, जैसे सांपकी कल्पना रस्सीमें की जाती है। इस तरह योगी अपने विचारको इस प्रकारके सुखके लिये भी अभीप्सा करनेसे रोकेगा। यद्यपि मन वैराग्यद्वारा सुखके लिये आकांक्षा करनेसे नियंत्रित है और समाधिके अभ्यासद्वारा स्थिरतासे आत्मामें वास करना सीख गया है, फिर भी जब वह सुख-विषयोंके लिये आकांक्षाद्वारा अपने स्वरूप और आवारागर्दीको ठीक साबित करनेकी कोशिश करता है तब पहले निर्दिष्ट ज्ञानाभ्यास और वैराग्य जैसी पद्धतियोंकी शरण लेकर, संभवनीय आवारागर्दीके विरुद्ध प्रयास करके उसे नियंत्रित करना चाहिये। संक्षेपमें अभीप्सुको अपने मनको सम्प्रज्ञात समाधिसे और अधिक ऊपर उठाकर असम्प्रज्ञात समाधिके अभ्यासद्वारा परब्रह्मके साथ एक कर देना चाहिये और स्वयं पूर्ण ब्रह्मके जितना पवित्र बनकर वास करना चाहिये। मन ब्रह्मसे अभिन्न कब बनता है? आचार्य कहते हैं:

> "जब चित्त न विलीन हो न उद्विग्न, जब यह अचल हो और अभिव्यक्त न होता हो, तब वह ब्रह्म बनता है।"

जब मनने पूर्ण संतुलनकी अवस्था प्राप्त कर ली हो, जो असम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है, तो आचार्य उसका इस तरह वर्णन करते हैं:

> "स्वयंभू, शान्त, आशिषसे संपन्न, अवर्णनीय; यह सबसे बड़ा आशिष है! अजात, ज्ञेय अजातकी तरह; उसे वे सर्वज्ञ कहते हैं।"

कितनी देरतक नियंत्रणकी प्रक्रिया चलनी चाहिये? श्रुति कहती है:

> **तावदेव निरोद्धव्यं यावद्धृदि गतं क्षयम्।**
> **एतज्ज्ञानं च मोक्षं च अतोऽन्यो ग्रंथविस्तरः ॥५॥**

> उसे तबतक नियंत्रित रखना चाहिये जबतक कि वह हृदयमें विलीनता न प्राप्त करे।

जब मन हृत्कमलमें विलीन हो जाय, जब इन्द्रियोंका स्थान यह ज्ञान ले ले कि 'मैं ब्रह्म हूं', तब नियंत्रणकी कोई जरूरत नहीं रहती।

यह कैसी बात है कि यहां ज्ञान या ध्यानका निर्देश नहीं किया गया? केवल मनका नियंत्रण ही निर्दिष्ट है। लेकिन केवल नियंत्रण मात्र मानव-जातिका उद्देश्य नहीं हो सकता। उत्तरमें श्रुति कहती है:

> "यही है ज्ञान और ध्यान। बाकी सब कुछ वाद-विवाद और अतिविस्तारसे बढ़कर कुछ नहीं है।"

मनके नियंत्रणमें शामिल है ज्ञान, साक्षात्कार, इस तथ्यके प्रति यह सचेतनता कि 'मैं ब्रह्म हूं'। यही नियंत्रण ज्ञानकी ओर ले जाता है। ज्ञान जो शास्त्रोंके गंभीर अध्ययनका परिणाम होता है और अन्ततः इस निरोधका रूप लेता है। योग भी कुछ ऐसा ही है। उसमें भी ध्यान आता है, इसपर ध्यान कि 'मैं ब्रह्म हूं'। संक्षेपमें, निरोध योग और सांख्यका चरम बिन्दु है। और निरोध ही है जो बाकी साधनाओं और आध्यात्मिक अभ्यासोंका आधार है। बाकी सब कुछका, मनके नियंत्रणके

सिवाय बाकी सभी क्रिया-कलापोंका मूल्य वाद-विवादकोंके कलहोंसे बढ़कर कुछ नहीं है। जो व्यक्ति शास्त्रोंका निरन्तर अध्ययन करता है वह विद्वत्ता प्राप्त कर सकता है लेकिन मुख्य परिणाम एक फूंकसे बढ़कर नहीं होता। इस तरह ज्ञानी सामान्य पाण्डित्यसे सन्तुष्ट रहेगा। कोई भी चीज, सिवाय उसके जो मनके नियंत्रणमें और उसकी प्रक्रियाओंको जाननेमें सहायता देती हो, सच्चे सुखकी ओर एकदम नहीं ले जाती, चाहे वह कितनी भी कम क्यों न हो। दान, आराधना, तपश्चर्या, अभिषेक, तीर्थ-यात्रा, वेद और शास्त्र — यह सब उस व्यक्तिके लिये व्यर्थ है जिसका मन शान्त न हो। मनके नियंत्रणद्वारा हर एक व्यक्ति अपनी सभी अभीप्साओंको सिद्ध कर सकता है — चाहे इहलोकमें हो या परलोकमें। इस नियंत्रणके बिना कोई भी सचमुच अच्छे मानव-उद्देश्यको प्राप्त नहीं हो सकता।

कहा जा चुका है कि जब मन पूरी तरह नियंत्रित हो जाता है तब मनुष्यका ऊंचे-से-ऊंचा उद्देश्य सिद्ध हो जाता है। कैसे?

> नैव चिन्त्यं न चाचिन्त्यमचिन्त्यं चिन्त्यमेव च।
> पक्षपातविनिर्मुक्तं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥६॥

> जिसे न कभी सोचना पड़ता है, न भूलना, जो अविचार-णीय होते हुए भी पूर्ण रूपसे विचारयोग्य है, वही है हर प्रकारके पक्षपातसे मुक्त। तब फिर वह ब्रह्म बन जाता है।

अब प्राप्त की गयी सबसे ऊंची अवस्थाको किसी बाहरी चीजके रूपमें न देखना चाहिये जो मनके अनुकूल रहेगी। न ही उसे घृणास्पद वस्तु-की तरह विचारसे दूर हटाना चाहिये। मुंहके किसी शब्दसे उसकी बात नहीं की जा सकती। और जबतक हम संसारमें डूबे हुए हैं तबतक उसका विचार भी नहीं कर सकते। हम उसका केवल अमर 'स्व'के रूपमें ही विचार कर सकते हैं। जिस प्रकार व्यक्ति कोई ऐन्द्रिय सुख अनुभव करता है उस प्रकार उसे अनुभव नहीं किया जा सकता। फिर भी वह सनातन अतीत, देदीप्यमान आशिषसे भिन्न नहीं है जो हर प्रकारसे ध्यानके योग्य है। वह सच्ची चीज है जिसे सत्य, बुद्धि और अनन्त आशिष कहा गया है। निरोधकी अवस्थामें जब मन हर प्रकारके क्रिया-कलापसे मुक्त होता है तब वह सभी प्राणियोंमें एक ही ब्रह्म हो जाता है। जब मन, मित्रता या शत्रुतासे उत्पन्न हर प्रकारके पक्षपातसे मुक्त होता है तब

मनुष्य बहुत कष्टके बिना ब्रह्म बन जाता है।

कह सकते हैं कि यह छन्द इस प्रश्नका उत्तर है: यह कैसे संभव है कि मन ऐसी अवस्था कभी नहीं प्राप्त करता जहां हर प्रकारका विचार अनुपस्थित है, ब्रह्मकी वह अवस्था, जहां कोई ऐसी चीज होती है जिसके बारेमें हमेशा सोचना चाहिये और दूसरी जिसके बारेमें सोचनेसे निरन्तर बचना चाहिये ?

> "अविचारणीयके बारेमें सोचा नहीं जा सकता। न ही हमें उस चीजके बारेमें सोचनेसे बचना चाहिये जो सोचने-योग्य है। तब हर प्रकारके पक्षपातसे मुक्त होकर वह ब्रह्म बन जाता है।"

चूंकि सद्‌वस्तु विचारकी पहुंचसे बाहर है इसलिये वास्तवमें ऐसी कोई चीज है ही नहीं जिसके बारेमें सोचा जा सके। और न ही किसी चीज-को भूल जानेकी आवश्यकता है। क्योंकि जिन बाहरी संवेदनशील वस्तुओं-के बारेमें मन सोच सकता है उनका कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं होता। इस प्रकार जब वह सभी पक्षपातोंसे — वास्तविकके विचारसे अवास्तविकके विस्मरणसे — मुक्त हो जाता है तब मन ब्रह्म बन जाता है।

श्रुति फिर नियंत्रणके अभ्यासकी पद्धति बतलाती है:

> **स्वरेण संधयेद्योगमस्वरं भावयेत्परम्।**
> **अस्वरेण हि भावेन भावो नाभाव इष्यते॥७॥**

> स्वरके द्वारा मनुष्य योग प्राप्त करता है। तब फिर अ-स्वर-पर ध्यान करता है। तब अ-स्वरकी सिद्धिद्वारा अभावको भावके रूपमें देखा जाता है।

प्रणवपर उसके संघटक स्वरोंपर ध्यान करते हुए श्रुति और गुरुकी शिक्षा-के अनुसार चलते हुए अभीप्सुको योग प्राप्त करना चाहिये, विचारके उस नियंत्रणको प्राप्त करना चाहिये जिसका चरम बिन्दु है यह ज्ञान कि "मैं ब्रह्म हूं"। जब प्रणवमें वह स्थिर रूपसे स्थापित हो जाय तब उसे स्वर-के परे प्रणवपर ध्यान करना चाहिये, यानी उसे विचारमें वास करना चाहिये जहां स्वरकी सहायता नहीं होती। जब बिना स्वरका ध्यान किये अपने चरम बिन्दुपर, इस अन्तर्मासिक ज्ञानपर पहुंचता है कि "मैं ब्रह्म हूं",

तब अविद्या और उसके परिणामोंकी अनुपस्थितिमें ब्रह्मका सार सभी बन्धनोंसे मुक्त दीखता है। तब ब्रह्मके सिवाय कुछ नहीं रहता, ब्रह्म जो अस्तित्व हैं, बुद्धि हैं और सारतः आशिष हैं।

यहां जिस ध्यानका उपदेश दिया गया है उसे इस प्रकार भी समझाया जा सकता है:

> "स्वरोंद्वारा, स्वर अ और उ जाग्रत्-स्वप्नकी अवस्थामें, जिसके ये स्वर प्रतीक हैं, योगका अभ्यास करना चाहिये।"
>
> (जाग्रत्-स्वप्नकी अवस्था वह है जहां मन विशुद्ध रूपसे अपने आत्मनिष्ठ और अमूर्त क्षेत्रमें व्यस्त होता है, और कभी संवेदनशील वस्तुओंकी तरफ नहीं मुड़ता।)

मेहनत और उत्साहद्वारा जाग्रत्-स्वप्न अवस्थामें भी योगका अभ्यास संभव है। हमें 'म'पर ध्यान करना चाहिये जो 'ओ ३ म्'में अ और उ के बाद आता है, आनन्दकी उस अवस्थापर ध्यान करना चाहिये जो जाग्रत-स्वप्नके पास ही है। 'म्' या आनन्दकी अवस्थापर ध्यान करके हम 'असत्' नहीं बल्कि संपूर्ण सत्, तुरीयावस्था, चौथी अवस्थाको प्राप्त करते हैं। इसलिये कहीं और कहा गया है: स्वरोंसे परे 'म्' द्वारा सूक्ष्म अवस्था प्राप्त होती है।

निरोधकी अवस्थामें मन शून्य नहीं बन जाता। मन जिस वस्तुका विशिष्ट रूप धारण करता है वही उसे ब्रह्मसे भिन्न करता है। लेकिन जब मन निर्विशेष आत्माके विचारमें मग्न होता है तब वे पवित्र ब्रह्म अभिव्यक्त होते हैं जो हर प्रकारके रूपसे रहित अमूर्तताके अस्तित्व हैं। अमुक वस्तुका सच्चा स्वरूप उस विशिष्ट रूपमें नहीं है जिसमें वह हमारी इन्द्रियोंके सामने प्रकट होती है। वह अमूर्ततामें भी अस्तित्व रखती है। जब उसके सारे रूप तटस्थ हो जाते हैं तब मनमें जो अभिव्यक्त होता है वह ब्रह्मके सिवाय कुछ नहीं होता। अतः इस अवस्थाका श्रुतिमें इस तरह वर्णन किया गया है:

> **तदेव निष्कलं ब्रह्म निर्विकल्पं निरञ्जनम्।**
> **तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा ब्रह्म संपद्यते ध्रुवम् ॥८॥**

> यही है निर्विकल्प निष्कल और निरंजन ब्रह्म। यह जानकर कि 'मैं ब्रह्म हूं' व्यक्ति ब्रह्म बन जाता है।

केवल प्रबुद्ध लोग ही इसे जानते हैं क्योंकि यह :

> निर्विकल्पमनन्तं च हेतुदृष्टान्तवर्जितम्।
> अप्रमेयमनाद्यं च ज्ञात्वा च परमं शिवम्॥९॥

> निर्विकल्प, अनन्त, हर प्रकारकी बहस और दृष्टान्तसे परे, अज्ञेय और अकारण है। यह जानकर ज्ञानी मुक्त हो जाता है।

> न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बन्धो न च शासनम्।
> न मुमुक्षा न मुक्तिश्च इत्येषा परमार्थता॥१०॥

> न मरण, न जन्म, न बन्धन, न अभिलाषा, न मोक्षकी अभिलाषा, न मुक्ति; यही परम सत्य है।

> एक एवात्मा मन्तव्यो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु।
> स्थानत्रयाद्व्यतीतस्य पुनर्जन्म न विद्यते॥११॥

> जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्तिमें यही सोचना चाहिये कि एक ही आत्मा है। जो इन तीनों अवस्थाओंसे परे उठ चुका है उसके लिये जन्म नहीं रहता।

> एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः।
> एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्॥१२॥

> क्योंकि सभी प्राणियोंमें एक ही स्व है, यद्यपि विविध प्राणियोंमें वह विविध प्रतीत होता है। जैसे एक चन्द्रमाके होते हुए जलमें अनेक चन्द्र प्रतीत होते हैं।

तुलनाकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है : पानीकी बहुत बड़ी सतहपर केवल एक ही चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब होता है। लेकिन इसी पानीको हम बहुत सारे घटोंमें भर दें तो चांदके उतने ही प्रतिबिम्ब दिखायी देंगे। इस तुलनाका उद्देश्य है यह बताना कि जीवको ईश्वरका प्रतिबिम्ब समझना चाहिये चाहे हम सोचें कि जीव एक है या अनेक।

घटसंवृतमाकाशं लीयमाने घटे यथा।
घटो लीयेत नाकाशं तद्वज्जीवो नभोपमः ॥१३॥

जब घटको इधर-से-उधर हिलाया जाता है तो आकाश नहीं घट ही इधर-से-उधर जाता है। या कह सकते हैं घटमें बन्द आकाश इधर-से-उधर जाता है। इसी प्रकार जीव आकाशके समान है।

घटवद्विविधाकारं भिद्यमानं पुनः पुनः
तद्भग्नं न च जानाति स जानाति च नित्यशः ॥१४॥

घटकी तरह शरीर विभिन्न रूपोंका होता है और बार-बार टूटता है। आकाशको मालूम नहीं होता कि वह टूट गया है जब कि 'वे' हमेशा जानते हैं।

घड़ा बार-बार टूटता है लेकिन आकाश नहीं टूटता जो सबमें प्रविष्ट है। उसी प्रकार शरीर बार-बार नष्ट होता है लेकिन सर्वव्यापी आत्मा नष्ट नहीं होता। लेकिन जहां चेतनाकी बात आती है वहां यह तुलना नहीं चलती, क्योंकि आकाश घटके रूपान्तरके बारेमें सचेतन नहीं होता जब कि जीव उन रूपान्तरोंके प्रति हमेशा सचेतन होता है जिनमेंसे शरीर गुजरता है।

वे अनन्य भगवान् हैं, हर प्राणीमें छिपे हुए सर्वव्यापी, सभी प्राणियोंकी आत्मा, सभी कार्योंकी निगरानी करनेवाले, सभी प्राणियोंमें वास करनेवाले, साक्षी, द्रष्टा, अद्वितीय, गुणातीत।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ६, २)

शब्दमायावृतो यावत्तावत्तिष्ठति पुष्करे।
भिन्ने तमसि चैकत्वमेकमेवानुपश्यति ॥१५॥

शब्दमायासे आवृत, कभी कोई अन्धकारद्वारा तीर्थस्थान नहीं जाता। और जब अन्धकार विलीन हो जाता है तब एकमेव ही एकत्वको देखता है।

शब्दाक्षरं परं ब्रह्म यस्मिन्क्षीणे यदक्षरम् ॥
तद्विद्वानक्षरं ध्यायेद्यदीच्छेच्छान्तिमात्मनः ॥१६॥

ओ३म् ही परब्रह्म है। जब यह अदृश्य हो जाता है तब अक्षर विद्वान अविनाशको इस अविनाशपर ध्यान करना चाहिये अगर वह अपने-आपके लिये शान्ति पाना चाहे तो।

द्वे विद्ये वेदितव्ये तु शब्दब्रह्म परं च यत्।
शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥१७॥

दो विद्याएं वास्तवमें जाननी चाहिये। शब्दब्रह्म और परम। शब्दब्रह्मका जो निष्णात है वह परब्रह्म प्राप्त करता है।

ग्रन्थमभ्यस्य मेधावी ज्ञानविज्ञानतत्त्वतः।
पलालमिव धान्यार्थी त्यजेद्ग्रन्थमशेषतः ॥१८॥

ग्रन्थोंका अभ्यास करके ज्ञान और विज्ञानके प्रति पूर्णतया समर्पित मेधावीको ग्रन्थका उसी तरह त्याग करना चाहिये जिस तरह चावलकी इच्छा करनेवाला पुआलका त्याग करता है।

गवामनेकवर्णानां क्षीरस्याप्येकवर्णता।
क्षीरवत्पश्यते ज्ञानं लिङ्गिनस्तु गवां यथा ॥१९॥

विविध वर्णोंकी गाएं एक ही वर्णका दूध देती हैं। मेधावी ज्ञानको दूधके रूपमें, लेकिन उसके रूपोंको गायोंके रूपमें देखता है।

घृतमिव पयसि निगूढं भूते भूते च वसति विज्ञानम्।
सततं मन्थयितव्यं मनसा मन्थानभूतेन ॥२०॥

जिस प्रकार दूधमें मक्खन, उसी प्रकार सभी प्राणियोंमें विज्ञान छिपा रहता है। हे अभीप्सु, मथनीकी तरह मनसे मंथकर उसे निकालो

ज्ञाननेत्रं समादाय चरेद्वह्निमतः परम्।
निष्कलं निर्मलं शान्तं तद्ब्रह्माहमिति स्मृतम् ॥२१॥

ज्ञानकी मथनीसे हमें अग्निके समान तेजयुक्त परम पुरुषको जाग्रत करना चाहिये। निष्कल, अचल, शांत, "मैं ब्रह्म हूं", इस तरह उसको प्राप्त करना चाहिये।

सर्वभूताधिवासं च यद्भूतेषु वसत्यधि।
सर्वानुग्राहकत्वेन तदस्म्यहं वासुदेवः तदस्म्यहं वासुदेव इति ॥२२॥

सभी प्राणियोंका निवास। सबके प्रति दयालु, सभी प्राणियोंमें वास करता है। वही मैं हूं — वासुदेव।

वासुदेव: वह वासु है, क्योंकि अपनी कृपाद्वारा वह सभी प्राणियोंमें वास करता है और सभी प्राणी उसमें वास करते हैं। और वह देव है, क्योंकि अपने-आपमें वह ज्योतिर्मय है, अपने ही प्रकाशसे देदीप्यमान्।

इहलोकमें श्रमणकी जीवन-पद्धतिमें दिखायी देनेवाले बारह फल

१. शील।

२. विश्वास और हर प्रकारके भयका अभाव जो कल्याणकारी चेतनाके परिणाम हैं।

"अत:, हे राजन्, यह भिक्षु, जो इस तरह नैतिकताके निम्नतर स्तरोंका स्वामी है, अब किसी भी तरफ कोई खतरा नहीं देखता, जहांतक अपने आचारके संयमका सवाल है वहां तो और भी कम खतरा देखता है... इसी तरह वह आत्मविश्वासी बनता है ... निर्मल योगक्षेमका भाव अनुभव करता है ... 'न्यायपरायण' बन जाता है।"

३. इंद्रिय मार्गोंको बनाये रखनेकी आदत और क्षमता।

"हे राजन्, जब उसकी दृष्टि किसी वस्तुपर पड़ती है तो भिक्षु अपने सामान्य रूप या उसके ब्योरोंकी चिंतामें खो नहीं जाता। वह विशेष रूपसे उस चीजपर संयम रखनेकी कोशिश करता है जो, उस समय, बुरी अवस्थाओंपर — प्रबल इच्छा और उदासीपर — काबू पानेका और उन्हें डुबा देनेका अवसर प्रदान करती है, जब कि बिना नियंत्रणके वह दृष्टिका उपयोग करनेमें व्यस्त रहता है। वह अपनी दृष्टिका निरीक्षण करता है और उसपर संयम प्राप्त करता है ...। इसी तरह बाकी इंद्रियोंके साथ भी यही करता है... उसी तरह जब उसका मन किसी तथ्यके प्रति सचेत होता है ...। वह मानसिक रूपसे चीजोंको प्रस्तुत करनेकी क्षमतापर निरीक्षण रखता है और फिर उसपर भी संयम पा लेता है...। इस तरह वह एक ऐसे योगक्षेमकी भावना अनुभव करता है जिसपर कोई बुरी अवस्था कभी काबू नहीं पा सकती।"

४. सतर्कता और विचारमग्नता।

"वह जो भी काम करता है, हे राजन्, उसमें वह हमेशा स्पष्ट रूपसे, अपने मनके नेत्रके सामने खड़ा होता है; क्रिया इन चीजोंसे संगठित होती है और इन्हें उत्पन्न करती है: स्वयं क्रियाका तात्कालिक विषय, उसका नैतिक व्यवहार, अपने सामने रखे महान् उद्देश्यके अनुसार चलता है या नहीं, और बाहरी क्रियाके गंवारू तथ्यके नीचे छिपे हुए वास्तविक तथ्य ...। इसी तरह, अपनी एक-एक क्रियाके साथ वह उस (चीज) के प्रति सचेतन होता है जो क्रियाओंमें सचमुच छिपी हुई है।"

५. वास्तविक और अवास्तविकमें भेद कर सकनेकी क्षमतासे प्रबुद्ध, बाहरी आवश्यकतासे रहित जीवनकी सरलतामें, अल्पसे ही तुष्टि।

६. आत्म-संयम प्राप्त करनेपर पांच विघ्नोंसे मुक्ति।

पूर्वलिखित स्तरोंको पार कर लेनेके बाद, भिक्षु नियमित रूपसे निम्नलिखित अनुष्ठानोंका पालन करता है: वह एकांतमें जाकर पद्मासन लगाकर बैठता है, शरीर तना हुआ, मन सजग और सतर्क...। "संसार और सांसारिक चीजोंसे हर प्रकारकी कामनाको भगाकर, उसका हृदय कामनारहित होता है और वह अपने मनसे प्रबल इच्छाओंको हटाकर उसे शुद्ध कर लेता है। — अहित करनेकी इच्छाकी विकृतिको भगाकर उसका हृदय बैररहित होता है और वह अपने मनको दुष्टतासे शुद्ध कर लेता है। — मन और हृदयकी पीड़ाको भगाकर, अपने विचारको सजग, सतर्क

और चिंतनशील रखकर, वह अपने मनको आलस्य और अकर्मण्यतासे शुद्ध कर लेता है। —शोर और अशांतिकी प्रवृत्तिको भगाकर वह उत्तेजना-रहित रहता है, उसका हृदय प्रशांत होता है, वह क्षोभ और दुःखको छोड़कर शुद्ध हो जाता है। —संकोचको भगाकर वह ऐसे रहता है जैसे वे लोग रहते हैं जो परेशानीके परे हैं। न्यायपूर्ण और हितकरकी अनिश्चितिमें और न होनेके कारण वह अपने मनको शंकासे शुद्ध कर लेता है।

"हे राजन्, जबतक ये पांच विघ्न पार न कर लिये जायं तबतक भिक्षु अपने-आपको ऋणी, रोगी, कैदी, दास और सूने रास्तेपर भटका हुआ मानता है। लेकिन जब वह अपने अंदरसे इन पांच विघ्नोंको भगा देता है तो वह अपने-आपको ऋण, रोग, कारागारसे मुक्त, स्वतंत्र और सुरक्षित अनुभव करता है।"

७. आनंद और शांति।

"जब वह यह अवस्था प्राप्त करता है तो वह सुख-चैनसे भरपूर महसूस करता है। तब उसमें आनंद बढ़ता है। फिर उसकी संपूर्ण सत्ता विश्राममें, चैनमें होती है। तब उसमें शांतिकी भावना आ जाती है और इस शांतिमें उसका हृदय स्थिर हो जाता है।"

८. चार परम अवस्थाएं।

"इस तरह प्रबल इच्छाओंसे अपरिचित होकर, बुरी प्रवृत्तियोंको हटा देनेके बाद, वह पहली परम अवस्थामें प्रवेश करके वास करता है—आनंद और सुखकी वह अवस्था जो एकांतवास, अनासक्ति और विवेकसे उत्पन्न होती है और तर्क तथा जिज्ञासाको बने रहने देता है।

"इसके बाद, हे राजन्, तर्क और जिज्ञासापर अधिकार पाकर, भिक्षु दूसरी परम अवस्थामें प्रवेश करके उसमें वास करता है—आनंद और सुखकी वह अवस्था जो तब प्रशांत एकाग्रतासे उत्पन्न होती है जब तर्क और जिज्ञासा रोके जाते हैं—मनके उत्थानकी और हृदयकी शांतिकी अवस्था।

"इसके बाद, हे राजन्, भिक्षु आनंदको दूर हटाता है और समता प्राप्त करता है; सतर्क और चिंतनशील, वह अपनी पूरी सत्तामें वह सुख अनुभव करता है जिसकी चर्चा करते हुए 'अर्हत्' कहते हैं: 'जो व्यक्ति शांति और आत्म-संयम प्राप्त करता है वह सुखसे भरपूर होता है।'

"इस प्रकार वह तीसरी परम अवस्थामें प्रवेश और वास करता है।

"अंततः, हे राजन्, बेचैनीकी तरह सुख-चैनको दूर करके, पहले अनुभव की गयी प्रस्फुटनकी ही भांति उदासीकी भावनाओंसे परे जाकर, भिक्षु चौथी परम अवस्थामें प्रवेश करके वहां वास करता है — शुद्ध आत्म-संयम और कष्टसे रहित तथा सुखसे रहित समताकी अवस्थामें।"

९. क्षणभंगुरताका भेद।

शांत, पवित्र, पारदर्शक, विकसित, दुष्टतासे रहित, नमनीय, कर्मके लिये उद्यत, स्थिर और समान हृदय लेकर, वह अपने मनको विवेकके व्यायाम-पर लगा देता है जो ज्ञानसे उत्पन्न होता है। वह इस तथ्यसे भरपूर हो जाता है: "इस देहका एक रूप है, वह देह चार तत्त्वोंसे बनती तथा एक मां और एक बापसे जन्म लेती है, वह भोजनके द्वारा नित नयी होती रहती है, वह विभिन्न दुर्घटनाओं तथा विघटनका शिकार है; और इसी देहमें मेरी चेतना भी वास करती है जो उनसे संबद्ध होकर उनपर अव-लंबित है।"

१०. मानसिक बिंबोंका आवाहन करनेकी क्षमता।

"हृदयको उपरिलिखित अवस्थामें रखते हुए, भिक्षु मानसिक बिंबोंको बुलानेके लिये अपना मन लगा देता है। अपने इस भौतिक शरीरसे वह एक और साकार शरीरका आवाहन करता है जो मानसिक पदार्थसे संगठित है और भौतिक शरीरके समरूप है।"

११. गुह्य अंतर्दृष्टिकी पांच विधियां।

"... उस अद्‌भुत देनकी विविध विधियोंके उपयोगमें वह अपना मन लगाता है। (सिद्धि) वह उस अद्‌भुत देनकी विविध विधियोंसे काम लेता है..., इस शरीरमें रहते हुए वह ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। दिव्य कर्णद्वारा, जो मानवी कर्णोंसे श्रेष्ठ है, वह मानव या दिव्य नादको पकड़ लेता है, भले वह दूरसे आता हो या समीपसे। वह अपने मनका निर्देशन करता है और उस ज्ञानके प्रति उसे मोड़ता है जो हृदयोंको भेदता है। अपने हृदयसे मनुष्य और दूसरे प्राणियोंमें प्रवेश करते हुए वह उन्हें जानता है। वह यह भेद करता है कि वे आवेगपूर्ण, शांत, चिड़चिड़े, प्रशांत, आलसी, सतर्क, स्वाधीन हैं या पराधीन। वे उन क्षणजीवी अवस्थाओं-की स्मृतिको प्राप्त करनेमें अपना मन लगा देता है जिन्हें वह पहले पार कर चुका है (विभिन्न जगतोंमें प्रकट रूप)।

"वह प्राणियोंकी प्रगति और अधोगतिमें अपना मन लगा देता है। वह

मानवी नेत्रोंसे श्रेष्ठ, दिव्य नेत्रसे प्राणियोंको तब देखता है जब वे एक शरीर त्यागकर दूसरा धारण करते हैं। वह साधारण और श्रेष्ठको, प्रिय और अप्रियको, सुखी और दुःखीको पहचान लेता है जो अपने कर्मोंके अनुसार प्रयाण कर रहे हैं।"

१२. अर्हत्का रास्ता और उसकी अवस्था।

"शांत हृदयसे . . . वह अपने मनको उन चार मौतिक धब्बोंको मिटानेमें लगा देता है (विषयासक्ति, व्यक्तित्व, अज्ञान और भ्रम)। वह चार श्रेष्ठ सत्योंको समझ सकनेकी अवस्था प्राप्त करता है। समझकर, देखकर, उसका हृदय मौतिक धब्बोंसे परे होता है। इस तरह परे होनेके बाद उसमें मुक्तिकी निश्चिति जागती है और वह जानता है कि : 'पुनर्जन्म विनष्ट हो चुका है। उच्चतर जीवन जिया जा चुका है। जो सिद्ध होना था वह हो चुका है। इस अनिवार्य जन्म (अस्तित्व) के बाद दूसरा जन्म नहीं होगा।'"

अश्वघोषकी टीका

महायानमें निष्ठा जगानेके बारेमें अश्वघोषकी टीका।

दस अभिरूपवाले जगत्के माननीय जनोंका अभिनंदन, जो विश्वमें महान् कल्याण फैलाते हैं, जिनका ज्ञान अनंत और अनुभवातीत है और जो (सभी प्राणियोंकी) रक्षा करते हैं।

उस धर्मका अभिनंदन जिसका सार और गुण महासागरके समान है, और जो हमारे सामने अनात्मन्का सिद्धांत प्रकट करता है और अनंत पुण्योंका संग्रह रचता है।

उन लोगोंके संघका अभिनंदन जो पूर्ण ज्ञानके लिये अभीप्सा करते हैं।

मैं यह टीका इसलिये लिख रहा हूं ताकि सभी प्राणी संदेहसे छुटकारा पा सकें, बुराईके साथ हर प्रकारकी आसक्तिसे मुक्त हो सकें और निष्ठाके जागरणद्वारा बुद्धके बीजका लाभ उठा सकें।

टीका

सभी प्राणियोंमें, महायानमें पवित्र निष्ठाको जाग्रत् करनेके लिये, मिथ्या सिद्धांतसे आसक्ति और शंकाओंको नष्ट करनेके लिये और उन्हें बुद्धके बीजकी अनवरत धाराकी प्राप्ति करानेके लिये मैं यह टीका लिख रहा हूं।

एक सिद्धांत है जिसके द्वारा महायानमें निष्ठा उत्पन्नकी जा सकती है। और मैं उसकी व्याख्या करूंगा।

व्याख्याके पांच भाग हैं:

१. परिचय।
२. सिद्धांतोंका सामान्य विवरण।
३. स्वयं व्याख्या।
४. निष्ठाका अभ्यास।
५. (फलस्वरूप) कल्याण।

परिचय

(यह टीका लिखनेके) आठ कारण हैं:

१. सामान्य लक्ष्य—ताकि पाठक सभी प्राणियोंको, दुःखसे मुक्त होकर सांसारिक लाभ उठानेके लिये नहीं, बल्कि कृपाकी अवस्थाका आनंद लेनेके लिये सम्मत करे।

२. ताकि वह तथागतके आधारभूत सत्यको विकसित कर सके और सभी प्राणियोंको उसके बारेमें ठीक ज्ञान प्राप्त करनेका मौका दे सके।

३. ताकि वह उन लोगोंको दार्शनिक रूपसे महायानके सिद्धांतपर अधिकार पानेके लिये समर्थ बना सके जो अपने पुण्यको परिपक्वताकी ओर ले गये हैं और जिन्होंने अटल निष्ठा प्राप्त की है।

४. ताकि वह उन लोगोंको निष्ठा प्राप्त करने और अटल स्थिरताकी अवस्थाकी ओर बढ़नेकी शक्ति प्रदान कर सके जिनके पुण्य दुर्बल और नगण्य हैं।

५. ताकि वह सभी प्राणियोंके पहले प्राप्त किये गये दोषोंको मिटवा सके, उनके अपने विचारोंपर प्रभुत्व प्राप्त करवा सके और उन्हें तीनों विषैले आवेगोंसे मुक्त करा सके (प्रबल इच्छा, दुष्टता और अज्ञान)।

६. ताकि वह सभी प्राणियोंसे शांतिकरण और मानसिक अंतर्दर्शनका और अपने-आपको निम्नतर बुद्धिसे उत्पन्न मानसिक पापोंकी सिद्धिके प्रति मजबूत बनानेका अभ्यास करवा सके।

७. ताकि महायानके सिद्धांतपर ध्यान करनेके लिये वह सभी प्राणियोंको ठीक मार्गपर निर्दिष्ट कर सके। क्योंकि इस प्रकार वे बुद्धकी उपस्थितिमें होंगे और महायानमें अटल श्रद्धा प्राप्त कर चुके होंगे।

८. ताकि महायानमें सुखद विश्वाससे उत्पन्न कल्याणोंको प्रकट करके वह बुद्धिमान् प्राणियोंका उनके प्रयासोंके अंतिम उद्देश्यके प्रति सचेतन होना संभव कर सके।

यद्यपि महायान सूत्रोंमें इन सभी सिद्धांतोंकी काफी व्याख्या की गयी है, फिर भी, जिनको बदलना है उन लोगोंके मिजाज और प्रवृत्तियां एक-से नहीं होते, और प्रबोध प्राप्त करनेकी शर्तें भी बदलती हैं, इसलिये मैं अब यह टीका लिख रहा हूं।

यह लिखनेका एक और कारण भी है। तथागतके समय लोग असाधारण रूपसे भाग्यवान् थे और बुद्धकी उपस्थिति (वे शरीर और मनमें समान रूपसे प्रतापी थे) धर्मके अनगिनत अर्थोंको सरलता और पूर्णताके साथ अनावृत करनेमें सहायक होती थी। फलस्वरूप, दार्शनिक टीकाकी जरूरत नहीं होती थी।

बुद्धके निर्वाणके बाद कुछ लोग रह गये हैं जिनमें सूत्रके विभिन्न अर्थोंको समझनेकी बौद्धिक शक्ति थी, भले वे कुछ ही सूत्र पढ़ते थे। कुछ और थे जो अपनी बौद्धिक शक्तिद्वारा नहीं, लंबी-चौड़ी टीकाके बाद ही सूत्रोंके अर्थ समझ पाते थे। दूसरे, जिनमें व्यक्तिगत बौद्धिक शक्तियां न थीं, केवल सावधानीसे बनायी गयी टिप्पणियोंकी सहायतासे ही सूत्रोंके अर्थ समझ सकते थे। लेकिन कुछ ऐसे भी हैं जो बौद्धिक शक्तियोंसे रहित होनेके कारण सावधानीसे रचित टिप्पणियोंसे बचकर उस अध्ययन और अन्वेषणोंकी संस्कृतिका आनंद लेते हैं जो, संक्षिप्त रूपमें, सिद्धांतकी विश्वव्यापकता और उसके विविध दृष्टिकोणोंसे परिचय करवाती है।

इस अंतिम वर्गके लोगोंके लिये ही मैं यह टीका लिख रहा हूं जिसमें तथागतका सबसे उत्तम, सबसे गहरा और सबसे अथाह सिद्धांत बोधगम्य और संक्षिप्त रूपमें कहा जायगा।

रामकृष्णके वचन

मैं तुमसे जो कुछ कह रहा हूं, क्या तुम उस सबको जीवनमें उतारनेमें समर्थ होगे ? मैं जो सिखा रहा हूं उसका रूपयेमें एक आना भी जी सको तो तुम निश्चित रूपसे लक्ष्यतक पहुंच जाओगे।

*

अनगिनत हैं भगवान्‌के नाम और अनंत वे रूप जो हमें उनकी ओर ले जाते हैं। तुम जिस किसी नाम या रूपद्वारा उनके संपर्कमें आना चाहो उसी नाम या रूपमें तुम्हें उनके दर्शन होंगे।

*

जिस प्रकार घरकी छततक पहुंचनेके लिये नसैनी, बांसकी सीढ़ी या रस्सीका उपयोग किया जाता है, उसी प्रकार भगवान्‌तक पहुंचनेके लिये भी तरह-तरहके मार्ग हैं। संसारका हर एक धर्म उनमेंसे एक मार्ग दिखाता है।

*

जिस प्रकार परिवारकी नयी बहु अपने पतिके साथ सबसे ज्यादा प्रेम करते हुए भी सास, ससुर और घरके बाकी सदस्योंके प्रति आदर और प्रेम रखती है उसी प्रकार अपने इष्टदेवपर अटल श्रद्धा रखते हुए, दूसरे देवोंका तिरस्कार नहीं, बल्कि सम्मान करो।

*

जहां दूसरे लोग घुटने टेकते हैं वहां तुम भी प्रणाम करो और आराधना करो। क्योंकि जहां इतनी बड़ी जनसंख्या श्रद्धांजलि अर्पित करती है वहां करुणामय ईश्वर अवश्य अवतरित होंगे। क्योंकि वे करुणाके भंडार हैं।

*

दो व्यक्तियोंके बीच, गिरगिटके रंगपर खूब गरमा-गरम बहस चल रही थी। एक कह रहा था: "इस ताल-वृक्षके गिरगिटका रंग बहुत सुन्दर लाल है।" दूसरा इसका विरोध करते हुए कह रहा था: "आप गलती कर रहे हैं। यह गिरगिट लाल नहीं है, नीला है।" लेकिन बहसके द्वारा किसी निष्कर्षपर न पहुंच पानेके कारण वे दोनों उस आदमीके पास गये जो हमेशा उसी वृक्षके नीचे रहता था। वह गिरगिटका असली रंग-रूप अवश्य जानता होगा। पहले व्यक्तिने कहा: "महोदय, क्या यह सच नहीं है कि इस पेड़का गिरगिट लाल है?" उस आदमीने उत्तर दिया: "जी हां।" लेकिन दूसरा व्यक्ति बोल उठा: "आप क्या कह रहे हैं? यह हो ही कैसे सकता है? वह गिरगिट लाल नहीं, नीला है।" बड़े विनम्र भावसे उस आदमीने फिर वही उत्तर दिया: "जी, हां।" वह जानता था गिरगिट एक ऐसा प्राणी है जो हर वक्त रंग बदलता रहता है; इसीलिये उन दोनों परस्पर-विरोधी वक्तव्योंके उत्तरमें उसने "हां" कह दिया था।

*

उसी प्रकार सत-चित्-आनंदके भी अनेक रूप होते हैं। जिस भक्तने भगवान्का एक रूप देखा है वह उनको केवल उसी रूपमें जानता है। लेकिन जिसने उनके बहुविध रूपोंको देखा हो, केवल वही कह सकता है: "यह सब रूप भगवान्के ही हैं और भगवान् बहुविध हैं।" वह साकार हैं तो निराकार भी हैं, और अनगिनत हैं उनके वे रूप जिन्हें हम जानते ही नहीं।

*

ब्रह्म निर्गुण, निर्विकार, अविचल हैं और मेरु पर्वतकी भांति स्थिर हैं।

*

उनका नाम है चिन्मय। उनका धाम है चिन्मय। और वे प्रभु स्वयं चिन्मय हैं।

*

भक्ति मार्गपर, धार्मिक मनुष्यको, एक अवस्थामें साकार भगवान्में तृप्ति मिलती है। एक और अवस्थामें निराकार भगवान्में।

*

मायाकी तुलना एक चंचल और फुरतीले सांपसे की जा सकती है, जब कि ब्रह्मन् बिलकुल निष्क्रिय सांपके समान है। माया निरपेक्ष और अटल सद्वस्तुसे अभिव्यक्त शक्तियोंका नाम है। उस सद्वस्तुको ब्रह्मन् कहते हैं।

*

अगर माया और उसकी अभिव्यक्ति न होती तो कौन सचेतन बनकर निरपेक्ष ब्रह्मन्को प्राप्त कर पाता?

*

जो पांडित्यके द्वारा भगवान्की व्याख्या करनेकी कोशिश करता है वह ठीक उस व्यक्तिके समान है जो नक्शे या चित्रके द्वारा काशीका वर्णन करता हो।

*

वेद, तंत्र, पुराण और इसी तरह दुनियाके सारे धर्मग्रंथ जूठे हो गये हैं क्योंकि उन्हें बार-बार दोहराया गया है और वे मनुष्यके मुंहसे निकले हैं। लेकिन ब्रह्मन् कभी जूठा या दूषित नहीं होता, क्योंकि आजतक कोई उन्हें मानव भाषामें अभिव्यक्त नहीं कर पाया है।

*

सांत अनंतको समझ कैसे सकता है? यह तो ऐसा है मानों नमककी एक मूर्ति समुद्रकी गहराइयोंको थाहनेकी कोशिश कर रही हो। यह करते हुए नमक समुद्रमें घुल जाता है और अपने-आपको खो बैठता है। उसी प्रकार निर्गुण ब्रह्मन्की थाह लेते हुए जीव अपना व्यक्तिगत अहंको

खो देता है और उस सत्ताके साथ, निर्गुणके साथ एक हो जाता है।

*

जंजीरोंमें बंधी आत्मा जीव है और जंजीरोंसे मुक्त शिव है।

*

जिस प्रकार पानी और बुलबुला एक हैं: बुलबुला पानीमें पैदा होता है, पानीपर तैरता है, और अंतमें और पानीमें ही विलीन हो जाता है, उसी प्रकार जीवात्मा और परमात्मा एक और अभिन्न हैं; अंतर मात्रामें है। एक सांत और छोटा है तो दूसरा अनंत है; एक पराधीन है तो दूसरा स्वाधीन।

*

जबतक तुम्हें दिव्य दृष्टिका सौभाग्य प्राप्त न हुआ हो, जबतक खोटी धातु पारसके संपर्कसे सोनेमें परिवर्तित न हो गयी हो, तबतक यह "मैं ही कर्ता हूं" की माया बनी रहेगी। और तबतक अनिवार्य रूपसे यह भेद-भाव बना रहेगा कि "मैंने यह सत्कर्म किया है, मैंने वह दुष्कर्म किया है।" भेद-भाव या द्विविधताकी यह धारणा ही वह माया है जो इस संसृतिका कारण है। विद्यामायामें शरण लेकर (मायामें सत्त्वकी प्रधानता है), आगे चलकर जो ठीक मार्ग अपनाती है उससे भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है। भव-सागरको वही पार कर सकता है जो भगवान्‌का साक्षात्कार कर लेता है, उन्हें पा लेता है: वह—जो यह जानता है कि भगवान् ही कर्ता-धर्ता हैं, वह स्वयं कर्ता नहीं है—अपने शरीरमें रहते हुए भी सचमुच स्वाधीन है।

*

शाश्वत प्रभु सभी मनुष्योंमें विद्यमान हैं। लेकिन सब मनुष्य शाश्वत प्रभुमें नहीं हैं। इसी कारण वे कष्ट पाते हैं।

*

वस्तुतः, वस्तुतः मैं तुमसे कहता हूं कि जो भगवान्‌के लिये अभीप्सा करता है वह उन्हें पा लेता है।

*

जिसकी अभीप्सा और एकाग्रता जितनी ज्यादा होती है वह शाश्वतको उतनी ही जल्दी पा लेता है।

*

मनुष्य गंगा-जमुना बहाते हैं क्योंकि उनके कोई बेटा नहीं हुआ। दूसरे ऐसे हैं जो दिलको मसोसते रहते हैं क्योंकि उनको धन-दौलत नहीं मिली। लेकिन ऐसे कितने हैं जो इसलिये रोते हैं कि उन्हें भगवान्‌के दर्शन नहीं हुए? जो भगवान्‌की खोज करता है उसे वे मिल जाते हैं। जो तीव्र अभीप्साके साथ भगवान्‌के लिये आंसू बहाता है वह भगवान्‌को पा चुका है।

*

वस्तुतः, वस्तुतः मैं तुमसे कहता हूं कि जो भगवान्‌के लिये अभीप्सा करता है वह उन्हें पा लेता है। जाओ, अपने जीवनमें इसकी परीक्षा कर देखो। लगातार तीन दिनतक, बहुत सचाईके साथ कोशिश करो और तुम निश्चित रूपसे सफल होगे।

*

"इस जीवनमें ही मुझे पूर्णता सिद्ध करनी चाहिये, हां, तीन ही दिनमें मुझे भगवान्‌को प्राप्त करना चाहिये। नहीं, केवल एक बार उनका नाम पुकारकर ही मैं उन्हें अपने पास खींच लूंगा।" इस प्रकारके तीव्र प्रेमसे भगवान् शीघ्र आकर्षित होते हैं। शिथिल प्रेमी उनके पासतक जा भी पाये तो उन्हें कई युग लग जाते हैं।

*

भगवान्‌को पानेके लिये किस चढ़ावेकी आवश्यकता होती है? भगवान्‌को प्राप्त करनेके लिये तुम्हें अपना तन, अपना मन और अपना धन उन्हें अर्पित कर देना चाहिये।

*

तुम जिस उद्देश्यको पाना चाहते हो उसके अनुकूल साधन अपनाओ। यह चिल्ला-चिल्लाकर कि "दूधमें मक्खन है," तुम मक्खन नहीं पा सकते। अगर तुम मक्खन बनाना चाहो तो पहले दूधसे दही बनाओ, फिर दहीको खूब अच्छी तरह मथो। तभी तुम्हें मक्खन मिलेगा। उसी तरह अगर तुम भगवान्‌का साक्षात्कार चाहो तो साधना करो। तभी तुम्हें भगवान्‌के दर्शन होंगे। केवल "भगवान्! भगवान्!" पुकारनेसे क्या लाभ?

*

किसी अज्ञात कोनेमें, या जंगलोंके एकांतमें बैठकर, या फिर अपने ही मनके एकांतमें भगवान्‌का ध्यान करो।

*

जबतक कोई मनुष्य जोर-जोरसे "या अल्लाह! या अल्लाह!" पुकारे तबतक निश्चित जानो, उसने अपने अल्लाहको नहीं पाया है। क्योंकि जिसने उसे पा लिया है वह शांत और अचंचल हो जाता है।

*

गहरे समुद्रमें मोती होते हैं लेकिन उन्हें पानेके लिये बहुत-सी विपदाओं-मेंसे गुजरना पड़ता है। इस जगत्‌में भगवान् उसी प्रकार हैं।

*

अगर समुद्रमें एक ही डुबकी लगानेपर तुम्हें मोती नहीं मिल जाता तो इस निष्कर्षपर मत पहुंच जाओ कि समुद्र बिना मोतीके है। फिरसे,

बार-बार डुबकियां लगाओ। अंतमें फल जरूर मिलेगा। इसी प्रकार अगर भगवान्को देखनेका तुम्हारा पहला प्रयास निष्फल निकले तो साहस मत खो बैठो। प्रयासमें लगे रहो। निश्चय रखो अंतमें तुम्हें भागवत कृपा जरूर प्राप्त होगी।

*

काई और गंदी घाससे भरे किसी तालाबके किनारे खड़े होकर तुम कहते हो कि तालाबमें पानी नहीं है। अगर तुम पानीको देखना चाहो तो तालाबकी सतहसे काईको हटा दो। आंखोंपर मायाका परदा होनेके कारण तुम शिकायत करते हो कि भगवान् दिखायी नहीं देते। अगर तुम उनका दर्शन करना चाहो तो अपनी आंखोंसे मायाका परदा हटा दो।

*

जैसे बादल सूरजको ढक देते हैं उसी तरह माया भगवान्को ढकती है। जब बादल छंट जाते हैं तो सूरज दिखायी देने लगता है। उसी प्रकार जब माया छंट जायगी तो भगवान् दिखायी देंगे।

*

जैसे ऊषा सूर्योदयकी सूचना देती है उसी प्रकार निःस्वार्थता, पवित्रता और आर्जव भगवान्के आगमनसे पहले आते हैं।

*

जब मन शांत होता है तो भगवान् दिखायी देते हैं। जब मनका समुद्र कामनाकी आंधीसे विक्षुब्ध हो तो वह विचार नहीं कर पाता, और हर प्रकारकी दिव्य दृष्टि असंभव होती है।

*

भगवान् तभी प्राप्त होते हैं जब मनुष्य इन तीन अवस्थाओंमेंसे किसी

एकमें परिपक्व हो जाता है: (१) "सब कुछ मैं हूं," (२) "सब कुछ तू है," (३) "तू प्रभु है और मैं सेवक।"

*

जब दूध पानीके संपर्कमें आता है तो वह तुरत उसके साथ एक हो जाता है। उसी दूधका मक्खन बनाकर पानीमें डालो तो वह पानीके साथ मिलता नहीं, बल्कि पानीके ऊपर तैरने लगता है। उसी प्रकार जब आत्मा एक बार दिव्य स्थितिको पा लेती है तो वह पुनरुद्धारवंचित अनगिनत आत्माओंमें सतत सचाईमें रह सकती है, फिर भी उनसे रंचमात्र प्रभावित नहीं होती।

*

अगर लोहा एक बार पारसके स्पर्शसे सोनेमें परिवर्तित हो जाय तो तुम उसे चाहो धरतीमें रखो या कूड़े-करकटमें फेंक दो, वह हमेशा सोना ही बना रहेगा और कभी अपनी पुरानी अवस्थामें नहीं लौटेगा। उस व्यक्तिकी भी यही अवस्था है जिसने चाहे एक बार ही क्यों न हो, अपने हृदयमें सर्वशक्तिमान्के चरणोंका स्पर्श पा लिया है। चाहे वह जगत्के कोलाहलमें रहे या जंगलोंके एकांतमें, कोई चीज उसे कभी दूषित नहीं कर सकती।

*

भगवान्का ज्ञान और प्रेम एक और अभिन्न है। शुद्ध ज्ञान और शुद्ध प्रेममें कोई फर्क नहीं।

*

भगवान्के ज्ञानकी तुलना पुरुषसे की जा सकती है, जब कि भगवान्के लिये प्रेम (भक्ति) स्त्रीकी न्याईं है। ज्ञानकी पहुंच भगवान्के बाहरी कमरोंतक ही सीमित है। लेकिन प्रेमके सिवाय भगवान्के अंतःपुरमें और किसीका प्रवेश नहीं हो सकता। प्रेमकी पहुंच सर्वशक्तिमान्के मर्मोंतक है।

*

कमरेमें जैसे ही प्रकाशकी एक किरण लायी जाती है, तुरत युग-युगांतरोंका अंधेरा छंट जाता है। उसी तरह सर्वशक्तिमान्‌के प्रकाशकी एक नन्हीं-सी किरणके सामने जन्म-जन्मांतरोंके एकत्रित पाप विलीन हो जाते हैं।

*

हृदयकी ओर इशारा करते हुए भगवान् यह कहा करते थे: "जिस व्यक्तिमें यहां भगवान् हैं उसके लिये वहां (बाहरी जगत्‌में) भी हैं। जो भगवान्‌को अपने अंदर नहीं ढूंढ पाता वह उन्हें बाहर कभी नहीं ढूंढ पायेगा। परंतु जो उन्हें अपनी आत्माके मंदिरमें देखता है वह उन्हें विश्व-के मंदिरमें भी देखता है।

*

जब भगवान् राम इस जगत्‌में उतरे तो केवल सात ऋषि उन्हें साकार भगवान्‌के रूपमें पहचान पाये।

इसी तरह जब ईश्वर इस जगत्‌में अवतरित होते हैं तो इने-गिने लोग ही उनके दिव्य स्वरूपको पहचान पाते हैं।

*

यह मत सोचो कि सीता, राम, श्रीकृष्ण, राधा, अर्जुन इत्यादि ऐतिहासिक चरित्र नहीं, केवल दृष्टांत या प्रतीकमात्र थे, या शास्त्रोंका केवल आंतरिक और गुह्य अर्थ ही होता है। नहीं, ठीक तुम्हारी तरह वे भी हाड़-मांसके प्राणी थे। किंतु चूंकि वे देवता थे इसलिये उनके जीवन-का अर्थ ऐतिहासिक और आध्यात्मिक, दोनों तरहसे लगाया जा सकता है।

*

दो प्रकारके मनुष्य होते हैं। गुरुने अपने शिष्योंमेंसे एकसे कहा: "मैं तुम्हें जो (ज्ञान) दे रहा हूं वह अमूल्य है। उसे अपने पास ही रखो।" और शिष्यने उसे अपने पास ही रखा। लेकिन जब गुरुने यही बात दूसरे शिष्यसे कही तो वह झटसे एक ऊंचे स्थानपर खड़ा हो गया

और सभी मनुष्योंको उपकारकी बातें सुनाने लगा, क्योंकि उसको मालूम था कि जो बातें उसके गुरुने बतायी थीं उनका मूल्य कितना अकल्पनीय है। इसलिये वह अकेला उसका आनंद नहीं लेना चाहता था। अवतार दूसरी श्रेणीके होते हैं जब कि सिद्ध पुरुष पहलीके।

*

जब बाढ़ आती है तो वह सभी नदी-नालोंको जलमग्न कर देती है और आस-पासकी सारी जमीनको झीलमें बदल देती है। परंतु वर्षाका पानी अपने-आप निश्चित मार्गोंसे बह जाता है। जब कोई रक्षक जन्म लेता है तो उसकी कृपासे सभीकी रक्षा हो जाती है। जब कि सिद्ध पुरुष बहुत कष्ट और तपस्याके साथ केवल अपनी ही रक्षा करते हैं।

*

सिद्ध पुरुष उस पुरातत्त्वज्ञके समान है जो किसी पुराने कुंएकी सतहसे, अनुपयोगके कारण जमे हुए झाड़-झंकाड़ और धूलको हटाकर उसे उपयोगके लायक बनाता है। दूसरी ओर, अवतार उस इंजिनियरके समान है जो किसी ऐसे स्थानपर एक नया कुआं खोदता है जहां पहले पानी नहीं था। महापुरुष केवल उनको मुक्ति दे सकते हैं जिनके भीतर भक्तिका पानी छिपा है, किंतु रक्षक उसकी भी रक्षा करता है जिसका हृदय प्रेम-शून्य है और बंजर है।

*

इस जगत्में पाये जानेवाले सिद्ध पुरुष पांच प्रकारके होते हैं:

(१) स्वप्न-सिद्ध वे हैं जो स्वप्न-प्रेरणाके द्वारा पूर्णता प्राप्त करते हैं।

(२) मंत्र-सिद्ध वे हैं जो किसी पवित्र मंत्र या सूत्रद्वारा पूर्णता प्राप्त करते हैं।

(३) हठात्-सिद्ध वे हैं जो पूर्णताको अचानक इस तरह प्राप्त करते हैं जैसे कोई गरीब किसी अमीर परिवारमें ब्याह करके या छिपा धन पाकर अचानक अमीर बन जाता है। कितने ही पापी एकाएक पवित्र बन जाते हैं और स्वर्गमें प्रवेश पाते हैं।

(४) जिस प्रकार कोई दरिद्र आदमी राजाकी कृपासे धनी बन जाता

है, उसी प्रकार कृपा-सिद्ध वे हैं जो सर्वशक्तिमान्की ठोस कृपासे पूर्णता प्राप्त करते हैं।

(५) नित्य-सिद्ध वे हैं जो हमेशा पूर्ण रहते हैं। जिस प्रकार कुम्हड़े या काशीफलकी लतापर पहले फल लगते हैं, फिर फूल, उसी प्रकार सदा पूर्ण आत्मा जन्मसे ही सिद्ध होती है। और पूर्णता प्राप्त करनेके लिये उसके बाह्य प्रयास केवल मानवजातिके सामने उदाहरण प्रस्तुत करनेके लिये होते हैं।

*

संत ही संतको पहचान सकता है। जो सूतका व्यापारी है वही बता सकता है कि अमुक सूत किस तरहका और कितने नबंरका है।

*

एक साधु किसी सड़कपर गहरी समाधिमें लेटे हुए थे। उधरसे गुजरते हुए एक चोरने उन्हें देखकर सोचा: "यह आदमी जो यहां पड़ा है जरूर कोई चोर है। सारी रात किसी घरमें सेंध लगाते-लगाते थककर (पुलिस-से बचनेके लिये) यहां सो रहा है। जल्दी ही पुलिस इसे पकड़नेके लिये आयेगी तो मैं भी पकड़ा जाऊंगा। उसके आनेसे पहले मुझे यहांसे भाग जाना चाहिये।" यह सोचकर वह भाग निकला। थोड़ी देर बाद एक पियक्कड़ आया। उसने कहा: "ओहो! तुम जरा ज्यादा पी गये हो और पीकर गिर पड़े हो। मैं तुमसे कहीं अधिक ठोस हूं और तुम्हारी तरह गिरनेवाला नहीं हूं।" सबके अंतमें एक साधु आये। वे समझ गये कि ये एक महान् संत हैं और समाधिमें हैं। वे उनके पास बैठ गये और बड़े श्रद्धा-भावसे उनको प्रणाम किया और धीमे-से उनके पवित्र चरण दबाने लगे।

*

जिस प्रकार जलपक्षी, जैसे कि जलसिंह, पानीमें डुबकी लगाता है लेकिन उसके पर नहीं भीगते, उसी तरह जीवनमुक्त इस जगत्में रहते तो हैं, लेकिन उनपर जगत्का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

*

कई महान् आत्माएं ऐसी हैं जो समाधिके सातवें या उच्चतर स्तरतक पहुंच चुकी हैं, अतः दिव्य चेतनाके साथ एक हो गयी हैं। वे मानवजाति-के हितके लिये उस आध्यात्मिक ऊंचाईसे उतरनेमें खुश होती हैं। उनमें विद्याका अहं, या दूसरे शब्दोंमें, उच्चतर स्व बना रहता है। लेकिन यह अहं प्रतीतिमात्र है। वह ऐसा ही है जैसे पानीपर खिंची हुई रेखा।

*

समाधिकी उपलब्धिके बाद भी कइयोंमें अहं बना रहता है — वह होता है सेवकका अहं, भक्तका अहम्। शंकराचार्यने दूसरोंको शिक्षा देनेके लिये विद्याके अहंको बनाये रखा था।

*

जली हुई रस्सीका रूप बना रहता है। किंतु राख-ही-राख होने कारण उससे कुछ भी नहीं बांधा जा सकता। उसी प्रकार जीवनमुक्त मनुष्य अपने अहंके रूपको बनाये रखता है, पर उसमें अहंकारका भाव नहीं होता।

*

शुद्ध सोनेसे गहने नहीं बनाये जा सकते। उसमें कुछ मिलावट करनी पड़ती है। जो मनुष्य बिलकुल माया-शून्य है वह २१ दिनसे ज्यादा नहीं बच सकता। जबतक मनुष्यके पास शरीर है तबतक थोड़ी-बहुत माया अनिवार्य है, चाहे वह कितनी ही कम क्यों न हो, ताकि वह शारीरिक व्यापार-को चलाता रह सके।

*

दूसरोंको उपदेश देनेकी जगह अगर तुम सारे समय भगवान्की आराधना करो तो वह पर्याप्त उपदेश होगा।

सच्चा उपदेशक वह है जो अपने-आपको मुक्त बनानेकी कोशिश करता है। जो मुक्त होता है उसके पास सीखनेके लिये सैकड़ों लोग चारों ओरसे, न जाने कहां-कहांसे आते रहते हैं।

*

गरम घीमें कच्ची पूरी डालो तो जोरसे कड़कड़ाहट होगी। मगर जैसे-जैसे वह तलती जाती है आवाज भी कम होती जाती है। और जब वह अच्छी तरह तल जाती है तो आवाज एकदम बंद हो जाती है। जबतक मनुष्यके पास थोड़ा-सा ज्ञान होता है तबतक वह भाषण और उपदेश देता फिरता है। लेकिन जब ज्ञानकी पूर्णता प्राप्त हो जाती है तो वह अहंकारपूर्ण प्रदर्शन करना छोड़ देता है।

*

सब जगह पड़नेवाली धूप एक ही है। लेकिन केवल पानी, शीशे, धातु इत्यादिकी चमकीली सतह ही उसे पूर्ण रूपसे प्रतिबिंबित कर सकती है। दिव्य प्रकाश भी उसी प्रकार है। वह बिना पक्षपातके हर एक हृदयपर एक ही मात्रामें पड़ता है, लेकिन केवल साधुओं और भले आदमियोंके शुद्ध और पवित्र हृदय ही उसे पूर्ण रूपसे प्रतिबिंबित कर सकते हैं।

*

वास्तविक मनुष्य वही है जो सच्चे ज्ञानके प्रकाशसे प्रबुद्ध है। बाकी सब तो नामके मनुष्य हैं।

*

सच्चा ज्ञान वही है जो बुद्धिको पवित्र बनाता है, बाकी सब अज्ञान है।

*

पवित्र और विवेकशील व्यक्तियोंकी संगति आध्यात्मिक प्रगतिके मुख्य तत्त्वोंमेंसे एक है।

*

जबतक मन अस्थिर और चंचल है तबतक कोई लाभ नहीं, भले व्यक्तिको अच्छा गुरु और सत् संगति क्यों न प्राप्त हो।

*

कथाके अनुसार जब स्वाति नक्षत्र आरोहणमें होता है तो मुक्ता-शक्ति सीप समुद्रकी गहराईमें स्थित अपने घरसे निकलकर वर्षाकी एक बूंद पकड़नेके लिये सतहपर आती है। और तबतक सतहपर अपना संपुट खोले इधर-उधर तैरती रहती है जबतक कि अद्‌भुत स्वाति-जलकी एक बूंद पकड़नेमें सफल न हो जाय। फिर वह समुद्रमें डुबकी लगाकर उसकी तलीमें तबतक विश्राम करती है जबतक कि वह उस बूंदको एक मनोहर मोतीमें परिवर्तित करनेमें सफल नहीं हो जाती। •

इसी प्रकार कई सच्चे और उत्सुक उच्चाकांक्षी होते हैं जो किसी सद्‌गुरुके ऐसे संकेत-शब्दकी खोजमें एक जगहसे दूसरी जगह यात्रा करते रहते हैं जो उनके लिये परमानंदके द्वार खोल दे। और अगर अपनी परिश्रम-पूर्ण खोजमें उनमेंसे किसीको ठीक ऐसे ही गुरुसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हो, और वह चिराकांक्षित शब्द प्राप्त हो जाय जो सभी बेड़ियोंको काट सकता है तो वह तुरंत समाजसे अलग होकर अपने हृदयकी गहनतम गहराईयोंमें पैठता है और तबतक वहां रहता है जबतक कि वह परम शांतिको प्राप्त करनेमें सफल न हो जाय।

*

मानव गुरु कानमें पवित्र मंत्र धीमे-से फुसफुसाते हैं। दिव्य गुरु आत्मा-में प्राण फूंकते हैं। मानव गुरु कानमें मंत्र देते हैं, दिव्य गुरु हृदय-पटलपर उसकी मुहर लगाते हैं।

*

गुरु मध्यस्थ हैं। वे मनुष्य और भगवान्‌को निकट लाते हैं।

*

जो सर्वशक्तिमान्‌को आत्माकी सचाई और तीव्र निष्कपटताके साथ पुकार सकता है, उसे गुरुकी आवश्यकता नहीं होती। लेकिन आत्माकी यह गहरी अभीप्सा बहुत ही विरल होती है, इसीलिये गुरुकी आवश्यकता होती है। गुरु बस एक ही होना चाहिये, लेकिन उपगुरु अनेक हो सकते हैं। उपगुरु वह है जिससे कुछ भी सीखा जाय। इस तरह उन महान् अवधूतके चौबीस उपगुरु थे।

*

जो यह सोचता है कि उसके गुरु केवल एक मनुष्य हैं वह उनसे कोई लाभ नहीं उठा सकता।

*

शिष्यको अपने गुरुकी आलोचना कभी नहीं करनी चाहिये। गुरु जो कुछ कहें उसका आंख-मूंदकर पालन करना चाहिये। एक बंगला पदमें कहा गया है:

"मेरे गुरु भले ही पियक्कड़ों या पापियोंका संग क्यों न करें, लेकिन मेरे लिये तो वे वही नित्यानंद राय, पवित्र और निर्दोष गुरु रहेंगे।"

*

मोतीको उठा लो और सीपको दूर फेंक दो। गुरुने जो मंत्र (उपदेश) तुम्हें दिया है उसका पालन करो और अपने गुरुकी मानव अक्षमताओंको भूल जाओ।

*

अगर कोई तुम्हारे गुरुकी निंदा या उनका तिरस्कार कर रहा हो तो उसकी बात मत सुनो। उसके आगेसे तुरंत चले जाओ।

*

जो अपने गुरुको मानव माने उसे प्रार्थना और भक्तिसे क्या फल मिलेगा? हमें अपने गुरुको मामूली मनुष्य न समझना चाहिये। भगवान्के दर्शन करनेसे पहले शिष्य दिव्य ज्योतिके पहले अंतदर्शनमें गुरुको देखता है, और फिर स्वयं गुरु ही रहस्यमय रूपसे भगवान्में परिवर्तित होकर उसे भगवान्का दर्शन कराते हैं। तब शिष्य देखता है कि गुरु और भगवान् एक ही हैं। शिष्य जो भी वरदान मांगे दिव्य-गुरु उसे प्रदान करते हैं। हां, गुरु उसे परमानंदतक, निर्वाणतक ले जाते हैं। हो सकता है कि मनुष्य आराध्य और आराधकका रिश्ता बनाये हुए द्वैतकी अवस्थामें रहनेका चुनाव करे। व्यक्ति जो भी मांगता है गुरु उसकी मांगको पूरा करता है।

*

समुद्रके बीचोंबीच, किसी जहाजके मस्तूलपर बैठा पक्षी अपनी स्थितिसे उकताकर किसी दूसरी जगहकी खोजमें उड़ जाता है। लेकिन हाय! आखिर वह निराश, और थका-मांदा, उसी जहाजके मस्तूलपर लौट आता है। साधारण अभीप्सा करनेवालेका भी यही हाल है। वह अपने कर्तव्य और उस अनुशासनसे उकता जाता है जो उसपर हितैषी और अनुभवी गुरुद्वारा आरोपित किया गया है। वह आशा खो बैठता है। और चूंकि उसे गुरुपर विश्वास नहीं रहता इसलिये वह विशाल जगत्में एक नये गुरुकी खोजके लिये निकल पड़ता है। यह निश्चित है कि वह एक निष्फल खोजके बाद फिरसे उसी गुरुके पास लौट आयेगा। और तब अपने गुरुके प्रति उस पछताते हुए शिष्यका आदर दोगुना हो जाता है।

*

एक पुरानी कहावत है: "गुरु तो सैंकड़ों, हजारों मिल सकते हैं, लेकिन एक अच्छा चेला विरला ही होता है।" इसका मतलब यह है कि उपदेश देनेवालोंकी कोई कमी नहीं है, लेकिन उसका अनुसरण करनेवाले मुट्ठीभर हैं।

*

कौन किसका गुरु बन सकता है? केवल भगवान् ही विश्वके गुरु और प्रभु हैं।

*

जो कलके खाने, कपड़ेके संबंधमें जरा भी चिंता किये बिना, पूर्ण रूपसे जगत्का त्याग कर देता है वही सच्चा संन्यासी है।

*

किसी साधु और देवताके पास कभी खाली हाथ नहीं जाना चाहिये। इन महान् आत्माओंके सामने कुछ-न-कुछ भेंट रखनेसे कभी न चूकना चाहिये। भेंट चाहे कितनी भी नगण्य क्यों न हो।

*

हे भगवती मां! मैं मनुष्योंसे कोई सम्मान नहीं चाहता, मैं शरीरका कोई भाग नहीं चाहता। बस इतना दे कि मेरी आत्मा तेरे अंदर गंगा और जमुनाके स्थायी संगमकी तरह बहती रहे। मां, मैं भक्तिहीन, योगहीन, दीन और बिना मित्रका हूं। मैं किसीकी प्रशंसा नहीं चाहता, बस मेरे मनको अपने चरण-कमलोंमें हमेशाके लिये निवास करने दे।

*

लोग चौहद्दी लगाकर अपनी भूमिका बटवारा करते हैं, लेकिन सिर-पर फैले आसमानको कोई नहीं बांट सकता। अविभाजनीय व्योम हर चीजको घेरे रहता है, हर एकको अपने अंदर लिये रहता है। इसी तरह बस साधारण आदमी कहता है: "मेरा धर्म ही एकमात्र धर्म है, मेरा धर्म सर्वश्रेष्ठ है।" लेकिन जब उसका हृदय सच्चे ज्ञानसे प्रबुद्ध होता है तो वह जान जाता है कि इन मत-मतांतरों और संप्रदायोंके झगड़ोंके ऊपर उस एक, अविभाज्य, अनंत और सर्वज्ञ परमानंदका राज्य है।

*

सच्चे धार्मिक व्यक्तिको यह सोचना चाहिये कि दूसरे धर्म भी सत्यकी ओर ले जानेवाले मार्ग हैं। हमें दूसरे धर्मोंके प्रति हमेशा सम्मानकी वृत्ति अपनानी चाहिये।

*

अपनी निष्ठामें सदा अचल और दृढ़ रहो। लेकिन हर प्रकारकी कट्टरता और असहिष्णुतासे दूर रहो।

*

बहस मत करो। जिस प्रकार तुम अपने धर्म और विचारमें अटल हो, उसी प्रकार दूसरोंको भी अपने-अपने धर्मों और विचारोंमें अटल रहनेकी पूरी छूट दो। केवल बहसके द्वारा तुम कभी किसीको उसकी गलती

नहीं मनवा सकते। जब उसपर भगवान्‌की कृपा उतरेगी तो हर एक अपनी-अपनी भूल समझ लेगा।

*

जबतक भौंरा फूलकी पंखुड़ियोंके बाहर रहता है और उसके मधुकी मधुरता नहीं चखता तबतक वह गुंजन करता हुआ उसपर मंडराता है। लेकिन फूलके अंदर घुसते ही वह चुपचाप मधु-पान करता है। इसी तरह जबतक मनुष्य धार्मिक सिद्धांतों और मान्यताओंके बारेमें झगड़ता और बहस करता है तबतक वह सच्ची निष्ठाका अमृत-पान नहीं कर पाता। जब उसे वह रस मिल जाता है तो वह नीरव और प्रशांत बन जाता है।

*

जब किसी खाली बर्तनमें पानी डाला जाता है तो ध्वनि निकलती है। लेकिन अगर बर्तन पानीसे भरा हो तो कोई आवाज नहीं होती। उसी प्रकार जिस आदमीने अभी भगवान्‌को प्राप्त नहीं किया है, वह उनके अस्तित्व और विशेषताओंके बारेमें खूब उच्च स्वरमें बहस करता है। लेकिन जिसने उन्हें देख लिया है, वह बिना बोले दिव्य आनंदका रसपान करता है।

*

आत्मा और रूपका सम्मान करो : अंदरकी भावनाका और बाहरके प्रतीकका।

*

काई बहते पानीमें नहीं उग सकती। वह केवल छोटे तालाबोंके खड़े पानीमें ही उगती है। जिसका हृदय भगवान्‌के लिये तरसता है उसके पास किसी दूसरी चीजके लिये समय नहीं होता। जो यश और मानकी खोजमें रहता है वही संप्रदाय या दल बनाता है।

*

काई शुद्ध पानीके विशाल तालाबमें नहीं, बल्कि छोटी-छोटी मैली और विषाक्त तलैयोंमें उगती है। उसी प्रकार दलबंदी वहां नहीं पड़ती जहां प्रेरक हेतु पवित्र, विशाल और निःस्वार्थ है। बल्कि उसकी जड़ें वहां गहरी फैल जाती हैं जहां लोग स्वार्थपूर्ण, कपटी और धर्मांध हैं।

*

समान्य लोग धर्मके बारेमें भर-भरकर बोलते हैं, लेकिन राई-भर भी जीवनमें नहीं उतारते। जब कि ज्ञानी बोलता कम है, लेकिन उसका पूरा जीवन एक कार्यान्वित धर्म है।

*

तुम औरोंसे जो करवाना चाहते हो उसे स्वयं करो।

*

बांसके जालमेंसे बहते हुए चमकते पानीको देख छोटी-छोटी मछलियां बड़ी खुशीके साथ उसमें घुस पड़ती हैं, लेकिन एक बार घुसनेके बाद वे निकल नहीं पातीं और उसमें फंस जाती हैं। उसी प्रकार, मूर्ख लोग इस जगत्‌की चमकीली सतह देखकर उसमें प्रवेश करते हैं। परंतु जिस प्रकार जालसे निकलनेकी अपेक्षा उसमें घुसना ज्यादा आसान है, उसी प्रकार इस जगत्‌में घुसना ज्यादा आसान है, पर एक बार घुसनेके बाद उसे त्यागना कठिन है।

*

एक व्यक्तिने कहा: "जब मेरा बेटा, हरीश, बड़ा हो जायगा तब उसका ब्याह करके, घर-द्वार उसे सौंपकर मैं संसारका त्याग करूंगा, और योगाभ्यास शुरू करूंगा।" यह सुनकर भगवान्‌ने उत्तर दिया: "तुम्हें योग करनेके लिये कभी मौका नहीं मिलेगा। बादमें तुम कहोगे: 'हरीश और गिरीश दोनोंको मुझसे बहुत आसक्ति है। अभी वे मेरा साथ छोड़ना नहीं चाहते।' उसके बाद तुम फिर चाहोगे कि 'हरीशका एक

बेटा हो जाय और उसका भी ब्याह हो जाय।' इस तरह तुम्हारी इच्छाओंका कहीं अंत ही न होगा।''

*

सांसारिक लोग हरिका नाम जपते हैं और भौतिक पुरस्कारकी आशाके साथ बहुत-से धार्मिक और परोपकारी काम करते हैं। लेकिन जब दुर्भाग्य, दुःख, गरीबी, मृत्यु उनके ऊपर जा पड़ती है तो वे तुरंत सब कुछ भूल जाते हैं। वे सब उस तोतेके समान हैं जो दिन-भर "राधा-कृष्ण, राधा-कृष्ण" की रट लगाये रहता है। लेकिन जब कोई बिल्ली उसपर झपट पड़ती है तो तुरत भगवान्‌का नाम भूलकर "टें-टें" करने लगता है।

*

जब तुम एक गुदगुदे गद्देपर बैठते हो तो वह अंदर धंस जाता है, लेकिन दबावके हटते ही उसका आकार फिरसे पहले जैसा हो जाता है। सांसारिक आत्माओंके साथ भी यही बात है। जबतक लोग धार्मिक भाषण सुनते रहते हैं तबतक उनकी भावनाएं बड़ी धार्मिक और भक्ति-पूर्ण रहती हैं। लेकिन संसारके दैनिक कार्यक्रममें घुसते ही वे उन उच्च और महान् विचारोंको भूल जाते हैं और ठीक पहलेकी तरह अपवित्र बन जाते हैं।

*

जिस प्रकार पानी पुलकी एक तरफसे आकर दूसरी तरफसे बह जाता है, उसी प्रकार धार्मिक उपदेश भी सांसारिक व्यक्तिके हृदयमें एक कानसे घुसकर, उसके मनपर कोई प्रभाव डाले बिना, दूसरे कानसे निकल जाता है।

*

सांसारिक व्यक्तिके साथ बात करनेसे यह मालूम होता है कि उसका

हृदय सांसारिक विचारों और कामनाओंसे ठीक उसी तरह भरपूर है जैसे कबूतरकी गल-थैली दानोंसे।

*

काम-वासना और धनसे आसक्त मन वैसा ही है जैसे अपने छिलकेसे चिपकी हुई कच्ची सुपारी। जबतक सुपारी पक नहीं जाती तबतक वह अपने रसके सहारे छिलकेसे चिपकी रहती है। लेकिन समयके साथ जब रस सूख जाता है तो सुपारी अपने छिलकेसे अलग हो जाती है और हिलानेपर खड़खड़ाती है। इसी तरह जब काम-वासना और सोनेकी आसक्तिका रस सूख जाता है तब आदमी मुक्त हो जाता है।

*

कभी-कभी हलवाईकी दुकानमें बिक्रीके लिये रखी हुई मिठाइयोंपर मक्खियां बैठती हैं। लेकिन ज्यों ही कोई गंदगीसे भरी टोकरी लेकर गुजरता है तो वे झट मिठाई छोड़कर गंदगीपर जा बैठती हैं। लेकिन मधुमक्खी कभी गंदी या मैली चीजोंपर नहीं बैठती। वह हमेशा फूलोंसे मधु पीती है। सांसारिक लोग मक्खियों जैसे हैं। कभी-कभी वे दिव्य मधुरताका क्षणिक स्वाद पा लेते हैं, लेकिन गंदगीके प्रति स्वाभाविक झुकावके कारण वे जगत्के कूड़े-करकटकी ओर लौट आते हैं। इसके विपरीत, सद्पुरुष हमेशा दिव्य सौंदर्यके आनंददायक ध्यानमें निमग्न रहता है।

*

सांसारिक मनुष्य एक केंचुएके समान है जो हमेशा गंदगीमें ही जीता और मरता है, और जो उच्चतर चीजोंकी कल्पना भी नहीं कर सकता। जगत्का सद्पुरुष उस मक्खी जैसा है जो कभी गंदगीपर बैठती है तो कभी मिठाईपर। जब कि योगीकी स्वतंत्र आत्मा उस मधुमक्खीके जैसी है जो भगवान्की पवित्र उपस्थितिके मधुके सिवाय कुछ नहीं पीती।

*

बहते पानीकी चंचल सतहपर पूर्ण चंद्र अच्छी तरह नहीं, बल्कि टूटा हुआ-सा प्रतिबिंबित होता है। उसी प्रकार, जो मन सांसारिक कामनाओं और आवेगोंसे विक्षुब्ध है वह दिव्य प्रकाशको अच्छी तरह प्रतिबिंबित नहीं कर पाता।

*

गिद्ध बहुत ऊंचाईपर उड़ता है, लेकिन सारे समय उसकी दृष्टि नीचे, गढ़ोंमें पड़ी सड़ी-गली लाशोंकी खोजमें रहती है। इसी प्रकार किताबी पंडित दिव्य ज्ञानके बारेमें खूब जोर-शोरसे शानदार भाषण देते हैं। लेकिन वह सब निरी बातें होती हैं, क्योंकि उनका मन सारे समय इसमें लगा रहता है कि धन, सम्मान, अधिकार इत्यादिको कैसे प्राप्त किया जाय।

*

सांसारिक मनुष्य भले जनकके बराबर बुद्धिमान् क्यों न हो, योगीके समान प्रयास करता या अपने-आपको कष्ट क्यों न देता हो, तपस्वीके समान महान् बलिदान क्यों न देता हो; लेकिन वह यह सब भगवान्के लिये नहीं, बल्कि सांसारिकता, सम्मान और धन-दौलतके लिये करता है।

*

जैसे मक्खी कभी मानव शरीरके मैले घावपर बैठती है, तो कभी भगवान्के नैवेद्यपर, उसी प्रकार सांसारिक मनुष्य एक क्षण धार्मिक विषयोंमें निमग्न होता है, तो अगले ही क्षण धन और लोभके सुखमें अपने-आपको खो देता है।

*

जिस मटकीमें एक बार दही जमाया गया हो उसमें दूध डालनेका कोई साहस नहीं करता, इस डरसे कि कहीं वह भी दही न बन जाय। उस मटकीका किसी दूसरे कामके लिये भी उपयोग नहीं किया जा सकता, इस डरसे कि कहीं आगपर रखते ही वह फूट न जाय। इसलिये वह लगभग बेकार-सी बन जाती है। एक अच्छे और अनुभवी गुरु कभी सांसारिक

व्यक्तिको अमूल्य और उन्नत ज्ञान प्रदान नहीं करेंगे, क्योंकि वह जरूर अपने स्वार्थपूर्ण उद्देश्यकी पूर्तिके लिये उसका दुरुपयोग करेगा और गलत अर्थ लगा बैठेगा। न ही गुरु उससे कोई उपयोगी और श्रमसाध्य काम करा सकते हैं, क्योंकि तब वह कहेगा कि गुरु उसका अनुचित लाभ उठा रहे हैं।

*

"अपने कपड़ेपर अद्वैतका ज्ञान टांककर जो मर्जी किये जाओ।" जिसने ब्रह्मन्‌के साथ प्रकृति और आत्माकी एकताको सिद्ध कर लिया है उसे शुभ और अशुभ बांधकर नहीं रख सकते।

*

सांसारिक चिंताओं और विचारोंसे अपने मनको विक्षुब्ध मत होने दो। जो कुछ आवश्यक है उसे ठीक समयपर करो और अपने मनको हमेशा भगवान्‌पर ही केंद्रित रखो।

*

नौका पानीमें रह सकती है, लेकिन पानीको नौकामें नहीं रहना चाहिये। इसी तरह अभीप्सा करनेवाला जगत्‌में रह सकता है, लेकिन जगत्‌को उसके अंदर नहीं रहना चाहिये।

*

अगर पानीके मटकेकी तलीमें छोटा-सा छेद हो तो सारा पानी उस छोटे छेदमेंसे बह जाता है। उसी प्रकार, अगर नवदीक्षितमें लेशमात्र भी सांसारिकता हो तो उसका सारा परिश्रम व्यर्थ हो जाता है।

*

चमत्कार दिखानेवालोंके पास मत जाओ। वे सत्यके पथसे भटक गये हैं। उनका मन उन गुह्य शक्तियोंमें उलझ गया है जो ब्रह्मन्‌की ओर

बढ़नेवाले यात्रियोंके मार्गमें प्रलोभन बनी खड़ी रहती हैं।

*

बाड़ लगाकर छोटे पौधेको बकरियों, गायों और नटखट लड़कोंसे बचाना चाहिये। लेकिन एक बार वह बड़ा पेड़ बन जाय तो उसकी फैलती शाखाओं तले बकरियों और गायोंका झुंड आश्रय ले सकता है और उसके पत्तोंको भरपेट खा सकता है। इसलिये जब तुम्हारे अंदर श्रद्धाकी कमी हो तो तुम्हें अनिष्ट प्रभावों, बुरी संगति और सांसारिकतासे उसकी रक्षा करनी चाहिये। लेकिन अगर एक बार तुम अपनी निष्ठामें दृढ़ हो जाओ तो कोई सांसारिकता या अनिष्ट प्रवृत्ति तुम्हारी पवित्र उपस्थितिमें आनेका साहस न करेगी। और बहुत-से दुष्ट भी तुम्हारे पवित्र संपर्कसे दिव्य बन जायंगे।

*

अगर तुम जगत्से अनासक्त होकर रहना चाहो तो तुम्हें पहले कुछ समयके लिये एकांतमें भक्तिका अभ्यास करना होगा। एक साल, छः महीने, एक महीने या कम-से-कम बारह दिनतक। एकांतवासकी इस अवधिमें तुम्हें निरंतर भगवान्‌का ध्यान करना चाहिये और भागवत प्रेमके लिये उनसे प्रार्थना करनी चाहिये। तुम अपने मनमें बस यही विचार घुमाया करो कि जगत्में कोई चीज ऐसी नहीं जिसे तुम अपनी कह सको। तुम जिन्हें अपना मानते हो वे तो थोड़े ही समयमें चले जायंगे। केवल भगवान् ही सचमुच तुम्हारे अपने हैं। वे ही तुम्हारे सब कुछ हैं। तुम्हारी एकमात्र चिंता यही होना चाहिये कि उन्हें कैसे प्राप्त किया जाय।

*

अपनी भावनाओं और श्रद्धाको अपने पास ही रखो। उनके बारेमें ढोल मत पीटो, वरना तुम्हें बहुत बड़ी हानि होगी।

*

मैला शीशा सूर्यकी किरणोंको कभी प्रतिबिंबित नहीं करता। जिनका

हृदय अपवित्र और मैला है और जो मायाके अधीन हैं वे कभी भगवान्‌की महिमाको नहीं देख पाते। लेकिन जिसका हृदय पवित्र होता है वह उस तरह भगवान्‌के दर्शन करता है जिस तरह साफ शीशा सूर्यको प्रतिबिंबित करता है।

इसलिये पवित्र बनो।

*

जो व्यक्ति जगत्‌के प्रलोभनोंके बीच रहते हुए भी पूर्णता प्राप्त करता है, वही सच्चा वीर है।

*

वही व्यक्ति सचमुच धार्मिक है जो जीते हुए भी मृत है, यानी, जिसमें कामनाएं और आवेग उसी प्रकार नष्ट कर दिये गये हैं जैसे लाशमें।

*

सांसारिक और ऐंद्रिक सुखके लिये आकर्षण कब विलीन होता है?

जो भगवान् अविभाजनीय और परमानंद हैं, उनमें सब प्रकारके सुख और भोग संचित हैं। जो उनमें रस लेते हैं उनके लिये इहलोकके सुलभ और मूल्यहीन सुखोंमें कोई आकर्षण नहीं रहता।

*

जब मेंढककी पूछ गिर जाती है तो वह जमीनपर भी रह सकता है और पानीमें भी। जब मनुष्यके अज्ञानकी पूछ गिर जाती है तो वह मुक्त हो जाता है। तब वह भगवान्‌में और इहलोकमें समान रूपसे भली-भांति रह सकता है।

*

जो इस जगत्‌में रहते हुए मुक्ति पानेकी कोशिश करते हैं वे उन सिपाहियोंकी भांति हैं जो किलेमें सुरक्षित रहकर लड़ाई कर रहे हों।

जब कि इस जगत्का त्याग कर भगवान्की खोजमें गये हुए संन्यासी खुले मैदानमें लड़नेवाले सिपाहियोंके समान हैं। खुले मैदानमें लड़नेकी अपेक्षा किलेमें रहकर लड़ना कहीं अधिक सुविधाजनक और सुरक्षित है।

*

जिस आदमीने अपने पिता, माता या पत्नीके साथ हुई किसी गलतफहमीके कारण संन्यास लिया हो वह विरक्त संन्यासी है। उसका संन्यास क्षण-भंगुर है और विदेशमें कोई अच्छी नौकरी मिलते ही समाप्त हो जाता है। वह आदमी निश्चित रूपसे धन-दौलत इकट्ठी करके अपने परिवारमें लौट आयेगा।

*

अगर कोई सफेद कपड़ा छोटे-से दागके कारण गंदा हो जाय तो तुलनामें वह दाग और भद्दा लगता है। इसी प्रकार सद्‌पुरुषका नगण्य-से-नगण्य दोष भी उसके पवित्र वातावरणके कारण बहुत ही शोचनीय रूपसे सुस्पष्ट हो जाता है।

*

जिस प्रकार पारसपर सोने और पीतलको रगड़कर धातुका गुण परखा जाता है, उसी प्रकार विपत्ति और अत्याचारके पारसपर रगड़े जानेपर सच्चे साधु और पाखंडियोंके फर्कका पता लग जाता है।

*

व्यक्तिकी आध्यात्मिक उपलब्धि उसकी भावनाओं और धारणाओंपर निर्भर है। वह उसकी बाहर दीखनेवाली क्रियाओंसे नहीं, बल्कि उसके हृदयसे उत्पन्न होती है।

यूं ही टहलते हुए दो मित्र उस जगह आ पहुंचे जहां भगवान्का पाठ हो रहा था। एकने कहा: "भाई, चलो, कुछ देरके लिये वहां जाकर उपदेश सुन आयं।" दूसरेने उत्तर दिया: "भगवान्के बारेमें सुननेसे क्या लाभ? चलो, हम उस पासकी मधुशालामें जाकर मौज-मजेमें समय काटें।"

लेकिन पहला मित्र बिलकुल सहमत नहीं हुआ। वह उस जगह घुस गया जहां उपदेश दिया जा रहा था और सुनने बैठ गया। दूसरा मधुशालामें गया। लेकिन उसे अपेक्षित मनबहलाव न मिला। वह सारे समय सोचता रहा : "हाय! मैं यहां क्यों आया ? मेरा मित्र कितना सुखी है! सारे समय हरिके पवित्र जीवन और उपकारोंके बारेमें सुन रहा है।" इस तरह मधुशालामें होते हुए भी वह हरिके बारेमें ही ध्यान करता रहा। उस दूसरे मित्रको भी, जो उपदेश सुन रहा था, मजा नहीं आ रहा था। वह वहां बैठा-बैठा अपनेको दोषी ठहरा रहा था : "हाय! मैं अपने मित्रके साथ मधुशाला क्यों न चला गया? इस वक्त उसको कितना मजा आ रहा होगा!" परिणाम यह हुआ कि जहां भागवत पाठ हो रहा था वहां बैठा व्यक्ति मधुशालाके बारेमें सोच रहा था। उसे अपने बुरे विचारोंके कारण पापका फल मिला। जब कि मधुशालामें बैठे व्यक्तिको अपने अच्छे हृदयके कारण भागवत पाठ सुननेका लाभ मिला।

*

विचार ही है जो व्यक्तिको ज्ञानी या अज्ञानी, पराधीन या स्वाधीन बनाता है। मनके कारण व्यक्ति पवित्र होता है, मनके कारण वह दुष्ट होता है, मनके कारण वह पापी होता है और मन ही व्यक्तिको धार्मिक बनाता है। इसलिये जिसका मन हमेशा भगवान्‌के ऊपर एकाग्र है उसे दूसरे किसी प्रकारके अभ्यास, भक्ति या आध्यात्मिक साधनाओंकी आवश्यकता नहीं होती।

*

भारतके विश्वास-चिकित्सक अपने मरीजोंसे कहते हैं कि पूरे विश्वासके साथ अपने-आपसे कहो : "मेरे अंदर कोई बीमारी नहीं। मेरे अंदर किसी प्रकारकी बीमारी नहीं।" मरीज इसे बार-बार दुहराता है। इस तरह मानसिक रूपसे उसके इंकार करनेपर वह बीमारी चली जाती है। इसी तरह, अगर तुम अपने-आपको बहुत ही बीमार, कमजोर और बुरा समझो तो तुम सचमुच वैसे ही बन जाओगे। यह जानो और विश्वास रखो कि तुम बहुत शक्ति पा सकते हो; आखिर तुम्हारे अंदर शक्ति आ जायगी।

*

बहुत-से लोग विनम्रताका दिखावा करते हुए कहते हैं: "मैं धूलमें रेंगते हुए एक केंचुएके समान हूं।" इस तरह अपने-आपको केंचुआ समझते-समझते वे कुछ समयमें अंदरसे सचमुच केंचुएके समान कमजोर बन जाते हैं। अपने हृदयमें निराशाको कभी मत पैठने दो; हर एकके लिये प्रगतिके मार्गमें निराशा सबसे बड़ी शत्रु है। मनुष्य जो सोचता है सचमुच वही बन जाता है।

*

जो व्यक्ति सोचता है कि वह एक जीव है, वह वास्तवमें ही एक जीव होता है। जो व्यक्ति अपने-आपको भगवान् सोचता है, वह सचमुच भगवान् ही बन जाता है। व्यक्ति जो होना चाहता है वही बन जाता है।

*

अगर तुम गंदे पानीमें फिटकरीके टुकड़े जैसी कोई शुद्ध करनेवाली चीज डालो तो पानी शुद्ध हो जाता है। सारी गंदगी तलीमें बैठ जाती है। इसी तरह विवेक और वैराग्य मानव हृदयके दो शोधक हैं। उनकी सहायतासे सांसारिक मनुष्यका मन सांसारिक न रहकर शुद्ध बन जाता है।

*

इल्ली अपने ही बुने कोयेमें कैदी बन जाता है। उसी तरह सांसारिक व्यक्तिकी आत्मा भी अपनी कामनाओंके जालमें फंस जाती है। लेकिन जब इल्ली एक रंग-बिरंगी और मनोहर तितलीमें विकसित हो जाती है तो वह कोयेको फोड़कर मुक्तिका आनंद लेती है। इसी तरह सांसारिक मनुष्यकी आत्मा भी विवेक और वैराग्यके पंख लगाकर माया-जालसे मुक्त हो सकती है।

*

हमें शाश्वत और चिन्मय आनंदके समुद्रमें गहरी डुबकी लगानी चाहिये।

कृपणता और क्रोध — इन दो गहरे समुद्री दानवोंसे मत डरो। अपने-आपको विवेक और वैराग्यकी हल्दीसे ढक लो तब वे मगरमच्छ तुम्हारे नजदीक आनेका साहस न करेंगे। क्योंकि वे हल्दीकी गंध नहीं सह सकते।

*

सच्चा विवेक दो प्रकारका होता है — विश्लेषणात्मक और संश्लेषणात्मक। पहला हमें प्रपंचसे निरपेक्ष ब्रह्मतक ले जाता है जब कि दूसरेसे व्यक्तिको यह पता चलता है कि ब्रह्म किस प्रकार विश्वमें प्रकट होते हैं।

*

विवेकी और विरक्त मनके बिना धर्म-ग्रंथों और पवित्र शास्त्रोंको ध्यानसे पढ़ना निरर्थक है। विवेक और वैराग्यके बिना कोई आध्यात्मिक प्रगति संभव नहीं है।

*

"ग्रंथ"का अर्थ हमेशा पवित्र पुस्तक नहीं होता, बहुधा "ग्रंथि" या गांठ होता है। अगर व्यक्ति हर प्रकारके अहंको और जरूरत पड़े तो अपने सुखोंको भी त्यागकर सत्यको पानेकी तीव्र अभीप्साके साथ न पढ़े तो केवल पढ़ना उसके अंदर पांडित्य-प्रदर्शन, धृष्टता और अहंभाव ही पैदा करेगा, जो उसके मनमें बहुत सारी ग्रंथियोंकी न्याईं है।

*

जो लोग आत्म-ज्ञान नहीं पा सकते उनमेंसे ये भी हैं : जो अपने ज्ञानके बारेमें डींग मारते हैं, जिन्हें अपने ज्ञानपर घमंड है और जिन्हें अपने धनपर घमंड है। अगर उनसे कोई कहे : "अमुक स्थानपर एक अच्छे संन्यासी रहते हैं, आप उनका दर्शन करने चलेंगे ?" तो वे निश्चय ही कुछ-न-कुछ बहाना बना देंगे और कहेंगे : "हम नहीं आ सकते।" लेकिन वे मनमें सोचते हैं कि वे खुद ऊंची स्थितिके आदमी हैं, इसलिये किसी औरके पास क्यों जायं ?

*

एक सुविख्यात ब्रह्मसमाजी उपदेशकने कहा कि परमहंस पागल हैं और निरंतर एक ही विषयपर सोचते-सोचते उनका दिमाग बिगड़ गया है। परमहंसने उपदेशकसे कहा: "आप कहते हैं कि यूरोपमें भी बुद्धिमान् लोग एक ही विषयपर सोचते रहनेके कारण पागल हो जाते हैं। परंतु वह विषय क्या है, जड़ या आत्मा? इसमें आश्चर्यकी बात ही क्या है कि जड़के बारेमें निरंतर सोचनेके कारण आदमी पागल हो जाय? लेकिन उस बुद्धिका ध्यान धरनेसे कोई कैसे पागल हो सकता है जिससे सारा विश्व बुद्धिमान् बना है?"

*

अनंत सांतके द्वारा सिखाया जाना चाहिये, वास्तविक अवास्तविकताके द्वारा और तात्त्विक प्रतीयमानकी सहायतासे।

*

शरीर क्षणजीवी और नगण्य है। तो फिर भी क्यों उसकी इतनी देख-माल की जाती है? कोई खाली डब्बेकी परवाह नहीं करता। लेकिन जिस डब्बेमें धन या कोई बहुमूल्य संपत्ति है उसे बहुत संभालकर रखा जाता है। जो धार्मिक हैं वे अपने शरीरकी देखभाल किये बिना नहीं रह सकते, शरीर जो आत्माका मंदिर है और जिसमें भगवान् अवतरित हुए हैं या जो भगवान्‌के आगमनसे धन्य हुआ है।

*

जिसका मन भगवान्‌के लिये तरस रहा है वह खाने-पीने जैसे नगण्य मामलोंको महत्त्व नहीं दे सकता।

*

जो देवोंका भोजन खाता है, यानी, जो सादा, उत्तेजनारहित, निरामिष भोजन करता है, लेकिन भगवान्‌को प्राप्त करनेकी अभीप्सा नहीं करता, उसके लिये वह निरामिष भोजन गो-मांसके समान बुरा है। लेकिन जो गो-मांस खाता है और भगवान्‌के लिये अभीप्सा करता है उसके लिये

गो-मांस उतना ही अच्छा है जितना देवोंका भोजन।

*

सच्चा मनुष्य वह है जो धनको अपना दास बनाता है। जिनको धनका उपयोग करना नहीं आता वे मनुष्य कहलाने योग्य नहीं।

*

जो दूसरोंके भले-बुरे गुणोंके बारेमें बहस करते हुए समय बिताता है वह अपना समय बरबाद करता है। क्योंकि वह समय न तो अपने बारेमें सोचते हुए कटता है, न परम सत्ताके बारेमें, वह दूसरोंके बारेमें सोचते हुए निकल जाता है।

*

मानवजातिकी प्रशंसा या निंदाको कौओंकी "कांव-कांव" समझकर उसके बारेमें उदासीन रहो।

*

बंगलामें (स, ष, श) के सिवाय कोई तीन अक्षर एक-से नहीं बोले जाते। तीनोंका मतलब है : धैर्य या सहिष्णुता।[1] इससे यह स्पष्ट दीखता है कि बचपनसे ही अक्षरोंके द्वारा हमें धैर्य और सहिष्णुताकी शिक्षा मिलती है। हर एक मनुष्यके लिये धैर्य और सहिष्णुताका गुण सबसे महत्त्वपूर्ण होता है।

*

साधुओंका सच्चा स्वरूप है सद्भावना। लोहा जबतक आगमें रहता है तबतक लाल रहता है। आगसे हटाते ही काला पड़ जाता है। उसी

---

[1]बंगलामें तीनोंका उच्चरण 'श' होता है। और "सह" या "सहनकर" को भी 'श' कहते हैं। परमहंसने इसी आधारपर यह श्लेष बनाया है।
—अनु०

विषय-अनुक्रमणिका

अंधकार ८५
जब घना, तभी ऊषा .. ४१
और प्रकाशका यह गठबंधन ४१
(दे० 'जगत्' भी)
अंधविश्वास ३३, ७४, २०९
अग्नि-कुंड
उद्‌बुद्ध, के बिना मेरी सत्ता .. ११४
अच्छा और बुरा [शुभ-अशुभ]
की धारणा ८८, १२१, १२२
अज्ञान ८५, ९६, २५९
(दे० 'ज्ञान' भी)
अतिमानव [महामानव]
स्त्रीकी कोखसे ही जन्मेगा १४६
को जन्म देनेके लिये १४७, १५४
की कल्पना १४८-५४, १५५
और मनुष्य : भेद १४८-५१, १५२टि०, १५६
और धर्म १५१, १५२
का विधान और कर्म-प्रेरणा १५२-५३
का सामाजिक स्तर : सबके साथ मन-प्राण-शरीरतकमें पूर्ण एकात्मताकी उपलब्धि १५३
तक पहुंचनेके प्रकृतिके प्रयास और पथ १५५
(दे० 'अहं', 'आत्मा', 'नयी जाति' भी)

सूचना :
(क) ऐसे पढ़ें :

कठिनाई	**दूसरे**	**स्त्री**	**गुण**	**समाज**
-योंकी	-ोंका	-योंकी	-ोंके	आदर्श, की
कठिनाइयोंकी	दूसरोंका	स्त्रियोंकी	गुणोंके	आदर्श समाजकी

२—जिन वाक्योंके केवल शुरूमें (') है, वह अपने-आपमें पूरा वाक्य है। उन्हें मूल शब्दके साथ मिलाकर न पढ़ें।

३—कहीं-कहीं अधिक स्पष्टताके लिये लिखा है :
(दे० 'विचार' -ों, नये भी), इसका मतलब है विचारके नीचेका वह वाक्य जो -ों, नयेसे शुरू होता है।

४—पृष्ठ संख्याके बाद अ का मतलब है कि वह प्रसंग उस पृष्ठके अंतसे शुरू होकर, बस, अगले पृष्ठके आरंभतक ही गया है।

५—जहां वाक्य-रचना मूल शब्दके साथ संगत न जान पड़े, वहां मूल शब्दके आगे कोष्ठमें जो शब्द दिया गया है उसके साथ मिलाकर पढ़नेसे वह संगत बन जायगी।

(ख) भाग ८ की अनुक्रमणिका नहीं है।

विषय-अनुक्रमणिका

अंधकार ८५
जब घना, तमी ऊषा . . ४१
और प्रकाशका यह गठबंधन ४१
(दे० 'जगत्' मी)
अंधविश्वास ३३, ७४, २०९
अग्नि-कुंड
उद्‌बुद्ध, के बिना मेरी सत्ता . . ११४
अच्छा और बुरा [शुम-अशुम]
की धारणा ८८, १२१, १२२
अज्ञान ८५, ९६, २५९
(दे० 'ज्ञान' मी)
अतिमानव [महामानव]
स्त्रीकी कोखसे ही जन्मेगा १४६
को जन्म देनेके लिये १४७, १५४
की कल्पना १४८-५४, १५५
और मनुष्य : मेद १४८-५१, १५२टि०, १५६
और धर्म १५१, १५२
का विधान और कर्म-प्रेरणा १५२-५३
का सामाजिक स्तर : सबके साथ मन-प्राण-शरीरतकमें पूर्ण एकात्मताकी उपलब्धि १५३
तक पहुंचनेके प्रकृतिके प्रयास और पथ १५५
(दे० 'अहं', 'आत्मा', 'नयी जाति' मी)

सूचना :
(क) ऐसे पढ़ें :

कठिनाई	**दूसरे**	**स्त्री**	**गुण**	**समाज**
-योंकी	-ोंका	-योंकी	-ोंके	आदर्श, की
कठिनाइयोंकी	दूसरोंका	स्त्रियोंकी	गुणोंके	आदर्श समाजकी

२—जिन वाक्योंके केवल शुरूमें (') है, वह अपने-आपमें पूरा वाक्य है। उन्हें मूल शब्दके साथ मिलाकर न पढ़ें।

३—कहीं-कहीं अधिक स्पष्टताके लिये लिखा है :
(दे० 'विचार' -ों, नये मी), इसका मतलब है विचारके नीचेका वह वाक्य जो -ों, नयेसे शुरू होता है।

४—पृष्ठ संख्याके बाद अ का मतलब है कि वह प्रसंग उस पृष्ठके अंतसे शुरू होकर, बस, अगले पृष्ठके आरंमतक ही गया है।

५—जहां वाक्य-रचना मूल शब्दके साथ संगत न जान पड़े, वहां मूल शब्दके आगे कोष्ठमें जो शब्द दिया गया है उसके साथ मिलाकर पढ़नेसे वह संगत बन जायगी।

(ख) माग ८ की अनुक्रमणिका नहीं है।

अतिमानवता
के पथपर मनुष्य कब १५०, १५१
को लानेमें सहायक लोग १४६, १५१, १५४
का पथिक १५५-५६; और उत्कृष्ट, प्रसिद्ध व्यक्ति १५६
अधिमानस-सृष्टि
के आदर्शकी कहानी : वहां जीवन, काम, वैज्ञानिक, कलाकार तथा विधि-विधानका रूप ७-११
अध्यवसाय
के साथ जब हम लगे होते हैं तब हम जो अध्ययन करते, जो कुछ करते, जिन लोगोंसे मिलते, सबसे कुछ सहायता . . ४०
अपनी भूमिकाको निभानेमें ४९, ५०, ५२
विचार-स्वामित्व एवं विचार-शुद्धिके लिये ६१, ८५-६
का मतलब १८४
का फल १८५, १८७
(दे० 'काम', 'प्रयास', 'धैर्य', 'प्रकाश' को भी)
अनासक्ति ५७, १२०
ही अतिमानवका नियम १५३
अन्याय [अत्याचार] २२४
का सामना १५; इसमें विजयकी शर्त १६
अपराधी [अधम, दुष्टप्रकृति लोग]
में भी भगवान्‌को देख सकें ३८
में भी कोई-न-कोई गुण २११-१४
सदा बुराई ही खोजते हैं २२४
अपरिवर्तनशीलता ५३
अभाव से यदि पीड़ित हो ४२
अभिमान [घमंड] १३८, १९६
'मानमर्दनमें ही महिमा . . ४३
'शेखी बघारना २३७-३९
अभीप्सा ५९, १५४
सच्ची, व्यर्थ नहीं . . . १८, १०५
द्वारा हर व्यक्ति अपने गुणोंको पूर्णतातक विकसित कर सकता है १०१
(दे० 'प्रगति' भी)
अवचेतना दे० 'ज्ञान'
अवतार दे० 'महापुरुष'
अविवेक १७०
अव्यवस्था दे० 'जगत्', 'व्यवस्था'
असत्य की सफलता अस्थायी २०१
असफलता का एक ही मार्ग ११३
अहं
की तुच्छताका बोध : क्या मूल्य है हमारे आवेगों, कामनाओं, दु:खों व संघर्षोंका उसके सामने जो . . ३८, ३९
'अपने संबंधसे प्रत्येक वस्तुपर विचार ४९अ, ५५-६, ९७
और अपनी भूमिकाका चुनाव ५१, ५४
पृथक्, का भ्रम दे० 'व्यक्तित्व'
पर विजय ६४अ
और उदारता ९२-७
और अंत:स्थ भगवान् ९८
और अतिमानव १५४ टि०
(दे० "मैं", 'देना', 'प्रगति', 'संवेदनशीलता' भी)

आ

आंतरिक वाणी [आवाज]
की अवहेलना १, २
का अनुसरण १४९
आंतरिक विकास
व्यक्तिका कर्तव्य ४८
के बिना बाहरी प्रगति संभव नहीं १३७
(दे० 'संगठन' भी)
आत्मनिर्भरता
: कहानी १७९-८२
के अपवाद वे जिनका जीवन सत्यकी खोजमें . . १७९
के साथ दूसरोंकी सहायता भी १८२
आत्मनिवेदन [आत्मदान]
अपनी भूमिकाके प्रति ४९-५१
से वे तत्त्व बच निकलते हैं १२२
(दे० 'समर्पण', 'आत्मसंयम', 'उदारता' भी)
आत्म-बलि [आत्म-त्याग]
की कामना ५६-७
आत्मविश्वास
की कमी, अपनी कमियोंको उचित ठहरानेका कारण २२
आत्मसंयम
जरूरी, आत्मदानसे पहले ९२
का अर्थ ९७, १६१
और सफलता ११३
और त्यागमें संतुलन ११४
'वशमें हम उसी चीजको कर सकते हैं जिसे हम जानते हैं और उसीपर प्रभुत्व पा सकते हैं जो हमारे वशमें है १२२
: कहानी १६१-६६
अपनी उद्दंड प्रवृत्तियोंपर १६१
क्रोधपर १६१-६४
दुर्बल स्वभावपर १६४-६५
की कला अन्य कलाओंसे महान् १६६
खान-पानमें १९१-९३
(दे० 'ध्यान', 'प्रगति', 'स्वप्न' भी)
आत्मा
व्यक्तिगत और वैश्व आत्मा एक है ९० (दे० 'मैं' भी)
का राज्य आ रहा है १४६
की उपलब्धि, सबमें, अतिमानवको १५३
आदतों में क्रांति लानेके लिये ७४
आदर्श
निःस्वार्थका, अनुसरण : उत्तम दृष्टांत ६५
अपने, के पूर्णावतारको बाहर खोजना ७५
आध्यात्मिकता
की उपलब्धिका सूत्र ३८
आधार अतिमानव जातिका १५१
और नैतिकता १५२
(दे० 'वातावरण' भी)
आध्यात्मिक सत्य
अन्य सबका आधार १३७अ
आनंद १०७, १५३
और विश्रामकी चार अवस्थाएं दे० 'ध्यान' के चार धाम
(दे० 'भगवान्', 'संवेदन', 'स्मृति' भी)
आनुवंशिकता की दुहाई १४५

आवेग ९२
भ्रांति व अहंकारका पर्याय ९६
(दे० 'अहं' भी)
आशा
और सांत्वनाका संदेश, दुःखी व निराश लोगोंके लिये १८-९, ४०-२, १७५
(दे० 'शांति' भी)

इ

इतिहास ११९
ईर्ष्या २२२, २२४

उ

उदारता ५, ८
हमारी, अपने विषयमें २२
औरोंके प्रति ८५, २१४; पर अपने साथ कठोर ८५
का अर्थ ९०
और न्याय ९०-१
के चार रूप : भौतिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक, प्रेममय ९१ (दे० 'समर्पण', 'संबंध' भी)
का आजकल अर्थ ९१
परम : पार्थिवके पुनर्निर्माणके कार्यमें समग्र आत्मदान ९२
घरसे शुरू होती है ९२; इसे समझने का गलत तरीका ९३
के निष्फल होनेका कारण ९२अ
से पहले संग्रह ९३
विवेकके अभावमें ९३, ९६
की चाबी : ऐक्य भावना ९४-५
की अभिव्यक्तिमें व्यावहारिक बाधा ९४-६
पूर्णतः निःस्वार्थ, विरल ९६
या कि सौदेबाजी ९६
सच्ची, के लिये तुम्हें निर्वैयक्तिक होना चाहिये ९६
और प्रेम ९७
के जीते-जागते प्रतीक ९७
(दे० 'देना' भी)
उदाहरण
घरसे निकलते ही वर्षा २०
एक हिन्दू राजाका ध्यान २५-६
"करुणापूर्ण हृदयोंसे, पीड़ित जगत्में जाओ, शिक्षक बनो, दीप जलाओ" २७, ९२, १२०
समस्या सुलझ जाना स्वप्नमें ३१
एक लेखकका समाधान स्वप्नमें ३२
शत्रुतापूर्ण विचार अपने; स्वप्न कि दूसरा पीट रहा है ३३
उदीयमान सूर्यका पाठ ४०
ऐसा कोई कुहासा नहीं जिसे सूर्य दूर न कर सके, ऐसा कोई आंसू नहीं जिसे वह सुखा न दे ४१
दो मनोंका मतभेद दो हृदयोंको मिलनेके लिये बाधित . . ४१
गहराईमें जो जागता है वह शिखरके कितना समीप होता है ४१
खाई जितनी अधिक गहरी, ऊंचाई उतनी ही अधिक . . ४१
बुरे-से-बुरेमेंसे सदा भले-से-भला निकल आता है ४२
जमीनमें बोया एक दाना हजारों दाने पैदा करता है ४२

शत्रुका हमें नष्ट करनेका प्रयत्न ही हमें महान् . . ४२
जैसे सांस लेता हूं या पुष्प सहजता-से सुरभि फैलाता है ५१
जैसे निर्मल स्रोतसे जल ५२
प्रसिद्ध नदियां कूड़े-करकटको भी वहन . . ७६
पुराने जमानेमें विद्यालय नगरोंसे दूर ७६
बड़े संत सदा विनयशील और अज्ञात ७६अ
छोटे-से फूल और दीप्तिमान सूर्यसे भी विचार पाना ७७
दर्पण ७७, ७८, ११२, १३०, १४९
बालूके एक कणकी व्याख्याके लिये समस्त विश्वकी जरूरत ७९, ८०टि०
ईथर ८१, १०३, ११९
उल्का ८१
चुंबक ८२
इंजीनियरका इंजन-निर्माण ८२
शत्रुसे बढ़कर हानि और सगे-संबंधी से अधिक उपकार बुरे और अच्छे विचारोंसे ८३
सोना चाहते हैं सब ८४
तारा ८४, १०४
गरीब लोग ज्यादा उदार ९३
सोना सोनेको आकर्षित . . ९३
हम नालियोंकी तरह हैं ९४
कुछको प्रयासद्वारा प्रगति करनेके लिये प्रेरित करनेकी जगह, उनके आलस्यको प्रश्रय देकर उनके पतनको जल्दी . . ९५
संत जो हर आदमीमें सोना . . १०१
प्रकृतिके शांत स्थानों, पर्वतोंपर, वनोंमें, सरिता/या समुद्रतटपर अकेले घूमनेसे आनंद . . १११
स्फटिक ११२
फटे-पुराने कपड़े बटोरने और बेचनेमें सफल, संसारका मालिक या पूर्ण वैरागी होनेमें सफल ११३
मोमबत्ती, गैसकी रोशनी, बिजली-की रोशनी १२३
सांडसे पुजारी भयभीत १२५-२६
घायल सैनिक . . हृदयस्पर्शी दृश्य १२९
निर्माताके साथ प्यारा, विनयशील बालक १३०
आंधी, तूफान, पानी १३१
चींटी, मधुमक्खी १३१
स्त्री, जिसने पुरुषोंको 'असंभव' लगते तीन दिनोंमें ही अकाल-पीड़ितोंकी मांगको पूरा कर दिया १३६
खरगोशकी तरह बच्चे पैदा करना १४४
स्त्री, जिसकी जुड़वां लड़कियां रेनाल्डके एक चित्रके अनुरूप थीं १४४
'बापपर पूत पितापर घोड़ा' १४५
प्रभातसे पहले रात्रि सबसे अंधेरी होती है १४५
बंदर १४८, १४९
गुरिल्ले १४९
शांत सरोवर १४९
बंदरकी पूंछ जैसे गायब १५०टि०
सुन्दर-से-सुन्दर मणि रासायनिक

योगोंवाले जीवनसे, सुन्दर-से-सुन्दर वृक्ष जैविक क्रियावाले पशुसे अलग हैं १५६
जंगली घोड़ा; बाघ १६१
गुलाम, जिससे खौलता पानी खलीफा हुसैनपर गिर पड़ा १६१
जोशीला लड़का, जिसने थप्पड़के बदले मुट्ठीको जेबमें .. १६३
भेड़का-सा, गुलामका-सा स्वभाव १६४
कुत्ता भी बुलानेसे आ जाता, दुत्कारनेसे चला .. १६५
कलावित् ब्रह्मचारीको बुद्धद्वारा आत्मशासनकी शिक्षा १६५-६६
धनुर्वेदी, नाविक, शिल्पी .. १६६
चंचल युवा घोड़ा काठके घोड़ेसे अच्छा १६६
तैरना .. आत्मरक्षा १६६, १६७
लोगोंको आगसे, खानसे, भूचालसे और मातृभूमिको शत्रुओंसे बचाना १६८
मुर्गी अंडे सेती है और चिंता नहीं करती कि बच्चे प्रकाशमें आ सकेंगे या नहीं १७३
काली घटा .. आग .. १७५
जलती मोमबत्ती दूसरी मोमबत्तियोंको जला सकती है १७५
वर्षामें हंसते बच्चोंसे भरी गाड़ियां १७५-७६
शहदका व्यवसाय करनेवाली स्त्री १७६-७७
मां, नर्स, स्वामी, श्रमजीवी १७८
पिता, साझेके काम .. १८२
'जिन्न' के चमत्कार १८३
बांध, पुल, जल-जहाज, वायुयान, जंगली जानवर १८३, २२४
सदा ना बागीं बुलबुल .. १८३
व्यस्त व्यक्तिसे मिलने जाना १८३
बूंदोंसे चट्टानें घिस गयीं, रेतके कणोंसे टीला .., क्षुद्र जीवोंसे मूंगेके पहाड़ .. १८५
घुड़सवार जैसे घोड़ेको पलभरमें विश्राम देकर आगे चल .. १८८
बिना गढ़ा खोदे टीला नहीं १८९
सिपाही, नाविक, घुड़सवार भग्न-साधन हों तो किस कामके १९३
सौदागरके प्रत्युपकारके लिये वस्त्रोंकी चोरी करनेवाले दो गिद्ध १९६-९७
बंदर तीन : एक आंख, दूसरा कान, तीसरा मुंह बंद किये हुए १९७
सिंह, भेड़िया और लोमड़ी : शिकार का बटवारा १९८
बारह वर्ष बाद बनारससे लौटा पंडित, कागजी बर्तन-सा २०२
बकरीको पानेमें असफल भेड़ियेकी भक्ति और व्रत २०३
"राजा बेला" की हंसी २०४
शिकारीके बेलकी पत्तियोंपर गिरे सच्चे आंसू २०६
किंशुकका पेड़ विभिन्न ऋतुओंमें २०७
छड़ी पानीमें २०९
साधु और भेड़ा २१०
भेड़िया चरवाहेके लबादेमें, २१०
गधा शेरकी खालमें २१०
मित्र यदि काना है २११
सहपाठी जो फूहड़, अध्यापक जो

कठोर, मित्र जो दुःखदायी प्रतीत होता है २११
लकड़ीके सड़े-गले तख्तेमें भी कुछ रेशे अच्छे २१२
वृक्षोंकी कठोर गांठें मूर्तिकारके कामकी २१२
बंदरगाहमें गिरे प्रहरीकी जान बचानेवाला अपराधी २१३
दो कैदी जेलसे छूटनेके बाद कच्चे सोनेके एक व्यापारीके यहां नौकर २१३-१४
जम्बूद्वीपके चारों ओर क्षीर, नवनीत, दधिके सागर २१४-१५
धूल-मिट्टीके लिये भी स्थान है २१६
स्याहीका स्थान दावातमें २१६
रेलगाड़ियां और व्यवस्था २१७
घड़ी, नियमितताका उदाहरण २१८
किसान और घड़ीकी बातचीत २१८
तैरना, नौका खेना, कुश्ती लड़ना सीखना श्रमसाध्य २१८
चलना जब तुम पहली बार सीखे थे २१९
पड़ोससे एक वर्ष बाद आग लानेवाला नौकर २१९
सैनिक नाश करता है, कारीगर बनाता है २२०
ढोंगी कवि, पदमें 'विवेक' शब्द तीन बार . . २२३
गिद्ध, दुर्गन्धसे आकर्षित २२४
लाभकारी वृक्ष, फूल-पौधे, पवित्र देवालय, मूर्ति, चित्र . . २२५
ब्रह्मराक्षस, अपनी विद्या औरोंको देनेसे कतरानेवाला २३०
खनिकने अपनी कलाका उपयोग पांडवोंको बचानेमें . . २३१
प्रसिद्ध अभिनेत्री, जो बच्चीके साथ दूसरे स्थानपर गानेको तैयार हो गयी . . २४२
अहंकारी जुगनू २४३
भेड़ें और मेमने दिनभरके बिछुड़ोंको ढूंढते . . २४४
बंदरिया, दूसरे बच्चोंको भी प्यार करनेवाली . . २४४
चिड़िया, गोरिला, वनमानुष परिवार बनाकर रहते हैं २४४
सत्रह महीनेकी बच्ची बापसे बिछुड़कर जब उससे मिली २४४
मोचीका प्रेम अपने गूंगे बच्चेके प्रति २४६-४७
एक मुसलमान कहीं जानेसे पहले मांके पांव चूमता . . २४८
अरब मांके प्यारभरे शब्द २४८
भालू, जिसने एस्किमो जातिके तीन आदमियोंकी जान बचायी २५२
सफेद हाथीका अपनी अंधी मांके लिये प्रेम २५३-५४
नंदी हरिणद्वारा राजाको दयाका पाठ २५५-५६
देव समाजके परोपकारके कामोंकी सूचनाएं : पेशावर, मोगा, फिरोजपुर, स्यालकोटकी २५९
पापी स्त्री और प्यासा कुत्ता २६१
(दे० 'दीक्षा', 'मनुष्य', 'नामानुक्रमणिका' भी)

उपहार दे० 'भेंट'

ए

एकता (भगवान्‌के साथ)
का विचार, केंद्रीय विचार ३७
प्राप्त करना सबसे उपयोगी काम ४७, ४८
प्राप्त करनेद्वारा औरोंके साथ एकता ५९, ६८, ९८, १५३
की ओर, वर्तमान क्षणके जीवनसे संपूर्ण जीवन, फिर पार्थिव जीवन, फिर वैश्व जीवनकी सचेतनता व एकताके द्वारा १२३
(दे० 'भगवान्' भी)
एकता (सबके साथ) १४१
की अनुभूतिका सूत्र ३८, ५९, १५३
की अचेतन आवश्यकता ५३
मौलिक, का विचार ६४
(दे० 'मानव एकता', 'अतिमानव', 'उदारता' भी)
एकाग्रता २१, ३४, ३५, ७७, ९८

ओ

ओ३म् ६२-३

क

कठिनाई [विपत्ति]
-यों, दुर्जेय, का प्रधान कारण ३०
कोई नहीं जो प्रतिदानमें अपने बराबर ऐश्वर्य न लाये ४१
का सामना ५२, १७५
-योंकी उत्पत्ति पृथक् व्यक्तित्वके भ्रमसे ५३
केंद्रीय, व्यक्तिकी ५५, यह उस प्रकाशकी छाया . . ५५
में प्रसन्न रहना साहस है १७८
(दे० 'दुःख', 'विचार' भी)
कल
पर टालना कामको ४
बीते, का उपयोग ८९
कला १५०
वह भाषा है . . ११५
का उद्देश्य ११५
सफल तभी ११५
कलाकार ७, ८४
कविता [गीत]
आशासे भरी १७५
पंजाबी १८३
ऐश्वर्यमें दुखी मैंजू लड़कीका १८८
तमिल मांका २४५-४६
भ्रातृ द्वितीयाका २५०
काम [कार्य, कर्म]
अच्छा ७
इस समय करने लायक ४७-९
का ज्ञान एवं चुनाव, विश्वमें अपनी भूमिकाके ४९-५२, ५४
निःस्वार्थ, प्रतिदिन, कुछ समय ४९
जितना करना **चाहते** हैं और जितना करनेमें **समर्थ** हैं ५०
दिखावेके लिये न करें ५१
एक ऐसा है जिसे मैं औरोंकी अपेक्षा अधिक अच्छा कर सकता हूं ५१; यह होना चाहिये सहज, स्वतःस्फूर्त ५१-२
निःस्वार्थ, में सबसे बड़ी बाधा, ५२-४

सेवाका, तभी हाथमें लिया जाना चाहिये जब . . . ५७
सहजभावमें और पूर्णताके साथ निर्वैयक्तिकताके द्वारा ५८
रूपांतरके सक्षम माध्यम १०१
दो मानसिक : विचार-रचना और निद्रागत क्रियाशीलता १०१अ
करना चाहिये अतिमानवताके स्वागतके लिये १४६, १४८
सर्वहितके महानियमके अनुसार १६६
स्वयं करना, आत्मनिर्भरताके लिये १७९
(दे० 'अध्यवसाय', 'प्रयास', 'अतिमानव', 'कल', 'प्रकाश', 'व्यक्ति', 'सत्य', 'समाज' भी)

कामना [इच्छा, चाह]
-एं, दमित, स्वप्नोंमें अपनी तृप्तिका प्रयत्न करती हैं २९अ
निःशेष कब ३०
-एं रूप-सृष्टिके सक्रिय केंद्र ३०
अहमात्मक, का नाश ५१, ८० टि०
यह भी नहीं कि दूसरे प्रगति करें ९८
(दे० 'विचार' भी)

कृतज्ञता
गुण ६
पानेकी कामना ९६

क्रोध दे० 'आत्मसंयम'

क्षमा ९७, १६१, १६२, २०१

ग

गणित विद्या २१६

गरीब ८४, ९३, १९०

गरीबी ४१, ४२, २२४

गर्भावस्था
में भौतिक वातावरणका महत्त्व १४४

गीत दे० 'कविता'

गुण
'सद्गुणोंके उत्सवमें ४-६
दिव्य, सभीके केंद्रस्थलमें एक समान ६४
सभी, जहां मिलकर एक होते हैं ९७
अपेक्षित, सार्वजनिक कार्योंकी व्यवस्थाके लिये १३६
ही देखना, दूसरोंके २११
(दे० 'मानसिक समन्वय' भी)

गुरु ७५
दो प्रकारके (श्रीरामकृष्ण) १०४-५

ग्रहणशीलता ३९, १०५, १११, १२९, १३०, १५४
व्ययके अनुपातमें ९३
(दे० 'जड़तत्त्व' भी)

च

चमत्कार [जादू] ७५, १०२

चीज
को अपने स्थानपर रखना ९०, २१५, २१६-१७
(दे० 'संपत्ति', 'स्वामी' भी)

चेतना
जहां नहीं वहां स्मृति भी नहीं ३५
को पहले शरीरसे अलग करना, फिर उसके साथ एक करना १११

चैत्यपुरुष [अंतःस्थ ज्योति]
हममें भगवान्का अंश, जीवनदाता, प्रकाशदाता, पथप्रदर्शक . . १८
(दे० 'भागवत उपस्थिति', 'शांति' भी)

ज

जगत् [संसार, विश्व]
के प्रति दृष्टि : प्रेम, करुणा, सौम्यताकी २६, २८
के परिवर्तन एवं उसके कष्ट, अव्यवस्था व अज्ञानांधकारको दूर करनेके लिये २७, ३७, ६४, ९२, १००, १२०, १४७, १५१,
(दे० 'दूसरे', 'सहायता', 'संगठन' भी)
'नाना लोकोंकी कहानी ४२
भौतिक १०३
भागवत शक्तिको प्रकट करनेके लिये बना है १३९ (दे० 'लक्ष्य' भी)
(दे० 'मानवजाति', 'समग्र' भी)
जड़तत्त्व
की अपूर्णताका कारण : ग्रहणशीलताका अभाव ५२
(दे० 'दुःख' भी)
जीवन ६५, ११२
है निरंतर गतिमें, रूपांतरमें २५, ८९
पार्थिव, का रूपांतर दो परस्पर पूरक प्रक्रियाओं, व्यक्तिगत रूपांतर और सामाजिक रूपांतर, द्वारा ४७-८
में कष्टके अवसर हर्षके अवसरोंसे अधिक ५६
इस पार्थिव, का अधिक-से-अधिक परिणाम कब ११३-१४
'सादा जीवन : कहानी १८७-९३
(दे० 'एकत्व', 'सचेतनता', 'सत्य' भी)
ज्ञान
जब कोई छुपा नहीं रहता २६अ, ५४, ७८
हमारे अवचेतनमें साधारण चेतनासे अधिक ३१
बहुत-सा उपयोगी, स्वप्नोंद्वारा ३१-३, ३६
प्राप्तिका उपाय ७७-८ (दे० 'विचार' -ों, नये भी)
उच्चतम, उसे प्राप्त है भले वह कुछ न जानता हो ७८
और प्रकाश भी संक्रामक ८६
जो तुम्हें नहीं, उसे दूसरोंको कैसे सिखा सकते हो ९२
देना जो दूसरोंके बसका न हो ९५अ
को जीवनमें उतारना दे० 'सत्य'
की विजय : कहानी २३२-३६
देना अज्ञानीको २२९-३०, २५९
देना एक-दूसरेको २३१-३२, २६०
- विनिमय पूरब और पश्चिमवालोंका २३२
(दे० 'प्रकाश', 'सत्य', 'आत्मसंयम', 'काम' भी)
ज्योतिष-विज्ञान २१६

त

ताओ ६३, ११९
तादात्म्य दे० 'एकता'
तुलना ५४
त्याग
प्राथमिक सत्योंका २६
(दे० 'आत्मबलि', 'लक्ष्य' भी)

थ

थकान निरर्थक बीते समयसे ३४

द

दया
का साधन दान देना ही नहीं है १८२, २६२
या सौहार्द, साधन : दूसरोंका स्नेह या मैत्री पानेका २६२
(दे० 'ध्यान', 'परिवार', 'हृदय' भी)
दाता : कहानी २२९-३२
(दे० 'देना', 'उदारता' भी)
दान २६२
दिखावा ५१, १८९, २०२, २०५
दीक्षा
की प्राचीन विकास-पद्धतियोंका सार ९०
कैल्डियन : अगर बारह धर्मपरायण एक हो जायं . . १०५
दुःख
झेलना जानो १८-९, ४०-३, १७५
की उपयोगिता १९
भोग चुके ही दूसरोंका दर्द समझ सकते हैं १९
जड़पदार्थकी अपूर्णतासे १९
सर्वप्रथम भगवान् ही पाते हैं १९
में अंतरका द्वार खुलता . . भगवान्‌का स्नेह मिलता १९, ४०
दूसरोंके, अपने ऊपर ले लेनेकी प्रवृत्ति ५६-८
पैदा न करने दो, अपने अंदर, किसी भी भावुकताको ५६-८
किसी दुर्बलताका चिह्न ५७
दुःखका साथ कब देता है २५५-५७, २५८-६२
'दुःखी जानवरोंके दुःखमें भी २६१
(दे० 'अहं', 'आशा', 'कठिनाई', 'जगत्', 'दूसरे', 'शांति' भी)
दुर्बलता [कमजोरी] २२, ३८, ३९, ४०, ४१, ५७, १३१
दुर्भावना ८७, ८९
दुष्टता २२४
दूरदर्शिता : कहानी १९४-९७
दूसरे
क्या सोचते हैं ५१
-ोंका दुःख दूर करनेका उपाय : अविचल, प्रफुल्ल शांति ५६-८, ९७, १७८ (दे० 'जगत्' भी)
से हमारे आदर्शको चरितार्थ करनेकी मांग ८८ (दे०'आदर्श' भी)
से न परेशान होओ, न दूसरेकी परेशानीका कारण बनो ९८
(दे० 'उदारता', 'एकता', 'कामना', 'गुण', 'दोष', 'शुभेच्छा', 'संबंध' भी)
दृष्टांत [उदाहरण] १२१
प्रस्तुत करने योग्य ६४-५

बनना संसारके लिये ६८, ९८, १००, १०४
देना
दूसरोंको जरूरतकी चीज, यही उदारता है ९०, ९२
'दे तुम वह नहीं सकते जो तुम्हारे अधिकारमें न हो ९२
बिना जरूरतके ९५-६; इसके दो कारण : अज्ञान और अहंकार ९६
लेनेकी अपेक्षा ज्यादा अच्छा २३२
(दे० 'ज्ञान', 'दया' भी)
दोष [त्रुटि] ४१, ८७
भी हमारे, आकर्षक २२
दूसरोंमें अखरनेवाले ८८ (दे० 'मूल्यांकन' भी)
सचमुच है क्या ? ८८
-ोंका सुधार १६२
दूसरोंके देखना २११, २२४

ध

धन
के पीछे दौड़ ६५, ८४
और समयका उपयोग १८९
संतोष और प्रसन्नतारूपी १९०
धम्मता १३८
धर्म दे० 'अतिमानव', 'सिद्धांत'
धैर्य ६१, १६४, १७५
और अध्यवसाय : कहानी १८३-८७
धोखा [कपट, पाखण्ड] ५५, ७३, ११५, १५०, २०२, २०३, २०९, २३१
ध्यान ९४
की पहली सीढ़ी : मनन २१, २५
के लिये आवश्यक बातें २५
के चार धाम : मनन, अविचलता, आत्म-विजय, पूर्ण प्रभुत्व व सौम्यता २५-६
के वक्त रखने लायक अवस्था : प्रेम, दया, सहानुभूति, प्रशांतता-की — टिप्पणी २८

न

नयी जाति ४७
के जन्मको समझनेके लिये भूतकाल-पर नजर १४८
में नये तत्त्वका अवतरण, साथ ही पुरानी विशेषताका लोप भी १४८-५०
की विशेषता : सहजबोध १४९-५०, १५२टि०
की कल्पना दे० 'अतिमानव'
त्राण करनेवालोंकी होगी १५४ टि०
निंदा दूसरोंकी ८७
(दे० 'प्रशंसा' भी)
निःस्वार्थता [निष्कामता] ४९, ६५
और लापरवाही ९३
(दे० 'निर्वैयक्तिकता' भी)
निरीक्षण निष्पक्ष, अपना १२१-२२
(दे० 'विचार' भी)
निर्णय दे० 'मूल्यांकन'
निर्वैयक्तिकता ५४, ५८, ८८, ९६
(दे० 'स्नायविक सत्ता' भी)
नीरवता २५
की वाणी सुनो ४१

की जरूरत आंतरिक वाणी सुननेके
लिये ७६, १४९
आती है और अभीप्साकी अग्नि
चेत उठती है . . ११४
नेता १२-८
नैतिकता
और आध्यात्मिक जीवन १५२
नैतिक बल १७०, १७१
न्याय ५, ८, १५, ९०-१
(दे० 'अन्याय', 'उदारता', 'साधन'
भी)

प

पथ [मार्ग, रास्ता] ८० टि०, १४८
थोड़ी देरका १-४
गलत, पर आसानके कारण न
जाओ २
के प्रकाश-स्तंभका काम करता है
मानसिक समन्वय ३६
दिखा कैसे सकते हो जब तुम उस
राहपर नहीं ९२
पर अपने-आप चलना होगा १००
अलग-अलग हैं 'उस' तक पहुंचनेके
११९
सीधे, पर चलते कोई भय नहीं
१२५
(दे० 'अतिमानव', 'अतिमानवता'
भी)
परिवर्तन
बाहरी, सामाजिक, राजनीतिक,
. . . ६४, १४७, १५१
(दे० 'जगत्' भी)
परिवार
: कहानी २४४-५३
बनाकर रहते हैं पशु भी २४४
ही सच्चा घर है २४७अ
माने दो; तीन; चार २४९-५०
कितना बड़ा हो सकता है २५०-५२
की सर्व-सामान्य चीज : प्रेम, दया
और सद्भावना २५२
परिस्थिति
-योंका विशेष अर्थ आध्यात्मिक
व्यक्तिके लिये ६५
-योंसे मुक्त १११अ
(दे० 'रूपांतर' भी)
परोपकार २५९
पशु [जानवर]
-ओंके साथ व्यवहार २२९, २५१अ,
२६१
पूर्वाग्रह [पूर्वनिर्णय] १२१
और नये विचार ७४-५, ७७
पृथ्वी
पर जन्म जब इस अद्भुत कालमें,
तो क्या हम . . १४६
प्रकाश १०२, १०३
में लाना दबी चीजोंको, बेहतर
३१
को आच्छन्न न होने देनेके लिये
विधिवत् साधना . . . ३८
आंतरिक, का जब दर्शन ४९
आंतरिकका बुझना योग्यतासे
नीचेके कामोंद्वारा ५१
और प्रेमके संदेशवाहक ८५, ९७अ
(दे० 'ज्ञान', 'सत्य', 'कठिनाई',
'विचार' भी)
प्रकृति
प्रतीक्षामें, ईश्वरके पुत्रोंकी ३७

के नये रूपको जन्म देनेके आवेग-को उत्तर देना है १४७-४८
का लक्ष्य एवं अनथक अध्यवसाय १४८, १५५, १५६
प्रगति [उन्नति] ३६, ७४
में बाधाका प्रधान कारण ३०
व्यक्तिगत, सर्वोत्तम उदाहरण ६४
और पूर्णताकी इच्छा हमारी क्रिया-ओंका केंद्र होनी चाहिये ८९
नहीं, तो पतनकी ओर ८९
सभी, में आवश्यक चीज : आत्म-संयम, अहंकी मृत्यु ९७
असंतुलित : कारण १२१
सच्ची, निजी प्रयत्नोंद्वारा १८३
(दे० 'आंतरिक विकास', 'जीवन' भी)
प्रतीक्षा करना जानो ६१
प्रभुत्व २६, १२२
प्रमाद [आलस्य] ९५
की युक्ति कि वे तो महापुरुष हैं लेकिन हम . . १०१
प्रयास [प्रयत्न, परिश्रम]
अधिक, की मांग अपनेसे ६१
पूरा कर लेनेके बाद भगवती शक्ति-पर अपने-आपको छोड़ना ६१, १७३
निजी गुणोंकी पूर्णताके लिये १००-१
और त्याग लक्ष्यकी विशालता और और उच्चताके अनुरूप ११४
निजी, के चमत्कार १८३
के बिना कुछ नहीं सीखा जाता २१८
(दे० 'अध्यवसाय')
प्रलोभन ३६
गलत विचारोंका ८५, ८६
प्रशंसा ४१
की इच्छा ५१
-निंदामें अविचलित, शांत १६६
प्रसन्नता
'प्रफुल्लता : कहानी १७५-७८
और साहस एक ही हैं १७८
का प्रभाव १७८
(दे० 'शांति' भी)
प्राण
वैश्व, के साथ जब तादात्म्य १११
(दे० 'स्नायविक सत्ता' भी)
प्रार्थना और ध्यान १११-१६
प्रेम
सच्चा ३९
निर्वैयक्तिक ५८, ५९
करनेका बुरा तरीका ७४
तुम्हारे अंदर नहीं तो तुम प्रेमको फैला कैसे सकते हो ९२
देना बिना आवश्यकताके ९६
विकीरित करनेवाले ९७
जिससे करते हैं, हमेशा उसके पास रहते हैं १०६
-शक्तिका बोध, सागरकी लहरोंसे ११२-१३
के लिये पुकार भगवान्से ११५
मानव, में धोखा, फलत: भीरुता, संशय भगवान्के प्रेममें ११५
भी प्रेमी और प्रेमपात्रके बीच एक अवगुंठन १२०
मां-बापका बच्चोंके प्रति २४४-४८
बच्चोंका मां-बापके प्रति २४४, २४८-४९
भाई-भाई, भाई-बहनका २४९-५०

(दे० 'ध्यान', 'परिवार', 'विचार', 'जापानी' भी)

फ

फल [परिणाम, पुरस्कार] ७, ६१, १५३, १७३

ब

बनना
अपने-आप ८, ९८
भला २२२
बनाना
और तोड़ना : कहानी २२०-२५
बल १९३
की पूजा, केवल : फल १५१
बलि १५७
बालक [बच्चे] २२५
पैदा करना, आदर्शके प्रतिरूप १४४
-ोंको संबोधित शिक्षा १६२, १६६, १७५, १७८, १८२, १८७, १९३, २०७, २०९, २१४, २१८-१९, २२०, २२४, २२५, २२८, २३२, २३६
(दे० 'प्रेम', 'सत्य', 'जापान' भी)
बुद्धि
का विकास व्ययके अनुपातमें ९४
'बौद्धिक क्रियाएं कठोर . . पर उपयोगी १३७
(दे० 'मन' भी)
बोधि की प्राप्ति कैसे (बुद्ध) ७७-८

भ

भगवान् [अंतःस्थ भगवान्]
जब तू प्रकट होता है तब उस 'जीवन', 'ज्योति', 'प्रेम' का वर्णन कौन कर . . १९
के पथ-प्रदर्शनपर अपने-आपको बालककी भांति छोड़ देना २२, ६१, १२२
की खोज ३७-४०
और हम एक हैं ३७ (दे० 'मैं' भी)
दूर नहीं, अपने अंदर ही हैं ३७
को देखना सबमें, प्रत्येक परमाणु, प्राणी, भ्राता मानव और अधम-में भी ३७-८, ४३; इसका फल ३७-८, ६४
के पुत्रोंकी जाति ३७, ४७
न दबाव डालते, न दावा करते, न भय दिखाते हैं वह तो निजको उत्सर्ग . . ३९
मां हैं . . सबकी सेवक हैं ३९
को हम अपने अंदर लिये रहते हैं ९०, १२०
को जो कुछ निवेदित नहीं . . ९८
संवेदनके क्षेत्रमें सौंदर्यके रूपमें ११५
के साथ पहला संपर्क शांत आनंदके रूपमें ११५
की ओर आरोहण : तीन उपाय : 'सत्य' के लिये प्रेम, भगवान्‌का प्रेम, मानवजातिके लिये प्रेम ११९-२१
के अनेक नाम ११९
अचिंत्य, अकथ्य, पर तादात्म्यद्वारा ज्ञेय १२०

पर एकाग्रता पर्याप्त नहीं, निवेदन भी चाहिये १२२
पर तुम्हारी श्रद्धा कहां गयी ? १२६
की किसी नयी शक्तिके उतरनेकी जरूरत १४७
ही उसके आगे अनेक रूपोंमें १५३
(दे० 'भागवत . .' के अंतर्गत एवं 'सद्वस्तु' भी तथा 'एकता', 'दु:ख', 'युद्ध', 'सत्य' भी)

भय
व्यक्तित्व खोनेका ५३
का सामना, लहरों व आगके १६६-६७
और सत्य २००

भागवत उपस्थिति
अंत:स्थ, से सचेतन होना होगा ३८, ४७, ४८; इसका फल ३८ (दे० 'चैत्यपुरुष' भी)
के लिये पुकार और प्रतीक्षा ११४

भागवत जगत् १३८

भागवत ज्योति
'परम ज्योतिकी ओर १२३

भागवत न्याय ९१

भागवत प्रेम [दिव्य प्रेम]
हमारे ऊपर झुका रहता, हमारी दुर्बलताएं सहता, भूलें सुधारता, घाव भरता . . . ३९
और तमोग्रस्त मिट्टी ४१
की आहुति ४३

भागवत शक्ति [दिव्य शक्ति]
-योंका प्रभाव : भौतिक सामीप्य या दूरीका मूल्य नहीं १०५
के प्रति समर्पण अनिवार्य और उसका फल १२२
के संकल्पसे सब कुछ बदल सकता है १२२

भाषाएं पश्चिमी ६३

भूतकाल ११५ (दे० 'कल' भी)

भूल ३९, ४०
सत्यके पथपर २७, ७८

भूल जाना अपने-आपको ५६, ५८

भेंट [उपहार] २६२
सच्चे हृदयसे दी गयी २०५-६
भौतिक, और सद्ज्ञानका २४५

भोजन
'खाद्य और पेय पदार्थका ध्यान रखो १९१-९२, १९३
'दूषित भोज्य पदार्थ बेचना अपराध १९१अ
(दे० 'आत्मसंयम' भी)

भ्रातृत्व ६४

म

मदिरापान १९२-९३

मन ६२
'मस्तिष्ककी हलचलको दूर करनेका उपाय २०
रूपी घरकी सफाई प्रतिदिन २४ (दे० 'अध्यवसाय' भी)
की सक्रियता और स्वप्न २९
कम ही हैं जो सच्चे विचार सोच सकते हैं १०३
-बुद्धि ही है मनुष्यकी विशेषता १४८, १४९
शांत, नीरव, में सहजबोधको जन्म १४९

शांत, द्वेषरहित, महलके समान १६२
हमारा घर, इसे हम सुन्दर महल भी बना सकते हैं और भयावह, अंधेरी गुफा भी १६२
पर लगाम दे० 'आत्मसंयम'
(दे० 'मानसिक . .' के अंतर्गत एवं 'बुद्धि', 'विचार' भी तथा 'मनुष्य', 'वातावरण' भी)

मनन २१, २५, ११९

मनुष्य
के भीतर फूट निकला स्रोत, प्रकाश, प्रेम . . ४२अ
जैसा दुर्बल यदि और कोई नहीं, तो उस जैसा दिव्य भी नहीं ४३
के अपने अंदर ही है पूर्ण शक्ति, विवेक और ज्ञान ६४
का सच्चा क्रमविकास बाहरी उपायोंसे नहीं ६४ (दे० 'परिवर्तन' भी)
-ोंकी अनबनका मुख्य कारण ७९, ८९
और वानरकी विशेषताएं १४८-४९
जब देख सकेगा कि उसने जो कुछ पाया है वह काफी नहीं . . १५०
'मानवाकारतक पहुंचनेमें प्रकृतिको कितने पथोंका अनुसरण . . १५५
-ोंमें कौन है जो घिसे-पिटे रास्तोंको छोड़ . . १५५-५६
श्रेष्ठ व सहृदय, का स्वभाव १८९, २२४, २२९, २५९ (दे० 'उदारता', 'शांति' भी)
की शक्ति उसके मनमें २३४
के मनने समुद्र, पवन, बरफपर तथा जंगली जानवरोंपर विजय पायी है २३५
तीन तरहके : ढाक, आम और रोटी-फलके पेड़के जैसे २३९
(दे० 'व्यक्ति', 'भगवान्', 'मन' भी)

महत्त्वाकांक्षा ५१, ११३

महापुरुष [अवतार] १४९
-ोंका शिक्षार्थीकाल एकांतमें ७६
की भौतिक उपस्थितिकी अनिवार्य आवश्यकता होना, इससे प्रकट है कि हम आंतरिक जीवनसे बहुत कम सचेतन हैं १०६
मानवजातिके रक्षक, सेवक, पथ-प्रदर्शक, शिक्षक बनकर आते हैं १०६
-ोंपर, जागनेपर, विचार केंद्रित करनेका फल १०६-७

मां
का बच्चेको उपहार २४५
में बच्चेकी आत्माको देखनेकी दृष्टि होती है २४७
के साथ अच्छा व्यवहार करो २४८ (दे० 'प्रेम' भी)

मातृत्व
स्त्रीकी प्रधान भूमिका १४४
सच्चा १४४, १४५, १४७

मानव एकता
की सिद्धि : उपाय ४७-९
और दुर्भावनापूर्ण विचार ८९

मानवजाति
के सभी प्रयास एक ही लक्ष्यकी ओर ११९

के लिये प्रेम ४९अ, १२०
आज घन अंधकार और नयी आशा-
के मोड़पर १४५-४६
(दे० 'समर्पण' भी)
मानसिक क्षेत्र
में भी सचेतन निर्माता ८२-३
में भी सारे समय लेनदेन ८४-५,
१०४
मानसिक विश्राम २९, ६१
मानसिक समन्वयकी रचना
लंबा, कठिन काम २४, ७४
के लिये आवश्यक चीजें और फल
२४, ८५-६
जरूरी, इसका फल ३६, ७२
के लिये केंद्रीय विचार ३६-७
में हेरफेर नये विचारोंसे ७४
(दे० 'पथ', 'विचार' भी)
मितव्ययता १८९
मित्र
गहनतम हमारे ६७
को संकटसे बचाना विचार-रचना-
के द्वारा ८६अ
के बीच व्यवधान, पर शब्द शिष्ट
८७टि०
बनाकर रहना एक-दूसरेको, जगत्-
में १७७
"मिथ्यात्वका' असुर" १२७टि०
मूर्ख ही अक्खड़ और घमण्डी १३८
मूल्यांकन [निर्णय] ९१
हमारे ८७-८, १२१
'ठीक जांच सकना : कहानी
२०९-१४
में उदार और दूरदर्शी होना चाहिये
२१४
"मैं"
व्यक्तिगत और विश्वगत एक ही
है ३६, ३८, ९०
एकाग्रताका वह बिन्दु है . . . ११६
से हम किसकी बात करते हैं
११९-२०

य

यंत्र
-रचना अपनी, से सचेतनता १२१
भागवत इच्छाके १३२
यज्ञाग्नि ८६
युद्ध
की घोषणा करना स्वार्थपूर्ण,
तुच्छ, गंवारू विचारोंके विरुद्ध
निःस्वार्थ, उदात्त विचारोंकी ८५
से आये घायल सैनिकोंको देखकर
संभाव्य की एक झांकी १२९-३०
के पीछे काम करनेवाली शक्तियां
और भागवत इच्छा १३१-३२

र

रक्षा
अपनी और दूसरोंकी १६७-६८
किनकी करनी चाहिये २२१, २५६
किनकी और नाश किनका २२३,
२२४-२५
राजनीति
पुरुषों, और स्त्रियोंकी १३६अ
रात्रि [रात] ८५
के कुछ घंटोंमें दिनका परिश्रम
नष्ट ३०

एक अनजोती जमीन ३४
कुछको थका देती है ३४
शक्ति और स्वास्थ्य देनेवाली ३४
कोई ऐसी नहीं जिसके बाद प्रभात न आये ४१
में यदि चल रहे हो..४२
(दे० 'स्वप्न' भी)

राष्ट्र
को दूसरे राष्ट्रकी कलामें रस लेनेसे रोकनेवाली चीज ११६
-ोंको एक-दूसरेसे सीखना-सिखाना चाहिये २३१अ

"राष्ट्रोंका स्वामी" दे० 'स्वप्न'

रूपांतर
अपने, में विश्वासकी कमी २२; यह कार्य तभी होगा २२
का सूत्र ३७-९
में बाधा ५३
परिस्थितिका ६४
के लिये आवेग ११४
और युद्ध १३२
(दे० 'जीवन' भी)

रोग-मुक्ति
गुरुके शब्दोंद्वारा ६३
विचार-रचनाके द्वारा ८६
शांत व्यक्तिकी उपस्थितिसे ९७

ल

लक्ष्य [उद्देश्य]
मानव जीवनका ३८, ४७, ११९; स्त्री और पुरुषका १३९
का ज्ञान, अपने पृथ्वीपर होनेके ४९-५२
की उपलब्धिके लिये वर्तमान क्षणकी तुष्टिका त्याग ११३-१४
के भेद : निजी हितोंकी खोज, व्यापक या ऊंचे, मनुष्यसे ऊपरके ११३-१४
(दे० 'प्रयास' भी)

व

वर्तमान ११५
को लेकर ही सो न जाओ, भविष्यके प्रति जागो २
(दे० 'एकता', 'लक्ष्य' भी)

वाणी
जो सबतक पहुंचानी होगी ३७
(दे० 'विचार' प्रचार भी)
शाश्वत, संसारको फिरसे सुनाना ४७
'निंदात्मक गप्पें ८७; शब्दोंसे परहेज काफी नहीं, विचारोंसे भी परहेज चाहिये ८७
'कथनी नहीं, करनी १००

वातावरण
आध्यात्मिक, सुन्दर विचारोंसे अधिक सहायक ५९
दूषित मानसिक, पर विजय पानेके लिये सुन्दर विचारोंका वातावरण बनायें ७२, ८९
लालसाका ८४
ज्योतिर्मय मानसिक, की सुरक्षा करना जरूरी १०४
(दे० 'विचार', 'व्यक्ति' भी)

विकास दे० 'आंतरिक विकास', 'प्रगति', 'मनुष्य', 'सचेतनता'

विचार
करना अपने-आप १४, २०, २७, ७३, ८०, ९६
के विषयमें २०-७, ७१-९०
दो प्रकारके : सजीव सत्ताएं और संवेदनजन्य [यंत्रवत् चलने-वाले] २०-१
सजीव सक्रिय सत्ताएं २०, २७, ७२-३, ८०-१, ८३, १०३
-ों, सजीव, का स्रोत २०, ८१
यंत्रवत् चलनेवाले, पर विजय जरूरी : उपाय २१-२
-ोंका विश्लेषण, अवलोकन २२, ६०
हममें कुछ अधिक प्रबल व स्थायी २२
एक-एक, का निष्पक्ष निरीक्षण २३, २४
रूढ़ : शिक्षा, वातावरण . . का फल २३, ७३
को अपना होनेके लिये २३, ७३
-ोंमें फिर सामंजस्य-स्थापन करना २४ (दे० 'मानसिक समन्वय')
के साथ प्रत्यक्ष संपर्क : उपाय और फल २६अ, ७७-९, ८२अ
केंद्रीय ३६-७, ८९-९०
सुन्दर, भी सहायक तबतक नहीं ५९
-ोंपर स्वामित्व : पांच शर्तें ६०-१; महत्त्वपूर्ण परामर्श ६१; उपाय ८६
उच्चतम, की खोज मानसिक समन्वयकी रचनाके लिये ६०, ७२
प्रचार करने योग्य ६४
के लिये मनका प्रेम ७२-४
-ों, नये, की प्राप्ति : कठिनाइयां और उपाय ७३, ७४-६
नये, की प्राप्ति हर जगहसे ७६-८
को व्यक्त करनेके लिये सभ्य आदमीमें भी कुछ चीजोंका अभाव ७६
की उपस्थितिका अर्थ ७७
-रचनाएं वहां भी, जहां हम सशरीर उपस्थित नहीं . . . ७७, ८६
को पहचानना उसके विभिन्न रूपोंके पीछे ७८
के रूपके लिये आसक्ति ७८-९
'हवा' में होता है जिसे कई एक साथ पकड़ते हैं ८१
और प्रकाश ८१-२
की रूप-निर्माणकी शक्ति (क्रिया-शक्ति) ८२-३, ८६-७, १०२-३ (दे० 'कामना' भी)
-ोंपर निगरानी जरूरी ८२, ८९
-रचना लोग बिना जाने तैयार करते रहते हैं, इससे जटिल वातावरण ८३
अच्छे और बुरेके प्रभाव ८३, ८६-७, ८९
सभी स्तरके लोगोंके प्रायः सभी, लालसा-संतुष्टिके ८४
-ों व कामनाओंके संक्रमणकी दासतासे मुक्ति : विजय दो प्रकारकी — सामुदायिक या सक्रिय और वैयक्तिक या निष्क्रिय ८५-६
-शुद्धि : उपाय और फल ८५-६

के मूल्यपर हमारी क्रियाओंका मूल्य ९०
-संपत्ति और उदारता ९५
-ोंका जगत् सबका है ९५
सभी, समान रूपसे सर्जनशील नहीं १०३
के क्षेत्रमें देश-कालकी जुदाई नहीं १०६
(दे० 'शब्द', 'मन', 'महापुरुष' भी)
विजय दे० 'मनुष्य', 'विचार', 'साधन'
विजेता
इतिहासके २३५अ
तुम भी बन सकते हो २३६
विज्ञान ८८, १०३, १५०
विधान आध्यात्मिक जीवनका ८, १५२
विनम्रता ५, १३८
: कहानी २३६-४३
विश्वास [श्रद्धा] १८, ४०, १२६, १५१
वीरता दे० 'साहस'
व्यक्ति
के करनेके लिये द्विविध कार्य ४८
विश्व-संगीतमें केवल एक स्वर . . उसका मूल्य इस बातपर निर्भर कि . . ४८अ
की भूमिका दे० 'काम'
प्रत्येक, की अभिव्यक्ति भिन्न-भिन्न ५१, ५४, १०१; परंतु विभिन्नताका अर्थ विभाजन नहीं ५४
या समूहको मनमाना रूप देना ५८
जो धन-संपत्तिसे उदासीन रह, निःस्वार्थ आदर्शका अनुसरण करता है वह . . ६५
हमारे संपर्कमें आनेवाले ६५-६
अपने अनुसार अपना साथी-वातावरण बना लेता है ६५
विश्वका लघुरूप ७७
युद्धमें भाग लेनेवाले, प्राकृतिक शक्तियोंकी स्थितितक उतार दिये जाते हैं १३१
एक बार यदि आध्यात्मिक बननेके लिये राजी हो जाय १५१
(दे० 'मनुष्य' भी)
व्यक्तित्व १३१
पृथक्, का भ्रम : ५३-४, ५५; इसके दो परिणाम ५३-४
की वृद्धिकी चेष्टा ५३
सच्चे, का निर्माण ५४
व्यवस्था ६०
: कहानी २१४-१९
ही आधार सब विज्ञानों और कलाओंका २१६
की आवश्यकता गृह, स्कूल और देशके लिये भी २१६-१७
और क्रम यदि लोप हो जायं २१७
'व्यवस्थित कार्यमें थकान और विश्राम साथ-साथ २१८
द्वारा व्यर्थके परिश्रमसे बचाव और शक्तिकी वृद्धि २१८
सीखनेके लिये प्रारंभमें कुछ कष्ट उठाना ही पड़ता है २१८
के लिये गंभीर, उदास होना जरूरी नहीं २१९

श

शक्ति
-यां, विश्वकी महान्, जड़तत्त्वके

आवरणसे अपनेको . . . ४१
-योंके क्षेत्रमें भी संग्रह करना संभव नहीं ९३-४
की भाषा ही जो समझते हैं २३५ (दे० 'बल', 'युद्ध' भी)

शब्द
-ोंको फलोत्पादक बनानेके बारेमें ६१-३
-ोंकी क्रिया-शक्ति तीन कारणोंपर निर्भर ६२-३
-ोंका सामर्थ्य गुरुओंके ६३

शरीर १९१
धारण करनेका उद्देश्य : बाधाओंपर विजय, जड़तत्त्वका रूपांतर ५२
की विदाई १०५
(दे० 'अतिमानव', 'चेतना' भी)

शांति २४
का अचूक साधन : चैत्य ज्योति १८, ५७
अविचल, की स्थिति २५, २६-७
'प्रशांतता : टिप्पणी २८
अविचल, दुःखके प्रतिकारमें ५६-८
प्रफुल्ल, का उदाहरण बनना ६४; यह स्थिति स्वाभाविक कब ६४
निरभ्र, विचार-शुद्धिसे ८६
आशा और आनंदके वाहक ९७, १७८
(दे० 'दुःख', 'प्रशंसा', 'सहायता' भी)

शासकों के विचार शक्ति-लालसाके ८४

शुभेच्छा
सतत, का नियम दूसरोंके प्रति ९८

स

संकल्प [इच्छा, निश्चय]
अपनेको ऊपर उठानेका २७, ९७अ

संगठन
सजीव और दीर्घायु कब ५८-६०
के सुधारकी शर्त : अपना सुधार ५९-६० (दे० 'जगत्' भी)
का मूल्य उसके कोषोंपर निर्भर ६०
(दे० 'सभा', 'समाज', 'स्त्री' भी)

संगीत
सागरकी लहरोंका : संदेश ११२-१३
-विद्या व्यवस्थापर आधारित २१६

संग्रह
करनेकी इच्छा ५३, ९३, १९०

संतुलन ९, ११४

संतोष दे० 'धन'

संपत्ति
हमारी हो सकती है कोई चीज ऐसा मानना ९४ (दे० 'स्वामी')
के स्वामी नहीं, न्यासी ९४
का त्रुटिपूर्ण वितरण : फल ९५
जिस, का शासन नारीके हाथमें १३५

संबंध
साथियोंसे, चार प्रकारके : भौतिक प्राणिक, आंतरात्मिक और मानसिक ६६ (दे० 'उदारता', 'समर्पण' भी)
दूसरोंके साथ, भगवान्में और भगवान्के द्वारा ६८, ९८

संयम दे० 'आत्मसंयम'

संवेदन
का आनंद अनुभव करनेकी जगह व्यक्ति संवेदनका उपभोग करनेवाले सभी लोगोंमें स्वयं संवेदन होता है १११
(दे० 'विचार', 'सचेतनता' भी)
संवेदनशीलता
उत्कट, अहंका परिष्कृत पर हानिकर रूप ५५-७
सचेतनता
और निवेदन, दो समांतर गतियां व्यक्तिके विकासमें १२१-२३
व्यर्थ है यदि यह समर्पण .. १२२अ
का बढ़ता क्रम, वर्तमान क्षणके संवेदनोंसे परम ज्योतिकी ओर १२३
(दे० 'भागवत उपस्थिति', 'समग्र' भी)
सच्चाई ५
मानसिक, जरूरी विचारोंके विश्लेषण एवं विचारसे प्रेमके लिये २४, ७३
मानसिक, सबसे कठिन ७३
कहानी १९८-२०९
का मान, सब देशों, सब युगोंमें २०५-६
सत्य
न केवल लक्ष्यमें, वरन् साधनोंमें भी १६
पूर्ण : परिभाषा २६
पूर्ण, निरपेक्ष, की खोज और प्राप्ति २६-७, ७६-८, ११९-२०
को दैनिक जीवनके कर्मोंमें उतारना ५९, ७८, १००
बच्चोंके मुंहसे भी प्रकट हो सकता है ७६
के लिये प्रेम ११९, २००-२
का प्रकाश शांत-नीरव मनमें १४९
पर दृढ़ रहोगे तो .. १७३
बोलनेके लिये जो विपत्तिका सामना करते हैं २०१-२
बोलनेके लिये कर्म भी सच्चे रखने चाहिये २०२
-व्यवहारके लिये यह याद रखना कि हम भगवान्के सम्मुख हैं २०२
की खोज सब विज्ञान और दर्शनका विषय २०७
के अभ्यासके लिये कोई समय अति शीघ्र नहीं २०७
बोलनेके लिये सत्यको समझना और ढूंढ़ना चाहिये २०७
की खोज यदि बचपनसे .. २०८
को ढूंढ़नेका तरीका २०९
(दे० 'आध्यात्मिक सत्य', 'ज्ञान', 'भय', 'विचार' भी)
सद्भावना [सौहार्द] ८, २५२, २६२
सद्वस्तु
को इन्द्रिय-ज्ञानतक सीमित कर देना १०२-३
सफलता की कला ११३-१४
सभा [सम्मेलन]
-ओंको उन्नत कैसे करें ५८-६०
-ओंकी उपयोगिता १०४-५
सभ्यता वर्तमान १४५अ
समग्र
के प्रति सचेतनता ५३, ११९, १२३

में हम शृंखलाकी, बस, एक कड़ी ..शरीरके कोषाणु हैं ५४
समय ८०टि०, १८९
जो उपयोगी या अच्छा काम किये बिना बीतता है .. ३४
और शक्तिका कम-से-कम अपव्यय कब ५० (दे० 'जीवन' इस भी)
को भी उसका भाग दो ६१
सब चमत्कारोंसे बड़ा है १७५
-पालन २१७, २१९
समर्पण [आत्म-समर्पण, आत्मदान] ५५, १११, १२४
भगवान्‌के प्रति : जबतक हम सेवक नहीं बन पाते ४०; इसके लिये अनिवार्य चीज ४०; एक उपाय भगवान्‌की ओर आरोहणका १२०; अपने सभी सचेतन तत्त्वोंका १२२
मानवजातिके प्रति, चार क्षेत्रोंमें १२०अ (दे० 'उदारता', 'संबंध' भी)
(दे० 'आत्मनिवेदन', 'प्रयास' भी)
समाज [समुदाय]
आदर्श, की स्थापना करना जिसमें नयी जाति विकसित .. ४७, ४८
के सदस्योंके लिये कार्य : त्रिविध ४८
की शक्ति १०४-५, १८२
(दे० 'संगठन', 'सामूहिक प्रेरणा' भी)
सर्वोत्तम आविष्कार ३६-४३
सहजता ५१, ५५
सहजबोध
का जन्म १४९
एक अचूक मार्गदर्शक १४९
का निरंतर उपयोग बुद्धिकी क्षमताओंके लिये हानिकर १५०
(दे० 'नयी जाति' भी)
सहानुभूति : कहानी २५५-६२
(दे० 'ध्यान' भी)
सहायता १०७, १७९
का एक ही उपाय, दूसरोंका दुःख दूर करनेमें ५६-८
प्रफुल्ल शांतिद्वारा ५८, ९७, १७८
संपर्कमें आनेवालोंकी, चार तरहसे ६६-७, १२०अ
विचार-रचनाके द्वारा ८६अ
बढ़ावेके शब्दोंसे १७४-७५
भूखे, प्यासे, अज्ञानी व जरूरतमंदोंकी २३०-३१, २५९
(दे० 'आत्मनिर्भरता', 'उदारता', 'देना', 'साहस' भी)
सहिष्णुता-प्राप्तिका मार्ग ७९
साधन [उपाय]
न्यायको विजय दिलानेके १३, १५, १६
सामंजस्य ११४
विश्वव्यापी, का आविर्भाव : लक्ष्य ४७
सामूहिक प्रेरणा [सुझाव]
का हमपर प्रभाव २३, १०५
साहस ५, ३१, ७४
रखो दुःखमें ४०-१, (दे० 'कठिनाई' भी)
: कहानी १६६-७५
अपनी सहायता और दूसरोंकी सहायताके लिये १६६-६८

शारीरिक, मानसिक, आत्मिक या नैतिक १६९-७१
विभीषणका १६९-७०
मूसा, मोहम्मद, बुद्ध व ईसाका १७०-७१
सच्चे, में प्रदर्शन नहीं १७१, १७२
शांतिपूर्ण १७१-७३
उन्नति-मार्गपर चलनेका १७३
सत्य-मार्गपर दृढ़ रहनेका १७३
सच्चा : स्वरूप १७३
बाधाओंपर विजय दिलाता है १७४
बंधा सकता है साहसी ही १७५

सिद्धांत
या धर्म-विशेषके लिये ऐकांतिक आवेग कैसे रह सकता . . ७९

सीखना
चाहिये हमें एक-दूसरेसे २३१-३२
किन चीजोंको २३३-३४

सेवक
की भूमिका, भगवान्‌के ३९
भगवान्‌का १२०, १२२, १२३, १२४, १३९
अयोग्य १९३

सोचना १०३
देखनेका उच्चतर प्रकार ८१
किसीके बारेमें १०६

स्त्री [नारी]
-योंकी अमूल्य सेवाएं १६
-योंका स्थान २०, १४६
का अपना गुण तत्त्वमीमांसा नहीं, अंतर्भास ७९-८०
-आंदोलनपर युद्धका प्रभाव १३५
और पुरुषका सच्चा संबंध : सहयोगका १३५, १३७, १४६; का समाधान १३८, १३९
की ऊर्जा और सहनशक्ति १३५
की स्थिति प्राचीन भारत, फ्रांस व रोमन कानूनमें १३५-३६
की संगठन-शक्ति १३५-३६
की दुर्बलता, उसके दोष १३६-३७
अधिक नम्र होती है १३८-३९
का सच्चा क्षेत्र [कर्तव्य] १४४, १४५
-योंकी भूमिका, नयी जातिके निर्माणमें १४६-४८, १५१अ, १५२टि०
(दे० 'मातृत्व', 'जापान' भी)

स्नायविक सत्ता
की सच्ची निर्वैयक्तिकता : पार्थिव प्राणके साथ तादात्म्यमें १११
भगवान्‌को देख सकनेमें मानसिक सत्तासे भी बढ़कर ऐकांतिक ११६

स्नायुलोक
धरतीपर जोरसे उतर आया है, शक्तिके रूपमें वह लड़ाईके क्षेत्र में . . . १३१-३२

स्पंदन [तथ्य]
के लिये अनुरूप माध्यम जरूरी ७७, ८१

"स्पष्टता" ७८

स्मृति ३७
-योंमें अनंतताके रसका, भागवत परमानंदका, कुछ अंश १५६-५७
-यां मूल्यवान् शिक्षक १५७
-योंद्वारा शाश्वतसे संपर्क १५७
(दे० 'चेतना', 'स्वप्न' भी)

स्वतंत्रता
प्राप्त करनेसे पहले उसका अधिकारी बनना चाहिये १४
स्वप्न १०२
एक विद्यार्थीका १-४
-ोंपर ध्यान देना अनिवार्य २९-३६
-रहित निद्राके लिये २९
में मनुष्य अपना असली रूप जान सकता है २९, ३०-१ (दे० 'ज्ञान' भी)
की गतिविधिका जो स्वामी नहीं वह अपना स्वामी नहीं ३१
-ोंका अर्थ लगाना ३२-३
-ोंसे सचेतनता व उनकी स्मृतिके लिये ३४-६
तीन : गौओंके चार झुण्ड १२४; लक्ष्यपर जानेवाले राजमार्गपर सांड १२५-२६; राष्ट्रोंके स्वामीद्वारा दुलहिनकी अग्नि-परीक्षा, एवं 'आतंक' के साथ युद्ध १२७-२९
(दे० 'रात्रि' भी)
स्वभाव
को वशमें करना १६२, १६६
की दुर्बलता १६४-६५
स्वर्ग के महल किन लोगोंके लिये १६२
स्वामी
समझना अपनेको, किसी वस्तुका ५३ (दे० 'संपत्ति' भी)
(दे० 'स्वप्न' भी)
हृदय
दयालु, चट्टान लोहा आग पानी हवासे भी बढ़कर प्रभावकारी २६२

नामानुक्रमणिका

अकबर (बादशाह) दे० 'बनारसीदास'
अबू अब्बास (मुसलमान लेखक) १९९
अबू उस्मान अल-हिरी को निमंत्रण देकर चार बार घरसे वापस .. १६४-६५
अबू बेकर २०५, २३७
अबू सईद (कवि) बीमारीमें मिलने आनेवालोंको सहायता आशाभरी कविता सुनाकर १७५
अब्दुल बहा ९९; को विदाई १०५
अब्दुल मालिक २३७
अब्दुल्ला (एक अंधा) २४१
अमर (खुरासानका राजकुमार) की हंसी विपत्तिमें भी १७६
अमरोहेके कागजी बर्तन २०२
अमृतबिन्दूपनिषद् २७६-९९
अल-कोजई (कवि) गधोंका शिकार : चट्टानसे तीरके टकरानेकी आवाज पांच बार, क्रोधमें धनुष ही तोड़ डाला १६४
अल मुस्ततराफ (पुस्तक) २४८
अली २३७
अल्मोड़ा का राजा और उसके तलवारें नचाते घबराये हुए सैनिक १७१; शहरके बसनेकी घटना २०८-९

अब्बाईको ढोंग सम्मानयोग्य प्रतीत नहीं हुआ २२३-२४
अश्वघोषकी टीका ३०३-५
अहुमंज्व १८१अ
आगोबियो (शहर) २११
आस्ट्रेलिया के यात्रियोंका जहाज चट्टानसे जा टकराया, शांत वीरता-द्वारा सब बच गये १७१-७२
इंग्लैंड में बच्चोंके स्कूलमें आगसे बचनेका अभ्यास १६७
इमाम हुसैन का प्रेम हब्शिन दासीके लिये भी २५१
इस्माइल सफवी (फारिसका शाह) २१०-११
ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने व्याकरणा-ध्यापकका पद स्वयं लेनेके बदले तर्कवाचस्पतिको दिलवाया २४२
ईसामसीह का साहस १७१
उमर २३७
उस्मान २३७
एंटीगोन दे० 'ओडियस'
ओडियस (यूनानका बूढ़ा अंधा राजा) के लिये उसकी बेटी एंटीगोनका प्रेम २४८-४९
काब इब्ने मामा (अरब सरदार) ने अपने हिस्सेका पानी नामीर अरब-को दे दिया २५६-५७
काली १३२
किताबन (रूमकी राजकुमारी) १८०
कुंती २३१
कुरान की एक आयत १६१; का 'समाचार' अध्याय २३३-३४
कोलम्बस का अध्यवसाय १८४
कैकेयी १९६
कैकौस (ईरानका राजा) की सूरज और चांदको जीतनेके लिये उड़ने-की योजना २३७-३८
कैवल्योपनिषद् २७१-७६
कौशल्या ने अपने पुत्रकी महिमाका अंतर्दर्शन पाया था २४७
गियाना २१२, २१३
गुश्तास्प (फारसका राजा) की लकड़-हारे व हातिमताईसे श्रेष्ठता १८०-८२
चीन के सम्राट्ने बहरा हो जानेपर फरियाद सुननेका दूसरा उपाय खोज निकाला २५८-५९
जरदुश्त संत १८१
जर्मनी १३६
जलाल (उपदेशक) को दो तुर्कोंकी भेंट : एक मुट्ठी दाल २०५
जापान के अनुभव १३९-४२; में जीवनशक्ति १४०; में धर्म १४०अ; संवेदनोंका देश १४१; और भारत : तुलना १४१-४२; के बच्चे १४२-४३; की स्त्रियों-से १४३-४४
जापानी -योंकी शक्तिका रहस्य १४०; भावोंका प्रदर्शन कम करते हैं १४०; मित्रका प्रेम १४०; सब जातियों-में सबसे कम स्वार्थी १४०; -योंका जीवन १४१-४२; -योंमें असाधारण आत्मसंयम पर आत्मिक शांति नहीं १४१-४२; -योंके लिये प्रत्येक रूप प्रतीकात्मक . . १४१; -योंके घरोंमें दूरदर्शिताका नमूना : तीन बंदर . . १९७; फूल-कला-कारकी विनम्रता २३६-३७

जिब्राइल १६२
जूलियस सीजर २३६
टोकियो १४३
तिरुवल्लुवर (तामिल कवि) की रक्षा नवजात शिशु अवस्थामें २२०-२१; और कावेरीपकमका दैत्य २२१-२२; और उनंचास ईर्ष्यालु कवि २२२
दशरथ की अदूरदर्शिता : रातमें शब्द-वेधी बाण . . जानवरके धोखेमें वृद्ध अंधे माता-पिताके इकलौते बेटेको मार डाला १९४-९६
दुर्योधन २०५; के मरनेपर प्रकृति दु:खी २५५, २५७
धम्मपद से उद्धरण, विचारपर ८३
नल-नील २३५
नारद के भक्ति-सूत्र २६५-७१
नीत्शे का अतिमानव १५०-५१
नैपोलियन २३६
न्यूटन का विशाल अध्ययन गुरुत्वा-कर्षण, ज्वार-भाटा, इन्द्रधनुषके बारेमें २४१; की नम्रता : मैं तो सत्यके विशाल सागरके किनारे सीपियां चुनता बालक हूं २४१अ
पाइथागोरस ९०
पाण्डव और लाक्षागृह २३०-३१
पुरोचन २३०, २३१
पैरिस २१, ८३
प्रतापचंद्र राय का अध्यवसाय, महा-भारतके अंग्रेजी अनुवादके लिये १८६-८७
फातिमा २४६
फारो (राजा) १७०
फिरदौसी (फारसी कवि) और सुल्तान महमूद २५७-५८
फ्रांस १७, १३५
फ्रांसिस (संत) गधेपरसे उतर पड़े और अच्छी सलाहके लिये ग्रामीण-के पांव चूमे २४३
फ्रांस्वा (संत) और मातेओकी भिक्षा १९०; और आगोवियामें आतंक फैलानेवाला भेड़िया २११-१२
बनारसीदास (जैन साधु) की अकबर बादशाहको सलाह १९०-९१, १९३
बर्नार्ड पालिसी (कुंभकार) का अध्यव-साय १८४-८५
बहा उल्ला ९९, १०१
बाइबिल का कथन : यहीं तो है भग-वान्‌का वास . . ३७; की कहानी, अस्तव्यस्ततामेंसे व्यवस्थित संसारके प्रकट होनेकी २१५; की कहानी राजा सुलैमानके बारेमें २३९-४०
बाबर २३६
बुद्ध (महात्मा) [सिद्धार्थ गौतम] ७७, १७०, १९७; तत्त्वमीमांसामें न पड़ करणीयको महत्त्व देते थे ८०टि०; उदारताके बारेमें ९२; और कलावित् ब्रह्मचारी १६६; के उपदेश सुननेको उत्सुक एक ग्रामीण जो गहरी नदी पारकर उनतक पहुंचा १७२-७३; का शिष्योंको उपदेश : प्रयत्न और प्रयत्नके फलके बारेमें १७३
बेलजियम १३६
ब्रह्मदत्त (राजा) पर शत्रु राजाकी विजय सधे हाथीके साहसके कारण १७४
भरत दे० 'हनुमान'

भरद्वाज के प्रश्न भृगु महर्षिसे २३२
भवभूति १६७
भारत १३५, १९२, २३५; की अनोखी चीज : भागवत वातावरण १४१; ने औरोंको जो ज्ञान दिया २३२ (दे० 'जापान' भी)
भीम २३१
भृगु (महर्षि) २३२
मंथरा १९६
मरियम २४६
महाभारत (महाकाव्य) १८६-८७
मातेओ १९०
माधव द्वारा मालतीकी रक्षा १६७-६८
मामून का अपनी पत्नीको उपहार २४५
मालती १६८
माल्यवान १६९
मुआविया २३७
मूसा १७०, २४८
मेओथा और लिआन ८-११
मैंजूं (कवयित्री) खलीफाके साथ ऐश्वर्यमें सुखी न थी १८८-८९
मोहम्मद (हजरत, पैगम्बर) १६१, १६२, १७०, २३३, २३४, २३७; की शैय्या १८७-८८; की शिक्षा १९२; को एक गरीब स्त्रीकी भेंट : तीन खजूरें और एक गेहूंकी रोटी २०५; की नम्रताकी तीन कहानियां : गधेपर भी बैठनेको राजी हो जाने, सभाकी भीड़में उकड़ूं बैठने, और एक अंधेको डांटकर पछतानेकी २४०-४१; का छोटा बच्चा, इब्राहीम, जब मरा २४६; और चिड़ियोंका घोंसला २६१
यजीद २३७
युधिष्ठिर २३१
यूनान १४४
रंगनाथ (शास्त्री) बालपनमें स्वयं जमानत बननेको तैयार हो गया बापको जेलसे छुड़ानेके लिये २५३
रन्तिदेव (राजा) का अपने भोजनमें से दान ब्राह्मण, शूद्र, चाण्डाल और कुत्तेको २२९
राम १६९; और रावणका युद्ध १७७-७८; सीता, लक्ष्मणको हंसी बंदरोंकी लूटपर १७८; का वियोग दशरथको १९६; ने एक तीरसे रावणद्वारा रचित अनेक राम-लक्ष्मणकी छायामूर्तियोंका लोप . . २०४; ने एक नीच जाति स्त्रीके अर्पित फलोंको महत्ता दी २०५; का समुद्रपर पुल बांधना २३४-३५ सीताको ब्याहकर जब अयोध्या लौटे २४९; को जब चौदह वर्षका बनवास . . २५०; और लक्ष्मणका प्यार २४९-५०; ने स्वयं शिक्षा पाकर भाइयोंको भी दी २६०
रावण १७७; द्वारा सीताका हरण और विभीषणकी उसे सत्य सलाह १६९-७०; की शेखी, रामके आगे २३९ (दे० 'राम' भी)
रूस का क्रांतिकारी दल १३-४
रेनाल्ड (चित्रकार) १४४
लंका १६९, २३४, २३५
लक्ष्मण १६९, १७८, २०४, २३४, २५०
लिआन दे० 'मेओथा'

वरजिल (रोमन कवि) को खेतमें रहना पसंद था १९३; का कथन, बैलके बारेमें १९३
वशिष्ठ ने विश्वामित्रको ब्रह्मर्षि तबतक नहीं कहा . . २००-१
वाशिव (डाक्टर) 'निद्रा और स्वप्न' पर २९
विभीषण १७८; का साहस १६९-७०
विश्वामित्र (राजा) दे० 'वशिष्ठ'
शंकर [शंकराचार्य] का संन्यासका निश्चय और ग्राह १८५-८६
शाहनामा (फिरदौसीका काव्य) २५७
श्रीकृष्ण ने दुर्योधनके निमंत्रणको छोड़ एक शूद्रका भोजन स्वीकारा २०५
श्रीमाताजी 'मेरे हृदयने भी दुःख झेला है १८; 'आपके सामने जो बोल रहा है भगवान्का सेवक है ७१; और अब्दुल बहा ९९-१००; 'मैं और मेरा विश्वास १५७
श्रीरामकृष्ण परमहंस १०४; के वचन ३०६-३७
सिकंदर २३५
सीता १६९, १७८, २३४, २४९
सुन्दरीबाला राय १८७
सुलेमान (राजा) का चमत्कारी सिंहासन १९९-२००
सुलैमान (दमिश्कका खलीफा) की शेखी अपनी सुन्दरताके बारेमें २३७
सुलैमान (यहूदियोंका राजा) के नम्र वचन : मैं एक छोटा-सा बालक हूं २३९-४०
सैयद अहमद ने देरसे आनेका कारण सच-सच बताया २०१-२
हनुमान १६९, २०४; ने भरतको रामके आगमनका शुभ समाचार दिया २६०-६१
हसन और हुसैन (नाटक) २५१
हातिफी (कवि) से मिलनेके लिये शाह इस्माइल सफवीका दीवार फांद कर जाना २१०-११
हातिमताई (दानी) और लकड़हारा १७९
हुसैन (देवता) २४६
हुसैन (पैगम्बर) ने अपने क्रोधको वशमें किया १६१-६२

सूची

भाग १

थोड़ी देर बादका रास्ता	...	१
सद्‌गुणोंके उत्सवमें	...	४
नीलमकी कहानी	...	७
एक नेता	...	१२
दु:ख झेलना जानो	...	१८
विचारके विषयमें	...	२०
स्वप्न	...	२९
सर्वोत्तम आविष्कार	...	३६

भाग २
(सभाएं)

७ मई, १९१२
इस समय करने लायक सबसे उपयोगी काम कौन-सा है? ४७
१४ मई, १९१२
विश्वके कार्यमें मेरा स्थान क्या है? ४९
२१ मई, १९१२
नि:स्वार्थ कार्यके प्रति आत्म-निवेदन करनेमें हममें सबसे बड़ी बाधा क्या है? ५२
२८ मई, १९१२
वह कौन-सी मनोवैज्ञानिक कठिनाई है जिसका सबसे अच्छा अध्ययन अनुभवद्वारा किया जा सकता है? ५५
४ जून, १९१२
हम अपने सम्मेलनोंको ज्यादा अच्छा कैसे बना सकते हैं ५८
११ जून, १९१२
अपने विचारोंका स्वामी कैसे बना जाय? ६०

१८ जून, १९१२ ६१
२५ जून, १९१२
प्रचार करने योग्य सबसे उपयोगी विचार कौन-सा है और लोगोंके सम्मुख प्रस्तुत करने योग्य सबसे उत्तम दृष्टांत कौन-सा है? ६४
२ जुलाई, १९१२
किस प्रकारके मन मेरे सबसे अधिक निकट हैं और उनके बीच मेरा आदर्श कार्य क्या होगा? ६५

भाग ३

विचारके बारेमें — भूमिका ... ७१
विचारके बारेमें — २ ... ७२
विचारके बारेमें — ३ ... ७९
केंद्रीय विचार ... ८९
उदारता ... ९०
अंतरमें भगवान् ... ९८
माताजी और अब्दुल बहा ... ९९
एक वार्ताकी भूमिका ... १००
एक सभाके बारेमें कुछ नोट ... १०४
अब्दुल बहाको बिदाई ... १०५

भाग ४
(प्रार्थना और ध्यान)

२४ जुलाई, १९१४ ... १११
३० जुलाई, १९१४ ... १११
मार्च-अप्रैल, १९१५ ... ११२
२३ अप्रैल, १९१५ ... ११३
९ दिसंबर, १९१६ ... ११४
बिना तारीख ... ११४
बिना तारीख ... ११५
बिना तारीख ... ११५
बिना तारीख ... ११६

भाग ५

(टिप्पणियां और विचार)

भगवान्‌की ओर आरोहणके रहस्योंके बारेमें	...	११९
दो समांतर गतियां	...	१२१
परम ज्योतिकी ओर	...	१२३
तीन स्वप्न	...	१२४
युद्ध	...	१२९

भाग ६

(जापानमें लिखे गये लेख, चिट्ठियां आदि)

नारी और युद्ध	...	१३५
स्त्री और पुरुष	...	१३८
जापानके अनुभव	...	१३९
जापानके बच्चे	...	१४२
जापानकी स्त्रियोंसे	...	१४३
यादें	...	१५६
मैं और मेरा विश्वास	...	१५७

भाग ७

(सुन्दर कहानियां)

१. आत्मसंयम	...	१६१
२. साहस	...	१६६
३. प्रफुल्लता	...	१७५
४. आत्मनिर्भरता	...	१७९
५. धैर्य और अध्यवसाय	...	१८३
६. सादा जीवन	...	१८७
७. दूरदर्शिता	...	१९४
८. सच्चाई	...	१९८
९. ठीक जांच सकना	...	२०९
१०. व्यवस्था	...	२१४

११. बनाना और तोड़ना ... २२७

परिशिष्ट

(पहले संस्करणोंमें अप्रकाशित कहानियां)

१२. दाता ... २२९
१३. ज्ञानकी विजय ... २३२
१४. विनम्रता ... २३६
१५. परिवार ... २४४
१६. सहानुभूति ... २५५

भाग ८

(फ्रांसमें रहते भारतीय साहित्यका अनुशीलन)

नारदके भक्ति-सूत्र ... २६५
कैवल्योपनिषद् ... २७१
अमृतबिन्दूपनिषद् ... २७६
इहलोकमें श्रमणकी जीवन-पद्धतिमें दिखायी देनेवाले बारह फल ... २९९
अश्वघोषकी टीका ... ३०३
श्रीरामकृष्णके वचन ... ३०६
विषय-अनुक्रमणिका ... ३३९
नामानुक्रमणिका ... ३६४